वाराणसीतान्त्रिकग्रन्थमालायाः षष्ठतमं पुष्पम्

श्रीकृष्णयामलं महातन्त्रम्

सम्पादकः

डॉ० शीतला प्रसाद उपाध्यायः

आगमाचार्यः (लब्धस्वर्णपदकः)

प्राध्यापकः, सांख्ययोगतन्त्रागमविभागे

सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये

वाराणस्याम्



प्राच्य प्रकाशन, जगतगंज

वाराणसी

वि० सं० २०४८]　　१९९२ ई०　　[शक सं० १९१४

ग्रन्थोऽयं अनुसन्धानप्रबन्धरूपेण सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयेन 'विद्यावारिधि' इत्युपाध्यर्थं स्वीकृतः, पुनश्च संशोधन-संवर्धनपूर्वकं भारतसर्वकारस्य मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयस्य शिक्षाविभागस्यार्थिकेन साहाय्येन मुद्रितः ।

मूल्यम्

प्रथमसंस्करणम् ; १००० प्रतिरूपाणि

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—
प्रकाशकः
प्राच्य प्रकाशन
पोस्ट बाक्स नं० २०३७
७४-ए, जगतगंज वाराणसी-२२१००२ (भारत)

प्रदीप कुमार राय, प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित एवं अनूप प्रिंटिंग वर्क्स, जगतगंज वाराणसी द्वारा मुद्रित ।

Varanasi Tantrika Text Series No. 6

SRIKRISNAYAMALAM MAHATANTRAM

Editor :

Dr. Shitala Prasad Upadhyay

Āgamāchārya (Gold Medalist)

Lecturer, Dept. of Sāṁkhyayogatantrāgama

Sampurnanand Sanskrit University

Varanasi



Prachya Prakashan

Post Box No. 2037

74–A, Jagatganj, Varanasi–221002 (INDIA)

1992

Published with the financial assistance from the Ministry of Human Resource Development, Government of India.

The book has been approved for the Ph.D. Degree of Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi. This edition is revised and enlarged form of the above work.

First Edition 1992 (Copies 1000)

Price Rs.

Boobs can also be held from :
PRACHYA PRAKASHAN
Post Box No. 2037
74–A, Jagatganj
Varanasi-2210012 (INDIA)

Published by Pradeep Kumar Rai, for Prachya Prakashan, Jagatganj, Varanasi and Printed at the Anoop Printing Works, Jagatganj Varanasi.

आशीर्वचांसि

प्रो० वी० वेङ्कटाचलम्

कुलाधिपति

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ

(मान्य विश्वविद्यालय)

नयी दिल्ली

शिवसङ्कल्पः

अवालोक्यापातदृष्टया प्रसङ्गान्तरागतेन मया डॉ० शीतला प्रसादोपाध्यायमहोदयैः सम्पादितो न चिरादेव प्राकट्यमुपजिगमिषुः श्रीकृष्णयामलग्रन्थः। अप्रकाशितोऽयं ग्रन्थः इदम्प्रथमतया सम्पाद्य प्राकाश्यमुपनीयत इत्येतद्विलोक्य यदा भवत्येकतो हर्षभूमा, तदा अपरतोऽस्य ग्रन्थस्य संस्कृतभाषानिबद्धमुपोद्घातमतिविस्तृतं राष्ट्र-भाषामयीं प्रस्तावनाञ्च विलोक्य यत्सत्यं प्रसीदत्यन्तरङ्गम्। यदाधुना आधुनिका युवानः परिश्रमाद् बिभ्यति, सर्वत्र च लघुनैव साधनेन भूयसीं सिद्धिमसाध्यामपि सिषाधयिषन्ति, तदैभिः बहुधा बहुलं परिश्रम्य प्रकृतग्रन्थसम्बद्धानां भूयसां विषयाणां संग्रहः कृतोऽत्रत्ये स्वोपज्ञ उपोद्घात इत्येतन्नूनं घटयति प्रत्याशामेतेषां भाव्यभ्युदये। विशेषतश्च पराक्रान्तमेभिः यामल-ग्रन्थसाहित्य-सङ्कलने, यन्नूनमुपकरिष्यति जिज्ञासून्।

भगवतो विश्वनाथस्य परमानुग्रहेणैतेषां तन्त्रशास्त्रग्रन्थसम्पा-दनमनोरथाः सर्वे यथायथं सिद्ध्यन्त्वित्याशासे।

वाराणसी, वि० वेङ्कटाचलम्

६-३-१९९२

प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी

डॉ० शीतला प्रसाद उपाध्याय ने विद्या-वारिधि उपाधि की प्राप्ति के लिये मेरे निर्देशन में कृष्णयामलतन्त्र का समालोचनात्मक परिष्कृत संस्करण और गवेषणापूर्ण उपोद्घात प्रस्तुत किया था। इन्हें यह उपाधि तो प्राप्त हो ही गयी, एक वस्तुनिष्ठ प्रस्तावना के साथ अब यह शोध-प्रबन्ध भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मन्त्रालय की आर्थिक सहायता से तथा अनेक तन्त्र-ग्रन्थों का प्रकाशन कर इस क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त प्राच्य प्रकाशन, जगतगंज वाराणसी के सहयोग से प्रकाशित होकर भारतीय साहित्य के प्रवुद्ध पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है, यह जानकर परम प्रसन्नता हुई।

जैसा कि प्रस्तावना में बताया गया है कृष्णयामलतन्त्र का यह परिष्कृत संस्करण विभिन्न स्थानों से प्राप्त आठ हस्तलेखों की सहायता से तैयार किया गया है। एक और नवीं मातृका भी इन्हें प्राप्त हुई। अन्य मातृकाओं से यह पूरी तरह से भिन्न है, अतः इसको प्रथम परिशिष्ट में अलग स्थान दिया गया है। इनका यह निर्णय उचित ही है। पूरे अथवा अधूरे आठ हस्तलेखों के आधार पर तो प्रस्तुत ग्रन्थ को इन्होंने संशोधित किया ही है, इसके बाद भी जब इन्हें पाठ में कुछ अशुद्धि जान पड़ी, तो उसे भी परिष्कृत करने का प्रयत्न किया है और इस तरह के पाठों को यहाँ छोटे कोष्ठकों में रखा गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के अनेक स्थल त्रुटित हो गये हैं और किसी भी हस्तलेख से जब उसकी पूर्ति न हो सकी, तब वहाँ इन्होंने अपनी कल्पना के सहारे उस पाठ की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है और ऐसे पाठों को बड़े कोष्ठक में रखा गया है। उदाहरण के लिए हम प्रथम पृष्ठ को ही देखें—प्रा(प्रे)रणप्रदम् और यन्तु (पातुं) [त्व]मर्हसि। यह एक अच्छा प्रयास है और अन्य ग्रन्थ-सम्पादकों के लिये भी अनुकरणीय है। सम्पादक की जिमेम्दारी किसी अध्यापक से कम नहीं होती। एक सही अध्यापक जैसे ग्रन्थ की ग्रन्थियों को खोलकर शिष्य को उसका अभिप्राय समझाता है, उसी तरह से एक योग्य सम्पादक भी अपनी टिप्पणियों के, प्रस्तावना और

उपोद्घात के सहारे ग्रन्थ के उन दुरूह स्थलों को परिमार्जित, परिष्कृत और बोधगम्य बनाकर विज्ञ पाठकों के सामने रख सकता है।

प्रस्तावना में इस ग्रन्थ के परिष्कार के लिये उपयुक्त मातृकाओं के साथ ग्रन्थ का भी संक्षिप्त परिचय आधुनिक ऐतिहासिक पद्धति से दिया है और प्राचीन भारतीय पद्धति के अनुसार भक्ति-सम्प्रदाय, भक्ति-दर्शन, लीला-धाम, श्रीराधा-कृष्ण एवं कामकला, श्रीराधा-कृष्ण तथा त्रिपुरसुन्दरी आदि विषयों का दार्शनिक स्वरूप भी पूरी गम्भीरता के साथ हमारे सामने रखा है। अपने संस्कृत उपोद्घात में इन्होंने यामलतत्त्व की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत कर यामलशब्द के अर्थ को स्पष्ट किया है और यामलतन्त्रों के प्रतिपाद्य विषयों का उल्लेख करते हुए इनकी संख्या, श्लोक-परिमाण आदि के विषय में शास्त्रीय प्रमाण दिये हैं। यामलों की उत्पत्ति कैसे हुई और इनकी संख्या कितनी है, इन पर सामान्यतः भारतीय पद्धति से विचार कर इन्होंने अपने परिश्रमपूर्ण अध्ययन के आधार पर ७० यामलग्रन्थों का विस्तार से विवरण दिया है। इससे इनका शास्त्र के प्रति समर्पणभाव प्रकट होता है। इतना सब करने के उपरान्त इन्होंने पूरे कृष्णयामलतन्त्र के २८ अध्यायों के विषयों का संक्षिप्त परिचय देकर पाञ्चरात्र आगम की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत यामल के वक्ता और श्रोता का परिचय देते हुए पूरे ग्रन्थ का दार्शनिक विवेचन करते समय यामलावस्था, अद्वय तत्त्व, यामल-भाव, स्वातन्त्र्य, शक्ति-तत्त्व, सृष्टि-तत्त्व, त्रिकोण-तत्त्व आदि के स्वरूप को स्पष्ट किया है।

इसी तरह से अन्य भी अनेक दुर्लभ ग्रन्थों का समुचित सम्पादन कर तथा नूतन ग्रन्थों का निर्माण कर सुरभारती की और विशेष कर भारतीय तन्त्र-शास्त्र की श्रीवृद्धि में ये निरन्तर लगे रहें, यही हमारी उस अन्तर्यामी से प्रार्थना है, जो कि सबका नियामक है।

दिनांक ८-३-१९९२ व्रजवल्लभ द्विवेदी

पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, सांख्ययोगतन्त्रागम विभाग

सं० सं० वि० वि०, वाराणसी

प्रो० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते

डॉ० शीतला प्रसाद उपाध्याय ने तान्त्रिक वाङ्मय के एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ श्रीकृष्णयामल पर अनुसन्धान कर शोध-निबन्ध के रूप से प्रस्तुत किया था। उसका सम्प्रति मुद्रण हो रहा है, यह प्रसन्नता का विषय है।

वैष्णव सम्प्रदायान्तर्गत चैतन्य सम्प्रदाय का यह ग्रन्थ है ऐसी धारणा है। राधा-कृष्ण युगल को अनादि मिथुन के रूप से इसमें दिखलाया है। साथ ही श्रीविद्या सम्प्रदाय से इसका निकटतर सम्बन्ध है यह भी स्पष्ट किया है। बहुत सी बातें जो इन सम्प्रदायों में है उन पर पूरा विचार अभी नहीं हुआ है, परन्तु इस प्रबन्ध से उस क्षेत्र में प्रवेश हुआ है।

आशा है भविष्य में इस पर और कार्य होगा। मैं शोधकर्ता को शुभाशीर्वाद देता हूँ।

दिनांक २०-२-१९९२ बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते

पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष–साहित्य विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो० रामजी मालवीय

अधुना 'श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम्' सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये सांख्ययोगतन्त्रागमविभागे शैवागमप्राध्यापकपदमलङ्कुर्वता आयुष्मता डॉ० शीतला प्रसाद उपाध्यायेन सुसम्पाद्य भूमिकापरिशिष्टादिभिश्च संयोज्य महता यत्नेन प्रकाश्यते। यदुद्धृतानां सन्दर्भाणां प्रसङ्गाश्च सङ्केतिताः तद्विदुषां वैष्णवागमशास्त्ररसिकानां महते तोषाय प्रभविष्यन्ति।

आशासे अग्रेऽपि अवश्यमेव शास्त्रसेवया सोऽयं यशोभाजनं भविष्यति।

रामजी मालवीय
आचार्य एवं अध्यक्ष
सांख्ययोगतन्त्रागम विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

फाल्गुनकृष्णाष्टमी,
वि० सं० २०४८

प्रस्तावना

'श्रीकृष्णयामलमहातन्त्र' का यह संस्करण श्रद्धेयचरण पूज्य गुरुदेव प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी के कुशल निर्देशन में तैयार किये गये मेरे शोध-प्रवन्ध का ही परिष्कृत एवं परिवर्धित स्वरूप है। शोध-काल में मुझे इस ग्रन्थ की पाँच मातृकाएँ ही उपलब्ध हो पायी थीं। सौभाग्य से इस ग्रन्थ के प्रकाशन के समय अन्य चार मातृकाएँ और प्राप्त हो गयीं। कुल आठ मातृकाओं की सहायता से इसका संस्करण आप सवके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। नवीं मातृका का भिन्न पाठ होने के कारण उसे परिशिष्ट—१ में रखा गया है। इसके अतिरिक्त न्यू कैटलागस कैटलागरम् (भाग ४, पृ० ३४७-४८) के अनुसार कुछ अन्य मातृकाओं की भी सूचना मिलती है, किन्तु कुछ कठिनाइयों के कारण इच्छा रहते हुए भी संस्करण में उनका उपयोग नहीं कर सका।

आशा है कि अगले संस्करणों में इस कमी को पूरा किया जा सकेगा।

मातृका-परिचय

संक्षेप में इस संस्करण में प्रयुक्त मातृकाओं का परिचय इस प्रकार है—

क. पूर्ण। १—६८ पत्रात्मिका, देवनागरी लिपि में प्राप्त यह बीकानेर स्थित अनूप पुस्तकालय की ४६१ संख्यक मातृका है। यह पूर्ण रूप से इस ग्रन्थ के प्रारम्भ से अन्त तक प्रयुक्त है। यह मातृका 'श्रीकृष्णाय नमः' पद से प्रारम्भ है। इसके अन्त में लिखा है—'संवत् १७२६ वर्षे पौषमासे कृष्णपक्षे चतुर्दशी १४ तिथौ रविवासरे श्रीविक्रममहानगरे महाराजाधिराज महाराजा श्री श्री श्री श्री श्री अनूपसिंह जी चिरञ्जिवि लिख्यावतुं मथेन जोशी लिख्यतु। शुभं भवतु। श्रीरस्तु।'

ख. अपूर्ण। २,६३—१६० पत्रात्मिका, देवनागरी लिपि में प्राप्त यह भी बीकानेर स्थित अनूप पुस्तकालय की ४६० संख्यक मातृका है। यह प्रथम अध्याय के ८ वें श्लोक के द्वितीय पंक्ति अर्थात् श्लोक सं० (१.८. ख) से श्लोक सं० (१.२३.ख) तक तथा पुनः श्लोक सं० (११.११६. ख) से ग्रन्थ के अन्त तक है। इस मातृका के अन्त में लिखित है—'संवत् १६९५ वर्षे

आषाढमासे कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रीमथुराक्षेत्रे इदं पुस्तकं वैष्णवगिरिधर-दासपठनार्थं वा परोपकारार्थम् । लि० मथुरादासात्मज किशोर वैश्य । कारं मध्ये कला संवत् १६६५ भाद्रपद सुदि १५ श्रीमथुराक्षेत्रे गिरिधरदासवैष्ण-वपठनार्थम् । लि० मथुरादासात्मज किसोर वैश्य । तथा प्रति ।'

ग. अनेक स्थलों पर खण्डित, अपूर्ण, ११ पत्रात्मिका (८,११–१२, २६–२८,४१,४६–४९), देवनागरीलिपि में प्राप्त यह भी अनूप पुस्तकालय की ४८९ संख्यक मातृका है । इस ग्रन्थ में इसका पाठ श्लोक सं० (२.४३.क) के अर्द्धभाग से श्लोक सं० (२.५६) के पूर्वार्द्ध तक, श्लो० (२.८९) से श्लो० (२.११८.ख) तक, श्लो० (५.२६.ख) से श्लो० (७.११.ख) तक, श्लोक (७.१७९.क) से श्लो० (७.१९४.क) के अर्द्धभाग तक तथा श्लो० (८.१०.क) से श्लो० (९.३७.ख) के अर्द्धभाग तक स्थित है ।

घ. ११२ श्लोकात्मिका, अपूर्ण, ४ पत्रात्मिका, देवनागरी लिपि में प्राप्त यह कलकत्ता स्थित एशियाटिक सोसायिटी आफ वंगाल की ५८९१ संख्यक मातृका है । इसमें मात्र कृष्ण के त्रिभङ्गचरित्र का ही पाठ मिलता है । इस ग्रन्थ में इसका पाठ श्लो० (११.१११.ख) से श्लो० (११.१२६.ख) तक तथा श्लो० (११.१७३.क) से श्लो० (१२.४५.क.) तक ही उपस्थित है । मातृका समाप्ति के अनन्तर 'संवत् १९५२ कु० सू० १ बुध को श्रीकृष्णयामलतन्त्र मे से लिखवायो श्री राधामोहन गोस्वामी राय साहब और ५० वालोंक गृह्य राधाचरणजी की कृपा से ५।५।६० व्यास गणेश राम' लिखित है ।

ङ. अपूर्ण १४–१०३,१०३–१३१ पत्रात्मिका, वंगलिपि में प्राप्त यह वाराणसीस्थ सरस्वती भवन पुस्तकालय की २६६७८ संख्यक मातृका है । इस संस्करण में इसका पाठ श्लो० (२.१७१.क) के अर्द्धभाग से ग्रन्थ के अन्त तक मिलता है । मातृका के अन्त में 'ॐ नमो कालिकायै' लिखित है ।

च. अपूर्ण, १ पत्रात्मिका, देवनागरी लिपि में प्राप्त यह भी सरस्वती भवन पुस्तकालय की २४५३४ संख्यक मातृका है । प्रस्तुत संस्करण में इसका पाठ श्लो० (१.२७.ख) के अर्द्धभाग से श्लो० (१.५०.ख) तक तथा श्लो० (२.२.क) से श्लो० (२.१३.ख) के अर्धभाग तक ही मिलता है ।

छ. अनेक स्थलों पर खण्डित, कुछ पत्र अर्धभाग से फटे हुए, अपूर्ण, ७८–७९,८३–८४,८६–८९,९१–९५ पत्रात्मिका, वंगलिपि में प्राप्त यह सरस्वती भवन की २४८७५ संख्यक मातृका है । इस संस्करण में श्लो०

(२४.२१८.ख) से श्लो० (२४.२७०.ख) के पूर्वार्ध तक, श्लो० (२४.३४५.ख) से श्लो० (२६.१०.क) तक, श्लो० (२८.५७.ख) से ग्रन्थ की समाप्ति तक के पाठ को इसकी सहायता से संशोधित किया गया है। कुछ पत्रों के फटे होने कारण उन्हें छोड़ दिया गया है। मातृका समाप्ति के अनन्तर यह लिखा है—'इति श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रसमाप्तश्चायं शकाब्दा १६८५ शके काशीस्थले पुस्तकं लिखत।'

ज. अपूर्ण, १ पत्रात्मिका, वंगलिपि में प्राप्त यह भी सरस्वती भवन की ५१३०१ संख्यक मातृका है। इस ग्रन्थ में श्लो० (२८.५१.क) से श्लो० (२८.७६.ख) तक के पाठ संशोधन में इसकी सहायता ली गयी है। इस मातृका के प्रारम्भ में 'ॐ नमः। श्रीकृष्णाय नमः' तथा इसकी समाप्ति के पश्चात् 'इति कृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णराधाप्रीतिवृन्दावनरहस्ये श्रीराधाकृष्णविहारनाम षड्विंशतितमस्याध्यायस्य मध्ये एतत्। ॐ राधाकृष्णाभ्यां नमः। ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ' लिखित है।

उपर्युक्त मातृकाओं के अतिरिक्त सरस्वती भवन पुस्तकालय से ही प्राप्त २४५३५ संख्यक मातृका भी है। यह अपूर्ण, २-१३ पत्रात्मिका, देवनागरी लिपि में है। सम्पूर्ण ग्रन्थ के पाठ से भिन्न होने के कारण इसे परिशिष्ट—१ के अन्तर्गत 'नवममातृकाविशेषपाठाः' शीर्षक से रखा गया है।

इस सन्दर्भ में आपके समक्ष एक सूचना और निवेदनीय है। म० म० गोपीनाथ कविराज के तान्त्रिक साहित्य (पृ० १५३) की सूचना के अनुसार 'नोटिसेज आफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट सेकण्ड सीरीज' नामक म० म० हर प्रसाद शास्त्री के विवरण में (१.७८) संख्यक मातृका १४६० श्लोकात्मक है। प्रयत्न करने पर भी इसे प्राप्त नहीं किया जा सका। इसमें वर्णित विषय इस प्रकार हैं —'व्यास का नारदजी से प्रश्न, शम्भु का ब्रह्माजी से प्रश्न, कृष्णरहस्य के विषय में ब्रह्मा का विष्णु से प्रश्न, आराध्य ईश्वर कौन हैं ? इसके निर्णय में विष्णु का महाविष्णु से प्रश्न, वृन्दावन का आरोहणवर्णन, विद्याधर आदि का प्रत्यागमन, विद्याधरी को कृष्ण का शाप, विद्याधर के साथ नारदजी का निर्गमन, कृष्ण के किंकर की उत्पत्ति, मदालसा का उपाख्यान आदि, ऋतध्वज का पितृपुर में प्रवेश, कालयवन का भस्म होना आदि।'

ग्रन्थ-परिचय

यह ग्रन्थ २८ अध्यायों में पूर्ण है। प्रस्तुत संस्करण प्रधानतः क. एवं ङ. मातृकाओं पर आधारित है। शेष अन्य मातृकाओं (ख. ग. घ. च. छ. ज) के आधार पर पाठों को संशोधित किया गया है। मातृकाओं में उपलब्ध पाठ के उचित न जान पड़ने पर लघु कोष्ठकों एवं दीर्घ कोष्ठकों में अपने सुझाव दिये गये है। लघु कोष्ठकों में पाठ का संशोधन तथा दीर्घ कोष्ठकों में पाठ को अपनी तरफ से जोड़ा गया है। बीच में कहीं कहीं पाठों को अनावश्यक समझकर भी इसे दीर्घ कोष्ठक में रखा गया है।

इस संस्करण में तीन परिशिष्टों का समावेश है। प्रथम में नवम मातृका का पाठ है, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। द्वितीय में इस ग्रन्थ की श्लोकानुक्रमणिका है। यहाँ श्लोक संख्या का निर्देश इस तरह समझना चाहिए, जैसे–(१.१.क) का तात्पर्य प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक की प्रथम पङ्क्ति है। इसमें प्रायः श्लोक दो पंक्तियों के हैं तथा कहीं कहीं तीन पङ्क्तियों के भी। इनके सङ्केत क्रमशः क.,ख.,ग. समझना चाहिए। तृतीय परिशिष्ट में प्रथम परिशिष्ट में आये श्लोकों की अनुक्रमणिका है। वहाँ इनका सङ्केत पृष्ठ संख्या के आधार पर ही रखा गया है।

इस ग्रन्थ के लेखक अज्ञात हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में ही चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रवर्त्तित भक्ति के सिद्धान्तों का परिचय मिलता है। ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय में 'सचीसुत' एवं 'चैतन्य' का नाम आता है। इससे प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ चैतन्य सम्प्रदाय की साधना पद्धति को लक्ष्य करके ही लिखा गया। मातृकाओं के अन्त में उनके लेखन के समय का सङ्केत मिलता है। क. मातृका संवत् १७२६ में, ख. मातृका संवत् १९९५ में, घ. मातृका संवत् १९५२ में तथा छ. मातृका शकाब्द १६८५ में लिखी गयी है। इनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ की रचना इन काल-खण्डों के पूर्व सम्पन्न हो चुकी थी। महाप्रभु चैतन्य का जन्म काल १४८५ ई० बताया जाता है। इससे सिद्ध किया जा सकता है कि इसकी संरचना सोलहवीं शती से सत्रहवीं शती के प्रारम्भिक वर्षों में की गयी होगी।

इस ग्रन्थ के अनुशीलन से यह प्रतीत होता है कि ग्रन्थ में पूर्व और उत्तर भाग के कोई लक्षण नहीं मिलते, अर्थात् इस ग्रन्थ का लेखक एक ही व्यक्ति हो सकता है। यह ग्रन्थ परवर्ती काल का अवश्य लगता है, किन्तु

इसकी भाषा-शैली पर प्राचीन ग्रन्थों का ही प्रभाव है। काव्य की दृष्टि से भी यह प्रशंसनीय है। इस ग्रन्थ को अर्वाचीन पुराणों की श्रेणी में भी रखा जा सकता है, यथा—ब्रह्मवैवर्त, गरुड इत्यादि। प्रारम्भ के तीन अध्यायों तक वेदों, उपनिषदों एवं पुराणों (विशेषकर श्रीमद्भागवत एवं देवी भागवत) का प्रभाव है। चौथे से छठे अध्याय तक शाक्त-शैवादि तन्त्रों का प्रभाव परिलक्षित होता है। सातवें से सोलहवें अध्यायों तक इनका मिश्रित प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सत्रहवें अध्याय से चौवीसवें अध्याय तक स्पष्टतया पौराणिक शैली में कथा के माध्यम से राधा-कृष्ण की उपासना-पद्धति पर शाक्त सम्प्रदाय की त्रिपुरसुन्दरी की साधना का प्रभाव लक्षित होता है। अन्त में पचीसवें अध्याय से अठाइसवें अध्याय तक चैतन्य सम्प्रदाय की साधना प्रणाली को प्रच्छन्नरूप में कहते हुए राधा-कृष्ण के श्रृङ्गारमय युगल-स्वरूप के वर्णन से यह ग्रन्थ समाप्त होता है।

पूर्वपीठिका

ऐसा प्रतीत होता है कि जिन प्राचीन संहिताओं के नाम रसिक-सम्प्रदायों में दिखायी पड़ते हैं, उनका प्रभाव किसी-न-किसी अंश में चैतन्य सम्प्रदाय पर पड़ा है। साथ ही कतिपय शाक्तादि तन्त्रों का भी प्रभाव इन पर दृष्टिगोचर होता है। जिस प्रकार गौतमीयतन्त्र, सनत्कुमारसंहिता, आलबन्दारसंहिता, सुन्दरीतन्त्र इत्यादि आगम ग्रन्थों ने लीला विषयक साहित्यों को प्रभावित किया है, उसी प्रकार 'श्रीकृष्णयामलमहातन्त्र' ने भी राधा-कृष्ण की लीला को अवश्य ही प्रभावित किया है। इस ग्रन्थ में त्रिपुरसुन्दरी की उपासना के साथ श्रीकृष्ण-लीला का घनिष्ठतम सम्बन्ध दर्शाया गया है। चैतन्य सम्प्रदाय में गुप्त रूप से श्रीयन्त्र की उपासना प्रचलित है।

भगवत्साधना के अनेक भेद दिखायी पड़ते हैं। इसका कारण जहाँ तक समझ में आता है, इस साधना में भक्ति के साथ साथ विविध प्रकार की योगाश्रित साधनाओं का भी प्रवेश है। भक्ति-साहित्य में रस-साधना की एक स्पष्ट धारा का निदर्शन दृष्टिगोचर होता है। इस रस-साधना का सम्बन्ध रसब्रह्म की लीला से है, जिसकी स्पष्ट झाँकी हमें तैत्तिरीय उपनिषद् में मिलती है। यहाँ ब्रह्म को रसस्वरूप कहा गया है और समस्त सृष्टि की प्रवृत्ति उसके इसी स्वभाव से बतायी गयी है। ब्रह्मसूत्रकार

बादरायण ने 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' का उल्लेख किया है। विष्णुपुराण में भी कहा गया है–'क्रीडतो बालकस्येव क्रीडा तस्य निशामय।' यहाँ लीला अथवा खेल का सङ्केत आनन्द अथवा रस से ही है। भक्तिसाधना में दो धाराओं का निदर्शन प्राप्त होता है–प्रथम भावरूप और द्वितीय रसरूप। भक्ति का भावरूप में अनुसन्धान न कर सकने पर ही चित्त में रसरूप का साक्षात्कार किया जा सकता है।

भक्ति-साधना के इतिहास में इसी कारण वैराग्यमार्ग तथा रागमार्ग की कल्पना की गयी। मुक्ति के उद्देश्य से वैराग्य-मार्ग का तथा भगवद्धाम में प्रविष्ट होकर लीला-साक्षात्कार के प्रयोजन से राग-मार्ग का प्रचलन हुआ। राग-मार्ग की धारा मात्र वैष्णवों में ही नहीं, अपितु शैवों और शाक्तों में भी प्रचलित थी। इस मार्ग में भी वैराग्य, ज्ञान इत्यादि का उदय भगवद्विषयक राग से यथा समय होता रहा है। यह धारा स्पष्टरूप से कृष्ण की उपासना में विशेष रूप से प्रवाहित हुई, जो हमें श्रीकृष्णयामल-तन्त्र में भी दिखायी पड़ती है। इस ग्रन्थ की रचना का प्रयोजन भी यही लगता है।

भक्ति-सम्प्रदाय

[१]भारतवर्ष में भक्ति-साधना के विभिन्न सम्प्रदाय प्रचलित रहे हैं और ये प्रायः वैष्णवों के ही रहे हैं। श्रीरामानुज श्री-सम्प्रदाय के, श्रीनिम्बार्क सनकादि या हंस-सम्प्रदाय के, श्रीमध्व ब्रह्म-सम्प्रदाय के तथा श्रीविष्णुस्वामी और तदनन्तर श्रीवल्लभ रुद्र-सम्प्रदाय के प्रवर्तक रहे हैं। ये सभी वैष्णव थे। इनके दार्शनिक मत भी भिन्न थे, यथा–श्री-सम्प्रदाय में विशिष्टाद्वैत, हंस-सम्प्रदाय में द्वैताद्वैत, ब्रह्म-सम्प्रदाय में द्वैत तथा रुद्र-सम्प्रदाय में शुद्धाद्वैत मान्य है। बंगदेश में चैतन्य महाप्रभु का गौड़ीय सम्प्रदाय तथा उड़ीसा में उत्कलीय वैष्णव सम्प्रदाय भी रहा है। इसके अतिरिक्त उनकी छोटी बड़ी अनेक शाखाएं भी हैं, जिनमें राधावल्लभी, हरिदासी, प्रणामी, श्रीनारायणी इत्यादि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। श्री-सम्प्रदाय से पूर्व द्रविड़ देश में आलवारगण भक्तिमार्ग की रागमार्ग शाखा के साधक थे।

---

१. इस ग्रन्थ की प्रस्तावना और उपोद्घात में दिये गये अधिकांशतः विवरण म०म० गोपीनाथ कविराज एवं प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी के निबन्धों पर आधारित हैं।

शैव-भक्तों में भी इसी प्रकार के भेद मिलते हैं। इन सम्प्रदायों की साधना-पद्धतियों में ज्ञान का प्राधान्य होने पर भी भक्ति को पूर्ण सम्मान प्राप्त था। सिद्धान्त-शैव में दासमार्ग, सहमार्ग इत्यादि नामों से मार्ग-चतुष्टय का विवरण मिलता है। उत्पलाचार्य की शिवस्तोत्रावली तथा अभिनव गुप्त के महोपविंशति इत्यादि स्तोत्रों से स्पष्ट होता है कि अद्वैत-शैवों में ज्ञान के साथ साथ पूर्ण भक्ति का समावेश था। ये शुष्कज्ञानी नहीं थे। त्रिपुरा सम्प्रदाय के प्रसिद्धग्रन्थ 'हरितायन संहिता' नामक 'त्रिपुरारहस्य' के ज्ञानखण्ड (२०.३३,३४) के अनुसार अद्वैत में प्रविष्ट होकर प्रतिष्ठित होने पर भी भक्ति का अस्तित्व सुरक्षित रहता है।

इससे स्पष्ट होता है कि साधना पद्धतियों में विभिन्नता का अवसर होते हुए भी उनमें भक्ति का भी पूर्ण समावेश था। प्रकृत ग्रन्थ 'कृष्णयामल-महातन्त्र' को दृष्टिगत करते हुए अब हम कुछ बातें चैतन्य-सम्प्रदाय के सन्दर्भ में कहेंगे।

चैतन्य महाप्रभु का जन्म सन् १४८५ ई० में हुआ था। इनकी गुरु-परम्परा में उनके संन्यासी गुरु केशव भारती का नाम आता है, जो माध्व-सम्प्रदाय के संन्यासी थे। इनके दीक्षा गुरु ईश्वरपुरी थे। केशव भारती व ईश्वरपुरी दोनों ही श्रीमन्माधवेन्द्रपुरी के शिष्य थे। यद्यपि कतिपय विद्वान् चैतन्य द्वारा प्रवर्तित गौड़ीय सम्प्रदाय का अन्तर्भाव माध्व-सम्प्रदाय में मानते हैं, तथापि इनके दार्शनिक सिद्धान्तों और साधना प्रणाली में पर्याप्त भेद है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गौड़ीय सम्प्रदाय के उपासकों ने अपने सिद्धान्तों के पोषण में पाञ्चरात्रागम, शाक्ततन्त्र और महायानादि बौद्ध-साधना प्रणालियों से बहुत कुछ ग्रहण किया है। परन्तु इन लोगों ने अपने मत को वैदिक मत के रूप में प्रचारित किया और उपनिषद् तथा पुराणों के प्रमाण अपने सिद्धान्तों की पुष्टि में दिये। सम्भवतः इन पर उस धारा का भी प्रभाव था, जो निगम और आगम को एक मानते चले आ रहे थे। प्राचीनकाल में भागवतमत तथा पाञ्चरात्रमत भिन्न थे। महाभारत के नारायणीय खण्ड में पाञ्चरात्रमत का उल्लेख है। वहाँ यह मत सात्वतगणों के धर्म के रूप में दर्शाया गया है। 'हर्षचरित' में पाञ्चरात्र और भागवत सम्प्रदाय का पृथक्-पृथक् उल्लेख मिलता है। भागवत-सम्प्रदाय विशेषतः

श्रीमद्‌भागवत पर आधारित था। जीव गोस्वामी ने इसकी टीका में तथा षट्सन्दर्भ टीका में पाञ्चरात्रसम्प्रदाय के साथ भागवतमत का समन्वय किया है। इन दोनों सम्प्रदायों का एकीकरण इनके भक्तिधर्म के कारण ही हुआ होगा, क्योंकि इन दोनों ही धर्मों में भक्ति की प्रधानता थी।

पाञ्चरात्र आगम के मूल ग्रन्थ संहिता नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी संख्या लगभग २५० के आसपास बतायी जाती है, यद्यपि इनका प्रकाशन अत्यल्प मात्रा में ही हो पाया है। इनमें द्वैतवाद और अद्वैतवाद का सन्निवेश है। इनका अद्वैतवाद भी कश्मीर के अद्वैतवाद की तरह शङ्कराचार्य द्वारा प्रवर्तित अद्वैतवाद से भिन्न एवं विलक्षण है। इनके अनुसार जब पराशक्ति परमेश्वर में विलीन रहती है, तब प्रलय-अवस्था होती है और उस समय शक्ति निष्क्रिय रहती है। यह अद्वय अवस्था है। इस सम्प्रदाय का अद्वैतवाद शक्ति और शक्तिमान् का समन्वयमूलक है। स्पन्द, प्रत्यभिज्ञा, क्रम तथा कौलादिदर्शनों में भी 'अद्वैत' शब्द का तात्पर्य 'शिव-शक्ति का सामरस्य' समझा जाता है। बौद्धों के महायान सम्प्रदाय में भी प्रज्ञा-पारमिता की सत्ता मानकर बोधिसत्त्व की स्थापना का यही प्रयोजन है। वैष्णव-आचार्यों ने शक्ति की निष्क्रिय अथवा अव्यक्त-अवस्था में भी सत्ता मानी है।

वैष्णव सम्प्रदायों में शक्तिमान् और शक्ति क्रमशः विष्णु तथा लक्ष्मी के रूप में उपास्य हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण की उपासना है। श्री चैतन्य ने भी राधा-कृष्ण का ही कीर्तन द्वारा प्रचार किया। यद्यपि पाञ्चरात्रागमों में विष्णु तथा लक्ष्मी की ही उपासना की प्रधानता है, तथापि नारदपाञ्चरात्रादि ग्रन्थों में राधा-कृष्ण की उपासना तथा वृन्दावन का भी वर्णन मिलता है। श्री चैतन्य का 'ब्रह्मसंहिता' नामक ग्रन्थ को दक्षिण भारत से लाने का विवरण मिलता है। इस ग्रन्थ में भी वृन्दावन का वर्णन है। सनत्कुमारसंहिता राधा-कृष्ण तत्त्व का प्रतिपादक ग्रन्थ है। इन सन्दर्भों के निष्कर्ष के रूप में हम महान् विचारक म० म० गोपीनाथ कविराजजी के एक वचन को भी यहाँ उद्धृत करना चाहेंगे। वह कहते हैं—[1]"मैं समझता हूँ कि प्राचीन काल में भागवत सम्प्रदाय ने राधा-कृष्ण तथा वृन्दावन की महिमा का विशेष प्रचार किया था। जब उक्त सम्प्रदाय पाञ्चरात्र सम्प्रदाय में मिल गया, तभी से इस साङ्कर्य का आविर्भाव

१. भारतीय संस्कृति और साधना, भाग २ (पृ० १८९)

हुआ होगा। तत्त्व अथवा रसास्वादन की दिशा छोड़ देने पर भी यह प्रतीत होता है कि देवकीनन्दन कृष्ण 'वासुदेव' तथा यशोदानन्दन कृष्ण 'गोपाल' की आख्यायिकाओं में साम्प्रदायिक अथवा ऐतिहासिक कुछ रहस्य निहित हैं।'

उत्कल वैष्णव-साहित्यों में चैतन्य-शाखा के पञ्चसखाओं का विवरण मिलता है, किन्तु उनकी साधना-पद्धति बंगीय वैष्णवोपासना से विलक्षण प्रतीत होती है। उत्कलीय वैष्णव-साधना के मूल में उत्कल में प्रचलित उत्तरकालीन बौद्धधर्म, नाथ-पन्थ, शैव-शाक्त आगम, पौराणिक कृष्ण तथा विभिन्नमार्गीय रस-साधना का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, साथ ही श्री चैतन्य के जीवन-दर्शन का तथा मध्ययुगीन सन्त-साधना का भी। इसके अतिरिक्त चैतन्य-सम्प्रदाय की साधना-प्रणाली को प्रभावित करने में शैव-शाक्त आगमों का भी हाथ रहा है।

भगवद्गीता मुख्यतः भक्ति, प्रपत्ति एवं शरणागति का प्रतिपादक ग्रन्थ है। इसमें कर्म और ज्ञान का भक्ति में समन्वय किया गया है। इसके चतुर्थ अध्याय में वर्णित योग की परम्परा महाभारत के शान्तिपर्व के नारायणी-योपाख्यान में वर्णित पाञ्चरात्र के समान ही है। शतपथ-ब्राह्मण में एक पाञ्चरात्रसत्र का उल्लेख मिलता है। छान्दोग्य-उपनिषद् के घोर आङ्गिरस के शिष्य देवकीपुत्र कृष्ण के उपदेश वेसनगर के 'गरुडध्वज' शिलालेख में देखने को मिलते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि शिव-भक्ति परम्परा में पाशुपतादि शैवों की भाँति विष्णु-भक्ति की परम्परा में पाञ्चरात्र मत प्राचीन काल से ही प्रतिष्ठित रहा है। तमिल-आलवारों की भक्तिभाव पूर्ण रचनाओं का प्रेरणा स्रोत पाञ्चरात्र आगम और गुप्तकाल का पौराणिक वाङ्मय ही था। कालान्तर में पाञ्चरात्र की परवर्ती साहित्यों का विभाजन राम और कृष्ण के उपासकों में हो गया। तमिल-आलवारों और पाञ्चरात्र-आगम की कृष्णधारा का विकास मथुरा एवं वृन्दावन में हुआ। वहाँ से यह बंगाल में पहुँची। कृष्णधारा पर भागवत-पुराण के प्रभाव से वल्लभाचार्य, चैतन्यमहाप्रभु और उनके अनुयायी भी अनुप्राणित थे। निम्बार्क और मध्वाचार्य भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे।

भक्ति-दर्शन

अब हम भक्ति के दार्शनिक सिद्धान्तों को अत्यन्त ही संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं। भक्ति चित्त का भावमय प्रकाशविशेष है। इस शब्द का वाच्यार्थ

वैदिक कर्म-काण्ड, ज्ञान-काण्ड या उपासना-काण्ड में स्पष्ट नहीं होता। यद्यपि वैदिक ग्रन्थों में 'एकायन-मार्ग' का निर्देश मिलता है, किन्तु इसके विपुल प्रचार के प्रमाण वहाँ नहीं मिलते। भक्ति-सूत्रों के रचयिता शाण्डिल्य और नारद हैं। इन दोनों का पाञ्चरात्रमत से सम्बन्ध है। प्रसिद्धि है कि शाण्डिल्य ऋषि ने चारो वेदों में परमश्रेयस तत्त्व को न पाने पर ही पाञ्चरात्र का आश्रय ग्रहण किया था और तृप्त हुए। शाण्डिल्य-संहिता का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। नारद भी पाञ्चरात्र मतावलम्बी थे। महाभारत के नारायणीयोपाख्यान तथा नारद-पाञ्चरात्रादि ग्रन्थों से इसकी पुष्टि होती है। छान्दोग्योपनिषद् के नारद-सनत्कुमार संवाद से भी नारद के मन्त्र-विद्या विरोधी होने का समर्थन मिलता है।

भक्ति-शास्त्र भक्ति के ही माहात्म्य का प्रख्यापक है। शास्त्रों में कहीं भक्ति को मुक्ति का साक्षात् कारण कहा गया है और कहीं पर भक्ति को भक्ति का ही कारण अर्थात् अपरा भक्ति को परा भक्ति का साधक माना गया है। भक्तिमार्ग में शक्ति का अस्तित्व स्वीकार करना अपरिहार्य है। शक्ति के विशुद्ध तथा निर्मल स्वरूप को अस्वीकृत कर देने से ईश्वर, जीव, जगत् तथा उनके परस्पर सम्बन्ध इत्यादि, सभीं अज्ञान(माया) कल्पित होने से हेय हो जाते हैं तथा भक्ति, करुणा और कर्म इत्यादि के स्रोत सूख जाते हैं।

भक्ति ह्लादिनी शक्ति की एक विशेष वृत्ति है। ह्लादिनी शक्ति महाभाव-स्वरूपा है, अत एव शुद्धभक्ति को महाभाव का ही अंश कहा गया है। भाव का विकास ही प्रेम है। साधना का क्रम विकास भगवद्धाम[1] की प्राप्ति है। ये धाम एक होने पर भी भाव-वैचित्र्य के अनुसार अनन्त हैं। इस धाम में भगवद्लीला की उपकरणभूत अनन्तवस्तुएँ, भोग्य, भक्त और भगवान् के लीला-विग्रह, सभी सत्त्व से रचित होते हैं। इसी को आगमों में 'बैन्दव-जगत्' कहा गया है। अशुद्ध माया से सर्वांश में विलक्षण होने से यह 'महामाया का साम्राज्य' इस नाम से भी विख्यात है।

---

१. प्राचीन उपनिषद युग में 'दहर-विद्या' प्रकरण में वर्णित अन्तराकाशवर्ती ब्रह्मपुर ही भगवद्धाम है। उस आकाश को हृदयाकाश भी कहा जाता है। वस्तुतः वह चिदाकाश ही है और लीला स्थान भी। पुराणसंहिता (३२.१२) में कहा गया है—'**चिदाकाशो महानास्ते लीलाधिष्ठानमद्भुतम्।**'

भाव स्थायी और सञ्चारी भेद से दो प्रकार के होते हैं। सञ्चारी-भाव आविर्भूत होकर तिरोहित भी हो जाते हैं, किन्तु स्थायी-भाव तिरोहित नहीं होते। सञ्चारी-भाव से रसास्वादन नहीं हो सकता, किन्तु स्थायी-भाव से रसास्वादन हो सकता है। सञ्चारी-भाव से स्थायी-भाव तक पहुँचना ही स्थायी-भाव है। यह स्थायी-भाव ही भावदेह का नामान्तर है तथा इसका सम्बन्ध हृदय प्रदेश से होता है। वैष्णवों में यह अन्तरङ्ग हृदय 'अष्टदल कमल' से विवेच्य है। इसीलिए स्थायी-भाव भी मूल स्थायी-भाव में विवर्तित होकर प्रकाशित होता है। इस अष्टदल तक एक-एक दल एक एक भाव का स्वरूप है और भाव में प्रविष्ट होकर साधना द्वारा उसे महाभाव में परिणत करना ही भाव-साधना का रहस्य है।

यहाँ पर एक वात हम पूरी तरह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वैष्णवों में हृदय-प्रदेश के अष्टदल की कल्पना पूरी तरह से षट्चक्रों के हृदय-प्रदेश की कल्पना से पृथक् है। षट्चक्रों में हृदय-कमल द्वादशदल युक्त है। इस प्रक्रिया में आज्ञाचक्र के भेद के पश्चात् अन्तर्लक्ष्य की प्राप्ति वतायी गयी है, किन्तु वैष्णवों में अन्तर्लक्ष्य की प्राप्ति के विना अष्टदल में प्रवेश सम्भव नहीं होता। वैष्णवों के इस अष्टदल को एक प्रकार से सहस्रदल से अभिन्न अथवा उसके अन्तर्गत माना जा सकता है। इनका अष्टदल भाव-राज्य है और षट्चक्र में वर्णित द्वादशदल भाव-राज्य का आभास मात्र है। द्वादशदल की व्याख्या के अनुसार भक्ति के पश्चात् ज्ञान की अवस्था आती है, किन्तु अष्टदल की व्याख्या में ज्ञान के पश्चात् भक्ति की अवस्था है। मैं समझता हूँ कि भक्ति के दो सोपानों अपरा-भक्ति एवं परा-भक्ति की कल्पना का यही रहस्य है।

भक्ति के दार्शनिक विकास के क्रम में प्रसङ्गतः हम यहाँ महाभारत की दो घटनाओं का उल्लेख करना चाहेगें। प्रथम, देवव्रत (भीष्म) की कथा और द्वितीय, श्रीकृष्ण-जन्म की कथा। प्रथम में शान्तनु और गङ्गा का एक निश्चित शर्त के अनुसार विवाह का होना, अपने ही गर्भ से उत्पन्न सात पुत्रों को स्वयं ही नदी में फेंकना, आठवें सन्तान के जन्म के पश्चात् शर्त का भङ्ग होना, गङ्गा का वापस चली जाना तथा वारह वर्षों तक पुत्र की सेवा कर किशोरावस्था प्रारम्भ होते ही अपने से पृथक् कर देना इत्यादि है। दूसरी घटना में वसुदेव और देवकी का विवाह होते ही कंस द्वारा कारागार में डाल देना, देवकी के सात बच्चों की हत्या स्वयं कंस के हाथों होना, आठवीं

सन्तान के रूप में कृष्ण का अवतरित होना, तत्क्षण योगमाया का नन्द के यहाँ आविर्भाव होना, वसुदेव का यमुना नदी को पार करके नन्द के यहाँ पहुँचना तथा वहाँ से लायी कन्या को कंस के हाथों सौंपना इत्यादि है।

यहाँ हमारा लक्ष्य इन घटनाओं को काल्पनिक कहना नहीं है। व्यक्ति के सत्कर्मों से प्रभावित होकर उनमें देव की कल्पना करके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भी आध्यात्मिक रहस्यों को निहित करना हमारे यहाँ के तत्त्ववेत्ताओं की परम्परा रही है, जिसकी झलक हमें विशेषकर पुराणों में मिलती हैं। अस्तु, ये दोनों घटनाएँ पूर्णरूप से भक्ति-साधना में वर्णित अष्टदल कमल की व्याख्या से सम्बन्धित हैं। शास्त्रों में 'वसु' शब्द का तात्पर्य 'अहङ्कार' से है और ये शापित होकर जन्म ग्रहण करते हैं। इसके सात खण्डों का विकास ही आठवाँ खण्ड होकर देवव्रत बनता है जो आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता है। इसी प्रकार आठ भावों की समष्टि के रूप में कृष्ण के साथ ही योगमाया का प्रादुर्भाव होता है, जिसकी सहायता से उनका शेष कृत्य सम्पादित होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्तर्जगत् में प्रवेश के पश्चात् तथा आभास के त्याग के साथ-साथ ही अष्टदल की प्राप्ति होती है। इस अष्टदल की कर्णिका के रूप में जो विन्दु है, वही अष्टदल का सार है और इसका नामान्तर है—महाभाव। वस्तुतः अष्टदल, महाभाव का ही अष्टधा विभक्त स्वरूप मात्र है अथवा ये अष्ट-भाव, महाभाव के स्वगत अङ्गमात्र हैं और इनकी समष्टि ही महाभाव का स्वरूप है।

शास्त्रों में भाव से महाभाव में जाने के दो प्रधान मार्ग बतलाए गये हैं[१]—प्रथम आवर्तन क्रम से तथा दूसरा सरल रूप से। आवर्त-मार्ग का अवलम्बन कर भाव से भावान्तर में चलते-चलते क्रमशः महाभाव में पहुँचा जाता है। इससे भिन्न सरलमार्ग से भी महाभाव में पहुँचा जा सकता। लेकिन इस मार्ग से महाभाव का पूर्णस्वरूप अधिगत नहीं होता, क्योंकि इस मार्ग से बिन्दु के साथ केवल उस विशिष्ट दल का ही सम्बन्ध होता है, अन्य दलों का नहीं। हमारी समझ के अनुसार महाभारत की दोनों घटनाएँ भाव से महाभाव में जाने के दोनों मार्गों के सङ्केत हैं। यह अष्टदल कमल बाह्य और आन्तर भेद से दो प्रकार से समझे जा सकते हैं। आभ्यन्तरीण कमल 'बिन्दु'

---

१. भारतीय संस्कृति और साधना, भाग २, (पृ० ७२—७३)

स्वरूप है और बाह्यदल कमल इस बिन्दु की आठ दिशाओं के आठ दलों की समष्टि है। यह बाह्य दल ही भावराज्य से अभिप्रेत है। ये अष्टभाव ही वैष्णवों के अष्टकालीन लीला के कालातीत आठ विभाग हैं। इनकी साधना पूर्ण होने पर माधुर्यमय मध्यविन्दु में प्रवेश प्राप्त होता है। अष्टभाव ही मध्य-विन्दु के अवयव होने से 'कला' पद वाच्य हैं और 'अष्टसखी' नाम से वर्णित हैं। इनके विकास की चरम परिणति ही 'श्रीराधा-तत्त्व' है। इस अवस्था में पूर्णतम रस की उपलब्धि में पूर्णतम मिलन और सामरस्य होता है।

लीला-धाम

शास्त्रों में लीला के तीन भेद कल्पित किये गये हैं। अद्वैत-वेदान्त मत में पारमार्थिक, व्यावहारिक तथा प्रातिभासिक भेद से सत्य के तीन रूप कहे गये हैं। बौद्ध विज्ञानवाद में स्वभाव के परिनिष्पन्न, परतन्त्र तथा परिकल्पित भेद से तीन भेद माने गये हैं। आलवन्दार संहिता में वास्तविक, व्यावहारिक तथा प्रातिभासिक भेद से लीला तीन प्रकार की बताई गई है। यहाँ वास्तविक लीला अक्षर-ब्रह्म के हृदय में सम्पन्न होती है। अक्षर-ब्रह्म का यह स्थान अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों से परे है। वह असीम और अनन्त है तथा ब्रह्माण्डातीत महाशून्य से भी अतीत है। वहाँ पञ्चमहाभूत स्वयंप्रकाश एवं चिदानन्दमय हैं। उस चिन्मय आकाश में आनन्दमय सुधा-सिन्धु में मणिद्वीप (चिन्तामणि द्वीप) विराजमान है। उसमें नवरसमयी लीला के लिए नव-खण्ड-भूमि है। उसके मध्य में शृङ्गारशाला है। 'पुराणसंहिता' में भी इसी तरह का विवरण उपलब्ध है। वहाँ प्रातिभासिक लीला का सम्बन्ध नित्य वृन्दावन से तथा व्याहारिक लीला का सम्बन्ध व्रजभूमि से बताया गया है। आलबन्दार संहिता में नित्य-वृन्दावन का वर्णन प्रातिभासिक रूप से है। 'चैतन्यचन्द्रोदय' के तृतीय अंक में नित्य-वृन्दावन का स्थान विरजा के उस पार चिन्मय भूमिरूप परव्योम से अभिन्न है। 'षट्सन्दर्भ' में विरजा नदी का स्थान त्रिगुणात्मिका प्रकृति के बाद बताया गया है। उसके अनन्तर परव्योम अथवा त्रिपादविभूति में 'नित्य-वृन्दावन' की स्थिति बतलायी गयी है। 'स्वयम्भू आगम' के ८५ वें पटल में 'नित्य-वृन्दावन' का स्थान कालिन्दी के उस पार बताया गया है तथा वृन्दावन अथवा गोकुल को ही 'गोलोक' कहा गया है। 'लघुब्रह्मसंहिता' में सहस्रदल को गोकुल कहा गया है। वहाँ इसके बाहर का चतुष्कोण श्वेतद्वीप और श्वेतद्वीप का अन्तर्मण्डल ही वृन्दावन बताया गया है। पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में श्रीकृष्ण को नारायण

वादरायण ने 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' का उल्लेख किया है। विष्णुपुराण में भी कहा गया है—'क्रीडतो वालकस्येव क्रीडा तस्य निशामय।' यहाँ लीला अथवा खेल का सङ्केत आनन्द अथवा रस से ही है। भक्तिसाधना में दो धाराओं का निदर्शन प्राप्त होता है—प्रथम भावरूप और द्वितीय रसरूप। भक्ति का भावरूप में अनुसन्धान न कर सकने पर ही चित्त में रसरूप का साक्षात्कार किया जा सकता है।

भक्ति-साधना के इतिहास में इसी कारण वैराग्यमार्ग तथा रागमार्ग की कल्पना की गयी। मुक्ति के उद्देश्य से वैराग्य-मार्ग का तथा भगवद्धाम में प्रविष्ट होकर लीला-साक्षात्कार के प्रयोजन से राग-मार्ग का प्रचलन हुआ। राग-मार्ग की धारा मात्र वैष्णवों में ही नहीं, अपितु शैवों और शाक्तों में भी प्रचलित थी। इस मार्ग में भी वैराग्य, ज्ञान इत्यादि का उदय भगवद्विषयक राग से यथा समय होता रहा है। यह धारा स्पष्टरूप से कृष्ण की उपासना में विशेष रूप से प्रवाहित हुई, जो हमें श्रीकृष्णयामल-तन्त्र में भी दिखायी पड़ती है। इस ग्रन्थ की रचना का प्रयोजन भी यही लगता है।

भक्ति-सम्प्रदाय

[1]भारतवर्ष में भक्ति-साधना के विभिन्न सम्प्रदाय प्रचलित रहे हैं और ये प्राय: वैष्णवों के ही रहे हैं। श्रीरामानुज श्री-सम्प्रदाय के, श्रीनिम्वार्क सनकादि या हंस-सम्प्रदाय के, श्रीमध्व ब्रह्म-सम्प्रदाय के तथा श्रीविष्णुस्वामी और तदनन्तर श्रीवल्लभ रुद्र-सम्प्रदाय के प्रवर्तक रहे हैं। ये सभी वैष्णव थे। इनके दार्शनिक मत भी भिन्न थे, यथा—श्री-सम्प्रदाय में विशिष्टाद्वैत, हंस-सम्प्रदाय में द्वैताद्वैत, ब्रह्म-सम्प्रदाय में द्वैत तथा रुद्र-सम्प्रदाय में शुद्धाद्वैत मान्य है। वंगदेश में चैतन्य महाप्रभु का गौड़ीय सम्प्रदाय तथा उड़ीसा में उत्कलीय वैष्णव सम्प्रदाय भी रहा है। इसके अतिरिक्त उनकी छोटी बड़ी अनेक शाखाएं भी हैं, जिनमें राधावल्लभी, हरिदासी, प्रणामी, श्रीनारायणी इत्यादि विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। श्री-सम्प्रदाय से पूर्व द्रविड़ देश में आलवारगण भक्तिमार्ग की रागमार्ग शाखा के साधक थे।

---

१. इस ग्रन्थ की प्रस्तावना और उपोद्घात में दिये गये अधिकांशत: विवरण म०म० गोपीनाथ कविराज एवं प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी के निबन्धों पर आधारित हैं।

शैव-भक्तों में भी इसी प्रकार के भेद मिलते हैं। इन सम्प्रदायों की साधना-पद्धतियों में ज्ञान का प्राधान्य होने पर भी भक्ति को पूर्ण सम्मान प्राप्त था। सिद्धान्त-शैव में दासमार्ग, सहमार्ग इत्यादि नामों से मार्ग-चतुष्टय का विवरण मिलता है। उत्पलाचार्य की शिवस्तोत्रावली तथा अभिनव गुप्त के महोपविंशति इत्यादि स्तोत्रों से स्पष्ट होता है कि अद्वैत-शैवों में ज्ञान के साथ साथ पूर्ण भक्ति का समावेश था। ये शुष्कज्ञानी नहीं थे। त्रिपुरा सम्प्रदाय के प्रसिद्धग्रन्थ 'हरितायन संहिता' नामक 'त्रिपुरारहस्य' के ज्ञानखण्ड (२०.३३,३४) के अनुसार अद्वैत में प्रविष्ट होकर प्रतिष्ठित होने पर भी भक्ति का अस्तित्व सुरक्षित रहता है।

इससे स्पष्ट होता है कि साधना पद्धतियों में विभिन्नता का अवसर होते हुए भी उनमें भक्ति का भी पूर्ण समावेश था। प्रकृत ग्रन्थ 'कृष्णयामल-महातन्त्र' को दृष्टिगत करते हुए अब हम .कुछ बातें चैतन्य-सम्प्रदाय के सन्दर्भ में कहेंगे।

चैतन्य महाप्रभु का जन्म सन् १४८५ ई० में हुआ था। इनकी गुरु-परम्परा में उनके संन्यासी गुरु केशव भारती का नाम आता है, जो माध्व-सम्प्रदाय के संन्यासी थे। इनके दीक्षा गुरु ईश्वरपुरी थे। केशव भारती व ईश्वरपुरी दोनों ही श्रीमन्माधवेन्द्रपुरी के शिष्य थे। यद्यपि कतिपय विद्वान् चैतन्य द्वारा प्रवर्तित गौड़ीय सम्प्रदाय का अन्तर्भाव माध्व-सम्प्रदाय में मानते हैं, तथापि इनके दार्शनिक सिद्धान्तों और साधना प्रणाली में पर्याप्त भेद है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गौड़ीय सम्प्रदाय के उपासकों ने अपने सिद्धान्तों के पोषण में पाञ्चरात्रागम, शाक्ततन्त्र और महायानादि बौद्ध-साधना प्रणालियों से बहुत कुछ ग्रहण किया है। परन्तु इन लोगों ने अपने मत को वैदिक मत के रूप में प्रचारित किया और उपनिषद् तथा पुराणों के प्रमाण अपने सिद्धान्तों की पुष्टि में दिये। सम्भवतः इन पर उस धारा का भी प्रभाव था, जो निगम और आगम को एक मानते चले आ रहे थे। प्राचीनकाल में भागवतमत तथा पाञ्चरात्रमत भिन्न थे। महाभारत के नारायणीय खण्ड में पाञ्चरात्रमत का उल्लेख है। वहाँ यह मत सात्त्वतगणों के धर्म के रूप में दर्शाया गया है। 'हर्षचरित' में पाञ्चरात्र और भागवत सम्प्रदाय का पृथक्-पृथक् उल्लेख मिलता है। भागवत-सम्प्रदाय विशेषतः

का नवम अवतार माना गया है तथा परमव्योम के ऊर्ध्वभाग में उनका धाम बतलाया गया है, किन्तु 'स्वयम्भू आगम' के अनुसार उनका धाम आवरणात्मक न होकर स्वतन्त्र है और नारायण के ऊर्ध्व में स्थित है।

श्रीमद्भागवत में राधा-कृष्ण की लीला का स्वरूप परवर्ती साहित्यों में वर्णित लीला-स्वरूप जैसा नहीं है। राधा-कृष्ण की लीला परवर्ती कल्पना के रूप में ब्रह्मवैवर्तपुराण और गर्गसंहिता में प्राप्त है। गर्गसंहितानुसार कृष्ण सर्वदा गोलोक में निवास करते हैं। वैदिक वाङ्मय में पृथ्वी को 'कृष्णा' और सूर्यमण्डल को 'कृष्ण' कहा गया है। निरुक्त भी कृष्ण को पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा मानते हैं। शतपथ ब्राह्मण में कृष्ण को 'यज्ञ' माना गया है और सौरमण्डल के साथ उनका सम्बन्ध बताया गया है। भगवद्गीता में 'आदित्यानामहं विष्णुः' से तीनों की एकता सिद्ध होती है। 'गो' शब्द का किरण परक अर्थ करने पर कृष्ण ही सूर्यरूप 'गोविन्द' हैं। प्रसिद्धि है कि 'खादिरवन' में गोवर्धन महापर्वत पर लीला हुई थी और यहीं पर श्रीकृष्ण नित्य-वृन्दावन के पति हुए थे एवं गोविन्दत्व को प्राप्त हुए।

यहाँ एक तथ्य और विचारणीय है कि जिस प्रकार पौराणिक कृष्ण देवकी के आठवें पुत्र कहे जाते हैं, ठीक वैसे ही सूर्यमण्डल के स्वरूप से विष्णु भी अदिति के आठवें पुत्र कहे गये हैं। पौराणिक कृष्ण की तरह इन्हें भी मातृ-पितृवियोग सहना पड़ा था। आदित्य को देवता स्वीकार करने पर ही कृष्ण का धाम गोलोक स्वीकार किया जा सकता है, जो सूर्यलोक के भी उस पार में स्थित है।

महाभारत के शान्तिपर्व में गोलोक को ब्रह्मलोक के समान माना गया है। हरिवंशपुराण में 'गवां लोकस्य गोलोकः' कहते हुए श्रीकृष्ण का स्मरण किया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में कोटिसूर्य से प्रकाशमान, मण्डलाकार तेजःपुञ्ज के अन्तराल में भगवान् श्रीकृष्ण के नित्य-धाम को गोलोक कहा गया है। पद्मपुराण के ब्रह्मखण्ड के प्रकृति-खण्ड में इसे वैकुण्ठ के पञ्चाशत्कोटियोजन ऊपर बताया गया है। वहीं इसे वृन्दावन से आच्छन्न तथा विरजा नदी से सुशोभित कहा गया है। बृहत्संहिता में गोलोक को भगवान् श्रीकृष्ण का नित्य-धाम बताते हुए इसे देवी और महेश के धामों से उत्तम कहा गया है। अनन्तसंहिता में इसकी स्थिति महावैकुण्ठ के ऊपर है। गोलोक की महिमा का वर्णन पद्मपुराण (पाताल-खण्ड), गर्गसंहिता (गोलोक-खण्ड), बृहत्संहिता, नारदपाञ्चरात्र तथा ब्रह्मवैवर्त इत्यादि

पुराणोंमें द्रष्टव्य है। नित्यलोक के रूप में इसका वर्णन नारदीयपुराण तथा देवीभागवत के नवम स्कन्ध में है।

वैकुण्ठ-धाम चतुर्भुज नारायण का लीला निकेतन है, किन्तु गोलोक धाम द्विभुज श्रीकृष्ण की नित्य विहार भूमि हैं। इसका अपर नाम श्वेत-द्वीप है। साधना के क्षेत्र में साक्षात् रूप से इस धाम में प्रवेश प्राप्त होता है, किन्तु क्रम-मार्ग का आश्रय करने पर वैकुण्ठ भेद के पश्चात् ही इसकी प्राप्ति होती है। यहाँ स्वरूप-विग्रह, लीलाप्रभृति माधुर्यगत उत्कर्ष की दृष्टि से श्रीकृष्ण ही 'स्वयंरूप' है एवं वैकुण्ठ-धाम के लीला-नायक नारायण उनके विलास होने से उनके एकात्मरूप हैं।

गोकुल-धाम भगवान् कृष्ण की बाल क्रीडा-स्थली है। इसका नामान्तर ब्रजभूमि है। श्रीमद्भागवत में इसको सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। पद्मपुराण (पाताल-खण्ड) में भी इस धाम का विशद विवेचन उपलब्ध है। श्री रूप गोस्वामी ने अपने लघु-भागवत में इसकी महिमा का वर्णन वैकुण्ठ धाम की अपेक्षा अधिक तत्परता से किया है। यह धाम भगवान् कृष्ण के नन्दनन्दन स्वरूप का धाम है।

गोकुल ही भाँति वृन्दावन की लीला भी रसिकहृदय-भक्तों को सर्वदा आकृष्ट करती रही है। ब्रह्मपुराण में श्रीमद्वृन्दावन को रम्य, पूर्णानन्द-रस का आश्रय और अमृतरसपूरित कहा गया है। गोपालतापिनी उपनिषद् में भगवान् कृष्ण के क्रीडाधाम वृन्दावन को गोपालपुरी कहा गया है। कृष्णोपनिषद् में यह कृष्ण की नित्य क्रीडास्थली प्रोक्त है। गर्गसंहिता में भी मथुरा, वृन्दावन, यमुना इत्यादि का महत्त्व वर्णित है। जयदेव के 'गीत-गोविन्द' की रचना का यही आधार रहा है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के श्रीकृष्णजन्म-खण्ड में वृन्दा की तपस्थली को वृन्दावन कहा गया है, जिसकी चर्चा श्रुति में राधा की सोलहवी सखी के रूप में की गयी है।

पुराणों में नित्य एवं अनित्य भेद से वृन्दावन दो प्रकार का है, किन्तु इस तन्त्र-ग्रन्थ 'कृष्णयामल' में दिव्य, भौम और भौत नाम से वृन्दावन के त्रिविध रूप कहे हैं। पद्मपुराण के पाताल-खण्ड में वृन्दावन की स्थिति समस्त ब्रह्माण्ड के ऊपर कही गयी है। बृहत्संहिता में समस्त वनों की अपेक्षा वृन्दावन को दिव्यतम और सर्वश्रेष्ठ वन माना गया है। पद्मपुराण में वृन्दावन के साथ ही मथुरा का भी गुणगान मिलता है।

उत्कल के वैष्णवों ने चैतन्य महाप्रभु से अनुप्राणित होकर भावराज्य की साधना की। श्रीकृष्ण-लीला एवं नित्य-लीला प्रसंग में वंगीय वैष्णवों से इनका पार्थक्य था। चैतन्य के प्रभाव से तान्त्रिक-साधना के अनेक गुह्य रहस्यों का समावेश उत्कलीय वैष्णव-सम्प्रदायों में हुआ। महापुरुष यशोवन्त-दास ने प्रेमभक्ति की आलोचना के सन्दर्भ में श्रीकृष्णतत्त्व, राधातत्त्व, युगल-रहस्य, योगमाया-तत्त्व एवं नित्य-लीला के वैशिष्टय को स्थापित किया। उनके अनुसार चार प्रकार की भक्तियों में प्रेमभक्ति सर्वश्रेष्ठ है। नवधाभक्ति में भी प्रेम-भक्ति को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। प्रेम-षोडशी का मन्त्र प्रेम-साधना के लिए द्वार स्वरूप है।

भगवान् की अनन्त शक्तियों के अनन्त भाव हैं। इसी कारण उनकी अनन्त लीलाएँ तथा अनन्त धामों का वर्णन शास्त्रों में वर्णित है। अनन्त लीला वैचित्र्य का यह अनुसन्धान साधकों को अपने अपने प्रारब्धवशात् मिलता है। प्राकृत देह में व्याप्त अहंभाव को अप्राकृत देह में प्रतिष्ठित करने पर ही अप्राकृत जगत् में प्रवेश एवं लीला दर्शन करने की योग्यता बनती है। प्राकृत देह की संरचना त्रिगुणात्मिका प्रकृति के अन्तर्गत होती है तथा इसके अन्तर्गत ही कारण, सूक्ष्म और स्थूल देह होते हैं। विशुद्ध सत्त्वरूप परमोज्ज्वल भगवद्‌विभूति की स्थिति इस त्रिगुणात्मिका प्रकृति के ऊर्ध्व-देश में होती है। इसे आगमों ने 'बिन्दु' पद से वर्णित किया है। इस स्थिति के लाभ के अनन्तर ही प्राकृत देह अथवा बैन्दव देह अथवा महाकारण देह की प्राप्ति होती है, किन्तु यह परिवर्तन योगमाया अथवा अर्धमात्रा के आश्रय के विना सम्भव नहीं होता। इस सिद्ध-देह की प्राप्ति ही लीला-धाम में प्रवेश की योग्यता है। इसका आकार अलौकिक होते हुए भी नित्य और विभु होता है। यह प्राकृत-शरीर में आनन्द-स्वरूप में तिरोहित रहता है। इस आनन्द के तिरोधान के साथ साथ अणुजीव निराकार चिन्मात्र रहता है तथा आनन्द के प्रादुर्भाव से उसी में पुनः साकारत्व आ जाता है। इस सन्दर्भ में वृहद्‌वामनपुराण की यह उक्ति द्रष्टव्य है—

अक्षरं चिन्मयं प्रोक्तं ज्ञानरूपं निराकृतिः।
नित्यमेव पृथग्भूतो ह्यानन्दोऽपि हि साकृतिः॥

भाव वस्तुतः एक ही अद्वय एवं अखण्ड-तत्त्व है। वह स्वतन्त्र एवं परमानन्द स्वरूप है। आनन्द ही उसका स्वभाव है। इसी लिए आप्तकाम

और स्पृहाहीन होने पर भी स्वभाववश यह भाव लीला अथवा क्रीडा-मग्न रहता है। एक ही भाव अपनी ही भित्ति पर अपने ही आनन्द के लिए एक से अनेक बन जाता है और अनन्त गुणों को धारण करता है। रूप अनन्त हैं, क्रियाएँ भी अनन्त हैं तथा आश्रय और विषय भेद से भाव के आलम्बन भी अनन्त हैं। यही रस-स्वरूप है और रस का भोक्ता भी है, अर्थात् भोग्य और भोक्ता अभिन्न हैं। भोग की भी यही स्थिति है। त्रिपुरसुन्दरी के प्रसङ्ग में प्रसिद्ध उक्ति **'श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव'** में 'भोग'शब्द का यही तात्पर्य है। यहाँ 'भोग'शब्द से लौकिक उपलब्धियों का ग्रहण न होकर तान्त्रिकों का प्रवृत्ति-मार्ग ही निर्दिष्ट है और यही मोक्ष का भी हेतु है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए अभिनवगुप्त 'प्रबोधपञ्चाशिका' में कहते हैं—

तस्या भोक्त्र्या स्वतन्त्रायाः भोग्यैकार एव यः।
स एव भोगः सा मुक्तिस्तदेव परमं पदम् ॥

एक स्थल पर उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है—'एष देवोऽनया देव्या नित्यं क्रीडारसोत्सुकः' अर्थात् यही क्रीडा ही शिव-शक्ति का सामरस्य है तथा यही परमतत्त्व है।

लीला-स्थल में अनन्य वैचित्र्य अवश्य है, किन्तु यहाँ स्थायी-भाव ही होता है। यहाँ का देश और काल भी अप्राकृतिक है। यहाँ देश का तात्पर्य चिदाकाश अथवा अनन्तव्योम का धाम और काल का तात्पर्य 'अष्टकाल'[१] है। यह अष्टकाल 'कालः पचति भूतानि' के सिद्धान्त का अनुसरण नहीं करता। यहाँ काल की सत्ता लीला परिकर के रूप में रहती है। यहाँ का उपादान विशुद्ध-सत्त्व'कर्म' से अथवा 'काल-प्रभाव' से परिणाम को प्राप्त नहीं होता, अपितु भक्त की इच्छा के अधीन ईश्वर की इच्छा मात्र से अथवा भगवान् की इच्छा के अधीन भक्त की इच्छा से अथवा लीलाधिष्ठात्री महाशक्ति 'योगमाया' के अधिष्ठान के अनुरूप लीलोपकरण रूप में परिणति-लाभ करता है। यहाँ योगमाया **'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति'** के सिद्धान्त से लीला करती है। यहाँ धाम भी वही है, काल भी वही है, उपादान भी वही है और निमित्त भी वही है। इसे द्वितीय की अपेक्षा नहीं

---

१. बीसवीं शती के महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन के 'सापेक्षता का सिद्धान्त' की कल्पना वैष्णवों के 'अष्टकाल' से सम्बन्धित प्रतीत होता है।

है। यह स्वयं लीला की द्रष्ट्री हैं, स्वयं ही अभिनेत्री है और स्वयं ही अपने अभिनय की प्रेक्षिका भी। यही समस्त रसों के आस्वादन की हेतु है। यहाँ का प्रधानरस श्रृङ्गार-रस है।

श्रीराधा-कृष्ण एवं कामकला

प्राकृत एवं अप्राकृत दोनों ही प्रकार के भाव जगत् में काम की शक्ति रति होती है। इनमें अन्तर केवल इस अंश में है कि प्रथम भाव जगत् प्राकृत एवं त्रिगुणात्मक है और द्वितीय अप्राकृत, त्रिगुणातीत एवं विशुद्ध-सत्त्वात्मक। ये दोनों मूलतः एक होते हुए कार्यतः भिन्न होते हैं। अप्राकृत जगत् के काम में प्राकृत जगत् के काम की समस्त वृत्तियाँ प्रकाशित रहती हैं। ज्ञानाग्नि से प्राकृत काम का शमन किया जाता है। पुराणों में शिव के तृतीय नेत्र से प्राकृत काम के दग्ध होने की कथा मिलती है, किन्तु अप्राकृत काम को दग्ध कर सकने का सामर्थ्य ज्ञान में नहीं होता, क्योंकि ज्ञान की घनीभूत अवस्था ही आनन्द है। वहाँ अप्राकृत काम ही आनन्द का नामान्तर बन जाता है। इस प्रकार भगवान् की आनन्दमयी नित्य-लीला का मूल उपादान प्राकृत-काम दग्ध होकर आनन्द अवस्था को प्राप्त होता है। इसीलिए शास्त्रों में भगवती ललिता की अपाङ्गदृष्टि से मन्मथ के उज्जीवित होने की बात कही गई है। यह प्राकृतिक उपादान से रचित न होने के कारण ज्ञानाग्नि का विषय नहीं बनता। इस कार्य और कारण की अभेद विवेचना में श्रीकृष्ण का ललिता से सम्बन्ध जोड़ा गया है। यथा— 'कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा।' यहाँ ललिता श्रीविद्या-सम्प्रदाय की कामेश्वरी-तत्त्व हैं और कृष्ण के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। श्रीकृष्ण अप्राकृत-काम एवं राधा अप्राकृत-रति है और इनकी श्रृङ्गार-क्रीडा ही काम-कला का विलास है।

काम-तत्त्व के स्फुरण के साथ-साथ बिन्दु-विसर्ग की क्रीडा होती है। इस क्रीडा में एक ही अद्वैत बिन्दु दो रूपों में परिणत होकर आकृष्य-आकर्षक सम्बन्ध स्थापित करता है और पुनः ये बिन्दुद्वय संकुचित होकर एक में लीन होते हैं। यथा—

अहं च ललितादेवी राधिका या च लीयते।
अहं च वासुदेवाख्यो नित्यं कामकलात्मकः॥
सत्ययोषित्स्वरूपोऽहं योषिच्चाहं सनातनी।
अहं च ललितादेवी पुंरूपा कृष्णविग्रहा॥

कामकला के इस विलास को तन्त्रों में अग्नि, सोम और रवि–इन तीन-विन्दुओं की क्रीडा से स्पष्ट किया गया है। अग्नि ऊर्ध्वशक्ति है और सोम अधःशक्ति। अग्नि शिखा से उद्‌गत होकर चन्द्रविन्दु पर आघात करने से यह विन्दु द्रवीभूत होकर अमृत का क्षरण करता है। अग्नि और सोम की साम्यावस्था ही रवि है। काम इसी का नामान्तर है। चन्द्रविन्दु षोडशी कला का नामान्तर है तथा पञ्चदश कलाएँ प्रतिविम्वरूप में अग्निमण्डल (कालचक्र) के आकार में चक्कर काटती रहती हैं। षोडशी कलारूप चन्द्रविन्दु पर अग्नि-शिखा के आघात से निःसृत अमृत-धारा का काम-रूपी रवि सर्वप्रथम आहरण करता है। तत्पश्चात् अग्निमण्डलस्थ पञ्चदश-कलात्मक चन्द्र में सञ्चरण होता है। इन्हीं पञ्चदश कलाओं से अनित्य जगत् की सृष्टि होती है। नित्यधाम की सृष्टि षोडशीरूपा अमृतकला से होती है। यही अमृतकला क्षुब्ध होकर आनन्दमय भावराज्य का निर्माण करती है। यही राधा-कृष्ण के मिलन जनित रस-प्रवाह का नामान्तर है। प्राकृत देह अग्नि के दोनों रूपों (ज्ञानाग्नि और कालाग्नि) से दग्ध हो जाता है, किन्तु षोडशी कला से निर्मित देह को दग्ध कर सकने का सामर्थ्य अग्नि के किसी भी रूप में नहीं होता।

श्रीराधा-कृष्ण तथा त्रिपुरसुन्दरी

श्रीकृष्ण और राधा दोनों ही तत्त्व त्रिपुरसुन्दरी के साथ घनिष्ठतम सम्बन्ध रखते हैं। त्रिपुरसुन्दरी को ललिता नाम से कुञ्जाधिष्ठात्री मुख्य सखी के रूप में वृन्दावन-लीला में स्थान प्राप्त है। 'वासुदेवरहस्य' नामक ग्रन्थ में महादेव के आदेश से वासुदेव के द्वारा त्रिपुरसुन्दरी की उपासना का संकेत मिलता है। उसके अनुसार यह सुन्दरी दशमहाविद्याओं में श्रेष्ठ है तथा शिव के हृदय में स्थित है। वाग्भवकूट, कामराजकूट व शक्तिकूट सम्मिलित भाव से इस महाविद्या के मन्त्र कहे गये हैं। यहीं वासुदेव की तपस्या से प्रसन्न होकर त्रिपुरा के प्रकट होने तथा उनको (वासुदेव को) शक्तियुक्त होकर कुलाचार अवलम्वनपूर्वक साधना करने का निर्देश त्रिपुरा द्वारा प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में हरिनाम रूप महामन्त्र के ऋषि वासुदेव, छन्द गायत्री एवं देवता स्वयं त्रिपुरा हैं। ग्रन्थ के अनुसार लक्ष्मी त्रिपुरा की अंशभूता है। हरिनाम द्वारा दश से द्वादश वर्ष तक कर्णशुद्धि की अनिवार्यता पर जोर देते हुए, देवी का वचन मिलता है–**'हरिस्तु त्रिपुरा साक्षात् मम मूर्तिर्न संशयः।'**

राधा-तन्त्र के अनुसार कृष्ण शक्ति के प्रचण्ड उपासक थे। शक्ति के प्रति समर्पित भाव ही उनके दिव्यत्व का रहस्य है। यहाँ राधा को त्रिपुरा की अनुचर 'पद्मिनी' का अवतार बताया गया है। साथ ही राधा के गणसमूहों के साथ कृष्ण का कौल स्वरूप भी वर्णित है। इस तन्त्र-ग्रन्थ के अनुसार वृन्दावन दिव्य-शक्ति का निवास स्थान है और यहाँ के दो प्रधान वृक्ष तमाल और कदम्ब, काली और तारा से सम्बन्धित कहे गये हैं।

प्रकृत ग्रन्थ 'श्रीकृष्णयामलमहातन्त्र' में श्रीकृष्ण और त्रिपुरा का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट है। यहाँ त्रिपुरीसुन्दरी कृष्ण से ही उत्पन्न एवं स्वयं कृष्णरूपा, चतुर्भुजा और रक्तवर्णा बतायी गयी हैं। यहाँ लयतालयुक्त नाद एवं मातृका-शक्तियों के आवाहन करने पर भुवनेश्वरी उत्पन्न होती हैं, जो गायत्री की अधिष्ठात्री है। राधा को वश में करने के लिए संक्षोभिण्यादि मुद्राओं से तत्तत् मुद्रा के नामानुसार राधिका के देह में क्षोभणादि क्रियाओं के उत्पन्न होने का वर्णन यहाँ मिलता है और अन्ततो गत्वा सर्वत्रिखण्डामुद्रा से राधा वशीभूत होती है। शुकसंहिता में पञ्चदश धारणाओं का उल्लेख है। यहाँ इन धारणाओं के ज्ञान से ही पूर्ण कलाओं के विकास का वर्णन किया गया है। कलाओं के विकसित होने पर योगी स्वयं कान्त होकर कान्तारूपी भगवान् को प्राप्त कर, पूर्ण व सहज अवस्था की उपलब्धि कर, मुक्ति लाभ करता है। 'ऊर्ध्वाम्नायतन्त्र' में राधा को महाविद्या कहा गया है। षोडश अक्षर विशिष्ट मन्त्र को धारण करने से वह षोडशी-विद्या के नाम से विख्यात है। यहाँ षोडशी राधा का ही नामान्तर है।

शास्त्रों में षोडशी को ललिता कहा गया है। यह कृष्ण-लीला में कुञ्जाधिष्ठात्री रूप में, रास-लीला में द्वाररक्षिणी रूप में, राधा की अष्ट-सखियों में सर्वप्रधान सखी के रूप में स्थान प्राप्त करती है, इसका वर्णन अनेक स्थानों पर मिलता है। वस्तुतः ललिता अथवा त्रिपुरा का आश्रय लिये विना कोई भी साधक कृष्ण और राधा की गुह्य-लीला का साक्षात्कार नहीं कर सकता। इसकी कथा पद्मपुराण के पाताल-खण्ड में वर्णित है। इसी पुराण के उत्तर खण्ड में दण्डकारण्यवासी मुनियों के गोकुल में गोपीरूप से जन्म ग्रहण कर पति रूप में भगवान् राम को प्राप्त करने की कथा भी है। इसी तरह के आख्यान हमें बृहद्वामनपुराण में भी मिलते हैं। यहाँ उपनिषदों एवं श्रुतियों के भी ब्रजधाम में गोपीभाव धारण करने की कथा वर्णित है। पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड में तो स्वयं गायत्री के गोपीभाव प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है।

इस पूरे विवेचन का हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि विविध सम्प्रदायों में अपने-अपने उपास्य देवता को किसी न किसी रूप में श्रीविद्या के साथ जोड़ने की परम्परा रही है। यह परम्परा सर्वथा अप्रामाणिक भी नहीं है। प्रत्येक सम्प्रदाय के विशिष्ट आचार्यगण, जो साधक होते थे, गुरु-सम्प्रदाय से इस रहस्य का ज्ञान प्राप्त करते थे। ब्रह्माण्डपुराण के **'मोक्षैक-हेतु विद्या तु श्रीविद्या नात्र संशयः'** के अनुसार अन्तिम भूमिका में सामरस्य लाभ के लिए श्रीविद्या का आश्रय लेना ही पड़ता था। अन्य महाविद्याओं की उपासना की आम्नाय पद्धति में भी श्रीविद्यासम्मेलन से ही पूर्णता मानी जाती थी, यह एक तथ्य है। श्रीविद्या प्रधानतः देवताओं की उपास्य देवता है। ब्रह्मयामल में कहा गया है—

यत्पादार्चनतो देवा देवत्वं प्रतिपेदिरे।
तां नमामि महादेवीं महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥

यह केवल अर्थवाद ही नहीं है, अपितु वैदिक, पौराणिक तथा तान्त्रिक-प्राणप्रतिष्ठा विधि में भी इसी परा प्राणशक्ति का आवाहन किया जाता है। इसका ध्यान है—

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवमलिगुणमप्यङ्कुशं पञ्चबाणान्।
बिभ्राणाऽसृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ॥

यही कारण है कि वैष्णवागमों में अथवा श्रीकृष्णोपासना में श्रीविद्या का सम्बन्ध देखा जाता है। श्रीविद्यासम्मेलनतन्त्र के अनुसार तत्तद् देवताओं के मन्त्रों में श्रीविद्या के मन्त्र-कूट मिलाने का विधान है। इस प्रकार की परम्परा को हम काल्पनिक नहीं कह सकते, जैसे—वैष्णवों में गोपालसुन्दरी विद्या इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इसी परम्परा के निर्वहन में चैतन्य-सम्प्रदाय में श्रीविद्या-साधना का सम्बन्ध पौराणिक शैली में इस 'श्रीकृष्ण-यामलमहातन्त्र' में भी हुआ है।

अस्तु, अपने स्वल्पज्ञान के अनुसार अपनी कुछ बातें आप सुविज्ञ पाठक-जनों के समक्ष रखी गयीं है। हम यह समझते हैं कि इस ग्रन्थ की समालोचना में बहुत से रहस्यों का भेद यहाँ सम्भव न ही हो सका है। फिर भी कुछ प्रयास अवश्य किया गया है और भविष्य में भी होता रहे, ऐसी हमारी कामना है।

आभार-प्रदर्शन

सर्वप्रथम हम भारतीय वाङ्मय के महान् विचारक एवं अपने विभाग के संस्थापक शिवसायुज्य प्राप्त म० म० पं० गोपीनाथ कविराज का स्मरण करते हुए उस महापुरुष के चरण-कमलों में श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं। इनके निबन्ध सदैव ही हमारा मार्गदर्शन करते रहते हैं। तत्पश्चात् हम इस विभाग के आगमशास्त्र के पूर्व अध्यापक एवं 'चिद्गगनचन्द्रिका' के टीकाकार श्रीगुरुचरण स्व० पं० रघुनाथ मिश्र जी के सादर-चरणों में प्रणाम करते हैं। इस शास्त्र में हमारा प्रवेश, प्रवृत्ति और प्रेरणा इत्यादि इन्हीं महापुरुष की देन है। यद्यपि कालचक्र के दुर्योग से हम इनके चरण-रज से अपने मस्तक को सूना पाते हैं, किन्तु इनका आशीर्वाद हमें जन्म-जन्मान्तर तक मिलता रहे, यही हमारी प्रार्थना है। श्रीगुरुचरण इस संसार से कूंच करते-करते मुझ दीन को प्रो० ब्रजवल्लभ द्विवेदी जी के श्रीचरणों में छोड़ गये थे। इनके दायित्व का निर्वाह प्रो० द्विवेदी आज तक कर रहे हैं और अन्त तक करते रहें, हमारी उनसे यही प्रार्थना है। प्रो० द्विवेदी कविराज जी द्वारा प्रज्ज्वलित की गयी तन्त्रशास्त्रीय दीपमालिका के प्रामाणिक और अन्तिम चिराग हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ 'श्रीकृष्णयामलमहातन्त्र' का शोधपूर्ण सम्पादन इनका ही आशीर्वाद है। इसी क्रम में पूज्य पिताश्री स्व० डा० सुशील कुमार उपाध्याय को भी हम प्रणाम करते हैं। इस सांसारिक जीवन की कठिनाइयों के मध्य शास्त्रसेवा का सौभाग्य मिलता रहे, इनसे हमारी यह कामना है। इन अवसर पर हम स्व० ठाकुर जयदेव सिंह का स्मरण करते हैं। जब भी भी हमें इनके दर्शन का सौभाग्य मिलता था, अनायास ही वे अपने ज्ञान को उड़ेलना और तन्त्र-शास्त्र के गम्भीर रहस्यों को समझाना प्रारम्भ कर देते थे। अपने वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रो० डॉ० रामजी मालवीय की अहैतुकी कृपा को आजीवन प्राप्त करने की अभिलाषा है। इनकी कृपा से ही हम आगे भी कुछ कार्य कर सकते हैं।

वर्ष १९८९ का जनवरी मास मेरे जीवन का सर्वाधिक विस्मयकारी काल सिद्ध हुआ, जब कि इस विश्वविद्यालय के साहित्य विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रो० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते जी से हमारा सम्पर्क हुआ। ये महान् तान्त्रिक, प्रातः स्मरणीय, आचार्य श्रीभास्कर राय की श्रीविद्योपासना की परम्परा के प्रामाणिक आचार्य एवं महान् साधक भी हैं। संस्कृत साहित्य जगत् में इनकी प्रसिद्धि सर्वविदित है ही। इनकी कृपा से हमें श्रीभास्कर राय

के सम्प्रदायगत साहित्य के मार्मिक रहस्यों का अवबोधन हो रहा है, साथ ही श्रीविद्या के साहित्य के प्रति हमारा रुझान और ललक भी बढ़ी है क्योंकि पूर्वकाल के विद्यार्थी जीवन में प्राप्त विज्ञान के संस्कार (क्यों और कैसे) से हम अपने को मुक्त नहीं कर पाते हैं। इसी वर्ष के मध्य में हमें अपने विश्वविद्यालय के पूर्व एवं महान् कुलपति प्रो० वी० वेङ्कटाचलम् जी का हार्दिक आशीर्वाद भी मिला। इनके आशीर्वाद एवं प्रेरणा ने हमारे जीवन को अवश्य ही प्रभावित किया है और जीवन में कुछ करने का संकल्प भी जागृत हुआ है। भविष्य में भी आशीर्वाद की कामना करते हुए इनके श्रीचरणों में हम नमन करते हैं।

अपने विभाग के अध्यापक सर्वश्री पं० जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग एवं पं० गणपति शास्त्री ऐताल के प्रति हम कृतज्ञ हैं। ये दोनों ज्ञान-वृद्ध पग-पग पर हमारा मार्ग-दर्शन और सहायता करते रहते हैं।

प्रकाशन के क्रम में सरस्वती भवन के ग्रन्थाध्यक्ष डॉ० विजय नारायण मिश्र के हम सर्वाधिक आभारी हैं। इनकी ही प्रेरणा से इस ग्रन्थ का प्रकाशन मानवसंसाधनविकास मन्त्रालय की वित्तीय सहायता से सम्पन्न हो रहा है। कृष्णयामल की पाण्डुलिपियों को सुगमता पूर्वक उपलब्ध कराने में अनूप-पुस्तकालय, बीकानेर और एशियाटिक सोसायिटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता के अधिकारियों व कर्मचारियों के भी हम अत्यन्त आभारी रहेंगे।

ग्रन्थ के प्रकाशन में 'प्राच्य प्रकाशन, जगतगंज, वाराणसी' के श्री प्रदीप कुमार राय एवं उनके कम्पोजीटर श्री लालचन्द चौहान के प्रति भी हम कृतज्ञ हैं। श्लोकानुक्रमणी में श्रद्धापूर्वक सहयोग करने वाली चिरजीवनसङ्गिनी श्रीमती उर्मिला उपाध्याय के निरन्तर सहयोग की भी हमें आकांक्षा है।

महाशिवरात्रि, संवत् २०४८ — शीतला प्रसाद उपाध्याय

वाराणसी



उपोद्घातः

अभिनवगुप्तपादैः श्रीतन्त्रालोके प्रथमे आशीर्वादात्मके मङ्गलश्लोक उक्तम्—

विमलकलाश्रयाभिनवसृष्टिमहाजननी
भरिततनुश्च पञ्चमुखगुप्तरुचिर्जनकः ।
तदुभययामलस्फुरितभावविसर्गमयं
हृदयमनुत्तरामृतकुलं मम संस्फुरतात्[1] ।। इति ।

मम आत्मनो हृदयं जगदानन्दादिशब्दवाच्यं तथ्यं वस्तु, सम्यग्देहप्राणादिप्रमातृतासंस्कारन्यक्कारपुरःसरसमावेशदशोल्लासेन दिक्कालाद्यकलिततया स्फुरतात् कालत्रयावच्छेदशून्यत्वेन विकसतादित्यर्थः । तच्च कीदृक् ? इत्युक्तम्—इति । 'तत्' आद्यार्थव्याख्यास्यमानं च तत् 'उभयं' तस्य यामलम्, 'तयोर्यद्यामलं रूपं स संघट्ट इति स्मृतः' इति वक्ष्यमाणनीत्या शक्तिशक्तिमत्सामरस्यात्मा संघट्टः[2], अर्थात् नास्ति उत्तरं यस्मात् तद् अनुत्तरम् । अमृतञ्चेति एतादृक् कुलं शुद्धस्वातन्त्र्यशक्तिरूपमेव, तत्र विमलकलाश्रयाभिनवसृष्टिमहाजननी शक्तिरेव ।

वर्णकलाया आधारेण 'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे' इति जगत्सृष्टचनुरूपा । अभिनवायां सृष्टौ बहीरूपतायां स्वातन्त्र्यलक्षणं महत्तेजो यस्याकारस्तथोक्ता । इत्येव गुणानां सृष्टिश्चिदानन्दघना शक्तिरेव संविदपरपर्याया । नान्यस्य सामर्थ्यम्, एतादृग् अलौकिकसम्भारपरिपूर्णं भवितुमर्हति । जनकोऽपि परप्रमातृरूपः शिवः पञ्चशक्तिरूपेन्द्रियवृत्तिभिः स्वसामर्थ्यबलेन परिरक्षितो निखिलभावग्राससमर्थः समुद्दीपितपरप्रमातृभावः स्वात्ममात्रपरिपूर्णः शिव एव । एतादृग् अपूर्वशक्तिसम्भूतः प्रकाशितुमर्हेत् । एतादृशं विलक्षणम् उभययामलस्फुरणस्य भावविसर्गस्य केन्द्रीभूतं हृदयं सर्वशक्तिस्रोतःस्वरूपं तदेव हृदि विकसेत् चेद् जीवनयात्रायाः परमं मङ्गलावहं भवेत् । तदेव च शक्तिशिवात्मकयामलभावस्य शाश्वतं स्वरूपम् ।

अत एव जयरथो विवेके[3] शिवशक्तितत्संघट्टाख्ययोगिनीवक्त्राख्यदक्षिण-

---

१. श्रीतन्त्रालोके, प्रथमाह्निके, प्रथमः श्लोकः

२. तत्रैव, पृ० ४

३. तत्रैव, पृ० ४०-४२

तन्त्रादभेदप्रधानानां चतुष्षष्टिभैरवागमानां प्रादुर्भावं श्रीकण्ठीसंहिताप्रामाण्येन प्रदर्शयति। तत्रैव ब्रह्म-विष्णु-स्वच्छन्द-रुरु-आथर्वण-रुद्र-वेतालाख्यानां यामलानां नामानि वर्ण्यन्ते। अत्र सप्तैव यामलानि परिगणितानि। अष्टमस्य नाम न दृश्यते। देवीयामलमत्र अष्टमत्वेन परिगणयितुं शक्यते, तस्य तन्त्रालोकतद्विवेकयोर्बहुशः स्मृतत्वात्।

शक्तिशक्तिमतः सामरस्यरूपं यामलतत्त्वम्। इदं परानपेक्षरूपेण स्वतः सिद्धम्, स्वत एव स्फुरति—इति अकार-हकारयोः समाहाररूपेण निष्पन्नमहंरूपं पराहन्तापर्यवसितम्। वस्तुगत्या अनुत्तरं सर्वोत्कृष्टं वस्तु, तदेव बोधस्वातन्त्र्यसमरसीभूतं तत्त्वं दर्शनस्यास्यात्मभूतं प्राणभूतं हृदयभूञ्च रहस्यम्।

महेश्वरानन्दः प्रकाशविमर्शात्मनः परमेश्वरस्य यामलोल्लासादेवोभयविसर्गारणिस्वभावादुल्लासाद् उन्मेषनिमेषशक्तिद्वितययौगपद्यानुभूतिचमत्कारादेव शब्दार्थात्मनां षडध्वनामुत्पत्तिं पर्यन्तपञ्चाशिका-विरूपाक्षपञ्चाशिका-चिद्गगनचन्द्रिका-सौभाग्यहृदय-स्वच्छन्दतन्त्र-विज्ञानभैरवादिप्रामाण्येन प्रतिपादयति[1]। महाकवेः कालिदासस्य 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' इति प्रसिद्धश्लोकमपि सोऽत्रैव स्मरति। तेनैव शिवयोगिनां यामलीसिद्धिरपि चर्चिता[2]। प्रकाशविमर्शसामरस्यात्मकं यामलोल्लासस्वभावं च परमेश्वरस्य प्रदर्श्य शिवशक्तिमेलापरूपं रुद्रयामलं व्यावर्ण्यते। तत एव रुद्रयामलादीनां शास्त्राणां प्रादुर्भाव इति च।

यमलस्य भावो यामलम्, युगनद्धभावत्वम्। यमरूपस्य, यमलरूपस्य, युग्मरूपस्य, मिथो मिलितरूपस्य, परस्परं सम्मिलितस्वरूपस्य परिचिन्तनं मननं स्वानुभूतिभव्यभावनं यामलस्य निश्चितोऽर्थः। एतादृशमर्थगर्भशास्त्रं 'यामलम्' शास्त्रेषु सर्वत्रानुशास्यते। यामलेऽपि शिवशक्तिसामरस्यरहस्ये मनीषा प्रतिष्ठाप्यते।

महामहेश्वराचार्येणाभिनवगुप्तपादमहोदयेन लिखितम्—'यामलं सङ्घट्टः' निर्विभागप्रश्नोत्तररूपस्वरूपप्रसरादारभ्य यावद् बहिरहन्तापरिगणनीयसृष्टिसंहारशतभासनं यत्रान्तः 'तदेतद् कुलोपसंहृतमेवेति'[3]। वस्तुत एकैव परा कालस्य कर्षिणी शक्तिः शक्तिशक्तिमतोरभेदेन यामलत्वं प्रपद्यते। प्रकाश-

---

१. महार्थमञ्जर्याम्, पृ० ६९

२. तत्रैव, पृ० १६४

३. श्रीतन्त्रालोके तृतीयाह्निके, श्लो०—६८

विमर्शलक्षणमौपाधिकभेदमवभास्य यामलतामेति[१]। यामलस्य प्रत्यवमर्शे परिपूर्णोऽहमात्मकः परमशिवः प्रद्योतते[२]।

यामलशब्दस्यार्थः

तत्र कोऽयं यामलपदार्थः? इति जिज्ञासायां विविधग्रन्थालोडनपुरस्सरं शास्त्रीयमभिमतमुपस्थाप्यते। शब्दकल्पद्रुमे[३] यामलपदस्य युगलम्, तन्त्रशास्त्रविशेष इति चार्थद्वयं प्रदर्श्यते। यामलभावस्य दार्शनिकी व्याख्या, ततः प्रसृतानां यामलतन्त्राणां नामानि च तत्र परिगणितानि। यामलशास्त्रलक्षणञ्च—

सृष्टिश्च ज्योतिषाख्यानं नित्यकृत्यप्रदीपनम्।
क्रमसूत्रं वर्णभेदो जातिभेदस्तथैव च॥
युगधर्मश्च संख्यातो यामलस्याष्टलक्षणम्॥ इति।

तच्च यामलं षड्विधम्, आदि-ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-गणेश-आदित्ययामल-भेदादिति च वाराहीतन्त्रप्रामाण्येन तत्रैव प्रदर्श्यते। एतदेव व्याख्यानं वाचस्पत्येऽपि[४] दृश्यते। वामनशिवराम-आप्टेमहोदयेन संस्कृत-हिन्दीकोशेऽपि स एवार्थः प्रतिपादितः। वाचस्पत्ये[५] यामलानि श्लोकसंख्यानिर्देशपुरस्सरं निर्दिशितानि वाराहीतन्त्रप्रामाण्येन—

यामलाः षट् च संख्यातास्तत्रादावादियामले।
द्वाविंशच्च सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च॥
द्वितीये ब्रह्मसंज्ञे ते द्वाविंशतिश्च संख्यया।
सहस्राणि शतान्यत्र तान्येव कथितानि च॥
तावत्संख्यसहस्राणि शतानि परिसंख्यया।
विंशतिश्च तथा संख्या श्लोकाश्च विष्णुयामले॥
कालसंख्यसहस्राणि वेदसंख्यशतानि च।
पञ्चषष्टिस्तथा श्लोकाः कनिष्ठे रुद्रयामले॥
नवश्लोकसहस्राणि त्रयोदशशतानि च।
द्वाविंशतिस्तथा श्लोका गणेशयामलोत्तमे॥
रविसंख्यसहस्राणि आदित्याख्ये तु यामले॥ इति।

---

१. तत्रैव, श्लो०—२३४
२. तत्रैव श्लो०—२३५
३. चतुर्थो भागः, पृ० ४०
४. षष्ठो भागः, पृ० ४७७७
५. चतुर्थो भागः, पृ० ३२२४

सौन्दर्यलहर्यां[1] व्याख्याकारेण लक्ष्मीधरेण यामलविषये एतदुक्तम्-'यमला नाम कामसिद्धाम्बा, तत्प्रतिपादिकानि तन्त्राणि यामलान्यष्टौ। तेषां गणो यामलाष्टकम्' इति।

नागरीप्रचारिणीसभासम्पादिते 'हिन्दीशब्दसागर'ग्रन्थे[2] यामलं यमजसन्तानो ग्रन्थविशेषश्चेत्येव प्रतिपादितम्। 'भारतीयदर्शन' कृता श्रीबलदेवोपाध्यायेन[3] आगमानां त्रिभागत्रयं निरूपितम्। तत्र सात्त्विकागमास्तन्त्ररूपेण, राजसागमा यामलरूपेण, तामसाश्च डामररूपेणाभिधीयन्ते।

डॉ० प्रबोधचन्द्रबागचीमहोदयस्तन्त्राणां विभागद्वयं प्रकटयति[4]। तत्र प्रथमं शास्त्रानुवर्तिरूपम्, अपरश्च शास्त्राननुवर्तिरूपम्। आद्ये आगम-यामलानां तथैतत्सम्बद्धानां तन्त्राणां स्थानम्, द्वितीये च कुलाचार-वामाचार-सहजयान-वज्रयानतन्त्राणां समावेशो वर्तते।

'लक्ष्मीतन्त्र, धर्म और दर्शन' इत्याख्ये ग्रन्थे[5] डॉ० अशोककुमारकालिया महोदयेनाभेदपरकाणां भैरवागमानां विभागे तन्त्रालोकविवेकधृतश्रीकण्ठीसंहिताप्रामाण्येन यामलाष्टकस्यापि स्थानमुपन्यस्तम्। एतच्चास्माभिः प्रदर्शयिष्यते परस्ताद् विस्तरेण।

मातृकाभेदतन्त्रे भूमिकायां[6] तन्त्रशास्त्रम् आगम-यामल-तन्त्रभेदतः प्रधानतस्त्रिधा विभक्तम्। एतदतिरिक्तं डामरनामकोऽन्योऽप्येको विभागो वर्णितः। चतुर्णां समुच्चयस्तन्त्रनाम्ना तत्र व्यवह्रियते। तत्र वाराहीवचनं च-

आगमं त्रिविधं प्रोक्तं चतुर्थमैश्वरं स्मृतम्।
कल्पश्चतुर्विधः प्रोक्त आगमो डामरस्तथा॥
यामलश्च तथा तन्त्रं तेषां भेदाः पृथक् पृथक्॥ इति।

तन्त्राणि प्रधानतश्चतुष्षष्टिसंख्याकानि तत्र कथितानि 'चतुष्षष्टिश्च तन्त्राणि यामलादीनि पार्वति!' इति। कूर्मपुराणे[7] पूर्वभागे द्वादशाध्याये यामलं मोहनार्थं शास्त्रमिति कथ्यते। यथा—

---

१. लक्ष्मीधरीटीकायाम्, श्लो०—३१
२. भाग ८, पृ० ४०६८
३ भारतीय दर्शन, पृ० ४७६
४. स्टडीज इन तन्त्राज्, भाग १, पृ० ४४–४५
५. प्रथमे संस्करणे, पृ० २–३
६. सं०—चिन्तामणि भट्टाचार्य, पृ० २–३
७. सं०—डॉ० रामशंकर भट्टाचार्य, श्लो०—२५८

कापालं भैरवं चैव यामलं वाममार्हतम् ।
कापिलं पाञ्चरात्रं च डामरं मोहनात्मकम् ।
एवंविधानि चान्यानि मोहनार्थानि तानि तु ।। इति ।

यामलोद्भवः

सर्वोल्लासतन्त्रे[१] यामलानां समुद्भवः समुपवर्णितो वर्तते । तत्र प्रथमोल्लासे यामलस्य निगमस्य च संख्यापि प्रतिपादिता[२] । तथाहि—

सूक्ष्मेऽपि निर्मला या च स्थूले सा यामलं शिवे ।
यामलोक्तं स्थूलरूपं सर्वशास्त्रस्य बोधनम् ।।
चतुष्षष्ट्यागमः प्रोक्तः पञ्चधा निगमस्तथा ।
यामलं च चतुर्थोक्तं तस्माच्छास्त्रं प्रकाशितम् ।।
निगमादागमो जात आगमाद् यामलो भवेत् ।
यामलाद् वेदसञ्जातं वेदाज्जातं पुराणकम् ।। इति ।

नारायणीतन्त्रे[३] उमाशिवसंवादद्वारा यामलस्योत्पत्तिविषयकमाख्यानं प्रकटीकृतम् । तत्र शिवः शिवां प्रति यामलोत्पत्तिं प्राकाशयत् । यथा—

निगमात्मा महेशानि परमात्मागमो ध्रुवम् ।
जीवात्मा यामलं प्रोक्तं बाह्यात्मा भेदरूपकम् ।।
अङ्गानि च पुराणानि अङ्गस्याङ्गस्मृति प्रिये ।
अन्यानि यानि शास्त्राणि तनुरुहाणि पार्वति ।।
शास्त्रेण देवतारूपं जायते युगभेदतः । इति ।

तत्र[४] यामलानां चतुष्षष्टिप्रकाराः प्रधानतया प्रतिपादिताः । तदेवमुद्घोषयता चतुर्युगीनं मतमुपन्यस्तम् । यथा —

सर्वयामलसंगीतं चतुष्षष्टिप्रकारकम् ।
प्रधानमेतद् विज्ञेयं चतुर्युगमतं ध्रुवम् ।। इति ।

सर्वोल्लासतन्त्रानुसारं[५] वासुदेव-गणेशकथाप्रसङ्गेन विभिन्नानां निगमागमानां निर्गमो निश्चितो दृश्यते । तद्यथा—

---

१. प्रथमोल्लासे, पृ० ३
२. तत्रैव, श्लो० १९–२१
३. तत्रैव, श्लो० २७–२८
४. तत्रैव, द्वितीयोल्लासे, श्लो०—२०
५. प्रथमोल्लासे, श्लो० १७-१८

वासुदेवोऽपि तच्छ्रुत्वा उवाच गणेशं प्रति।
नन्दीश्वराय तद्वाक्यं निगमागमसम्मतम् ॥
गणेशेन प्रवक्तव्यं यामलेषु प्रकाशितम्।
एवं परस्परं व्याप्त आगमो निगमः क्षितो ॥

षडाम्नायतन्त्रे परब्रह्मणः परमात्मनः, तथा च शब्दब्रह्मणो वेदात्मकाद् यामलादिकं प्रादुर्भूतमिति श्लोकाख्यानेन प्रतिपादितम्। तत्र निगमाद् आगमस्य, तथा आगमाद् यामलादिकस्योत्पत्तिः कथ्यते[1]। सच्चिदानन्द-वाचकं ब्रह्मसूत्रं निगमेषु,[2] परमात्मनिरूपणं प्राज्ञपुरुषवर्णनं चागमेपु[3]। सकलं निष्कलं च सूत्रं यामलेषु[4] प्रकाशितमिति वर्णितम्।

षडाम्नायतन्त्रे प्रेमास्पदं विज्ञानात्मा स्थूलः सूक्ष्मः स्वयंप्रकाशश्चेति त्रिधा निरूपितः[5]। काण्डद्वये प्रतिपादितं सकलं यामलं सिद्धं सम्पादितम्[6]। तथा च वृत्तिभाष्यसमन्वितं निगमसूत्रं तदुत्तरे प्रतिपादितम्[7]। अन्यत्र च यामलेभ्य एव चतुर्णां वेदानामाविर्भावः प्रदर्शितः। तथा हि ब्रह्मयामलसम्भूत-स्त्रिगुणात्मक ऋग्वेदः[8]। 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इति तदीयं महावाक्यम्। ज्ञानविज्ञान-संयुतः सामवेदो विष्णुयामलात् समभूत्[9]। 'तत्त्वमसि' इति तदीयं महावाक्यम्। पितृदेवक्रियादिशक्तिज्ञानप्रतिपादक आथर्वणो वेदः शक्तियामलतः समभवत्[10]। 'अयमात्मा ब्रह्म' इति तदीयं महावाक्यम्। रुद्रयामलाद् यजुर्वेद संभूतः। 'अहं ब्रह्मास्मि' इति तदीयं महावाक्यम्।

पुनरत्रैव निगमागमयामललक्षणानि प्रदर्श्य चतुर्विधं यामलं प्रदर्श्यंते। तदन्यदुपयामलमिति प्रोच्य च क्रान्तभागे प्रचारितानि त्रिषष्टिचतुराणि (१९२) तन्त्राणि सूचितानि[11]। अत्रैव वेदाचार-पश्वाचार-वामाचारलक्ष-

---

१. षडाम्नातन्त्रे, प्रथमे पटले, श्लो०—३
२. तत्रैव, श्लो०—२३
३. तत्रैव
४. तत्रैव, श्लो०—२४
५. तत्रैव, श्लो०—२६
६. तत्रैव, श्लो०—२७
७. तत्रैव, श्लो०—२८
८. तत्रैव, श्लो०—२९
९. तत्रैव, श्लो०—३०
१०. तत्रैव, श्लो०—३१
११. तत्रैव, श्लो०—१२८

णानि प्रदर्श्य पुनरपि चिदात्मा निगमः, विद्यात्मा आगमः, अन्तरात्मा च यामलमिति वर्ण्यते[१]।

पराम्बायाः परायाः श्रियो मुखाम्भोजाद् यामलकिञ्जल्कजन्मेति रुद्रयामलस्य मतम्[२]। निगमादागमस्य, आगमाच्च यामलादितन्त्राणां प्रादुर्भावोऽप्यत्रैव प्रदर्श्यते।

यामलानां विवरणम्

यामलतन्त्राणि प्राचीनतन्त्राणामेकं महत्वपूर्णमङ्गम्, किन्तु तानि सर्वाणि न प्राप्यन्ते। यामलशब्देन शिवशक्त्योर्मूलावस्था, अर्थतोऽद्वैतावस्थैव द्योतिता भवति। यामलशब्दस्य तात्पर्यं तन्त्रागमस्य कतिपयगुप्तविषयाणां प्रतिपादनेऽपि भवितुमर्हति, तथापि व्यवहारतो यामलग्रन्थानामन्यतान्त्रिकग्रन्थानां च मध्ये विभाजनमसाध्यमिति प्रतिभाति। सामान्यतयेदं स्वीकर्त्तुं शक्यते यद् बहूनि यामलानि लाक्षणिकतया भैरवतन्त्राणि सन्ति, यानि शैवमतान्तर्गतशक्तिसहकृतविचारधारा निरूपयन्ति। सर्वे यामलग्रन्था एवमेवेति वक्तुं न समीचीनम्। मुख्यतो यामलग्रन्थानां वैशिष्टचमिदमेव यत् शिवशक्त्योर्यामलभावस्य वर्णनम्। यतः शाक्तग्रन्थेषु केवला शक्तिः, शैवग्रन्थेषु केवलः शिवो वर्ण्यते। केषुचित् कौलशाक्तग्रन्थेषु परमतत्त्वस्य यामलभावो वर्ण्यते, परन्तु तत्र शक्तेः पूर्णरूपेण पुरुषविहीनत्वं न मन्यते। अन्यच्च महत्वपूर्णमिदमस्ति यत् प्राचीनग्रन्थेषु यामलानां कौलस्रोतस्त्वं मन्यते, यथा—ब्रह्मयामलादि। एवं प्रकारेण स्पष्टीभवति यद् यामलतन्त्रोक्तविषयस्तु शैवागमाद् भिन्नोऽस्ति।

यामलतन्त्राणां प्राचीनत्वं स्वीकुर्वन्ति विद्वांसः, यतो विज्ञानभैरवतन्त्रं रुद्रयामलपरिशिष्टमिति मन्यते। अभिनवगुप्ता ब्रह्मयामल-देवीयामलयोः सन्दर्भे स्वीयतन्त्रालोके यामलपदस्य विशदं व्याख्यानं कृतवन्तः। कदा रचना जातेति कालनिर्धारणं तु कठिनमेव। विदुषां मतानुसारेण नवमशतकात्पूर्वं तद्रचनाकाल इति स्वीकर्त्तुं शक्यते।

एवं प्रतिभाति प्राचीनकाले यामलानां नामानि देवता अधिकृत्यैव भवन्ति स्मेति। अभिनवगुप्ता ब्रह्मयामल-देवीयामलयोरतिरिक्तान्यपि यामलानि परिचिन्वन्ति स्म। यतोऽष्टयामलानां जयरथोद्धृत चतुष्षष्टितन्त्रेषु वर्णनं वर्तते। तन्त्रचिन्तामणि-नित्याषोडशिकार्णवादिसूचीतोऽपि तेषां परिज्ञानं भवति। तद्यथा—

---

१. तत्रैव, श्लो०—१२९

२. परात्रिंशिकायाम्, पृ० १७८

'ब्रह्मयामल-विष्णुयामल-रुद्रयामल-स्कन्दयामल-उमायामल-लक्ष्मीयामल-गणेशयामलान्यष्टौ' इत्यर्थरत्नावलीकार:[१]। परन्तु सेतुबन्धेऽष्टयामलनामक्रमे कश्चन व्युत्क्रमोऽवलोक्यते। नामान्येतान्येव। कुलचूडामणिभूमिकायां तु व्युत्क्रमविभ्रमेणान्य एवार्थः कल्पित:, ग्रह्ययामलस्य च तत्र समावेशोऽकारि। श्रीकण्ठीसंहितायां तु ब्रह्मयामल-विष्णुयामल-स्वच्छन्द-रुरु-अथर्वण-रुद्र-वेताला-ख्यान्यष्टावेव यामलानि परिगणितानि, परन्तु नामानि सप्तैव प्राप्यन्ते[२]। लक्ष्मीधरसम्मत्या भास्कररायसम्मत्या च वामकेश्वरतन्त्रानुसारेण चतुष्षष्टि-तन्त्रेषु एतानि यामलाष्टकनाम्ना वर्णितानि, तेषां नामानि च ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-लक्ष्मी-उमा-स्कन्द-गणेश-जयद्रथयामलानि[३]। सर्वोल्लासतन्त्रोद्धृततोडल-तन्त्रानुसारेण चतुष्षष्टितन्त्रेषु कस्यचनापि यामलतन्त्रस्य नाम नोपलभ्यते। दाशरथीतन्त्रे द्वितीयाध्यायेऽपि चतुष्षष्टितन्त्राणां विवरणं प्राप्यते, परन्तु तत्रापि तत्समानमेव। रघुनाथतर्कवागीशविरचिते आगमतत्त्वविलासे ग्रन्थारम्भे एव तन्त्रग्रन्थानामेका सूची ग्रन्थकारेण दत्ता। अस्मिन् ग्रन्थे ब्रह्म-आदि-रुद्र-बृहद्-सिद्धयामलानि सन्ति[४]।

पूर्ववर्तिसमयाचारतन्त्रं ब्रह्म-विष्णु-शिव-शक्ति-गणपति-स्कन्द-सूर्य-चन्द्रा-दीनां यामलानां सूचीं प्रस्तौति। षडाम्नायतन्त्रे ब्रह्म-विष्णु-शक्ति-रुद्रयामलानां चर्चा प्राप्यते। नरपतिजयचर्याकृते स्वरोदये[५] ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-आदि-स्कन्द-देवीयामलानीति सप्तविधयामलानां विवरणं दृश्यते। एवं वर्तते यामलनाम-विषये संख्याविषये च शास्त्रकाराणां मतवैभिन्न्यम्।

महासिद्धिसारतन्त्रे तन्त्रशास्त्रे त्रयाणां विभागानां कल्पना क्रियते—रथक्रान्ता, विष्णुकान्ता, अश्वक्रान्ता चेति। तत्र स्वदृष्टिभेदेन प्रत्येकस्मिन् विभागे चतुष्षष्टितन्त्राणि सन्ति। विष्णुकान्ताविभागे चतुष्षष्टितन्त्राणां विभाजनक्रमे ब्रह्मयामल (क्रमसं० ३०)–यामल (क्रमसं० ४२)–रुद्रयामल (क्रमसं० ४८)–सिद्धयामलानि (क्रमसं० ५९) दृश्यन्ते[६]। रथक्रान्ताऽश्वक्रान्ता-विभागयोर्न कस्यचन यामलस्योल्लेखः।

---

१. नित्याषोडशिकार्णवः, सं०—व्रजवल्लभ द्विवेदी, भूमिकायाम्, पृ० ४३
२. तान्त्रिक साहित्य : गोपीनाथ कविराज, भूमिकायाम्, पृ० १९
३. तत्रैव, भूमिकायाम्, पृ० २०
४. नोटिसेज् आफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट वाई राजेन्द्रलाल मित्र, सं०—३.८६
५. मङ्गलाचरणे, श्लो०—३
६. तान्त्रिक साहित्य : भूमिकायाम्, पृ० २३

ब्रह्मयामले १९तमेऽध्याये पीठानुसारं तन्त्राणां वर्गीकरणमपि क्रियते, यथा–विद्यापीठ-मन्त्रपीठ-मुद्रापीठ-मण्डलपीठानीति। तत्र विद्यापीठेऽष्टयामलानि सन्ति। तानि यामलानि रुद्र-स्कन्द-ब्रह्म-यम-वायु-कुबेर-इन्द्रनामभिः ख्यातानि[1]। जयद्रथयामले प्रथमे षट्के ४१तमेऽध्यायेऽष्टप्रकाराणां यामलानां विवरणं दत्तम्। तत्राष्टयामलानां मूलं ब्रह्मयामलमिति कथ्यते। अन्येषु यामलेषु रुद्रयामल-यमयामल-वायुयामल-इन्द्रयामलानि तत्रोपलभ्यन्ते। जयद्रथयामले ३६तमेऽध्याये विद्यापीठस्य तन्त्राणां विवरणं दत्तम्। तत्र रुद्रयामल-विष्णुयामल-ब्रह्मयामल-हरि (यामल)-स्कन्द(यामल)-गौतमीययामलानि प्राप्यन्ते[2]।

सम्मोहनतन्त्रस्य षष्ठेऽध्याये शैव-वैष्णव-गाणपत्य-सौरादिभेदेन तन्त्रादीनां यद्विवरणं प्रस्तुतम्, तत्र यामलग्रन्थानामपि विवरणं दत्तम्। शैवे भेदे द्वे यामले, वैष्णवे एकं यामलम्, सौरे च द्वे यामले तत्र दृश्यन्ते[3]। सर्वविद्यानिधानकवीन्द्राचार्यसरस्वतीसंकलितग्रन्थसंग्रहे वैदिकतन्त्राणां सूच्यां यामलाष्टकतन्त्रमस्ति[4]। तत्र मन्त्रशास्त्रप्रकरणग्रन्थसूच्यां रुद्रयामल-विष्णुयामल-ब्रह्मयामल-शिवयामल-देवीयामलानां च उल्लेखो वर्तते[5]। अनूपपुस्तकालये चन्द्रोन्मीलनग्रन्थे[6] रुद्रयामल-ब्रह्मयामल-विष्णुयामल-उमायामल-वृद्धयामलानि उद्धरणरूपेण दृश्यन्ते। राजेन्द्रलालमित्रसूच्यां समयाचारतन्त्रे तन्त्र-यामलादीनां संख्यानिर्देशो वर्तते। वाराहीतन्त्रस्य पाण्डुलिप्यामपि यामलानां संख्याः, अवान्तरभेदाः, श्लोकसंख्याः, लक्षणानि च वर्ण्यन्ते इति पूर्वमेवास्माभिः सूचितम्।

कौलसाहित्यस्याचारप्रतिपादकेषु ग्रन्थेषु रुद्रयामलं देवीयामलं च प्राप्येते। रुद्रयामले श्रीयामल-विष्णुयामल-शक्तियामल-ब्रह्मयामलानि वर्ण्यन्ते। तत्र रुद्रयामलमेव तेषां यामलानामुत्तरकाण्डस्वरूपं मन्यते। अत एव प्रतीयते यदिदं यामलं सर्वप्रचलितं सर्वसमर्थितमिति।

एवं च षडाम्नायतन्त्रे चतुर्विधयामलम्, वाराहीतन्त्रे षडविधयामलम्, नरपतिजयचर्यास्वरोदये सप्तविधयामलम्, श्रीकण्ठीसंहिताप्रभृतिषु चाष्टविधं

---

१. स्टडीज इन तन्त्राज : पी०सी० बागची, पृ० ६

२. तान्त्रिक साहित्य : भूमिकायाम्, पृ० २४

३. तत्रैव, पृ० २४

४. तत्रैव परिशिष्टे, पृ० ७३८

५. तत्रैव, पृ० ७४०

६. मातृका सं०–१२६३

यामलमित्युक्तिः प्रायो वादमात्रम् । विशिष्टप्रकाराणां तन्त्राणां संज्ञा यामलमित्येव वक्तुं युज्यते, संख्यानिर्धारणं तु दुःशकम् । मुद्रितरूपेण मातृकारुपेण वा यानि यामलानि समुलभ्यन्ते, तत्र यामललक्षणं घटते न वा ? इति परीक्षणीयम् । किञ्च, तेषां स्वकीयं वैशिष्टचमिति वर्तते साम्प्रतं गवेषणाया विषयः । एतावता पुरा अष्टयामलपक्षो बहुप्रचारित आसीदिति प्रतीयते । गच्छता कालेन नामविषये संख्याविषये च महान् विसंवादः समजायत । फलतः साम्प्रतमस्मद् गवेषणानुसारं ७० संख्यकानि यामलनामानि प्राप्यन्ते । एतेषां यामलानां यावदुपलब्धः परिचयो मया प्रस्तूयते—

१—अघोरयामलम्—'न्यूकैटलागस कैटलागरम्'[1] सूच्यामस्य यामलस्य विवरणं दत्तम् ।

२—असिताङ्गादियामलम्—फेत्कारिणीतन्त्रेऽस्य यामलस्य विवरणमुद्धरणरूपेण प्राप्यते[2] ।

३—आथर्वणयामलम्—श्रीकण्ठीसंहितायां वर्णितेषु चतुष्षष्टयद्वैतागमेषु यामलाष्टकेष्वस्य विवरणं दत्तम् ।

४—आदियामलम्—'न्यू कैटलागस कैटलागरम्' सूच्यामस्य[3] यामलस्य विवरणं दत्तम् । एतदतिरिक्तं नरपतिजयचर्यानुसारं वर्णितेषु सप्तयामलेष्वस्य चर्चा क्रियते । उद्धरणरूपेण तन्त्रसारे, नक्षत्रसमुच्चये, आगमतत्त्वविलासे, सदाशिवकृतज्योतिर्निबन्धे, कोशलागमे, शिवराजकृतज्योतिर्निबन्धसारे, लक्ष्मीधरकृतसौन्दर्यलहरीटीकायामुपलभ्यते ।

५—आदित्ययामलम्—तन्त्रसारे, पुरश्चर्यार्णवे, नक्षत्रसमुच्चये च अस्योल्लेखो वर्तते । 'कैटलागसकैटलागरम्'[4] सूच्यामिदं यामलं 'आदियामलम्' इति नाम्नाऽभिहितमस्ति ।

६—इन्द्रयामलम्—ताराभक्तिसुधार्णवेऽस्योल्लेखो वर्तते ।

७—ईश्वरयामलम्—अस्य बगलामुखीपञ्चाङ्गमात्रं प्राप्यते । विवरणमिदं जम्मूस्थितरघुनाथमन्दिरपुस्तकालयसूच्यां[5] वर्तते ।

८—उमायामलम्–नक्षत्रविज्ञानस्य स्रोतो ग्रन्थोऽयम् अनूपपुस्तकालये बीकानेरे 'चन्द्रोन्मीलन' इति नाम्ना प्राप्तः । दामोदरकृततन्त्रचिन्तामण्याम्,

१. प्रथमे खण्डे (द्वितीये संस्करणे), पृ० ५७

२. कैटलागस कैटलागरम् : भाग १, पृ० ३७

३. भाग २, पृ० ८६

४. भाग १, पृ० ४५

५. पत्राङ्क—४८५१

शिवदासकृतज्योतिर्निबन्धे चास्य उद्धरणानि प्राप्तानि। 'एशियाटिक सोसायिटी आफ वंगाल'पुस्तकालयेऽस्य परमशिवसहस्रनामस्तोत्रमात्रं प्राप्तम्[1]। यामलाष्टकेऽयं ग्रन्थोऽन्यतमो वर्तते। 'न्यू कैटलागस कैटलागरम्' सूच्यामस्य विवरणं दत्तम्[2]।

९. कल्पसूत्रयामलम्—योगिनीतन्त्र[3]भूमिकायामुल्लिखितमिदं यामलम्। नास्ति किञ्चिद् विवरणमन्यत्र।

१०. कालीयामलम्—चन्द्रशेखरकृतकुलपूजनचन्द्रिकायामिदं यामलमुद्धरणरूपेण प्राप्तम्। महाविद्याक्रमस्य सर्वप्रथमदेव्याः काल्यास्तत्त्वबोधार्थमयमुत्कृष्टो ग्रन्थः[4]।

११. कालोत्तरयामलम्—योगिनीतन्त्रभूमिकायामस्योल्लेखो वर्तते[5]।

१२. कुवेरयामलम्—भैरवपरम्पराया ग्रन्थोऽयम्। यामलस्यास्य विवरणं नेपालस्थिते दरवारपुस्तकालये ब्रह्मयामलान्तर्गते स्रोतोनिर्णये प्राप्यते। 'न्यू कैटलागस कैटलागरम्' सूच्यामस्य विवरणं दत्तम्[6]।

१३. कुलयामलम्—'तन्त्र और आगमों का दिग्दर्शन' इति ग्रन्थे (पृ० ४५) म० म० गोपीनाथकविराजमहोदयेनोक्तं यदयं कुलसाधनाया उपजीव्यो ग्रन्थोऽस्ति। 'न्यू कैट० कैट०'सूच्यामस्य विवरण दत्तम्[7]।

१४. कूर्मयामलम्—नरयतिजयचर्यास्वरोदये, विश्वप्रकाशपद्धत्याम्, शङ्करकृतशिरोमण्याम्, शिवदासकृतज्योतिर्निबन्धे, शिवराजकृतस्वरशास्त्रसारे चास्य यामलस्य चर्चा उद्धरणरूपेण प्राप्यते। स्वतन्त्रा मातृकाऽस्य नोपलब्धा। 'न्यू कैट० कैट०' सूच्यामस्य विवरण दत्तम्[8]।

१५. कृष्णयामलम्—ग्रन्थस्यास्य विवरणं प्रस्तावनान्तर्गतं द्रष्टव्यम्।

१६. गणेशयामलम्—अष्टयामलेष्वस्य चर्चा प्राप्यते। त्रिवेन्द्रमविश्वविद्यालयस्य पुस्तकालयेऽस्य गणेशऋणहरस्तोत्रमात्रमुपलभ्यते। 'न्यू कैट० कैट०' सूच्यामस्य विवरणं दत्तम्[9]।

---

१. सं०—६७४४

२. भाग २, पृ० ३९५

३. योगिनीतन्त्रम् : सं०—विश्वनारायण शास्त्री, भूमिका पृ० १९

४. तान्त्रिक साहित्य : भूमिकायाम्, पृ० २६

५. सं०—विश्वनारायण शास्त्री, भूमिका पृ० १९

६. भाग ४, पृ० २५४

७. तत्रैव; पृ० २३९

८. तत्रैव, पृ० २६८

९. भाग ५, पृ० २८०

१७. गुरुयामलम्—'न्यू कैट० कैट०'[1] सूच्यामस्योल्लेखो वर्तते। एतदतिरिक्तं राजेन्द्रलालमित्राणां संस्कृतग्रन्थानां विवरणेषु इदमुक्तं यद् गुरुगीतानामकग्रन्थ गुरुयामलतन्त्रान्तर्गतं वर्तते। ग्रन्थेऽस्मिन् गुरुगीताया ऋषिश्छन्द-देवता-बीज-शक्ति-कीलकादीनां वर्णनमस्ति। गुरुराजस्य स्तुतिर्महिमा च विशेषरूपेण वर्ण्यतेऽस्मिन् तन्त्रग्रन्थे, हरगौरीसंवादरूपेण गुरुपञ्चाङ्गस्य विवरणं च प्राप्यते। अस्मिन् श्रीगुरुपटलम्, गुरुनित्यपूजापद्धतिः, गुरुकवचम्, गुरुमन्त्र-गर्भसहस्रनाम, गुरुस्तोत्रं च सन्ति।

१८. गौतमीययामलम्—जयद्रथयामलस्य यामलाष्टकेऽस्योल्लेखो वर्तते। अस्य मातृका उद्धरणं वा नोपलभ्यते।

१९. गौरीयामलम्—'न्यू कैट० कैट०'[2] सूच्यनुसारमस्य यामलस्यानेका मातृकाः समुपलभ्यन्ते। नरसिंहकृततारा भक्तिसुधार्णवे, पुरश्चर्यार्णवे चास्योल्लेखो वर्तते। कालीसहस्राक्षरीमन्त्रः शिवपञ्चाङ्गं चास्यान्तर्गतौ। बड़ौदापुस्तकालयसूच्यनुसारमस्यान्तर्गतं[3] समयाचारतन्त्रं २८६श्लोकात्मकं वर्तते।

२०. ग्रहयामलम्—नक्षत्रपूजाया ग्रन्थोऽयमष्टादशपटलेषु विभक्तोऽस्ति। प्राणतोषिणीतन्त्रेऽस्योल्लेखो वर्तते। ग्रन्थस्यास्यानेका मातृका उपलब्धाः। 'इण्डिआ आफिस, लन्दन' पुस्तकालये[4] प्राप्तायाः पाण्डुलिप्या वर्ण्यविषया एवं सन्ति—श्रीसवितृविद्यादितान्त्रिकवैदिकसन्ध्याविधिः, अभिषेकविधिः, क्षेत्रादिषड्वर्गदृष्टिफलम्, राशीनां शीलादयः, अष्टादशविधानादयः, पथ्यापथ्यविवेकः, प्राणायामविवेकः, दशमहामुद्राविवेकः, समाधिविधिः, वास्तुग्रहः, द्विजप्रकरणविवेकः, ग्रहचरितादिनिर्णयः, जगद्दुर्लभाक्षयकवचमित्येवमादयः राजेन्द्रलालमित्राणां संस्कृतग्रन्थानां विवरणेषु अस्य चर्चा उपलभ्यते। 'न्यू० कैट० कैट०' सूच्यामस्य विवरणं प्राप्तम्[5]।

२१. चन्द्रयामलम्—नवमीसिंहकृततन्त्रचिन्तामण्याम्, ताराभक्तिसुधार्णवे चास्योल्लेखो वर्तते। 'न्यू कैट० कैट०' सूच्यामस्य विवरणं दत्तम्[6]।

---

१. भाग ६, पृ० ७९
२. भाग ६, पृ० २४१
३. सं०—५६६४
४. सं०—२६३२
५. भाग ६, पृ० २५७
६. भाग ६, पृ० ३६५

२२. चिदम्बरयामलचक्रम्—'न्यू कैट० कैट०' सूच्यामस्य विवरणं दत्तम्[1]।

२३. जयद्रथयामलम्[2]—जयद्रथयामलस्य २४०००श्लोकात्मकस्य मातृका नेपालदेशे समुपलब्धा। तदभिन्न एष ग्रन्थो भिन्नो वेति न साम्प्रतं किमपि वक्तुं शक्यते। एतदर्थं न्यू कैट०कैट० (भाग ८, पृ०१७९) इत्यत्र विवृता मातृका परीक्षणीया। पिङ्गलामतं जयद्रथयामलं च ब्रह्मयामलस्य परिशिष्टे इति प्रतिपादयति डा० बागचीमहोदयः 'स्टडीज इन दि तन्त्राज' (पृ० ७) इत्यत्र। जयद्रथयामलमेव शिरश्छेदनाम्नाऽपि प्रसिद्धयतीति तत्रैव (पृ० ८) प्रतिपादयति सः। श्रीकण्ठयां शिखाष्टकेषु शिरश्छेदस्य परिगणनं दृश्यते। अत्र च—'भैरवस्रोतसि विद्यापीठे शिरश्छेदे श्रीजयद्रथयामलमहातन्त्रे' इत्येवं पुष्पिका वर्तते। ने० वी० (भाग १, पृ० २४३) इत्यत्र 'पिङ्गलामते जयद्रथाधिकारे' इत्येवं पिङ्गलामतमातृकापुष्पिकावाक्येषु दृश्यते। एष एव ग्रन्थो नारायणकण्ठेन स्मृतः स्यात्। पिङ्गलामतं शैवोपागमेषु श्रीकण्ठीपठितेषु चतुष्षष्टितन्त्रेषु च दृश्यते।

२४. जयप्रदयामलम्—'न्यू कैट० कैट०' सूच्यामस्य विवरणं दत्तम[3]। जयद्रथयामलमेव लिपिकारदोषाज्जयप्रदयामलं संजातमिति प्रतीयते।

२५. जाम्बुयामलम्—भारद्वाजकृतजाम्बुयामलसूत्रम् (देवीयामलसूत्रम्) एव यामलस्यास्यान्तर्गतं प्राप्यते। 'न्यू कैट० कैट०' (भाग ७, पृ० २४४) इत्यत्र विवृता मातृका परीक्षणीया।

२६. ज्ञानयामलम्—मन्त्रमुक्तावल्यामस्य यामलस्य चर्चा प्राप्यते। 'न्यू० कैट० कैट०' (भाग ७, पृ० ३३३) इत्यत्रत्यं विवरणमपि द्रष्टव्यम्।

२७. तत्त्वयामलम्—रामेश्वरतत्त्वानन्दकृतप्रबोधमिहिरोदये (शकाब्दे १५९७ रचिते) ग्रन्थेऽनेकेषां ग्रन्थानां वचनानि उद्धृतानि। तत्र तत्त्वयामलतो गृहीतानि च वचनान्युद्धृतानि सन्ति।

२८. तन्त्रसारधृतयामलम्—अस्य यामलस्य मातृका नोपलब्धा। मातृकाभेदतन्त्रे[4] अस्य यामलस्योद्धृतानि वचनानि दृश्यन्ते।

---

१. भाग ७, पृ० ५०

२. विवरणमिदं लुप्तागमसंग्रहस्य द्वितीयभागस्य भूमिकामाश्रयति—
ले०—व्रजवल्लभ द्विवेदी, पृ० ३४

३. भाग ७, पृ० १८३

४. सं० चिन्तामणि भट्टाचार्यः, एकादशपटले, टिप्पण्याम् पृ० ६३

२९. दत्तात्रेययामलम्—पुरश्चर्यार्णवे[1] दीक्षाप्रकरणे स्मृतोऽयं यामलग्रन्थः। मातृका नोपलब्धा।

३०. दीपिकायामलम्—योगिनीतन्त्रग्रन्थस्य[2] भूमिकायामागमतत्त्वविलासवर्णितानां तन्त्राणामेका सूची प्रकाशिता। अस्यां सूच्यामस्य यामलस्य सूचना प्राप्यते।

३१. देवीयामलम्[3] (देव्यायामलम्)—तन्त्रालोक (२२.३१) प्रामाण्येन ज्ञायते यदीशानशिवः श्रीदेव्यायामलीयोक्तितत्त्वसम्यक्प्रवेदक इति। ईशानशिवोऽयं सिद्धान्तशैवाचार्यः। तेन सिद्धान्तशैवागमस्य ग्रन्थेनानेन भाव्यम्। दृश्यन्ते च भूयांसि वचांसि तन्त्रालोके तद्विवेके च क्रमकुलदर्शनप्रतिपादिकानि। डॉ० रस्तोगीग्रन्थे (पृ० ७३-७४) च क्रमदर्शनस्य विशिष्टसम्प्रदायस्य प्रतिनिधिभूतोऽयं ग्रन्थ इति प्रतिपाद्यते। शतरत्नसंग्रहे देव्यामतसूत्रं स्मर्यते। देवीमतं चन्द्रज्ञानागमस्य उपागमतया स्मर्यते शैवागमग्रन्थेषु। देवीमतं लक्ष्मीधरेण चतुष्षष्टितन्त्रेषु परिगण्यते। 'देव्यायामल उक्तं तद् द्वापञ्चाशाह्व आह्निके' (२८.३९०) इति तन्त्रालोकप्रामाण्येन विस्तृतोऽयं ग्रन्थः प्रतीयते। तेनेदं संभावयितुं शक्यते यदस्मिन् वृहद्ग्रन्थे सिद्धान्त-भैरव-क्रम-कुलप्रभृतयः सर्वे सिद्धान्ता यथाप्रसङ्गं विवृता स्युरिति, ईशानशिवेन चात्र काचन व्याख्या कृता स्यादिति। वैरोचनेन (प्र० स०, २.१७८) प्रतिष्ठातन्त्रेषु परिगणितमेतत्। देवीयामलं (देव्यायामलम्), देवीमतं (देव्यामतसूत्रम्) चाभिन्नं भिन्नं वेति निर्णयस्तु मातृकोपलब्ध्यनन्तरमेव स्यात्। न्यू० कैट० कैट० भाग २, पृ० १५१ इत्यत्रत्यं विवरणमपि द्रष्टव्यम्, देवीमत(भाग ९, पृ० १४१) विवरणं च, तान्त्रिक साहित्य, (पृ० ३१८) इत्यत्र देव्यागमतन्त्रविवरणमपि। एतदतिरिक्तं नित्योत्सवे (पृ० १२४), स्वच्छन्दतन्त्रे दशमे पटले (पृ० १३२, १३९), नरसिंहकृतताराभक्तिसुधार्णवे, शिवानन्दकृतकुलप्रदीपे, विद्यार्णवतन्त्रे, कतिपयस्तोत्रग्रन्थेषु, तारारहस्यवृत्त्यादीषु ग्रन्थेष्वस्योल्लेखो वर्तते। दक्षिणकालिकाम्बास्तोत्रमस्यांशरूपेण कल्प्यते। म० म० गोपीनाथकविराजमहोदयानुसारं कौलसाधनाया उत्कृष्टो ग्रन्थोऽयम्। एष ग्रन्थः कामीरस्य तान्त्रिकैः सम्मानितां निर्देशितां परिचालितां च गुरुपरम्परां निश्चितरूपेण प्रस्तौति।

३२. देवीयामलसूत्रम्—न्यू कैट० कैट० (भाग ९, पृ० १५१) सूच्यामस्य विवरणं दत्तम्। एतच्च देवीयामलादभिन्नमेव स्यात्।

---

१. प्रकाशकः चौखम्भासंस्कृतप्रतिष्ठान, वाराणसी, (१९८५ ई०), पृ० ३९

२. प्रकाशकः लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई।

३. विवरणमिदं लुप्तागमसंग्रहस्य द्वितीयभागस्य भूमिकामाश्रयति, पृ० ४१

३३. नीलतन्त्रादियामलम्—अस्य यामलस्य मातृका नोपलब्धा। मातृकाभेदतन्त्रे[1] उद्धरणरूपेण दृश्यते।

३४. नवरत्नेश्वरयामलम्—न्यू० कैट० कैट० (भाग ९, पृ० ४०१)—सूच्यामस्य विवरणं दत्तम्।

३४. पञ्चयामलम् - शिवानन्दकृतकुलप्रदीपे यामलमिदमुद्धृतम्। न्यू कैट० कैट० (भाग १०, पृ० ४५) सूच्यामस्य विवरणं दत्तम्।

३५. पञ्चमीयामलम्—पूर्णानन्दगिरिकृते श्यामारहस्ये[2] (पृ० १५१) इदमुल्लिखितम्। अत्र नवमपरिच्छेदे कुण्डगोलोद्भवादिग्रहणविधिप्रसङ्गे ग्रन्थोऽयमुद्धृतः। एतदतिरिक्तं श्रीविद्यार्चनचन्द्रिकायां शिवानन्दभट्टेन उद्धृतमिदं यामलम्। न्यू कैट० कैट० (भाग १०, पृ० ४५) सूच्यामस्य मातृका परीक्षणीया।

३७. ब्रह्मयामलम्[3]—डॉ० बागचीमहोदयेन ब्रह्मयामलस्य विस्तृतः परिचयः समुपस्थापितः। अस्यानेका मातृकास्तान्त्रिकसाहित्ये (पृ० ४२९-३०), ने० वी० भाग २ (पृ० १८-२३), आफ्रेक्टसूच्याम् (भाग १, पृ० ३८२), (भाग २, पृ० ८६), (भाग ३, पृ० ८१) इत्यत्र विवृताः सन्ति। पुष्पिकावाक्येषु—'भैरवस्रोतति विद्यापीठे पिचुमते द्वादशसाहस्रिके' इत्यादीनि विशेषणान्यस्य दृश्यन्ते। चतुष्षष्टितन्त्रेषु परिगणितेषु यामलाष्टकेषु, श्रीकण्ठीपठितचतुष्षष्टितन्त्रेषु, विष्णुक्रान्ताविभागे चास्य नाम वर्तते। तन्त्रालोके ४.५४; ४.६०; ५.९७ इत्यत्रापि यामलमेतत् स्मर्यते। पिचुशास्त्र १८५ श्लोका अत्र द्रष्टव्याः।

३८. बृहद्ब्रह्मयामलम्—न्यू कैट० कैट० (भाग ३, पृ० ८४)सूच्यामस्य विवरणं प्राप्यते।

३९. ब्रह्माण्डयामलम्–आफ्रेक्टसूच्याम् (भाग १, पृ० ३८८) अस्य विवरणं दत्तम्। अस्यान्तर्गतं पञ्चमीसाधनमात्रं प्राप्यते। अत्र हर-गौरीसंवादरूपेण मुक्तिप्राप्त्यर्थं विवरणमस्ति। पञ्चमीविद्या पञ्चकूटरूपास्ति। मद्य-मांस-मत्स्य-मुद्रा-मैथुनानीति तानि सन्ति पञ्चसाधनानि।

४०. बृहद्रुद्रयामलम्—म० म० गोपीनाथकविराजकृते तान्त्रिकसाहित्ये (पृ० ४२६-२७) यामलस्यास्य विवरणं दत्तम्। तदनुसारमस्य मातृका एशियाटिक सोसायिटी आफ बंगाल-पुस्तकालये प्राप्यन्ते। डॉ० हरप्रसाद-

१. सं०—चिन्तामणिभट्टाचार्याः, तृतीये पटले, टिप्पण्याम्, पृ० १३

२. द्वितीये संस्करणे. १८९६ ई०, सं०—जीवानन्द विद्यासागर।

३. लुप्तागमसंग्रहः ; सं०—ब्रजवल्लभद्विवेदी, द्वितीयोभागः, पृ० ५१

शास्त्रिमहोदयानां संस्कृतग्रन्थविवरणेष्वस्य यामलस्य सूचना मिलति। न्यू कैट० कैट० सूच्याम् (भाग६, पृ० १) बृहद्यामलतन्त्रस्यांश एव गायत्रीकवचमिति सूचितम्।

४१. विन्दुयामलम्—आफ्रक्टबृहत्सूच्यनुसारं (भाग १, पृ० ३७३) यामलस्यास्य विवरणं द्रष्टव्यम्।

४२. बुद्धयामलम्—बीकानेरपुस्तकालयस्य सूच्यां 'चन्द्रोन्मीलन'[1] नाम्नो ग्रन्थस्य विवरणं ४९ पटलेषु वर्णितम्। अस्मिन् ग्रन्थे पञ्चयामलानामुद्धरणानि विशेषेण दीयन्ते, यस्मिन् बुद्धयामलमप्यस्ति।

४३. भानुयामलम्—नरपतिजयचर्यायां स्वरोदये राशितुम्बुरुचक्रस्य विवरणे[2]ऽस्य यामलस्य चर्चा उद्धरणरूपेण प्राप्यते। मातृका नोपलब्धा।

४४. भैरवयामलम्—कामकलाविलासचिद्वल्याम्, सौन्दर्यलहरीटीकयोररुणामोदिनीलक्ष्मीधरयोश्च यामलस्यास्य वचनानि संगृहीतानि। चन्द्रज्ञानविद्याऽस्यैव नामान्तरं प्रतीयत इति नि० उ०s पृ० २६-२७ इत्यत्र द्रष्टव्यम्। भैरवतन्त्रस्य भैरवयामलान्तर्गतभैरवस्तवादीनां च मातृकाः समुपलभ्यन्त इति तान्त्रिकसाहित्ये (पृ० ४४९, ४५१) इत्यत्र द्रष्टव्यम्। काशीहिन्दूविश्वविद्यालये सी ५९१ मातृका संख्याका परीक्षणीया भैरवयामलस्य (पृ० ७६०), आफ्रेक्टबृहत्सूच्याम् (भाग १, पृ० ४१७; भाग २, पृ० ९५; भाग ३, पृ० ९०) इत्यत्रत्याश्च भैरवतन्त्रस्य।

४५. भैरवीयामलम्—दशमहाविद्याक्रमे भैरव्या रहस्योद्घाटकानां विषयाणां विशिष्टतमो ग्रन्थोऽयम्। अस्य चर्चा पुरश्चर्यार्णवादिषु ग्रन्थेषु वर्तते। अस्य मातृका अन्यत्र नोपलभ्यते।

४६. मातृयामलम्—आफ्रेक्टसूच्याम् (भाग २, पृ० ९७) अस्य विवरणं वर्तते।

४७. मित्रयामलम्—तन्त्रसंग्रहे तृतीयभागे (पृ० ३५२) उल्लिखितमस्ति।

५८. यमयामलम्—जयद्रथयामले वर्णितेष्वन्येषु यामलेषु चास्य चर्चा दृश्यते। मातृकारूपेणोद्धरणरूपेण वाऽन्यत्र नोपलभ्यते।

४९. रत्नावलीकुलोड्डीशयामलम्—उमानन्दनाथविरचिते नित्योत्सवे (पृ० ५) अस्य यामलस्य चर्चा समुपलभ्यते।

---

१. मातृका सं०—१२६३

२. श्लो०—६

५०. रसयामलम् – आफ्रेक्टसूच्याम् (भाग १, पृ० ४९५) अस्य मातृका निर्दिष्टाः। एतदतिरिक्तं प्रयोगरत्नेऽस्य नाम दृश्यते।

५१. रुद्रयामलम्—डॉ०कान्तिचन्द्रपाण्डेयमहोदयेन 'अभिनवगुप्त' इति ग्रन्थे (पृ० ५५२–५५६) रुद्रयामलस्य विस्तृतपरिचयः समुपस्थापितः। भैरव-भैरवी-उमा-माहेश्वर-महादेव-पार्वतीसंवादरूपैरस्य ग्रन्थस्य प्रवृत्तिः। अस्यानेका मातृकास्तान्त्रिकसाहित्ये (पृ० ५६१-५६३); आफ्रेक्टसूच्याम् (भाग १, पृ० ५३१-५३२), (भाग २, पृ० १२४-१२५, २२२), (भाग ३, पृ० ११३) इत्यत्र विवृताः सन्ति। अस्य प्रसिद्धिः १२५००० श्लोकात्मकत्वेनेति। अनुत्तरोत्तरभेदतो विभक्तोऽयं ग्रन्थः। जीवानन्दविद्यासागरेण, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयेन चास्य ग्रन्थस्य कतिपयेंऽशाः प्रकाशिताः। श्रीकण्ठीपठितचतुष्षष्टितन्त्रेषु, लक्ष्मीधरसम्मत्या वामकेश्वरतन्त्रपटितयामलाष्टकेषु, भास्कररायसम्मत्या चतुष्षष्टितन्त्रेषु, महासिद्धिसारतन्त्रानुसारं विष्णुक्रान्ताविभागे, ब्रह्मयामलतन्त्रीयविद्यापीठेऽष्टयामलेषु चास्य नाम वर्तते। उद्धरणरूपेण सौन्दर्यलहर्या लक्ष्मीधरीटीकायाम्, कुलप्रदीपे, तारारहस्यवृत्तौ, ताराभक्तिसुधार्णवे, आगमतत्वविलासे, सर्वोल्लासतन्त्रे, कालिकासपर्याविधौ, आनन्दलहर्याम्, तत्त्वबोधिनीटीकायाम्, तन्त्रसारे च ग्रन्थोऽयमुल्लिखितः। एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल-पुस्तकालये रुद्रयामलमतोत्सवतन्त्रस्य (सं०-५८५८) मातृकोपलब्धोमामहेश्वरसंवादरूपेण।

५२. रुद्रयामलसारः (मुद्रितः)—अभिनवगुप्तेन रुद्रयामलसारनाम्ना संगृहीतः श्लोकार्धो विज्ञानभैरवे (श्लो० ९३) दृश्यते। 'रुद्रयामलतन्त्रस्य सारमद्यावधारितम्' (श्लो० १६०) इति विज्ञानभैरववचनमेवाभिनवगुप्तेन रुद्रयामलसारनाम्ना संगृहीतमिति वक्तुं शक्यते। एवं च रुद्रयामलसार इति विज्ञानभैरवस्यैव नामान्तरम्।

५३. रुरुयामलम्—श्रीकण्ठीसंहितायां वर्णितेषु चतुष्षष्टितन्त्रेषु यामलाष्टकान्तर्गतमुद्धृतमस्ति।

५४. लक्ष्मीयामलम्—भास्कररायसम्मत्या चतुष्षष्टितन्त्रेषु यामलाष्टकेषु चास्योल्लेखो वर्तते।

५५. वामकेश्वरयामलम्—मातृकाभेदतन्त्रे सप्तमे पटले (श्लो० ३) उद्धृतमिदं यामलम्।

५६. वायुयामलम्—जयद्रथयामले वर्णितानामन्येषां यामलानां चर्चा दृश्यते। तत्रास्योल्लेखो वर्तते। मातृकारूपेणोद्धरणरूपेण वाऽन्यत्र न कल्पते।

५७. विष्णुयामलम्—स्पन्दप्रदीपिकायामुत्पलवैष्णवेनास्य श्लोकद्वयं संगृहीतम्। यामलाष्टके तदेतद् परिपठ्यते सर्वत्र श्रीकण्ठ्यामपि च। ज्योत्स्ना-

टीकासहितस्य विष्णुयामलस्य मातृकाः ता० सा० (पृ० ६००), आफ्रेक्ट-सूच्याम् (१, पृ० ५९२; २, पृ० २२६; ३, पृ० १२४) इत्यत्र विवृता उक्तश्लोकद्वयान्वेषणपुरस्सरं परीक्षणीयाः । एतदतिरिक्तं नित्योत्सवे (पृ० १२४), ताराभक्तिसुधार्णवे, सर्वोल्लासतन्त्रे, रुद्रयामलतन्त्रे, आचारार्कप्राणतोषिणीसंग्रहे, श्रीकालिकानन्दस्य शिष्येण जगन्नाथेन रचिते क्रमदीक्षाग्रन्थे चास्य वचनान्युद्धृतानि ।

५८—विश्वयामलम्—यामलस्यास्य चर्चा चण्डीपत्रिकायां (सितम्बर-अक्टूवर, १९८०, पृ० ६) क्रियते । श्रीदक्षिणामूर्तिविरचिते उद्धारकोशेऽप्यस्य यामलस्य श्लोकद्वयं प्राप्तम् (पृ० ६०, ७१) । काशीस्थसरस्वतीभवन-पुस्तकालये वगलामुखीसहस्रनाम १९६९०संख्यकमातृका विश्वयामलादेव प्राप्यते ।

५९. वीरयामलम्—यामलमेतद् विज्ञानभैरवविवृतौ शिवोपाध्यायेन स्मृतम् । यामलाष्टकनामावलीषु तु कुत्रापि नामाऽस्य न दृश्यते । तान्त्रिकसाहित्ये (पृ० ६०४) इत्यत्र वीरभद्रयामलं विवृतं वर्तते ।

६०. वेतालयामलम्—श्रीकण्ठीसंहितायां भैरवाख्येषु चतुष्षष्टितन्त्रेषु यामलाष्टकान्तर्गतमिदं दृश्यते ।

६१. शक्तियामलम्—आफ्रेक्टसूच्याम् (भाग १, पृ० ६२३) अस्य यामलस्य विवरणं दृश्यते । एतदतिरिक्तं नित्योत्सवे (पृ० १७०), रुद्रयामले, शक्तिरत्नाकरे, पुरश्चर्यार्णवे, तन्त्रसंग्रहे (तृतीये भागे, पृ० ३५२), ताराभक्तिसुधार्णवे, तन्त्रसारे, शाक्तानन्दतरङ्गिण्यामिदमुल्लिखितमस्ति । शक्तिरत्नाकरे ग्रन्थेऽस्य यामलस्य वचनानि गृहीतानि ।

६२. शिवयामलम्—तन्त्रसंग्रहे (तृतीयेभागे, पृ० ३५२; श्लो० ५९), श्रीविद्यार्णवे (पृ० ३०) चास्योल्लेखो वर्तते । आफ्रेक्टसूच्यनुसारं (भाग २, पृ० २३०) शिवयामले योगिनीदशाकथनमात्रमुपलभ्यते ।

६३. श्रीयामलम्—नेपालदेशे दरवारपुस्तकालये[1] रुद्रयामलतन्त्रस्य एका मातृका ९३ पटलेषु वर्णिता । तत्र श्रीयामलमपि दृश्यते । तदनुसारं श्रीयामल-विष्णुयामल-शक्तियामल-ब्रह्मयामलानामुत्तरकाण्डरूपं रुद्रयामलमेव वर्तते । स्वतन्त्ररूपेण यामलस्यास्य मातृका नोपलब्धा ।

६४. स्कन्दयामलम्—तन्त्रालोके (२८.४३०) गुरुपूजाप्रसङ्गे यामलमेतद् स्मर्यतेऽभिनवगुप्तेन, त्रिकसारवचनेषु (तत्रैव २३.७९) च तत् स्मर्यते । यामलाष्टकेषु तदेतत् परिठयते । तान्त्रिकसाहित्ये (पृ० ७१७),

१. सं०—२.२४६ (छ)

आफ्रे० (भाग १, पृ० ७४३) इत्यत्रत्यं विवरणमपि द्रष्टव्यम् । प्राणतोषिणी-तन्त्रे, श्रीविद्यार्णवतन्त्रे चास्योल्लेखो वर्तते ।

६५. स्वच्छन्दयामलम्—श्रीकण्ठीसंहितायां भैरवाख्येषु चतुष्षष्टितन्त्रेषु यामलाष्टकेऽस्य यामलस्य गणना क्रियते । एतदतिरिक्तं महामोक्षतन्त्रे, सौभाग्यभास्करे, सुभगोदये, योगिनीहृदयदीपिकायामस्योल्लेखो वर्तते ।

६६ संकर्षणीयामलम्—तन्त्रालोकविवेकेऽनामातर्पणप्रकरणे प्रमाणतया स्मृतमेतद्यामलम् । यामलनामावलीषु कुत्रापि न दृश्यतेऽस्य नाम ।

६७. संकेतयामलम् –आफ्रेक्टसूच्यनुसारं (भाग १, पृ० ६८४) बीकानेर-स्थितेऽनूपपुस्तकालये यामलस्यास्य मातृका उपलब्धा । मारण-मोहन-उच्चाटन-विद्वेषण- वशीकरण-स्तम्भनादीनां तान्त्रिकानां प्रतिपादनमस्मिन् ग्रन्थे दृश्यते ।

६८. सिद्धयामलम्—नित्योत्सवे, कृष्णानन्दकृततन्त्रसारे, आगमतत्त्व-विलासे, मन्त्रमहार्णवे, श्रीविद्यार्णवे, ताराभक्तिसुधार्णवे चास्योल्लेखः । आफ्रेक्टसूच्यनुसारं (१, पृ० ७१७; २, पृ० १७१) इत्यत्रत्यं विवरणमपि द्रष्टव्यम् ।

६९. हरियामलम्—जयद्रथयामले उल्लिखिते यामलाष्टके यामलस्यास्य गणना वर्तते । नान्यत्र विवरणं प्राप्तम् ।

७०. हंसयामलम्—वाराणसीस्थे सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये सरस्वतीभवनग्रन्थालये एकाऽपूर्णा मातृका (ग्रन्थसं०–२६२३६) यामलस्या-स्योपलब्धा । ग्रन्थेऽस्मिन् ९५५ श्लोकाः सन्ति । नान्यत्र कापि मातृका समुपलब्धा ।

यामलग्रन्थानां विवरणेनानेनेदं निश्चेतुं शक्यते यद् यामलाष्टकेषु पठितानि यानि यामलानि, तेभ्यो भिन्नान्यपि सन्ति बहूनि यामलानि । एवं च यामलग्रन्थानामपि वर्तते विशालं वाङ्मयम् । एतदन्तर्गतमेव वर्ततेऽस्माकं कृष्णयामलम् । सर्वप्रथमास्य ग्रन्थस्य प्रत्यध्यायं वर्णितानां विषयाणां संक्षिप्तः परिचयः समुपस्थाप्यते—

कृष्णयामलस्य संक्षिप्तः परिचयः

प्रथमाध्याये मङ्गलाचरणानन्तरं ब्राह्मणब्राह्मण्योः संवादरूपेण श्रीकृष्णया-मलतन्त्रं प्रतिपादयितुमिच्छुर्नारदो ब्राह्मण्याः शुद्धकुलोद्भूतत्वं प्रतिपादितवान् । दिव्यं भौमं भौतिकं चेति वृन्दावनं त्रिविधमत्र वर्ण्यते । एतत्प्रसङ्गे कृष्णस्यैव प्रतिमूर्तिः श्रीमत्पुरुषोत्तमसंज्ञया इन्द्रद्युम्नेन स्थापितेति उक्तम् । तत्तु पुरो-जगन्नाथपरकमिति मन्यते । अपारभवपाथोधिं तर्तुकामा ब्राह्मणी परम-

भागवतं नृत्यन्तं मोदयुतं पर्ति पृष्टवती। तत्र नवविधभक्तिमध्येऽर्चनारूपां भक्तिं प्रतिपादयितुं ग्रन्थस्य सन्दर्भ इति प्रतिभाति। अतएव पूर्वमेव 'गोविन्दनाम' (१.३. ख) इत्यारभ्य 'ज्ञानविज्ञानसम्पन्नम्' (१.८. क) इत्यन्तं वक्तुर्विशेषणजातं दत्तमस्ति। एवं वक्तुः श्रोतुश्च शापभ्रष्टत्वमुक्त्वा वक्तृगतवैशिष्ट्यं प्रतिपाद्य ग्रन्थगतगुरुत्वमपि प्रतिपादितं वर्तते।

द्वितीयाध्याये भूगोलं वर्णयति ब्राह्मणब्राह्मणीसंवादरूपेण नारदः। सर्वाधारभूता ब्रह्मशिला प्रथमा, आधारशक्तिस्वरूपिणी परामूर्तिर्द्वितीया, तदूर्ध्वं च महाकूर्मोंऽशावताररूपः, तदनन्तरं पातालादिसप्तभूविवरा वर्णिताः। वितले मत्स्यरूपी जनार्दनः, अतले च हयग्रीवः, तदनन्तरं श्वेतवराहः, तदूर्ध्वं शेष इति। भूमौ आधारभूतानां सत्त्वानां वर्णनम्। अत्र त्रिकोणा पृथिवीति विशेष उक्तः। तदनन्तरं प्रत्येकस्मिन् वर्षे पृथक्-पृथक् तिष्ठतो भगवतः श्रीकृष्णस्य व्यूहभूतस्यार्चनं मन्त्रश्चोक्तः तन्त्रपुराणादिष्वपि वर्णितप्राय एव। अत्रापि भारतवर्षे वर्तमानानां पर्वतानां नदीनां च विशेषेण माहात्म्यं वर्णितम्। तदनन्तरं सप्तद्वीपानि यथायथं वर्णितानि सन्ति। मेरोः पूर्वदिग्भागे क्षीरार्णवे चतुरोमासान् हरिः सुप्तस्तिष्ठति। शुद्धोदकस्य समुद्रस्य उत्तरे तीरे श्वेतनाम्नि पर्वते लक्ष्मीसहायो विष्णुस्तिष्ठति। एष एव श्वेतद्वीपः। यद्यपि भारतवर्षं कर्मक्षेत्रमिति वर्णितं पुराणेषु, तथाप्यत्र 'भूर्लोकः कर्मभूमिश्च राजसानां महात्मनाम्' (२.९२. ख) इत्यनेन भूर्लोकमात्रं कर्मभूमिरिति प्रतिपाद्यते। तदनन्तरं ऊर्ध्वलोकवर्णनप्रसङ्गे वृक्षाग्राद् महीतलात् पञ्चाशद्योजनोर्ध्वं पिशाचलोकः, पञ्चाशत्सहस्रयोजनान्ते गुह्यकलोकः, तदनन्तरं पञ्चाशद्योजनान्ते गन्धर्वलोकः, तत उपरि सार्द्धलक्षान्तेऽक्षरलोकः, ततो लक्षत्रयोर्ध्वे योजने यमलोको वर्णितः। ततो लक्षयोजनोर्ध्वं भुवर्लोकः यस्मिन् बलिना याचितो लक्ष्म्या सह विष्णुर्वामनरूपेण वर्तते। भुवर्लोकस्य सीमान्ते वर्णितः सूर्यलोकः। सूर्यो गायत्र्या 'आकृष्णेन०' इत्यादिवैदिकमन्त्रैश्चोपास्यमानः शोभते। तदुपरि सुमेरोः पूर्वदिग्भागे वर्णितः स्वर्गलोकः। सर्वमन्यत्र वर्णितप्रायम्। स्वर्गलोकाद् लक्षद्वयादूर्ध्वं चन्द्रलोकः। तदुपरिष्टाद् नक्षत्रमण्डलम्। ततो द्विलक्षे बुधः, काव्य(शुक्र)श्च, ततो द्विलक्षे सुरेज्यः (बृहस्पतिः)। ततो लक्षत्रये सौरिः, ततो लक्षद्वये सप्तर्षयः, तत ऊर्ध्वं पञ्चलक्षे ध्रुवः। भुवर्लोकादारभ्य आध्रुवं स्वर्गलोक इति मन्यते। क्षितेरेककोटियोजनोर्ध्वं महर्लोकः, यत्र नरवरास्तिष्ठन्ति। तस्योपरि कोटिद्वयोर्ध्वं जनलोकः, यस्मिन् सनन्दनाद्यैर्ज्ञानयज्ञेनोपास्यमानो हयग्रीवस्तिष्ठति। ततो भूमेः कोटिचतुष्टये तपोलोकः, तत्र त्रिविक्रमस्तिष्ठति। स त्रिविक्रमः पाताले, भुवर्लोकेऽत्रच लोकत्रयेऽपि तिष्ठति। अतो भूमेरष्टकोटियोजनोर्ध्वं ब्रह्मलोकः। अस्मिन्

लोकेऽधोक्षजो ब्रह्मणा उपास्यमान आस्ते। तत ऊर्ध्वं वैकुण्ठस्याधःस्थाने बलरामस्तमोगुणमयः, पश्चिमे कामदेवो रजोगुणः, उत्तरे पार्श्वेऽनिरुद्धो ज्ञानविग्रहः, पूर्वस्यां सत्त्वभूतो वासुदेवः। सत्यलोकत उपरि भूर्लोकात् षोडशकोटियोजनोर्ध्वं वैकुण्ठलोको वर्तते। तन्मध्ये विष्णोः परमं पदम्। यत् 'तद्विष्णोः परमं पदम्' इति ऋचा गीयते। तदेव वैकुण्ठमयोध्या इत्युच्यते। तत्र श्रीरामचन्द्रः स्वयं विष्णुः, सीता लक्ष्मीः, तस्या सखी वेदवती, सा एव अयोनिसम्भवा सीता। लक्ष्मणोऽनन्तः, शङ्खचक्रौ शत्रुघ्नभरतौ। पुराणादिषु रुद्रस्वरूपो हनुमान् इति वर्ण्यते, किन्त्वत्र खगाधिपः (गरुडः) हनुमान् इति विशेषो दृश्यते। शङ्खचूड़स्य पत्नी वृन्दा तुलसीरूपेण अवतारिता यत्र, तद्वृन्दावनमिति नाम्ना प्रथितमभूत्। विष्णुभक्तस्य शिवपुत्रस्य स्कन्दस्य लोको द्वत्रिंशत्कोटियोजनोर्ध्वं कौमारलोक इति प्रसिद्धः।

ब्राह्मणब्राह्मणीसंवादरूपे तृतीयेऽध्यायेऽस्मिन्, इतः परं कश्चिल्लोको वर्तते न वेति वर्तते ब्राह्मण्याः प्रश्नः। तत्रोत्तरम्—महाविष्णोः प्रतिलोम्नि ब्रह्माण्डजातानि वर्तन्ते। महाविष्णोः कृष्णस्य अंशाशभवाः सनातनाः सङ्कर्षणादयः प्रतिब्रह्माण्डमुत्पन्नाः। अत एव 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' (३.७. ख.) इत्यादिना स वर्ण्यते। स एवान्यत्र हिरण्यगर्भ इत्युच्यते। तस्य पुरुषस्य विष्णोः पार्श्वे राधिकादेहसम्भूता महालक्ष्मीर्व्यंजनेन वीजयन्ती वरीवर्ति। एवं ध्यायतस्तस्य पुरुषस्य रोमहर्षः समजनि, तेन ब्रह्माण्डान्तराणि समभवन्। राधायाः सचिन्तायाः यदश्रुधारा व्यजायत, तया वामतो यमुना, दक्षिणतो गङ्गा, मध्यतो गोमती च प्रादुर्भूताः।

चतुर्थेऽध्याये ब्राह्मणेनात्र पुरुषलोकादूर्ध्वं गौरीलोको वर्ण्यते। चतुष्षष्टि-कोटियोजनानामूर्ध्वं गौरीलोकः। समस्तेषु तन्त्रशास्त्रेषु वर्ण्यमानानां भैरवी-भैरवाणां सिद्धयोगिनीनां सिद्धानां चात्र वसतिः, तत्रैव श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या अपि। श्रीयन्त्रं चक्ररूपेणात्र वर्णितम्। त्रिपुरसुन्दर्या रूपं कृष्णस्वरूपत्वेन वर्णितम्, यथा 'स्वयं कृष्णस्वरूपा च कृष्णाज्ञावशवर्तिनी' (४.८. क) इति। त्रिपुरसुन्दरी एव श्यामवर्णा सती नीलसरस्वती दुर्गा पराशक्तिरिति। सैव दुर्गा त्रिपुरसुन्दरी, सृष्टि-स्थिति-विनाशकर्त्री। ततस्तस्यास्त्रिपुरसुन्दर्या यन्त्रं संवर्ण्य तत्र तत्तत्स्थाने देवतानां सन्निवेशो वर्णितः। गौरीलोकाग्रेऽ-खिलभूतजननी कालिका श्रीचक्रस्य दक्षिणे भागे स्थिता कदाचित् श्यामा कदाचिच्च काञ्चनवर्णा प्रतिभाति। सैव उग्रतारा उग्रापत्तारकत्वादुच्यते। पश्चिमस्यां दिशि शुद्धसत्त्वमयी वाग्वादिनी, सैव दक्षिणदिग्भागे पीतवर्णा भुवनेश्वरी। कदा मुक्तिं ददासीति विष्णुना पृष्टा सती क्रुद्धा भूत्वा स्वशीर्षं

चिच्छेद। तेन बिभ्यता विष्णुना प्रसादिता मुण्डं स्कन्धे निधाय पूर्वस्यां दिशि संस्थापिता सैव छिन्नमस्ता। उत्तरे च डाकिनी-लाकिनीभ्यां सेविता सिद्धयोगिनी वर्तते।

अत्रैव १९संख्यकश्लोकादारभ्य ३९श्लोकपर्यन्तमेका विशेषा कथा वर्णिता। समुद्रमथनात्पूर्वं पुरुषोत्तमस्य रूपं धृत्वा दुर्गादिसर्वशक्तिभिरावृता परमेश्वरी राधा षट्कोणाष्टदलचतुरस्रप्रान्तदेशसमन्विता चक्ररूपाऽभवत्। अत्र चक्रेश्वरीरूपा स्वयं राधा एव। षट्कोणे भ्रातरः, अष्टपत्रेऽष्टगोप्यः चतुरस्रे सुदामाद्याः प्रान्तदेशे च पुनः गोप्यः प्रतिष्ठिताः। पुनः जलधेः मथने मोहिनीरूपेण सर्वे यदा मोहिताः रसरूपे निमज्जतुः, तदा भगवता मनसा संकल्पितं यद् दधिदुग्धादिसमन्विते देशे गोगोपगोपीभिः सह क्रीडितव्यमिति। तदर्थं सर्वे देवा भूमौ जन्म लेभिरे। तस्मिन्नेव समये यदा पार्वती उत्पन्ना तदा नारायणेन सह पार्वत्या विवाहो भवत्विति हिमवता चिन्त्यमानेऽपि आग्रहविशेषात् पार्वत्या शिवेन सह विवाहः सम्पन्नः। विष्णवे एका कन्या देया इति मनसि ध्यात्वा पुनश्च सः गिरिराट् तपसा वृषभानुरूपेण व्रजे जातः, सा मोहिनीशक्तिश्च राधारूपेण पुनः समुत्पन्ना। तां विष्णवे वासुदेवाय दत्त्वा स परां सन्तुष्टिं प्राप।

पंचमेऽध्यायेऽस्मिन्, नारदोऽत्र पुनर्ब्राह्मणब्राह्मणीसंवादं स्मारयति। अत्र गौरीलोकादूर्ध्वं शिवलोकस्थितिर्वर्ण्यते। राधाविरहतापतप्तेन कृष्णेन प्रक्षिप्तो लिङ्गरूपी शिवः पञ्चधा विभक्तः। तस्य साकारोनिराकारश्चेति द्वैविध्यम्। साकारः पञ्चवदनदशबाहुत्वादिरूपः, निराकारस्तु पञ्चतन्मात्ररूपः। वर्द्धमानं लिङ्गं दृष्ट्वा योनिभूता पराशक्तिः त्रिपुरसुन्दरी तमावृत्य स्थिता। अतएव पुंप्रकृत्यात्मकं लिङ्गमित्युच्यते। एतल्लिङ्गं पुरुष-प्रकृति-शिव-विष्णुभेदैः नानारूपं वर्णयन्ति जनाः। तल्लिङ्गमध्ये बिन्दुः, ततो महाविष्णुर्जातः। तेन सकलं सृष्टम्। अत्र विष्णुभक्तानां नित्यत्वं वर्ण्यते। शिवसेवापरः सुखमवाप्य पश्चात् दुःखजलधौ निमज्जतीत्युक्त्वा कलिकाले प्रायः शिवभक्ता भवन्ति विष्णुं निन्दन्ति च। काशी केशवेन निर्माय शिवाय दत्ता। कलौ काश्यां पाखण्डादिभिरावृत्ता जनाः काश्यामपि मुक्तिर्नास्तीति वदन्ति। अत्र एवं प्रतिभाति शिवो लोकयात्रार्थं स्वयं पाखण्डिनो निर्माय नरांश्च धर्माद् विचाल्य पापे प्रवर्तय मुक्तिं दुर्लभां चकारेति।

षष्ठे चाध्याये अत्र ब्राह्मणो वदति यद् वृन्दावनादधः शिवलोकस्योपरि विरजाख्या महानदी वर्तते। तस्या पारे मनसाऽपि अगम्यं ज्योतिर्मयं स्थानं वर्तते। तत्र कृष्णस्य स्थानम्। कृष्ण एव ब्रह्मेत्युच्यते। तस्य शक्तिः सैव प्रकृतिः सूक्ष्मा सनातनी च। स एव ज्योतिर्ब्रह्म जगत्सृष्टिस्थितिप्रलयकारणं

सर्वस्वरूपं निष्कलं च। एवमत्र ज्योतिर्मयलोकस्य तन्निवासिनो निष्कल-ब्रह्मणश्च स्वरूपं वर्ण्यते।

सप्तमेऽध्यायेऽस्मिन् ब्राह्मणोऽत्र सविस्तरं वृन्दावनाख्यं लोकं वर्णयति यद् अस्मात् परतरं वृन्दावनाख्यं सर्वभूतमनोहरं प्रेमानन्दरसान्वितं राजते। एतदेव गोलोकमित्युच्यते। अत्र सुशीलाद्या लक्षसंख्याकाः गावः, पद्मगन्धपिशङ्गाख्यौ बलीवर्दौ, श्रीकृष्णस्य दक्षिणाङ्गाद् विनिर्गता अनेके गोपालाश्च सन्ति। ते सर्वे यथा श्रीमद्भागवते वर्णिताः सन्ति, तथैवात्रापि कृष्णस्य सहचराः। तैः साकमेको देवः क्रीडमानो विराजते। तेषु सुबल–स्तोककृष्ण–दाम-सुदामक-किङ्किणी-भद्रसेन-अंशु–कलविङ्क-प्रियङ्कर-पुण्डरीक-विकङ्क–द्युमत्सेन-विलासि-मन्दर-अर्जुन-गन्धर्व-वसन्त-उज्ज्वल-कोकिल-सनन्दन-विदग्धाः सुहृत्तमाः, विशाल-वृषभा-ओजस्वि-देवप्रस्थ-वरूथप-माकन्द-कुसुमापीड-मणिबन्ध-करन्धम-मन्दर-चन्दन-कुन्द-कुलिन्द-कुलिकाः सर्वे सेवकाः, मण्डलीभद्र-यक्ष-इन्द्र-भट-भद्राङ्ग-गोभट-तटवर्धन - भद्रेह-वीरभद्र-महागुण-कुलवीर-महाभीम-दिव्यशक्ति-सुरप्रभ-रणस्थिर-सुस्थिर-स्थिरानन्द-पुरन्दरा ऋषिपदवाच्या भगवत्सेवकाः। एते उग्रैस्तपोभिर्गोविन्दं प्रसाद्य गोपत्वं प्राप्ता गोलोके विहरन्ति। वृन्दावन-प्रान्ते महाकदम्बवनं वर्तते। तस्मिन् केषाञ्चित् गोपानां वसतिः। तथैव भाण्डीरकवटस्याधो बृहद्वने, आम्रवने, स्थलपद्मवने, मन्दारविपिने, पारि-जातवने, खादिरवने, तालवने, अशोकाख्ये वने च केषाञ्चित् वसतिः। एकदा राधा रासक्रीडासमये समुपस्थितान् सहचरान् दृष्ट्वा घोरं विपिनं प्रविष्टा। तद् दृष्ट्वा श्रीकृष्णो राधिकां सान्त्वयन् वृन्दावनं समानीयेदमाह–अद्य प्रभृति अत्र ये प्रविशन्ति ते सर्वे स्त्रीत्वमायास्यन्तीति। ततो ये गतास्ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः। तैः सह एकेन वपुषा प्रेमबद्धः, अन्येन वपुषा राधया सह क्रीडति। राधा तावत् कृष्णरूपिणी पराशक्तिः। सैव रसमयी शक्तिः। चन्द्रावली नाम त्रिपुरादेहसम्भवा। सा राधा विरहबाधितस्य ईश्वरस्य क्रीडार्थं निर्मिता। अन्या ललिताख्या देवी भुवनेश्वरी स्वरूपिणी। तस्या एकांशतो नारदः समभवत्। विशाखा-श्यामा-पद्मा-शैव्या-भद्रिका-तारा-विचित्रा-गोपाली-पालिका-चन्द्रशालिका-मङ्गला-विमला-वीणा–तरलाक्षी-मनो-रमा-कन्दर्पमञ्जरी–मञ्जुभाषिणी-अञ्जनेक्षणा-कुमुदा–कैरवी-सारी-शारदाक्षी-विशारदा-शाङ्करी-कुङ्कुमा–कृष्णा-साराङ्गी-चन्द्रावली–शिवा-तारावली-गुण-वती-सुमुखी-केलिमञ्जरी-हारावली-चकोराक्षी-भारती-कामिलाः श्रेष्ठा गोप-कुमारिका राधाङ्गसम्भवाः कोटिशः सन्ति। सुचित्रा-चम्पकलता-रङ्गदेवी-सुदेविका-तुङ्गविद्या-इन्दुलेखा-मण्डली-मणिकुण्डला-कुरङ्गाक्षी-मालती- माधवी-मदालसा-मञ्जुला - चन्द्रतिलका - सुमध्या–मधुरेक्षणा–मञ्जुमेघा–शशिकला -

गुणचूडा-वराङ्गना-कमला-कामलतिका-सुरङ्गी-प्रेममञ्जरी-माधुरी-चन्द्रिका-चन्द्रा-सुबला तनुमध्यमा-कन्दर्पसुन्दरी-मञ्जुकेशी-केशवमोहिन्य: राधाया: प्राणतुल्या: सख्य:। लासिका-केलिकन्दली-कादम्बरी-शशिमुखी-चन्द्ररेखा-प्रियंवदा-मदोन्मदा-मधुमती-वासन्ती-कलभाषिणी-रत्नवेणी-मणिमती-कर्पूरतिलका-उज्ज्वला-मनोज्ञा-मणिमञ्जरी-सिन्दूरा-चन्दनवती-कौमुदी-मदिरालसा-कामदा: सख्य: सन्ति राधाज्ञावशवर्तिन्य:। मधु-पिङ्गल-पुष्पाङ्ग-हासाङ्का: चत्वारो विदूषका:। कडार-भारतीवन्ध-चारुवेषा: त्रयो विटा:, भङ्गुर-भृङ्गार-सन्धिक-ग्रहिण-रक्तक-पत्रक-पत्रि-मधुकम्ब-मधुव्रत-शालिका-तालिका-मालि-भानु-मालाधरा: चेटा:। ते सर्वे कृष्णपार्श्वगा:। अन्ये शृङ्गारप्रसाधनार्थं पृथक्-पृथक् सेवका: सन्ति। अत्रैव चन्द्रभास-सूर्यभास-प्रभासोद्भास-सुशर्म-नर्मद-रतिहास-रतिप्रिया: देवगन्धर्वा:।

एतद्ग्रन्थवक्ता ब्राह्मणो गोलोके सुशर्मनामको गन्धर्व आसीत्। अनन्यमनसा सेवां कुर्वन् कस्माच्चित् प्रमादात् परिभ्रष्ट: प्रथमं मान्धातृतनयो मुचुकुन्दाभिध: सूर्यवंशे उत्पन्न:। तदनन्तरं ब्राह्मणत्वं प्राप्य परं धाम जगामेत्यत्र वर्ण्यते। तेन कृष्णयामलस्य वक्ता एष एव। ब्राह्मणी अपि विशालाक्षीनाम्नी राधाया: कटाक्षप्रभवा दैवाद् वृन्दावनच्युता सती तत्प्रिया अभवत्। अत्र सुशर्मा वदति यद् मत्सङ्गिनो नर्तका:, गायका:, वाद्यवादकाश्च बहव: सन्ति। भगवन्तं सेवयित्वा अनेके महर्षयो वृन्दावने किङ्करा: सन्ति। एते वर्णिता: सर्वे बृहद्वने वर्तन्ते। राधिकयाऽपि प्रत्येकस्मिन् कार्ये नियुक्ता विभिन्ना: सेविका वर्तन्ते, यथा—लवङ्गमञ्जरी-रागमञ्जरी-गुणमञ्जरी-भानुमती-अमरप्रेष्ठा-सुप्रिया-रतिमञ्जरी-रागलेखा-कलाकेलि-भूरिदाद्या:। तदनन्तरमत्र गोलोकस्य श्रीकृष्णस्य च वर्णनं कृतम्। विशेषत शृङ्गारोद्दीपनविषयाणां मध्ये एकैकं विषयं पुरस्कृत्य राधाकृष्णयो: शृङ्गारं वर्णयता स्तुतिरनुपमा क्रियते। ब्राह्मणस्य भक्त्युद्रेको विशेषतोऽत्र निरूपित:। तत: प्रियं सान्त्वयन्त्या ब्राह्मण्या: संवादं वर्णयित्वा तया 'प्रशान्तो भवे'त्युक्ते सति श्रीकृष्णचरितचर्चया मुक्तिरिति, भक्तानां सुखप्रदाने राधादेव्या वैशिष्ट्यं चोपवर्ण्य राधाकृष्णयो: प्रियवस्तूनि वर्णितानि। अन्ते च श्रीकृष्णस्य वामभागे वर्तमानाया राधिकाया अनुपमा शोभा संवर्ण्यते।

अष्टमेऽध्याये, भगवद्गाथाध्याननिमग्नं ब्राह्मणं ब्राह्मणी पृच्छति-अखिलब्रह्माण्डनायकस्य सहस्रशिरस: शिरोदेशे गोपाला: कथं भवितुमर्हन्तीति। स उत्तरयति—सर्वस्य ब्रह्मरूपत्वात्, निर्विकारस्य निरञ्जनस्य ज्योति:स्वरूपस्य ब्रह्मण: स्वरूपत्वात् तेषामेव न, अपितु वृक्षलतादीनामपि रसब्रह्मरूपत्वं गोलोके वर्तमानत्वं सर्वेषां कृष्णस्वरूपत्वं च निर्विवादम्। मनुष्याणां ज्ञानगम्यं यथा

भवेत् तत्तत्त्वं तथा नररूपेण वर्ण्यते। तथैव राधा तस्याः सेविकाश्च उभयभेदो नास्त्येवात्र। यथा द्विदलं बीजे शाखापल्लवादिरूपेण नानाकारं प्रतिभाति, तथा पुंप्रकृत्यात्मकं विश्वं नानारूपेषु प्रतिभाति। वस्तुतस्तु तत्त्वमेकमेव। तदेवोच्यते—

एकः कृष्णो द्विधा भूतो मुमुक्षुभजनैषिणोः।
उपकाराय शुद्धात्मा वेदविद्भिः स गीयते।
मुक्तो ब्रह्मपदं याति तदङ्गं ज्योतिरुत्तमम्॥ इति।
(८.२६ ख—८.२७ क)

नवमेऽस्मिन् अध्याये वृन्दावनं केन निर्मितमिति ब्राह्मण्या प्रश्ने कृते सति ब्राह्मणेन रहस्यं वदता प्रोक्तं यत् कृष्णाग्रजं बलरामं गोपबालकाः तदेव पृष्टवन्तः। ततः गोपबालकैः सह बलरामो वृन्दावने वर्तमानान् वृक्षान्, लताः, पक्षिणः, मृगांश्च पृच्छति। ते च सर्वे भगवदीयमायया मोहिताः सन्तो वेणुवादनपरं गोविन्दं पप्रच्छुः। अत्र कृष्णतत्त्वविवित्सया दिव्यरूपा सरस्वती धीमतो बलरामस्य जिह्वाग्रस्था सती भगवन्तं प्रार्थयते।

दशमेऽध्यायेऽस्मिन् बलरामेण स्तुतिपूर्वकं वृन्दावनविषये कृष्णतत्त्वराधिकातत्त्वयोश्च विषये प्रश्ने कृते सति श्रीकृष्णः स्वस्य ब्रह्मरूपत्वं वर्णयन् समस्तजगत्स्वरूपं ब्रह्मण एव विवर्त इति वक्ति। तथैव जगत्स्थितिरपि ब्रह्मण इच्छया प्रचलति। वृन्दावनस्य विषये केशानां वृन्दत उत्पन्नं यत्तत् वृन्दावनमिति सविस्तरं तत्र प्रतिपाद्यते। मम पादाम्बुजोत्पन्नया वृन्दया रक्षितमिति कृत्वा वृन्दावनमेतदित्यादिका अनेका व्युत्पत्तयोऽत्र वृन्दावनस्य प्रदत्ताः। सर्गादपि अभ्यर्हितं वृन्दावनमेतत् शब्दब्रह्मस्वरूपमिति वृन्दावनस्य माहात्म्यातिशयोऽत्र वर्णितः।

एकादशेऽध्यायेऽस्मिन् श्रीबलरामो वंशीमधिकृत्य पृच्छति। श्रीकृष्णश्च प्रतिवदति यद् वंशीनाम सरस्वत्याः प्रलयकालीना तनुः। प्रलयकाले वंशी कथं स्यादिति प्रश्ने कृते सति आकीटब्रह्मपर्यन्तं संहारक्रमेण यदा लीनं भवति, तदा अहमेक एव क्षराक्षरस्वरूपेण तिष्ठामि, सरस्वती च ममाधरमाश्रित्य वंशीरूपेण स्थिता। तथैव दक्षिणे वामे च भागे आचतुर्मुखब्रह्माद्यनन्तमुखब्रह्मपर्यन्तम्, रुद्रमूर्तयश्च आपञ्चमुखतोऽनन्तमुखपर्यन्तं विराजन्ते। अन्येषु अङ्गेष्वपि सर्वा देवताः समस्तजीवात्मानश्च शक्तिसमेता यथा तथा तिष्ठन्ति। सा सरस्वती अधरे स्थातुमिच्छन्ती कृष्णं स्तुतवती। परब्रह्मरूपः श्रीकृष्णो मौनमेवालम्बते। परितः पश्यन्ती सरस्वती पुनः स्तौति श्रीकृष्णम्। ततो वाग्देवी ऋतुराजं वर्णयामास। ततो देवी सरस्वती कृष्णेन स्थावरतां

प्राप्तुमादिष्टा सती द्वादशाङ्गुलिमिता सप्तदशाङ्गुलिमिता वा वंशी बभूव। वंशीभूता सा पुनरपि स्तौति भगवन्तं श्रीकृष्णम्। ततः शब्दब्रह्ममयस्य श्रीकृष्णस्याधरसंसर्गतो नादरूपिणी सरस्वती प्रादुर्बभूव।

द्वादशेऽध्यायेऽस्मिन् श्रीकृष्णस्य त्रिभङ्गित्वं वर्ण्यते। तत्र किं नाम त्रिभङ्गित्वम्? इति चेत्, रसादानन्द आनन्दानुभावो जायते। रन्तुमिच्छुः ईश्वरः श्रीकृष्णो नारीरूपेणात्मानं यदा भावयति, तदा रसरूपिणी राधा प्रादुर्भवति। तां दृष्ट्वा कृष्णस्य मनसि आनन्दोल्लासोऽनुभावाश्च संजायन्ते। तदा श्रीकृष्णो रसमाधुरीमापिबन् तिर्य्यग्ग्रीवस्तिर्यक्चरणश्च भवति। सैषा रसमाधुरीभरिता वंशीवादनरता कृष्णस्य आकृतिर्मनोहारिणी त्रिभङ्गिनाम्ना अध्यायेऽस्मिन् वर्णिता।

त्रयोदशेऽध्यायेऽस्मिन् बलरामस्त्रिभङ्गित्वप्राप्त्यनन्तरं किमकरोत् श्रीकृष्ण इति तमेव पृच्छति। स उत्तरयति—यद् इच्छायुक्तस्य मम रसरूपाया राधाया आकर्षणं कथं भवेदिति चिन्तयत आकर्षणोपायानां मणिमन्त्रौषधीनां स्मरणमजायत। तत्र मणिः चिन्तामणिः, मन्त्रः मोहनाख्यः, औषधिः तिलकादिकम्। तत्र चिन्तामणिधारणे कृते सती राधिका अदृश्यतां गता। ततो वश्यार्थं सम्मोहनाख्यं मन्त्रं जप्तवानहम्। तेन कामः प्रादुर्बभूव। स च राधां दृष्ट्वा स्वयमेव मुग्धोऽभवत्। सा तं हसन्ती सुस्निग्धाऽभवत्।

अध्यायेऽस्मिन् चतुर्दशे श्रीबलरामं प्रति पुनः श्रीकृष्णो वदति यद् मणिमन्त्रौषधिभिर्वशमानीतापि सा नातिप्रसीदन्ती मया वंश्या स्तुता। वंशीं मूर्छयन् स्वरसपदा युक्तो नादः सप्तविधोऽभवत्। ततः रागाः षड्विधा रागिण्यश्च षट् समुत्पन्नाः। तालगणाः, ग्रामाः, मूर्छनाद्याश्चोत्पन्नाः। ततो भगवती त्रिपदागायत्री, वेदाश्चत्वारश्च तां देवीं प्रसादयितुं समुत्पन्नाः। अथ तैः सह अकारादिहकारान्तवर्णक्रमेण प्रस्तुतैर्नामभिस्तामहमस्तुवम्। तदा प्रसन्नायास्तस्या देव्या देहतश्चतुर्भुजा त्रिनेत्रा रक्तवर्णा च श्रीभुवनेश्वरी प्रादुर्बभूव। सा एवं संमोहनमन्त्रस्य अधिष्ठात्री। का त्वमिति प्रश्ने सति महादेव्या द्वितीया मूर्तिरिति सोवाच। राधाया वशीकरणार्थमुपाये प्रार्थिते सा राधाया अष्टाक्षरमन्त्रं मामुपदिष्टवती।

बलरामश्रीकृष्णसंवादरूपेऽध्यायेऽस्मिन् पञ्चदशे दत्तस्य वरस्य साफल्यं कुर्विति भुवनेश्वरीं श्रीकृष्णः प्रार्थयति। सा च वदति यद् राधिकया आनन्दमय्या सह विहर्तुं वाञ्छसि चेत् तदर्थं गृहं विरचय। ततः पूर्वोक्तरीत्या वृन्दावनं विरचयामास श्रीकृष्णः। तथैव आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तां सकलसृष्टिं चकार। तत्र विशेषतो वृन्दावने गोलोके धेनूर्वत्सांश्च स्थापयामास। ततो ब्राह्मणान् सृष्ट्वा अर्चयामास। तेषामाशीर्वादतो नित्यं पुष्पफलिनस्तरवः

पञ्चशाखा उत्पन्नाः। तेषां पूर्वशाखामाश्रित्य ये फलानि खादन्ति, ते बाला अपि तरुण्यस्तरुणा वा भवन्ति। दक्षिणशाखामाश्रित्य फलानि खादन्तो वृद्धा अपि कुमारा भविष्यन्ति। तथैव उत्तर-पश्चिमशाखामाश्रित्य ये फलानि खादन्ति ते ज्ञानशालिनो भवन्ति। ऊर्ध्वां शाखामाश्रित्य ये खादन्ति ते मत्स्वरूपा भवन्ति। एवं रीत्या परमाश्चर्यरूपं गोलोकं दृष्ट्वा कृष्ण आत्मनः स्वरूपं कथयामास। परब्रह्मणः श्रीकृष्णस्य स्वरूपं विज्ञाय भुवनेशी विमोहिता। तदनन्तरं चतुर्भुजस्य गोविन्दस्य रूपं दृष्टवती। तदा विस्मिता सती भुवनेशी कृष्णमाराधयामास।

षोडशेऽध्यायेऽस्मिन् श्रीकृष्णो बलरामस्य भुवनेशी ततः किमकरोदिति प्रश्नमुत्तरयति। भगवतः स्वरूपं दृष्ट्वा मोहिताया भुवनेश्वर्याः समक्षं श्रीकृष्णस्त्रिपुरसुन्दरीस्वरूपमङ्गीचकार। तत्र या भगवतो वंशी सैव बाणोऽभवत्, मुरली चाभवद् धनुः। ऊर्ध्वहस्तद्वये धृतौ तौ, पाशाङ्कुशौ च अधःकरयोः। इदमेव त्रिपुरसुन्दर्या रूपम्। त्रिभङ्गीस्थानत उत्पन्ना इति त्रिपुरसुन्दरी।

श्रीविद्यासम्प्रदाये अनङ्गकुसुमादियोगिनीनां महत्तमं स्थानं विद्यते। तत्र सर्वसंक्षोभणाभिधेयेऽष्टारे एता आवरणदेवतात्वेन पूज्यन्ते। तासामुत्पत्ति प्रभावं च वर्णयन् श्रीकृष्णोऽत्र सप्तदशेऽध्याये बलरामं बोधयति यद् राधाविरहकातरं मां दृष्ट्वा त्रिपुरसुन्दरी यदा एकाकिनी एव तामानेतुं चिन्तयति, तदा चतुष्कोटिपरिमिता योगिन्यः समुत्पद्यन्ते। ताः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीं किं करिष्यामो वयमिति पृच्छन्ति। सर्वाः संभूय राधां वशमानयतेति समादिष्टास्ता राधान्वेषणतत्परा वनं विचेरुः। तासामसाफल्यं दृष्ट्वा त्रिपुरसुन्दरी अष्टदूतिकाः प्रादुर्भावयामास। ता एव अनङ्गकुसुमा-अनङ्गमेखला-अनङ्गमदना-अनङ्गरेखा-अनङ्गवेगा-अनङ्गाङ्कुशा-अनङ्गमालिनी इत्यष्टौ योगिन्यस्त्रिपुरसुन्दर्याः प्रतिमूर्तय इव राजन्ते। ता सर्वाः कामदेवेन सह राधां वशमानेतुं प्रायतन्त, किन्तु सफला नाभूवन्।

अष्टादशेऽध्यायेऽस्मिन् तथैव राधां वशमानेतुं षोडशाकर्षणशक्तीनां प्रादुर्भावो वर्ण्यते। इमाश्च देव्यः श्रीचक्रस्याङ्गभूते सर्वाशापरिपूरकाभिधे ये षोडशारे निवसन्त्यः कामाकर्षिण्याद्याः षोडश आवरणदेवताः सन्ति। ता अपि राधामानेतुं विफलीभूताः।

एकोनविंशत्यध्यायेऽत्र राधामानेतुमेतास्वप्यशक्तासु सर्वसंक्षोभिण्यादिशक्तीनां त्रिपुरसुन्दर्याः प्रभवः समजायत। ताश्चतुर्दशशक्तयः सर्वसंक्षोभिण्यादिसर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीपर्यन्ताः सर्वसौभाग्यप्रदाभिधेये चतुर्दशारे पूजयन्ते। ताः

स्वस्वशक्त्यनुसारं राधां वशमानेतुं कृतोद्योगा अपि यदा अशक्ता बभूवुस्तदा राधां प्रतुष्टुवुः। राधया वृन्दावनं सर्वं राधारूपमिति रहस्यतत्त्वे बोधिते ताः सर्वा राधायाः सेविका बभूवुः।

विंशत्यध्यायेऽत्र एवं मोहितासु तासु शक्तिषु श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी सर्वसिद्धिप्रदादिसर्वसौभाग्यदायिनीपर्यन्ताः शक्तयः सर्वार्थसाधकाभिधेये दशारचक्रे निवसन्त्यो विभिन्नेभ्योऽङ्गेभ्योऽसृजत। ता अपि श्रीदेव्याज्ञया राधामन्वेषयन्त्यो राधाया निरतिशयं रूपं दृष्ट्वा राधायाः परिचारिका बभूवुः। ततः सर्वज्ञादिमहाशक्तीनां सर्वरक्षाकरे दशारे वसन्तीनां सृष्टिरजायत। ता अपि अशक्ताः सत्यः श्रीकृष्णरूपेण राधां ददृशुः। राधाकृष्णरूपयोर्विपर्ययं पश्यन्त्यो मोहितास्ता बभूवुः।

एकविंशत्यध्यायेऽत्र विमुग्धासु तासु सर्वसंक्षोभिण्यादिषु सर्वज्ञादिषु च शक्तिषु श्रीदेव्या वशिन्याद्यष्टदेवीनां प्राकट्यं वर्ण्यते। यत्ने कृतेऽपि राधां मोहयितुमशक्ताः शक्तयस्ता गद्यपद्यादिना राधिकां प्रतुष्टुः। श्रीराधा प्रसन्ना सती स्वस्यानन्दरूपत्वं शक्तिहीनस्य कृष्णस्य अशक्तत्वं च प्रतिपाद्य प्रेमरसं विना वशीकर्त्तुं नार्हाऽहमिति ज्ञात्वा श्रीदेवीं निवेदयत। तास्तथैव चक्रुः। ततस्त्रिपुरसुन्दरी कामेश्वर्यादिमहाशक्तीनां सृष्टिं चकार प्रेम्णा च राधां वशीकर्त्तुं प्रैरयत्। ताः प्रेमरसेनैव तां वशीकर्त्तुं यत्नमकुर्वन्। किन्तु ताभिः साफल्यं नावाप्तम्। राधा च सहसैवान्तर्दधे।

द्वाविंशत्यध्यायेऽत्र सर्वासु शक्तिषु विफलासु पुनः श्रीदेव्याः कामेश्वर्यादि-सर्वमङ्गलापर्यन्ताः षोडशनित्या शिरोमणितः पादकटकस्थानं यावद् भिन्नेभ्यः प्रदेशेभ्यो निर्गत्य राधिकां प्रति जग्मुः। कृष्णसंयोगं प्रशंसन्तीनां देवीनां पुरतो राधा स्त्रीणां स्वच्छन्दकारित्वं स्वतन्त्रत्वं च निषेधयामास। राधिकावचनं श्रुत्वा ताः सर्वाः श्रीदेवीं निवेदयामासुः। क्रुद्धा सती श्रीदेवी ततो डाकिनीमाधारात्, योनिरन्ध्राद् राकिणीम्, नाभिदेशतो लाकिनीम्, हृदयात् काकिनीम्, कण्ठदेशतः साकिनीम्, भ्रूमध्याद् हाकिनीं च राधाकर्षणार्थं प्रकटयामास। ता देव्यो राधिकां निर्भर्त्स्य भीषयामासुः। ततः श्रीराधाया देहाद् बह्व्यः शक्त्यः प्रतिरोधार्थमुत्पन्नाः। ताभिर्निरस्ता डाकिन्याद्या योगिन्य-स्त्रिपुरसुन्दरीशरणं ययुः। ततः श्रीकृष्णः स्ववामाङ्गादुत्पन्नानां गोपीनां मोहनार्थं दक्षिणाङ्गात् गोपान् प्रकटयामास। गोप्यो गोपाश्च राधामायया मोहिता वृन्दावने विचेरुः।

त्रयोविंशत्यध्यायेऽत्र श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी परिवारदेवतानां योगिनीनां च पराजयं दृष्ट्वा भगवत्या राधाया वशीकरणार्थं मन्त्ररूपा सती स्वयमाकर्षणं

मनुं जजाप, मुद्राश्च विरचयामास। सर्वभूतवशङ्करीमुद्रां प्रदर्श्य वसन्त-सुन्दरीनाम्ना मन्त्रेण सह राधामाकर्षयितुं प्रायतत। तदनन्तरं सर्वसंक्षोभिणी-मुद्रया सह मन्त्रं जजाप। तेन राधा क्षोभिताऽभवत्, विरहेण विह्वलिताऽभवत्। मन्त्रेण सह विद्रावणीमुद्रायां रचितायां कृष्णदर्शनार्थं विद्राविताऽभवत्। पुनश्च दिगम्बरीविद्यामाकर्षिणीमुद्रया सह जजाप। अनया स्त्रियो दिगम्बरीभूय उन्मत्ता इव धावन्ति। एवं कृते राधा चिन्ताकुलाऽभवत्, कृष्णान्वेषणे तत्पराऽभवच्च। ततो राधायाः प्रवृत्तिं जिज्ञासमाना श्रीकृष्णः स्वपादत उत्पन्नां वृन्दां दूतीं प्राहिणोत्। वृन्दा राधासमीपं गत्वा कृष्णस्य गुणान् वर्णयामास। तस्मिन्नेव काले सिद्धयोगिनी त्रिपुरा उन्मादमुद्रया उन्मदां तां कलयामास। तेन कृष्ण-कृष्णेतिवादिनी लतागुल्मादिकं पप्रच्छ राधा। कन्दर्पदर्पवशगां राधां वृन्दा सान्त्वयामास। परिजाततरुमूले यदा राधा क्षणं विश्रामं करोति, तदा श्रीदेवी महाङ्कुशां मुद्रां दर्शयामास। ततो राधा अक्षिणी निमील्य तिष्ठति स्म। ततश्च सा त्रिखण्डाख्यां मुद्रां रचयामास। तत्प्रभावेण राधा लज्जां विहाय किंकर्त्तव्यविमूढा बभूव।

चतुर्विंशत्यध्यायेऽत्र वृन्दा राधासमीपं गत्वा तन्नाम चरितानि च पृच्छति। किं त्वं परब्रह्मस्वरूपिणः श्रीकृष्णस्य देहाद्विनिर्गता राधाऽसि? श्रीकृष्णो राधाऽसक्तः सन् वशीकरणार्थं परब्रह्मस्वरूपिणीं त्रिपुरसुन्दरीं जनयामास। तया मन्त्रेण मुद्राभिश्च सर्वा वशीक्रियन्ते। त्वं तु नाद्यापि वशमागता। नाहं किमपि जानामीति राधा उत्तरयति वदति च यदहं केवलं कृष्णं स्मरामि। राधाकृष्णयोः परस्परं प्रणयमवगत्य वृन्दा राधाया अष्टादशशत-नामानि श्रोतुकामा राधां प्रार्थितवती, राधा च तानि स्रावयामास। अध्यायान्ते चात्र अस्य स्तोत्रस्य फलश्रुतिर्विद्यते।

पञ्चविंशत्यध्यायेऽत्र राधा वंशीवदनं कृष्णं स्मारं स्मारं विरहकातरा विललापेति वर्ण्यते। वृन्दा राधासमक्षं पुरुषोत्तमस्य श्रीकृष्णस्यापि विरहदशां वर्णयति—

'कृष्णे ब्रह्मणि राधायामीषद्भेदो न विद्यते।
एकमेवाद्वयं ब्रह्मेत्युच्यते ब्रह्मवादिभिः॥ (२५.२३)

इत्येवमैक्यं तयोः प्रतिपादयति, अन्ते च वृन्दा राधां किमपि रहस्य-मुपदिशति।

षड्विंशत्यध्यायेऽस्मिन् राधिकाया उत्कर्षः प्रदर्श्यते। वृन्दया श्रीराधिका बोधिता सती आत्मना परमात्मन ऐक्यं ज्ञात्वा श्रीमत्त्रिपुराम्बास्वरूपिणीं

योगमायां भुवनेश्वरीं सस्मार। राधादर्शनेन संभ्रमिता सा तुष्टाव तामद्वैतस्वरूपिणीं रसामृताब्धिलहरीम्। आनन्दरूपां तां परमात्मनोऽनन्यरूपां च वर्णयामास। राधा सर्वसम्पत्सम्पन्नं कदम्बवनं रचयेति तामाज्ञापयामास। कदम्बवनमेतद् वृन्दावनसदृशमेव रमणीयतरमासीत्। राधया स्मृतमात्रा नरा नार्यश्च तत्र समाजग्मुः। अत्र गोलोकवासिनां श्रीदामादीनां राधाङ्गप्रभवाणां च महान् संमर्दः समजायत। राधापक्षीयैः कृष्णपक्षीयः सुबलो निगृहीतो राधासमीपं नीतश्च। राधा तं भ्रातृत्वे कल्पयित्वा ससम्मानं स्वगृहे न्यवासयत्।

सप्तविंशत्यध्यायेऽस्मिन् भुवनेश्वर्या प्रेरिता राधैव त्रिपुरसुन्दरीभूता कृष्णसमीपं जगाम। स्वविरहज्वरेण विह्वलं स्वसौन्दर्यवशीभूतं श्रीकृष्णं स्वनाम श्रावयित्वा राधा तमुद्दीपयामास। तदा मुरलीं मुषित्वा हसन्ती पुनः कदम्बवनमाजगाम। मायात्रिपुरसुन्दरीरूपा राधा अत्रैव मन्त्रद्वयं मृषावादनिवर्तकं प्रचारयामास। श्रीकृष्णो मुरलीं करेऽदृष्ट्वा त्रिपुरसुन्दर्यैव हृता सेति मनसि निधाय रोषताम्राक्षस्तां भर्त्सयामास। भाद्रकृष्णचतुर्थीचन्द्रदर्शनजं फलमेतदिति चिन्तयन्ती त्रिपुरा राधया हृतां मुरलीमानेतुं कृष्णस्य दूती भूत्वा तत्र जगाम। वृन्दावननिवासिनो जनास्तया प्रबोधिता यन्नष्टचन्द्रः कदापि न द्रष्टव्यः। प्रमादात् दृष्टे सति किं कर्तव्यमिति पृष्टा च सा वृन्दावननिवासिभ्यो द्वौ मन्त्रौ उपदिदेश।

अन्तिमेऽष्टाविंशेऽध्यायेऽस्मिन् राधाकृष्णयोः प्रणयस्य चरमोत्कर्षं प्रदर्शयन् ब्राह्मणः 'श्रीकृष्णप्रेरिता त्रिपुरसुन्दरी गोपालान् राधाकृष्णविनोदाख्यं नाटकं शिक्षयामासे'ति वर्णयति। तत्र चन्द्रावलीं स्वदेहादुत्पाद्य कृष्णाय ददौ। ततो ज्ञानशक्तिभूतां सरस्वतीं मुरलीरूपां विदधे। सा मुरलीरूपा सरस्वती राधान्तिकं गत्वा कृष्णस्य परमात्मनो यशो जगौ। 'कस्य वशगः श्रीकृष्ण' इति राधया पृष्टा सा 'मुरलीं हंसीमेतां पृच्छस्वे'त्युक्तवती। हंसी च ततो दूरं गता। मुरलीस्वरूपया सरस्वत्या समुपदिष्टं त्रैलोक्यमोहनं कामराजबीजं जजाप। तेन तुष्टा परमहंसी राधां श्रीकृष्णसमागमवरं ददौ। ततस्त्रिपुरसुन्दरी गोलोकमागत्य श्रीकृष्णाय सर्वं कर्त्तव्यमुपदिष्टवती। तदनुसारं च श्रीकृष्णो भ्रमरो भूत्वा पुष्पमालां प्रविश्य वृन्दया सार्धं वृन्दावनस्थं राधिकाभवनं जगाम। पुरुषश्रेष्ठं श्रीकृष्णं दृष्ट्वा राधिका तद्वशगा बभूव। अन्ते चात्र विस्तरेण राधाकृष्णयोर्गोपीगणस्य च रासमहोत्सवो वर्णितः।

एवमत्र संक्षेपेण सम्पूर्णस्य श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रस्य प्रतिपाद्यजातं समुपस्थाप्य तद्वक्तृश्रोतृविषयकः प्रासङ्गिको विचारः प्रस्तूयते—

वक्तारः श्रोतारश्च

पाञ्चरात्रसंहितासु सात्त्विक-राजस-तामसभेदेन संहिता विभक्ताः। भगवता उपदिष्टाः संहिताः सात्त्विक्यः, देवर्षिभिर्महर्षिभिश्च उपदिष्टा राजस्यः मानवैश्चोपदिष्टास्तामस्य इति। यद्यपि नास्ति कृष्णयामलस्य संहितास्वन्तर्भावः, तथापि नारदो देवर्षिरस्य वक्तेति मध्यमे विभागेऽस्यान्तर्भावः कर्त्तुं शक्यते। कृष्णयामलं यद्यपि ब्राह्मणब्राह्मणीसंवादरूपेण प्रामुख्येन प्रवर्तते, किन्तु सुशर्मनामको गन्धर्वोऽत्र ब्राह्मणरूपेण वक्ता। स च राधाकटाक्षप्रभवां दिव्यवृन्दावनस्थां विशालाक्षीं नाम तत्सखीं ब्राह्मणीरूपधरां श्रावयति तद् यामलम्। गन्धर्वो भवति देवयोनिविशेषः। दिव्यवृन्दावनस्थाया विशालाक्ष्या दिव्यत्वं निर्विवादमिति देवोपदिष्टमेवेदं यामलमिति स्वीकर्तव्यम्। अपि च पुराणानां सात्त्विकादिविभागो यथा विष्णुब्रह्मरुद्रपरतया योज्यते, तथैव कृते यामलानां विभागो सात्त्विके विभागेऽस्यान्तर्भावो भवति।

नारदो महर्षिर्ब्राह्मणब्राह्मणीसंवादरूपेण प्रवृत्तमिदं यामलमुपदिशति, किन्तु त्रयोविंशत्यध्यायात् परं नारदस्योल्लेखोऽत्र न दृश्यते। ब्राह्मणब्राह्मणीसंवादश्च ग्रन्थसमाप्तिपर्यन्तं विद्यत इति तन्मुखेनैवास्य यामलस्य प्रवृत्तिर्मन्तव्या। दशमाध्यायतो बलराम-श्रीकृष्णसंवादः प्रवर्तते। नवमेऽध्याये गोपबालकास्तरवो लताः पक्षिणो मृगाश्च दिव्यवृन्दावनविषयकं प्रश्नं बलरामाय पृच्छन्ति, वेणुवादनरस्य गोविन्दस्य रहस्यं च ज्ञातुमिच्छन्ति। दिव्यरूपा सरस्वती धीमतो बलरामस्य जिह्वाग्रस्था सती भगवन्तं श्रीकृष्णमेव पृच्छति, भगवांश्च सम्यगुत्तरयति। चतुर्दशाध्यायतो भुवनेश्वर्याः, सप्तदशाध्यायतस्त्रिपुरसुन्दर्याश्च संवादः प्रवर्तते। एवमेव राधायाः, वशिन्यादीनाम्, कामेश्वर्यादीनाम्, वृन्दायाः, श्रीदामादीनाम्, राधाङ्गप्रभवानां च संवादा यथायथमत्र संनिवेशिताः सन्ति। अन्तिमेऽध्याये त्रिपुरसुन्दर्याः श्रीराधायाः, सरस्वत्याः परमहंस्याश्च संवादमुखेन राधाकृष्णयोर्यामलभावो रासमहोत्सवश्च वर्ण्यते।

अन्तिमेऽष्टाविंशेऽध्याये राधाकृष्णविनोदाख्यस्य नाटकस्य गोराङ्गस्य च चैतन्यापराभिधस्य चर्चा दृश्यते। संस्कृतवाङ्मयविवरणग्रन्थेषु नैतन्नामकं नाटकमस्माभिरुपलब्धम्। गोराङ्गस्य च चर्चा केवलं सरस्वतीभवनमातृकयोः वर्तते।

एवमेव सरस्वतीभवनमातृकायामन्यतमायां षडध्याया अन्येऽपि सन्ति, सा च मातृका ग्रन्थस्यास्य प्रथमे परिशिष्टे (पृ० २२७-२५४) प्रकाशिता। तत्र प्रथमे श्रीकृष्णाविर्भावः, द्वितीये भौमवृन्दावनोपाख्याने दैत्यकुलाविर्भावः, तृतीये भौमवृन्दावनोपाख्याने विष्णुसमागमः, चतुर्थे ज्ञानकाण्डे विष्णुमहा-

विष्णुसंवादे श्रीमद्वृन्दावनोद्देशः, पञ्चमे सदाशिवदर्शनं सदाशिवस्तोत्रं च, षष्ठे वृन्दावनप्रवेश इत्येते विषयाः दृश्यन्ते। इतः परं मातृकाऽपूर्णा वर्तते। सर्वमेतत् पुनरावृत्तिरूपमिव दृश्यत इति नास्माभिस्तस्य भागस्यात्र समावेशः कृतः।

अयं ग्रन्थः कृष्णतत्त्वरहस्यप्रतिपादनायैवाविर्भूत इति तन्त्रविदामाशयः। संक्षेपत उपर्युक्तं विवरणं श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रस्य दिङ्मात्रनिर्देशकम्।

यामलतन्त्राणां वर्तते स्वकीयं किमपि दार्शनिकं वैशिष्टचम्। अतोऽत्र कृष्णयामलविषयकस्यास्य परिशीलनस्योपसंहारात् पूर्वं केषाञ्चन दार्शनिकानां तत्त्वानां निरूपणमावश्यकमिति पूर्वाचार्यपद्धत्या विशेषतोऽभिनवगुप्तपादस्य श्रद्धेयचरणानां श्रीमतां गोपीनाथकविराजमहोदयानां च सरणिमनुसृत्य किमपि संक्षेपेणोच्यते।

दार्शनिकं विवेचनम्

सामान्यतया भारतवर्षे आस्तिक-नास्तिकभेदेन द्वादशदर्शनानि प्रसिद्धानि। तत्र जीवजगद्ब्रह्मणां स्वरूपलक्षणे याथातथ्येन निर्णीते स्तः। तत्प्रवर्तकमहर्षिभिर्महतोत्साहेन विचारशास्त्रस्य दृढां स्थापनां कृत्वाऽवयवभूतपदार्थानां निर्णयेन सह ब्रह्म-ईश्वर-अपूर्व-नैरात्म्यवाद-अनेकान्तवाद-शरीरात्मवादादिमतसंस्थापनद्वाराऽयमर्थः सम्पादितो विचारित उपोद्बलितश्च। किन्तु तत्र लेशेनापि शिवशक्तिपदार्थयोः, प्रकाशविमर्शरूपयोश्चर्चा नायाति। नापि वर्णमातृकायां सर्वातिशायिप्रकर्षः प्रख्यापितो विचारितो वा। विचारशास्त्रप्रक्रमदृष्टचा महतीयं त्रुटिः प्रतिभाति। अतः शिवशास्त्रप्रणेतृभिः शिवशक्तीतिपदार्थद्वयं स्फुटीकृत्य अस्या महत्त्यास्त्रुटेः परिमार्जनं व्यधायि। गच्छत्सु कालेषु शैवशाक्तदर्शनस्य प्रतिष्ठा साधकजनेषु उपबृंहिता। क्रियारूपेण जनजीवने प्रतिव्यक्ति महत्या श्रद्धया समादृता च। तत्र शैवदर्शने शिव-रुद्र-भैरवभेदेन तिस्रो विधा भेद-भेदाभेद-अभेदात्मना निरूपिताः[1]।

प्रकाशविमर्शात्मकं तत्त्वम्

शैवेषु शाक्तेषु चाद्वैतागमदर्शनेषु प्रकाशशब्दः शिवतत्त्ववाचकत्वेन प्रसिद्धः। शिवपारम्यवादिनः शैवाः, शक्तिपारम्यवादिनः शाक्ता इत्येव प्रधानो भेद एतेषु दर्शनेषु दृश्यते। प्रक्रियान्तरं प्रायः समानमेव। अनयोर्दर्शनयोः सर्वसम्मत्या षट्त्रिंशत्तत्त्वानि स्वीकृतानि। तेषु तत्त्वेषु शुद्ध-मिश्र-अशुद्धभेदेन तत्त्वानां विभाजनमपि प्राप्यते[2]। शाक्तदर्शने शक्तिपारम्यमेव महता कण्ठेन समुद्-

१. तन्त्रालोकविवेकः (१.१८)

२. तन्त्रालोकः (१.१८९)

घोष्यते। अनयोर्दर्शनयो: प्रतिपादकमागमशास्त्रं तन्त्रशास्त्रं वा चिरकालाद् समादृतं दृश्यते।

तन्त्रागमदर्शनं तावदुपासनाप्रधानं दर्शनमस्ति। अस्मिन् दर्शने अखण्डनीययुक्त्या सह अनुभवयोग्यविशेषतायाः सन्निवेशः। अत्र शक्तिसमन्वित-ब्रह्मवादमात्रमस्ति। अत एव शक्तीनां निस्तरङ्गता एव निर्गुणब्रह्म इति वर्ण्यते। निस्तरङ्गात्मिका शक्ति: व्यापकमहाप्रकाशशिवस्वरूपतां भजते। एषा शक्तिश्चिदिति वा अनुत्तर इति वा भण्यते। एष पूर्णसत्यस्य आद्यः प्रकाशः। अस्मिन्नेव पूर्णस्य स्वसिद्धपरमस्वतन्त्रताऽप्यस्ति। प्रकाशः स्वतन्त्रता च निरवच्छिन्नं तत्त्वम्। यथा प्रकाशः स्वातन्त्र्यमयः, तथैव स्वातन्त्र्यं प्रकाशमयम्। तदेव आत्मस्वरूपं चैतन्यं च। तन्त्राचार्या एतत्तत्वं स्वातन्त्र-मयी चिदिति संविदिति वा बोधयन्ति।

विश्वोत्तीर्णा विश्वमयी च संवित्

सैषा संविद् विश्वोत्तीर्णा विश्वमयी च भवति। विश्वोत्तीर्णा संवित् स्वेच्छातो विश्वमयी भवति, अर्थात् विश्वस्य सृष्टयादि व्यापारश्चितेः स्वे-च्छातो भवति। सा पराशक्तिः परमशिवतोऽभिन्ना। विश्वस्य उत्पत्तिरा-विर्भावो वा सृष्टिः, परप्रमातृस्वरूपे विश्रान्तिस्तिरोभावो वा संहार इत्युच्यते। सर्वदा सम्पूर्णं जगदस्यामनतिरिक्ततया अवतिष्ठते। परन्तु यदाऽस्यामुत्सिसृक्षा भवति, तदा अभिन्ना सत्यपि सा भिन्नेव प्रतिभाति। एतदर्थमन्येषामुपादान-कारणादीनामावश्यकता नास्त्येव। एतदेव विश्वसृष्टेः रहस्यमस्ति। एतादृश-सृष्टयादौ देश-काल-आकृति-कार्यकारणभाव-आश्रयादीनां किमपि प्रयोजनं नास्ति। साक्षात् पराशक्तिरेव स्वेच्छया जगद्रूपेण प्रतिभासते। निष्कर्षोऽय-मस्ति यत् चिच्छक्तिः स्वस्वातन्त्र्यवशात् स्वेच्छानुसारमनन्तानन्तजगद्रूपेण स्फुरिता भवति। तदुक्तम् — 'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति'[1] इति। अपि च—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वात्मतूलिकयात्मनि।
स्वयमेव तदालोक्य प्रीणाति परमेश्वरः[2] ॥ इति।
चिदात्मभित्तौ विश्वस्य प्रकाशामर्शने यदा।
करोति स्वेच्छया पूर्णविचिकीर्षासमन्विता[3] ॥ इति च।

---

१. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (सूत्रम्–२)
२. महार्थमञ्जरीपरिमलोद्धृतम् (पृ० १२१)
३. योगिनीहृदये, चक्रसङ्केतनिरूपणे (श्लो०–५६)

चितो विकासेन सह जगत उन्मेषावस्था स्थितिश्च भवति, तथैव संकोचावस्थया सह जगतो निमेषस्तिरोभावो वा भवति। तदुक्तं स्पन्दकारिकायाम्[1]—'यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयो।' इति।

आत्मा चैतन्यस्वरूपः[2]। चैतन्यमेव तस्य स्वातन्त्र्यम्। अप्रतिहतेच्छाश्रयमेव तत्। बाह्योन्मुख्यस्थितायाः समस्तज्ञानक्रियाया नित्योऽबाधितोऽभेदात्मकः सम्बन्ध एव इच्छाशक्तेर्भूमिकायामाविर्भवति। तदा विश्वमात्मस्वरूपेण आभासमानं भवति, यद्यपि इयमाभासता अभेदमूलिका भवति। अन्तर्मुखदशायां समस्तविश्वभावा विगलितरूपेण महाभावावस्थारूपेण अन्तर्हृदि प्रकाशिता भवन्ति। महाशक्तिदृष्टयनुकूलतानन्तरं विश्वोन्मुखताया अपगमनेन सह चितिरूपेण प्रकाशस्वरूपेण वा स्वं प्रकटीकरोति। एनामनुत्तरमहाप्रकाशस्वरूपचित्कलामाश्रित्य इदं जगद् नित्यं प्रकाशितमस्ति प्रकाश्यमानञ्च। चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियारूपपञ्चशक्तीनां सामरस्यदशैव अखण्डमहाशक्तिरुच्यते। एतासां महाशक्तीनां समरसता अथवा शिवशक्त्योः समरसतैव अद्वैतं ब्रह्मतत्त्वमुच्यते। इदं तत्त्वरूपेण विभक्तं सदपि तत्त्वातीतमुच्यते, शिवशक्तयोरविभक्तता तत्र कारणम्।

विश्वशरीरो भगवान्

आत्मस्वरूपस्य परमेश्वरस्य विश्वमेव शरीरम्। वस्तुतः शून्यादारभ्य बाह्यघटपटादिपर्यन्तं सर्वं दृश्यं वस्तुजातमात्मनः शरीरम्। यथा शरीरधारिकीटादयोऽपि स्वात्मानुरूपशक्तिमन्तो भवन्ति, तथा विश्वशरीरः परमेश्वरोऽपि स्वात्मानुकूलशक्तिमान् भवति। योगिनामनुभवानुसारेण परामर्शशून्यतादशायां समस्तबाह्यदृश्यविभूतीनामनुभूतयः स्तिमिता भवन्ति, अन्तःसंजल्पस्तेषु प्रादुर्भवति। अत एव विश्वं आत्मनः शरीरमिति ते वदन्ति[3]। एतादृगनुभूतिषु जाग्रदवस्थायां पिण्डाण्डवद् ब्रह्माण्डेऽपि सर्वत्र स्वस्वातन्त्र्यशक्तेः स्फुरणमवलोक्यते। सा शक्तिरुन्मेषनिमेषोभयात्मिका भवति, अर्थात् स्वरूपोन्मेषे विश्वस्य निमेषः, स्वरूपस्य निमेषे च विश्वोन्मेषो जायते। इमौ व्यापारौ तुलाधृतिवत् सम्पन्ने भवतः। अत एव परमेश्वरस्य विश्वात्मत्वं विश्वोत्तीर्णत्वं च कथ्यते। उभयोः परस्परसापेक्षत्वादेव समप्रधानता स्वीक्रियते। यथोच्यते महेश्वरानन्देन[4]—

१. श्लो०–१

२. शिवसूत्रे, प्रथमे प्रकाशे (सूत्रम्–१)

३. यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे

४. महार्थपरिमलोदधृतं परास्तोत्रम् (पृ० ७४)

एके भूजलखानिलानलकलारब्धां बहिः प्रक्रिया-
मुत्तीर्णत्विषमन्तरेव कतिचित् चित्काकणीमूचिरे ।
अन्ये केचन यामलामृतसरित्संभेदसंभोगिनो
मातस्त्वामपृथक्प्ररोहमुभयोरौचित्यमाचक्षते ।। इति ।

विश्वस्योन्मेषावस्थायामथवान्तरिकचिच्छक्तेर्निमेषावस्थायां षडध्वन उन्मेषदशायाः परिमाण आपेक्षिको भवति । विश्वस्य निमेषावस्था स्वात्मनः अन्तरावस्था वा प्रलयो भवति समस्वभावः । परन्तु तदानीं विश्वस्य निमेषावस्था कलनावस्था एव । परात्रिंशिकायामुच्यते[1] हि—

यथा न्यग्रोधबीजस्थः शक्तिरूपो महाद्रुमः ।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ।। इति ।

सर्वाकारस्थितेरभिव्यक्तिः कलनमित्युच्यते । अस्यां विश्वस्य समस्तविचित्रता अविभाज्या भवति । अत्र परस्परयोर्विभागो नास्त्येव । यतो वैचित्र्यभावदशायामुन्मेषस्य सम्भव एव नास्ति, अतो विश्वस्य उन्मेषावस्थायामात्मस्वरूपस्य केवलं तिरोधानमेव भवति, अत्यन्तोपप्लवस्तु न । शाक्ता एतादृशाद्वैतमतं द्वैतकल्पमेवाभिमन्वते । तदेव संविदुल्लासे उच्यते[2]—

द्वैतादन्यदसत्यकल्पमपरैरद्वैतमाख्यायते
तद् द्वैते बत पर्यवस्यति कृतं वाचाटदुर्विद्यया ।
एते ते वयमेवमभ्युदयिनोः कस्यापि कस्याश्चिद-
प्यालस्योज्झितमैकरस्यमुभयोरद्वैतमाचक्ष्महे ।। इति ।

सामरस्यम्

एतदेव सामरस्यमित्युच्यते । समस्तविश्वव्यवहारोऽपि त्रिपुटेः क्रीडनमेव । तस्या अतन्राले चिच्छक्तिर्ज्ञान कला वा अधितिष्ठति । इयमेव एकतो विषयस्वरूपा या ज्ञानविषया, तथैव परतो भोक्तृत्वस्य अथवा वेदितायाः संयोजिका वर्तते । एकतो ज्ञातृत्वं परतश्च ज्ञेयत्वम् । एते उभे तादात्म्यसम्बन्धस्य आधारे । एषा एकस्वभावता त्रैलोकस्य प्रकाशिका भवति । वेद्य-वित्ति-वेदकाः, स्थूल-सूक्ष्म-पराः, जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तयः क्रमशोऽवस्थाभेदेन एकस्वभावतायास्त्रयः प्रकाराः सन्ति । सत्त्वस्य दृढताया अभावे परस्परयोः पृथक्ता अवश्यम्भाविनी, तथापि प्रायः पृथक्ता न भवति । अतएव त्रैलोक्यशब्दस्त्रिधाविभक्तानां विश्वस्य त्रिकात्मकानां सर्वेषां बोधो भवति । यथा—त्रिदेवाः, अग्नित्रयम्, त्रिशक्तयः, त्रिस्वरम्, त्रिलोकी, त्रिपदा, त्रिपुष्करम्,

---

१. परात्रिंशिका (श्लो०—२५)
२. महार्थपरिमलोद्धृतम् (पृ० ७५)

त्रिब्रह्माण:, वर्गत्रयमित्यादय: । एतस्मादेव निमेषोन्मेषयो: कश्चन विरोधो नास्त्येव । अतएव स्पन्दसन्दोहे[1] उच्यते—'एवमियमेकैव अविभाग विमर्शभूमि: उन्मेषनिमेषमयी उन्मेषनिमेषपदाभ्यामभिधीयते' इति । अत: शक्तिर्विमर्शो वा 'सर्वंसह'पदेन अभिधीयते । प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनीकार एवमाह—'विमर्शो हि सर्वंसह: परमपि आत्मीकरोति, आत्मानं च परीकरोति, उभयमेकीकरोति, एकीकृतं द्वयमपि न्यग्भावयति'[2] इति । अर्थतो विमर्शस्य अप्रतिहतं सामर्थ्यमस्ति । एतस्मात् कारणादेव परमपदं सदिति, असदिति, सदसदिति, सदसदतीतमिति च व्यवह्रियन्ते । यथा परामतग्रन्थे[3] उच्यते—

परीकर्त्तुं निजं तत्त्वं स्वात्मीकर्त्तुं तथोभयम् ।
एकीकर्त्तुं न किं कर्त्तुं विमर्शो जगति क्षम: ।। इति ।

संविदुल्लासे वर्णितैक्यरसमेव समरसता अस्ति । शाक्तदर्शनानुसारेण तुरीयपरमस्थितौ सत्यासत्ययोर्विरोधो नास्ति । 'संविदेव भगवती वस्तूपगमे न: शरणम्' अथवा 'संविदेव भगवती विषयसत्त्वोपगमे शरणम्' एतद्गुरुमतेऽपि स्वीकृतमस्ति । ते कथयन्ति—'स्फुरणं प्रकाशमानतया अनुप्राणितमस्ति' इति । यथार्थपुष्पवत् कल्पिताकाशकुसुमेऽपि स्फुरणं वर्तते । अत एव अभिनवगुप्त: 'स्फुरत्तैव महासत्ता' इत्युक्तवान्, या आकाशकुसुमेऽपि व्यापकरूपेण वर्तते । समानत्वं नाम कोऽप्यतिरिक्तपदार्थो नास्त्येव, अपितु विकल्पहीना महाशक्तिरेव सामान्यम् । समस्ता जगद्रूपा व्यक्तयस्तस्यैव विकल्पा: सन्ति । विश्वमात्रं हि अस्या विषयमस्ति । द्वयो: पदार्थयो: प्रत्येकस्मिन् एकस्वभावता एव एकरसता । पदार्थद्वयस्य वैलक्षण्यं यदा चिदग्नौ दग्धं भवति, तदा भेदावभासता तिरोहिता भवति ।

विचित्ररूपं समस्तं विश्वं हि प्रकाशविमर्शयोरन्तर्गतमस्ति । द्वयोर्भेदस्तु औपचारिक:, न तु वास्तविक: । उदाहरणार्थं यथा—कस्मिंश्चिच्चित्रविशेषे दृष्टिभेदेन गजवृषभयो: प्रतिभासो भवति । प्रमातुरनुसन्धानानुसारेण तच्चित्रं एकस्य कृते गजरूपेण अन्यस्य कृते वृषभरूपेण भासमानं भवति । किन्तु अभेदरूपेण गजशब्दत:, अथवा वृषभशब्दतो वा ज्ञातुं शक्यते । सामान्यतया ज्ञातुं शक्यते हि प्रप्येकपदार्थस्याकृतिर्निश्चिता वर्तते, सा आकृति: पदार्थं न व्यपोहति । परन्तु स्वतन्त्रतायुक्ताद्वैतसंविन्मार्गे किमपि तत्त्वं स्वव्यतिरिक्ताशेषभावात्मकत्वेन अभिन्नं स्वीकृतमस्ति । अत एव सर्वं सर्वात्मकमित्युच्यते ।

१. स्पन्दसन्दोह: (पृ० ९)
२. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी (१.५.१३)
३. महार्थपरिमलोद्धृतम् (पृ० ७७)

यथा व्यवहारदशायां एकस्य दृष्टौ घटः, अन्यस्य मृत्तिका, तृतीयस्य च द्रव्यरूपो दृश्यो भवति, तथैव एक एव मूलपदार्थो दृष्टिभेदेन विश्वमूर्तिरूपेण प्रतिभासितो भवति। बहवो शाक्तयोगिनः स्वस्य तामेव परमानुभूतिं यामलीसिद्धिरिति वदन्ति। यत्र प्रकाशविमर्शयोः शिवशक्त्योर्वा सामरस्यं वर्तते। परात्रिंशिकायामिदमेव रुद्रयामलमित्युच्यते। क्षणमात्रमप्यस्य सामरस्यस्यानुभावात् जीवन्मुक्तिर्भवति। तत् केवलं गुरुकृपात एव भवितुमर्हति। यथा अभिनवगुप्तमहोदयाः वदन्ति—'**अभ्यासेन विनापि जीवन्मुक्तता परा कौलिकसिद्धिः**' इति। प्रबोधपञ्चाशिकायामप्युच्यते—

'तस्या भोक्त्र्या स्वतन्त्रायाः भोग्यैकीकार एव यः।
स एव भोगः सा मुक्तिस्तदेव परमं पदम्॥ इति।

शाक्ताः प्रचलिताद्वैतसिद्धान्तं बाह्याद्वैतत्वेन मन्यन्ते। अत्र आत्मा तावत् सच्चिदानन्दस्वरूपः, विश्वातीतः, निर्मलः, निराकारः, अनादिः, अनन्तः, सृष्टिस्थितिसंहाराणां भूमिः संविन्मयश्च। अत एव स आत्मा अभावेन असंसृष्टः स्वयंप्रकाशः नित्यमुक्तश्च। शाक्ता आत्मनि अकर्तृत्वं नाङ्गीकुर्वन्ति। आत्मा स्वभावत एव कर्तृत्वशक्तिमानस्ति। कर्तृत्वशक्तेरभावे स विमर्शको न भवितुमर्हतीति ते आत्मनो निष्क्रियत्वादिकथनमसत्यं मन्यन्ते। इयं कर्तृत्वशक्तिः '**जानाति करोति च**' इति क्षेत्रयोः समाना। ज्ञातुर्धर्मत्वादेव क्रियासत्यपि तज्ज्ञानमप्यस्ति। अत एव कर्तृत्वस्वभावादेव ज्ञानमपि क्रियास्वरूपमस्ति। एतयोः क्रियाज्ञानयोरुन्मुखीभावस्यैव नाम इच्छा वर्तते। एतत् समस्तं जगदपि इच्छाया एव स्फुरणम्। अत एव शाक्ताः कथयन्ति यद् आत्मनः स्वभावो विमर्श इति। शक्ति-ऐश्वर्य-उद्यम-स्पन्द-स्वातन्त्र्य-स्फूर्ति-उर्मि-ओजस्-कला अस्यैव नामान्तरमात्रम्। तन्त्रागमशास्त्रेऽस्मिन् विभिन्नदृष्टिभिरेकस्यैव वस्तुनः कृतेऽनेके शब्दाः प्रयुज्यन्ते।

सामान्यतया साम्यभावानां समभावानां वा प्रतीतिरेव सामरस्यपदवाच्यम्[1]। वैषम्यरहिता एव सामरस्यावस्था। कालचक्रस्य भ्रमणे साम्य-वैषम्ये क्रमश उद्भवतः। एतस्य कारणं इदमेव यत् साम्यावस्थायां वैषम्यस्य बीजं निहितं वर्तते, तत् कालानुसारेण अङ्कुरितं भवति। साम्यावस्थाया भङ्गे वैषम्यस्य आविर्भावो भवति। सृष्टिरहस्येऽस्मिन्नपि अयमेव क्रमः प्रचलति। तथैव वैषम्यावस्थायामपि साम्यस्य बीजं वरीवर्ति, यत् कालान्तरे पक्वं सत् साम्यस्य उदयाय कल्पते।

साम्यवैषम्ययोर्मध्ये एका गभीरा क्रीडा विद्यमानास्ति, किन्तु तस्यां द्वयोः

---

१. तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि : गोपीनाथ कविराज, (पृ० १६०)

परस्परं मेलनं न भवति, यत आकर्षणस्य अनुरूपा विकर्षणात्मिका शक्तिरपि सार्द्धमेव क्रियाशीला वर्तते। अत एव द्वयोर्मध्ये व्यवधानस्य व्यपगतिर्न भवति। प्रकृतेर्व्यवस्थायामयं व्यापारो निरन्तरं प्रचलितो भवति। एताभ्यामाकर्षणविकर्षणाभ्यां मुक्त्यर्थं उपायौ द्वौ स्तः। तत्र प्रथमस्तु साम्यवैषम्ययोर्मध्ये एकधैवाकर्षणक्रिययोरुन्मेषः। द्वितीयस्तु एकस्याकर्षणदशायां परस्य विकर्षणमवगुण्ठनम्। प्रथमोपायतो मध्यबिन्दोः प्राप्त्या अव्यवहितरूपेण योगस्य संघटनं भवति। अयं योगो निरपेक्षसमता इत्युच्यते। अस्मिन् आकर्षणविकर्षणयोः प्रधानता नास्ति। द्वितीयोपायतो व्यवधानेन सह क्रमशो योगः संघटितो भवति, किन्तु अयं गुणप्रधानभावाभ्यामशून्यतावस्थारूपकारणात् सापेक्षसमतायोग इत्युच्यते। परन्तु एकदा प्रधान्यनिमित्तकसमतानन्तरं पुनर्वैषम्यस्य प्राधान्यनिमित्तकसमतायाः प्राप्तिर्भवति। एवमेव क्रियाया वारं वारमाविर्भावे सति चरमावस्थायां प्राधान्याप्राधान्ये समाने भवतः। तथैव निरपेक्षसमताऽऽविर्भूता भवति। एतदेव सामरस्यम्।

एषा सामरसावस्था अद्वयतत्त्वमप्युच्यते, यतोऽस्यां वैषम्यस्य बीजं नास्ति। इयं चिदानन्दमयी अद्वैतनिष्ठा अस्ति, किन्तु एतस्याः परावस्थाऽपि वर्तते। एषा केनचिदपि नाम्ना अभिधातुं न शक्या। एषा बुद्ध्यतीता, विचारातीता, ध्यानातीता, अव्यक्ता स्वयंप्रकाशा च। इयमेव निर्विकल्प-निरुत्थान-निर्द्वन्द्वस्थितिरुच्यते। पूर्णसत्यः स्वातन्त्र्यमय अखण्डप्रकाशोऽपि, सर्वातीतः सर्वात्मकश्चापि। वेदोऽप्येनं चकितमिव पश्यतीति पुष्पदन्त आह—'अतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि' इति।

परब्रह्म-परशिव-पूर्णादिशब्दा एतस्यैव नामान्तरम्। स सर्वत्रैव वर्तते गुप्तरूपेण मनुष्यशरीरेऽस्मिन्नपि। स कुल-गोत्र-जाति-वर्णमयत्वेन बोध्यमानोऽपि एतेभ्यः शून्योऽस्ति। निष्कलत्व-सकलत्वादिकं सर्वतत्त्वस्वरूपत्वात् सर्वं तदेव। स एतान् समस्तान् नित्यलीलारूपेण यदा प्रकटयितुं सन्नद्धो भवति, तदा तस्मिन् इच्छाया आविर्भावो भवति। इयमिच्छा इच्छाहीनस्य इच्छात्वाद् वस्तुतः स्वातन्त्र्यस्य विलासमात्रमस्ति। इच्छाया उन्मेषमात्रेण तत्त्वातीतं महाघनस्वरूपं तत्त्वमात्मन आभ्यन्तरतश्चिच्छक्तेर्विकासमनुभवति, यतः क्रमशः पञ्चशुद्धतत्त्व-अष्टतनु-अण्डब्रह्माण्डादिकालकल्पितप्रपञ्चस्योत्पत्तिर्भवति। एतस्याश्चिच्छक्तेराविर्भावस्तावत् परमशिवे स्वातन्त्र्यरूपया निराकारया पराशक्त्या सह परशिवस्याभिन्नसंयोगेन भवति। चिच्छक्तिर्विश्वजननी, अहन्तायाश्चापि जननी अस्ति। इयमहन्ता चिदणुरूपा चिदंशा च।

सृष्टेः पूर्वं एकाकी परमशिवः अशब्दोऽरूपश्च। सः शिवज्ञानयुक्तः

शिवांशः स्वस्य ज्ञानदृष्ट्या स्वात्मानं परमशिवत्वेन परिजानाति अनुभवति च। इयं ज्ञानदृष्टिरेव आनन्दावस्था इत्युच्यते। एतस्यामवस्थायां शिव अंशी यथा अंशं पश्यति, तथैव अंशो जीवः शिवमंशिनं पश्यति। आत्मा तावद् तत्समये देहबीजरहितोऽशरीरी निर्मलस्वरूपः शिवांशो भवति। तत्पश्चाद् आत्मनो विस्मृत्या शिवाहंभावस्य विस्मृत्या च देहेऽहंभावस्य प्रादुर्भावो भवति। परमशिवतत्त्वं बिन्द्वतीतम्, बिन्दुस्तु चिद्भाव एव। बिन्दुरुत्पत्त्यनन्तरम् ऊर्ध्वाधः स्पन्दितो भवति। ऊर्ध्वगमनशीलबिन्दोर्योगेन चिति समस्ततत्त्वानि गर्भस्थानि भवन्ति। ततश्चितः प्रपञ्चस्योत्पत्तिर्भवति। सृष्ट्यादौ स्वस्य स्वाभाविकं पिण्डं कायं वा विस्मृत्य मिथ्यापिण्डं धारयित्वा जीवो जन्मग्रहणं करोति। तस्मिन् काले परब्रह्म आत्मनि प्रतिबिम्बितं भवति। कालान्तरे च प्रतिबिम्बस्वभावः परब्रह्मणि निगीर्णो भवति। एवं रूपेण मायायाः प्रभावो वर्धते। इत्थं जन्मजन्मान्तराणि व्यतिक्रामन्ति।

आत्मविस्मृतो जीवोऽपि (अहङ्कारयुक्तः) वस्तुतश्चिच्छक्तेरंश एव। अत एव स आत्मा चिदणुरित्युच्यते। सद्गुरूणां कृपातो जीवशक्तिर्जागृता सती भक्तिरूपेण परिणम्य ऊर्ध्वमुखी भूत्वा प्रवाहिता भवति। ज्ञानशक्तेर्विकासोऽस्या ऊर्ध्वमुख्याः शक्तेर्विकासस्यैव नामान्तरमस्ति। अयं विकासः स्थाने-स्थाने संघटितो भवति।

शिवस्य जीवस्य च, एवं शिवशक्तेर्जीवशक्तेश्च मेलनम् ऊर्ध्वमार्गे प्रत्येकस्यां भूमिकायां भवति। यथा यथा उपर्युपरि उत्थानं भवति, तथैव जीवस्य आत्मनश्च व्यवधानं खण्डितं भवति। एवमेव शक्त्योर्द्वयोर्व्यवधानस्यापि ह्रासो भवति। अन्ते च सामरस्यभावस्य उदयो भवति। तदा जीवस्य भक्तिरूपा शक्तिः शिवस्य चिच्छक्त्या साकं समानरूपेण मिलिता भवति, इयं समरसा भक्तिरित्युच्यते। श्रद्धा-निष्ठाऽवधानानुभवानन्दात् परम एष समरसभाव उदितो भवति। तदा जीवो जीवात्मना सन्नपि शिवस्वरूपो भवति। एवमेव भक्तिरपि शक्तिस्वरूपा भवति। अयमेव महायोगः सामरस्यं वा। ख्रीष्टमतानुयायिनां धर्मग्रन्थे या अवस्था Communion इत्युच्यते, रहस्यवेदिनो यां Orision, Unitive Life इत्यादि नाम्ना बोधयन्ति, सा सामरस्यस्यैव आभासः। एतस्यामवस्थायां एकमात्रस्वरूपा स्वयंप्रकाशा अद्वयरसतत्त्वा सामरस्यमयी भक्तिरेव वरीवर्ति। इयमेकैव सतः प्रकाशत्वात् ज्ञानम्, एवं ज्ञाने पृथग्भावस्य आस्वाद्यमानत्वात् भक्तिरसस्वरूपाऽपि। इयमद्वैतभक्तेरवस्था। इतः परमेश्वरप्रसादस्य वर्षणं यदा भवति, तदा समग्रं विश्वमात्मस्वरूपेण प्रतिभासितं भवति। सामरस्य महिमसन्दर्भे कैश्चिदुच्यते—

कर्ता कारयिता कर्म करणं कार्यमेव च।
सर्वमात्मतया भाति प्रसादात् पारमेश्वरात् ।।
भोक्ता भोजयिता भोज्यो भोगोपकरणानि च।
सर्वमात्मतया भाति प्रसादात् पारमेश्वरात् ।।
जीवात्मा परमात्मा च तयोर्भेदश्च भेदकः।
सर्वमात्मतया भाति प्रसादात् पारमेश्वरात् ।। इति।

सामरस्य मूलमेतावदस्ति यत् तस्मिन् सर्वं निहितमस्ति, तत्र च द्वैतं नास्ति। लयनिर्वाणादिभ्योऽप्यतीतमेतत्तत्त्वं शक्तिशक्तिमतोः सामरस्यरूपं यामलतत्त्वम्। इत एव प्रादुर्भवन्ति यामलादीनि शास्त्राणि।

यामलावस्था

साधकाः स्वरुचिवैचित्र्यानुसारं परमतत्त्वं पुरुषभावेन रमणीभावेन वा समाराधयन्ति। प्रत्यभिज्ञादर्शनस्य परमशिवः, त्रिपुरामतस्य षोडशीदेवी ललिता वा, वैष्णवमतानुसारं च श्रीकृष्ण एव सच्चिदानन्दस्वरूपभूतः। एतदेव हि परमतत्त्वं विभिन्नप्रतीकेषु कल्पितमस्ति। मूलतत्त्वं न पुरुषो न वा प्रकृतिः, किन्तु तयोरभेदात्मकसामरस्यमात्रम्। जगतः सौन्दर्यम् अखण्डपूर्णस्वरूपस्य तस्य कणमात्रं छाया ऐश्वर्यं वास्ति। उक्तं च—'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति '[1]।

अद्वयं तत्त्वम्

अद्वैतमतानुसारं विश्वस्य मूले एकमद्वैततत्त्वमेव विद्यते। इयं परमसत्ता वाचा मनसा बुद्ध्या वा न गोचरीकर्त्तुं शक्या। इयमखण्डा, एकरसा, निष्कला च वर्तते। इयं परमा पूर्णसत्तैव वस्तुतः 'सत्'पदवाच्या। उपनिषदा एतत्स्वरूपनिर्देशप्रसङ्गे परमं साम्यं पूर्णत्वं च निगदितम्[2]। आगमशास्त्रे एतत्तत्त्वं तत्त्वातीतमथ च तत्त्वात्मकमित्युभयात्मकत्वेन प्रतिपादितम्। एतद् विश्वात्मकं सदपि विश्वातीतम्। एतदेव हि विश्वस्य प्रादुर्भावद्वारम्। एतदपरसाम्यम्। एतत्तत्त्वमेव महाबिन्दुरिति कथ्यते। एतस्यां नित्यावस्थायां शिवशक्ति-ब्रह्ममाया-पुरुषप्रकृतयः सर्वाः समरसीभूताः सत्य एकाकारतां भजन्ते। एतत्तत्त्वमनन्तवैचित्र्ययुक्त सदपि स्वरूपतया एकाकारम्। एतत्तत्त्वातीतं कलातीतं निरञ्जनमखण्ड तत्त्वमस्ति[3]। कौलानां परमशान्ता

---

१. कठोपनिषद्, (२.२.१५), मुण्डकोपनिषद्, (२.२.१०), श्वेता० (३.१४)

२ ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

३ पिण्डं कुण्डलिनीशक्तिः पदं हंसः प्रकीर्तितः।
रूपं बिन्दुरिति ज्ञेयं रूपातीतं निरञ्जनम् ।।—गुरुगीता

कुलभूता स्थितिरियमेव। एतस्मादेव हि तत्त्वात् सम्पूर्णस्यापि विश्वस्य उद्भवः, स्थितिः, लयश्च भवन्ति। न केवलं विश्वस्यैव, अपितु विश्वपितुः शिवस्य विश्वमातुः शक्तेश्चापि एतस्मादव्यक्तकुलादेव प्रकाशो भवति। शिवः अकुलः, शक्तिश्च कौलिकी।[1] एतद् द्वयं चित्स्वरूपम्। शिवः प्रकाशरूपः चिदस्ति, शक्तिश्च तत्प्रकाशस्य आत्मविमर्शरूपिणी चिदस्ति।[2] एतद्द्वयं मूलत एकमेव। अव्यक्तावस्थायां स्फुरणार्थमेकमपराश्रिम्।

अत्रायं भावः—शिवं विना शक्तेरस्तित्वकल्पना न कर्त्तुं शक्यते। एवमेव शक्तिं विना शिवः शव एव।[3] चितः शास्त्रीयं नाम अनुत्तरमिति। वर्णमालायाः प्रतीकभूतः 'अ'कार इति भावः। 'अ'वर्णद्वारा अनुत्तरस्य बोधो भवति, 'आ'कार आनन्दस्य प्रतीकभूतश्च।[4] यद्यपि परमसत्ता निरंशभूता, तथापि बोधसौकर्याय एतद् अंशद्वयं कल्पितम्।[5] परमतत्त्वं तु सर्वदा अव्यक्तमव्याकृतं चास्ति। सैव चिरनिगूढसत्यस्य गभीरतमा स्थितिः। तदेवाश्रित्य तस्य प्रकाशश्चिद्रूपेण प्रकाशमानो विद्यते। प्रकाशरूपस्य शिवस्य विमर्शरूपिण्याः शक्तेश्च संघट्टं विना सृष्टेरुपक्रमो भवितुं नार्हति। अयं शिवशक्तिभावो नित्या विभक्तिः। अयं स्वरूपतो विभक्तः सन्नपि व्यावहारिकदृष्ट्या पूर्णतामपूर्णतां च धत्ते।

पूर्णतावस्थैव अद्वैतस्थितिः। तत्र शिवः शक्तिश्च समरसभावेन वर्तेते। शिवः शक्त्यात्मकः शक्तिश्च शिवात्मिकेति भावः। एकमेव हि वस्तु स्वातन्त्र्यमयबोधेन बोधमयस्वातन्त्र्येण वा परिलक्षितं विद्यते। शैवदृष्ट्यनुसारं स्वातन्त्र्यमयबोधं मत्वा परमशिव इति कथ्यते, शाक्तदृष्ट्या च बोधमयस्वातन्त्र्यं मत्वा पराशक्तिरिति कथ्यते। वस्तुतः एकस्यैव परमाद्वैततत्त्वस्य नामद्वयं विद्यते। इयमेव पूर्णावस्था।

यामलभावः

अपरस्यामवस्थायामवस्थाद्वयी लक्षिता भवति—

(क) तत्र एकया दृष्ट्या शिवशक्त्योर्नित्याविभक्तायामवस्थायां द्रष्टृदिदृक्षाभेदेन एकस्य प्राधान्यं भवति, शिवस्य प्राधान्यं शक्तेर्वा। शिवस्य प्रधान-

१. अनुत्तरं परं धाम तदेवाकुलमुच्यते।
विसर्गस्तस्य नाथस्य कौलिकी शक्तिरुच्यते॥—तन्त्रालोकः (३.१४३)

२. मन्त्र और मात्रिकाओं का रहस्य : डॉ० शिवशंकर अवस्थी, (पृ० १५१)

३. शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥—सौन्दर्यलहरी (श्लो०—१)

४. 'अनुत्तरानन्दचिती इच्छाशक्तिनियोजिते'—श्रीतन्त्रालोके (३.९४)।

५. 'चिद्रूपाह्लादपरमो निर्विभागः परस्तदा'—शिवदृष्टिः (१.४)

तायामपि शक्तिस्तिष्ठति, शक्तेश्च प्रधानतायां शिवस्तिष्ठति। तत्र शिव आत्मविश्रान्तो भवति शक्तिरपि आत्मविश्रान्ता। निरपेक्षावस्थायामेकः परं प्रति उन्मुखो न भवति। चित्स्वरूपं सदपि उभयत्रापि विलक्षणम्। शास्त्रानुसारमियं स्थितिः 'एकबीर' नाम्ना प्रसिद्धास्ति[1]। एतस्यामवस्थायां शिवः शक्तिश्च अभिन्नौ स्तः। तत्र मिथः कस्मिंश्चिदप्यंशे वैशिष्ट्यं नास्ति।

(ख) अपरदृष्ट्या शिवः शक्तिश्च यामलरूपेण अवस्थितौ। विश्वसृष्टेः पूर्वमियमवस्था अत्यावश्यकी। अस्यां स्थितौ शिवः शक्तिश्च मिथ उन्मुखौ स्तः[2]। अनेन यामलेन भावेनैव सृष्टेरुन्मेषो भवति। इच्छाशक्तावेव विश्वसृष्टेर्भूमिका निर्मिता भवति। शिवशक्त्योर्मिथ उन्मुखतया संघट्टस्य आनन्दशक्तेर्वा समुदयः। आत्मन इयमेव उच्छलनावस्थापि कथ्यते। मूलतः प्रकाशरूपः शिवो विमर्शरूपा परासंविच्च, एतद्द्वयमप्यनुत्तरभूतम्। तत्र एकं तत्त्वं वर्णनातीतं विश्वातीतञ्च, अपरं च तत्त्वमसद्वर्णात्मकं महामायारूपं विश्वात्मकं च। एतद्द्वयं नित्यं समुदितं भवति, तत्रैकस्य उदयास्तमयभावो न भवति। उक्तं च—'**नोदेति नास्तमेत्येका संविदेषा स्वयं प्रभा**[3]' इति। एतस्यां स्थितौ एकं तत्त्वं चिद्रूपेण बिम्बस्थानीयम्, अपरं च आत्मप्रकाशरूपेण प्रतिष्ठितं विद्यते। द्वयोश्चितोरेतस्यामवस्थायां परस्परमाभिमुख्यम्। अनुकूलसंवेदनरूपेण च यदा प्रकाशो भवति तदाऽयमानन्दः कथ्यते। अयमानन्दो ह्लादिन्याः शक्तेः स्वरूपम्[4]। चिदवस्था अनुकूलप्रतिकूलभावरहिता भवति, आनन्दावस्था च नित्यानुकूलभावमयी।

स्फुरणात् पूर्वं द्वयोश्चितोर्मूले यद्यप्येका चिदस्ति तथापि स्फुरणानुसारं रूपद्वयं ग्राह्यमस्ति। एतदाभिमुख्यानुसारं द्वयोस्तीव्राकर्षणक्रिया अनुभूयते। तत्प्रभावेण च एका मन्थनक्रिया प्रकटिता भवति, यया आनन्दाभिव्यक्तिर्जायते। इयमेव हि परमसत्तायाः सामरस्यावस्था यामलावस्था वा। अत्र एका चिद्रूपेण, अपरा आनन्दरूपेण चाविर्भवति। इयमन्तरङ्गकलाद्वयी निष्कलपरमसत्तां पृष्ठभूमौ संस्थाप्य समुदिता भवति। इच्छा ज्ञानं क्रिया च तद्बहिरङ्गकलाः सन्ति।

चिदानन्दयोरैक्येऽपि सर्वथा ऐक्यं नास्ति। आनन्दो भाविविश्वं गर्भे धृत्वा सृष्टेरुन्मुखावस्थां प्रतीक्षते। चिदवस्थायामेतद् सर्वं नास्ति। चैतन्यस्वरूपा

---

१. तन्त्रालोकः (३.६७)

२. 'अनयोः परस्परोन्मुख्यात्मकं यामलं रूपं स्यात्'–तन्त्रालोकविवेकः (३.६७)

३. पञ्चदशी : स्वामी विद्यारण्य (१.७)

४. 'आनन्दः स्वातन्त्र्यम्, स्वात्मविश्रान्तिस्वभावाह्लादप्राधान्यात्। स्वातन्त्र्यमानन्दशक्तिः'—तन्त्रसारे प्रथमाह्निके (पृ० ६)

सत्यपि चिन्निराभासा विद्यते। आनन्दस्तु साभासः, किन्त्वयमाभासोऽन्तः स्थिताभासमात्रमेव। एतदर्थमेव स चिदात्मकः। चित्सत्तायामेकमेव तिष्ठति, तत्र द्वितीयराहित्यमस्ति, किन्तु आनन्दसत्तायामेकमेव हि तत्त्वं स्वात्मानं द्विधा परिकल्प्य स्वेन सह स्वयमेव क्रीडति। इयमेव सृष्टेः पूर्वावस्था, अर्थात् सृष्टेः सम्पूर्णसामग्र्या अभिव्यक्तेः पूर्वावस्था। एतस्मादानन्दादेव हि सृष्टिरभिव्यक्ता भवति, उक्तं च उपनिषदि—'आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते'[1] इति।

अयं भावः—चित आनन्दात्मिकावस्थाया एव विश्वोत्पत्तिर्जायते, जगदिदमानन्दे लीनं सद् विद्यमानं भवति। युगलभावं विना आनन्दो न जायते, आनन्दं विना सृष्टिरपि न भवति। उक्तं च–'तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्' इति[2]। आनन्दात्मकस्यात्मानोऽन्तःस्थितस्य विश्वस्य बहिरानयनमेव विसर्गपदेन व्यवह्रियते। सामरस्ये नष्टे सति बिन्दु-नाद-कलारूपेण विश्वस्य क्रमानुसारं विकासो भवति। तत्र महाबिन्दुरेव व्यक्ताव्यक्तजगतो नियन्ता प्राणकेन्द्रं चास्ति। भात्रात्मकस्य विश्वस्य उत्सबिन्दुरियम्। शाक्तदर्शने एतदेव हि स्वयम्भूलिङ्गमिति कथ्यते। एतदेव हि शिवस्य निवासस्थानम्। कुण्डलिनी मूलीभूता ऋणात्मिक शक्तिरस्ति। उक्तं च आनन्दसूत्रे—'कुण्डलिनी सा मूलीभूता ऋणात्मिका' इति। एतत्प्रारम्भिकबिन्दुः मूलाधारचक्रं ऋणात्मककामबीजमिति कथ्यते। एतत्स्वयम्भूलिङ्गे कुण्डलिनीशक्तिर्निवसति।

स्वातन्त्र्यम्

एका महाशक्तिरेव मूलशक्तिः। स्वातन्त्र्यमेव तत् स्वरूपम्। एतस्याः परमदशा अविभक्ता भवति। तत्र बहुत्वं द्वित्वं युगलत्वं वा नास्ति। स्वयं सा आत्मस्वरूपा नित्या सती विराजमाना। सा रूपवती सत्यपि अरूपा, अरूपवती सत्यपि सरूपा। सा एका अद्वितीया, सैव चरमपरमसत्यस्वरूपा। सा द्वैताद्वैत-सदसद्भावरहिता, सा विश्वातीता विश्वात्मिका च। तत्र सर्वं विद्यमानमपि किञ्चिदपि नास्ति। एतस्यामवस्थायां शिवः शक्तिश्च अभिन्नरूपेण विराजेते। तत्र विभक्तावस्थायां विभिन्नदृष्टचनुसारं विभिन्नाः क्रिया जायन्ते, शाखाप्रशाखारूपेण च विकासो भवति। एतदर्थमेव शक्ते वर्गीकरणमपि अनेकधा भवति। एतस्यां महासत्तायां सहसा एकं स्पन्दनं उत्तिष्ठति, अत्र एतदेव हि सत्यम्। यतो हि सामान्यरूपेण यदेकमस्ति, विशेषरूपेण तदेवानेकम्। अत्र हि वैभिन्यदर्शने कालतरङ्गेषु यद्यपि स्वाभाविकम्, तथापि

१. तैत्तिरीयोपनिषद् (३.६)
२. बृहदारण्यकोपनिषद् (१.४.३)

महाकालस्यैकमेव हि स्पन्दनं कालराज्यस्य अनन्तस्पन्देषु प्रकटितं भवति। इयं निष्पन्द-स्पन्दरूपा युगलावस्थैव विश्वातीता स्थितिरस्ति ।

परा कुण्डलिनी

परा कुण्डलिनी शक्तिस्वरूपतो भिन्ना नास्ति, अर्थाद् अकारो हकारश्चेत्येतद्द्वयं युगपत्स्थितम्। अविभक्तावस्थायामकारो हकारश्च शिवप्राधान्येन स्वरूपमात्रे विश्रान्तो वर्तेते। तत्र चिच्छक्तिर्निजस्वरूपे विद्यमानास्ति, एतस्यामवस्थायां सृष्टिर्न भवति। यदा शिवः शक्त्युन्मुखः, शक्तिश्च शिवोन्मुखी, तदा शिवशक्त्योः सामरस्यं यामलावस्था वा भवति। एतस्यामवस्थायां न शिवः शक्तिहीनः, न शक्तिर्वा शिवहीना। तान्त्रिकपरिभाषायामेतदेव हि संघट्टपदेन व्यवह्रियते[1]। स्पन्दस्य आनन्दशक्तेर्वा एतन्नामान्तरम्। प्रकाशो विमर्शश्च अनुत्तरपदवाच्यौ। द्वयोः संघट्ट एव आनन्द उच्यते। आनन्दादेव इच्छाशक्तेरुदयो विश्वसृष्टिश्च भवतीति पूर्वमेव कथितम्। चर्याक्रमानुसारं शिवरूपं विश्वोत्तीर्णमस्ति, शक्तिरूपं च विश्वमयं वर्तते। एतद्द्वयं विच्छिन्नरूपम्। संघट्टश्च पूर्णरूपेण वर्तते, यतो हि तदा नियतावच्छेदो न भवति। एतदर्थमेव तस्मिन् विश्वमये विश्वोत्तीर्णे च कश्चनापि भेदो नास्ति ।

अन्याः शक्तयः

परमेश्वरस्य इच्छाशक्तेरुन्मेषेण जगदिदं प्रकटितं भवति। यद्यपि मूलसत्ता एकैवास्ति, तथापि आत्मसंकोचादेव इदंरूपेण बाह्यभावस्य स्फुरणं भवति। एतादृशी पूर्णता अहंभावे खण्डिते सत्येव जायते। इयमेव महाशून्यस्य सृष्टिरस्ति[2]! इच्छाशक्त्यैव महाशून्यमाश्रित्य जगदिदमाविर्भूतम्। अव्यक्तावस्थायां जगदिदमिच्छाविषयीभूतं सदपि प्रथमावस्थायामिच्छया सहैव अभिन्नरूपेण विद्यमानं भवति। तदनन्तरं ज्ञानशक्तेराविर्भावः सृष्टिर्वहिमुखप्रभावेण जायते। अस्यामवस्थायां जगदिदमव्यक्तावस्थां परित्यज्य अभिव्यक्तावस्थां प्राप्नोति। एतदनन्तरं ज्ञानस्य तरङ्गितावस्थायां ज्ञाने स्थितं तद्ज्ञेयरूपेण पृथगाकारतया स्वात्मानं प्रकटयति। तदनन्तरं क्रियाशक्तेरुन्मेषे

---

१. 'अकुलकौलिकीशब्दव्यपदेश्ययोः शिवशक्त्योः, सघट्ट इति सम्यक् घट्टनं चलनं स्पन्दरूपता स्वात्मोच्छलन्ता इत्यर्थः, अतश्च प्रकाशविमर्शात्मनोरनुत्तरयोरेव संघट्टादानन्दशक्त्यात्मनो द्वितीयवर्णस्य उदयः'—तन्त्रालोकविवेके प्रथमाह्निके (पृ० ८१)

२. 'अशून्यं शून्यमित्युक्तं शून्यं चाभाव उच्यते ।
अभावः स समुद्दिष्टो यत्र भावाः क्षयं गताः ।'—स्वच्छन्दतन्त्रम् (४.२९१)

संजाते तत्स्वरूपं ज्ञानात् पृथग् भूत्वा कार्यरूपतां धत्ते। एतदेव महामायिकं प्राकृतं रूपं वास्ति।

ज्ञानमभेदात्मकत्वेन चिदस्ति, क्रिया च भेदात्मकत्वेन चैत्यमस्ति। यद्यपि चिच्चैत्ययोर्ज्ञानक्रिययोश्च भेदो नास्ति, तथापि विपर्ययज्ञानवशाद् मायावशाद् वा भेदः प्रतीयते। तात्त्विकदृष्ट्या एतदद्वयमभिन्नमस्ति। ज्ञानं प्रकाशश्चैव विमर्शाकारेण आश्यानीभूतं सत् क्रिया कथ्यते। यथा आकाशस्य काठिन्यगुणः शब्दः, एवमेव चिदाकाशस्य काठिन्यगुणो विमर्शः। प्रकाश-विमर्शयोर्भेदो जलावर्तबुद्बुदवद् वास्तविको नास्ति। अतएव यथा क्रिया ज्ञानाभिन्ना, तथैव विमर्शरूपा क्रिया काठिन्यगुणं परित्यज्य विश्रान्तिस्वरूपं वैरल्यमाश्रित्य ज्ञानमुच्यते। प्रकाशेन सह क्रिया एकरसात्मिका भवति। एतदर्थमेव ज्ञानस्य बाह्यरूपं क्रिया, क्रियायाश्च वास्तविकं स्वरूपं ज्ञानमिति। एतज्ज्ञानमेव प्रकाशः शिवो वास्ति, क्रियापि विमर्शः शक्तिर्वास्ति। द्वयोः प्राधान्यं समानम्। ज्ञानं विना क्रियायाश्चोपलब्धिर्न सिद्ध्यति। अत एव ज्ञानं क्रियायाः क्रिया च ज्ञानस्य कारणमिति मिथः समनियतकार्यकारणभावः। ज्ञानक्रिययोः पौर्वापर्यं नास्ति, अपितु योगपद्यं विद्यते।

सृष्टितत्त्वम्

सृष्टिर्बहुत्वरूपा तन्मूलं च एकमेव। एकस्य बहुत्वार्थं द्वयोरावश्यकता भवति। एतदर्थमेव व्याकरणशास्त्रे एकवचन-द्विवचन-बहुवचनानि कल्पितानि सन्ति। अयं द्वितीयो द्वयोरवस्थयोः प्रकाशितो भवति, एक एकस्मादभिन्नः, द्वितीय एकस्मादभिन्नरूपेण प्रकाशमानः। द्वयोर्हि अभिन्नरूपेण सम्पृक्तं तत्त्वमेव यामलसत्ता कथ्यते। तान्त्रिकपरिभाषानुसारमियमेव शिवशक्त्योः समरसात्मिका अवस्था। एतत् सामरस्यं नित्यसिद्धम्। बौद्धैरपि सामरस्य-मेतद् युगनद्धावस्थारूपेण कथ्यते। वैष्णवा अवस्थामिमां युगलभावेन स्वीकुर्वन्ति।

एततसत्ताद्वयं विना सृष्टिर्न जायते। एकं द्विकं वा यत्र यामलरूपेण प्रकाशमानमस्ति, तत्र द्वयोः सम्मेलनेन परमाद्वैतसत्तायाः प्रकाशो भवति। यत्र एकं द्विकं वा पृथग्रूपेण संस्थितम्, तत्र द्वयोः सम्मेलनेनास्य भेदमयस्य बाह्यजगतः प्रकाशो जायते। तत्र एकाऽन्तरङ्गशक्तिः, अपरा च बहिरङ्ग-शक्तिरुच्यते। यामलसाहाय्येन पूर्णसत्तायां प्रवेशो भवति। द्वयोः सम्मेलनेन भेदमयस्य मायिकजगत आविर्भावः। द्वयोस्तात्पर्यं पृथक्सत्ताद्वयो नास्ति, अपितु युगलसत्ता वर्तते। युगल-युग्म-यामल-सामरस्य-युगनद्धशब्दाः समानार्थ-द्योतकाः। अन्यदृष्ट्या इयमेव अर्द्धनारीश्वरस्थितिः। युगलप्राप्तेरियमुपासनैव षोडशी उपासना। इयमवस्था कालातीतसत्तां प्राप्नोति। अत्र बहुत्वं नास्ति,

पृथक्सत्ताद्वयं नास्ति, एकस्या एव सत्ताया भागद्वयी वर्तते। एतद् भागद्वयं पृथग् भूत्वा नावतिष्ठते। बहुशब्दस्य तात्पर्यमानन्त्यमिति। रहस्यमार्गे बहुशब्दस्य तात्पर्यं त्रित्वमिति। परिणामतस्त्रिशब्देन अनन्तस्य बोधो भवति। त्रयाणां पश्चाद्भागे द्वयोः स्थितिरस्ति, एतद्द्वयं मिथः संयुक्तमस्ति न तु पृथक्, एतस्यैव नामान्तरं युगलमिति। एतद्युगलेन एकस्य मार्गः परिचीयते। एतदेकमपि तत्त्वं केवलमेकमेव नास्ति, अपितु एकस्मिन् द्वे द्वयोश्चानन्तमिति।

अस्मिन् सामरस्ये भग्ने सति क्रमानुसारं विश्वस्य प्रादुर्भावो भवति। तदानीं महाबिन्दुरेव शक्तिरूपेण परिणमति। शिवांशः साक्षिरूपेण संतिष्ठते। साक्षी अपरिणामी एकश्च, किन्तु शक्तिः क्रमशो भिन्न-भिन्नरूपेण प्रसूता भवति। साक्षी मूलशक्तिश्च एकभावापन्नौ स्तः। साक्षी सर्वावस्थासु निरपेक्षो द्रष्टा च वर्तते। शक्तेः प्रसारात्मिका संकोचात्मिका च अवस्था भवति। अयं साक्षी केन्द्रस्थाया आत्मभावापन्नसाम्यरूपायाः शक्तेर्द्रष्टा सन्नपि तस्याः प्रसारसंकोचनामकावस्थाद्वयमपि पश्यति। विश्वातीतत्त्वादयं सदा कालचक्रस्योपरि अवतिष्ठते[1]। कालचक्रस्य नाभिस्वरूपमपि वर्तते। शक्तेः प्रसार एव सृष्टिः, तत्संकोचश्च संहार इति कथ्यते। संकोचस्य प्रारम्भे अन्ते च साम्यावस्था वर्तते, मध्ये एतद् वैषम्यं कालचक्रस्य आवर्तनं वा। वैषम्येऽपि साम्यावस्थाऽन्तर्निहिता भवति। वैषम्यकाले मूलबिन्दोरर्थाच्चतुर्थबिन्दोर्बिन्दुत्रयं पृथग्भावेन प्रकटितं भवति। बिन्दोः प्राकट्येन रेखासृष्टिर्जायते, अयमेव रेखागणितस्य सिद्धान्तः। बिन्दोः कम्पनात् स्पन्दनात् वा रेखोत्पत्तिर्जायते। परमतत्त्वस्य संकल्प एव स्पन्दस्य कारणम्। आगमशास्त्रे रेखाविन्यासद्वारा तत्त्वमिदं ज्ञायते। परमस्वरूपस्य स्वातन्त्र्यात् स्पन्दो यदा बिन्दुं स्पृशति, तदा बिन्दुः रेखारूपेण परिणमति। ह्रस्वतमरेखा बिन्दुद्वयेन निर्मीयते। एतदनन्तरं सृष्टिः साक्षाद् बिन्दुना न भवति, अपितु रेखया जायते। तदानीं रेखात्रयी अपेक्षते। रेखात्रयात् त्रिकोणं भवति। तदेव सृष्टेः मूलं योनिस्वरूपम्[2]। अत एव वेदान्ते 'योनेः शरीरम्' इति

---

१. एषा वस्तुत एकैव परा कालस्य कर्षिणी।
शक्तिमदभेदयोगेन यामलत्वं प्रपद्यते॥
—तन्त्रालोके द्वितीयाह्निके (पृ० २२३)

२. 'त्रिकोणं भगमित्युक्तं वियत्स्थं गुप्तमण्डलम्।
इच्छाज्ञानक्रियाकोणं.................॥
एकाराकृति यद्दिव्यं मध्ये षट्कारभूषितम्।
आलयः सर्वसौख्यानां बोधरत्नकरण्डकम्॥—तन्त्रा० वि० (पृ० १०४)

सूत्रं स्थापितम्[1]। एतत् सिद्धान्तं विना शरीरं नोपपद्यते। न्यायदर्शनानुसारं सृष्टेः क्रम इत्थं वर्तते—परमाणुः, द्वयणुकः, त्रसरेणुः। अर्थात् परमाणोर्द्वयणुकः द्वयणुकात् त्रसरेणुः। द्वयणुकत्रयं विना त्रसरेणुर्नोत्पद्यते। बौद्धैरपि उक्तम्—'षट्केन युगपद् योगात् परमाणोः षडंशता'[2] इति। त्रिकोणमेव महात्रिकोणम्[3], तदेव सार्धत्रिवलयाकारा भुजङ्गाविग्रहा कुण्डलिनीरूपेण ज्ञायते।

त्रिकोणतत्त्वम्

एतत्त्रिकोणे परमतत्त्वस्य निर्गतधारान्वये सति त्रिकोणाकृतिः शक्त्याधाररूपतां बिभर्ति। जगतः प्रसवित्रीं धारामिमां स्वान्तर्धारयन्ती शक्तिरियं विश्वप्रपञ्चमुन्मीलयति। परमायाः शक्तेरस्याः स्वात्मीकृतधारयैव अनन्तलोकाः सृष्टा भवन्ति। वेदे रयिप्राणौ यथाक्रमादित्यसोमरूपेण अभिहितौ स्तः। सर्वोऽपि दृश्यमानपदार्थो रयिरूपेण वर्तते, तथैव सर्वत्रापि परमाशक्तिरेव कार्यं कुरुते। आधुनिकवैज्ञानिका अपि 'मैटर-इनर्जी' इति तत्त्वद्वयं स्वीकृत्य भारतीयमान्यतामनुमोदयन्ति। श्रीकूपर-सरविलियम क्रक्स-ओलिवरलाज-फ्लामेरियन इत्यादिवैज्ञानिकैः 'मैटर'तत्त्वं स्वतन्त्रकर्मिरूपेण न मन्यन्ते। 'मैटर'तत्त्वं स्वतन्त्ररूपेण न किमपि कार्यं करोतीति भावः। वैज्ञानिकफ्लामेरियनानुसारं 'मैटर'तत्त्वस्य विश्लेषणप्रसङ्गे तत्त्वमदृश्यं भवति। तदनन्तरं जगत आधारभूता सर्वकार्यकारिणी, स्पन्दनात्मिका, नित्यकार्यकारिणी शक्तिरनुसन्धीयते[5]। प्रो० हैकलमतानुसारं 'मैटर'तत्त्वमनन्तप्रसारितव्याप्तपदार्थस्थितरूपेण अनुभूयते। 'इनर्जी'पदवाच्यं तत्त्वं बोधात्मकम्। वेदे वर्णितो रयिपदार्थ एव आधुनिकविज्ञानस्य 'मैटर'तत्वमस्ति। प्रो० बुकनरमतानुसारं 'मैटर'स्य प्रत्येकास्थितिः 'इनर्जी'पदवाच्यस्य क्रीडाविलासमात्रम्। डा० ड्रैपरमहोदयोऽप्यमुमेव सिद्धान्तं स्वीकरोति[6]। प्रसिद्धदार्शनिकहर्वर्टस्पेन्सरमहोदयेनाप्युक्तं यत् साम्यावस्थैव परिणामस्य चरमा सीमा[7]। वस्तुतः शक्तेः

---

१. ब्रह्मसूत्रे (३.१.२७)

२. विंशतिका, विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः (श्लो०—१२)

३. अनुत्तरानन्दशक्ती तत्र रूढिमुपागते।
त्रिकोणद्वित्वयोगेन व्रजतः षडरस्थितिम्॥—तन्त्रालोकः (३·९५)

४. स्प्रिचुअल साइंस : सर कूपर

५. फोर्स एण्ड मैटर : बुकनर

६. दी कानफ्लिक्ट बिट्वीन रिलीजन एण्ड साइंस : डॉ० ड्रेपर

७. फर्स्ट प्रिंसिपल : हर्वर्ट स्पेन्सर

साम्यावस्थैव मध्यमार्गः। गौतमबुद्धेन मध्यमार्गस्य अनन्तमहिमा वर्णितः। मन्त्रद्रष्टारो ऋषयो रहस्यवादिनश्च सिद्धाः परम्परामिमां स्वीकुर्वन्ति। अखण्डमहायोगेऽपि साम्यावस्थेयं कुमारीशक्तिरूपेण स्वीक्रियते। इयमेव वास्तविकी शक्तिपूजा। **'इच्छाशक्तिरुमा कुमारी'** इति शिवसूत्रेऽपि कथ्यते। इच्छाशक्तिर्हि ज्ञानक्रियाशक्त्योर्मध्यस्था।

शिवशक्तिसामरस्यं यामलभावो वा

शाक्तदर्शनानुसारं शिवशक्त्योः सामरस्यमेव अद्वैतम्। उक्तं च—**'शिवशक्तिसामरस्यमयं जगदानन्दरूपमित्यर्थः'**[१]। शिवशक्त्योः सम्मिलितस्वरूपमेव ब्रह्मेति, उक्तं च—**'शिवशक्त्यात्मकसंघट्टरूपे ब्रह्मणि शाश्वते'** इति। द्वयोः सम्बन्धोऽविनाभावी। शिवशक्त्योः सम्बन्धः दाहेन वह्नेरिव, धवलिम्ना सह दुग्धस्यैव वर्तते। शक्तिर्यदाऽन्तर्मुखी भवति, तदा शिवः कथ्यते। शिवो यदा बहिर्मुखो भवति, तदा शक्तिः कथ्यते। अन्तर्मुखबहिर्मुखभावौ सनातनौ। शिवतत्त्वे शक्तिभावस्य गौणत्वं शिवभावस्य प्राधान्यम्, शक्तितत्त्वे च शिवभावस्य गौणत्वं शक्तिभावस्य प्राधान्यं विद्यते। किन्तु साम्यावस्थायां शिवशक्त्योरेकरसा स्थितिर्वर्तते, इयमेव साम्यावस्था। इयमवस्थैव पूर्णाहन्तापदेन परमसंविद्रूपेण च व्यपदिश्यते। शाक्तदर्शनस्य परमतत्त्वं यामलरूपेण वर्णितमस्ति—**'तयोर्यद्यामलं रूपं स संघट्ट इति स्मृतः'**[२] इति। अयमेव अर्द्धनारीश्वरः कथ्यते। शिवो ज्ञानशक्तिः, उमा क्रियाशक्तिश्च, शिवः प्रकाशः शक्तिश्च विमर्शः। परमतत्त्वं प्रकाशविमर्शसामरस्यमयं वर्तते।

शिवशक्त्योः संघट्टेन आनन्दोदयो जायते। यद्यपि चिद् आनन्दश्च स्वरूपतो भिन्नौ, तथापि आनन्दोदये सति विसर्गः। शिवो विश्वोत्तीर्णः शक्तिश्च विश्वमयी। एतद्द्वयं परस्परं विच्छिन्नम्। अतः कुत्रचित् एकत्र पूर्णत्वं नास्ति। परमार्थतः शिवशक्त्योरभेदे सति पूर्णरूपेणेयं विच्छिन्नता अस्वीकृता वर्तते। पूर्णस्वरूपमविच्छिन्नमस्ति। पूर्णस्य विश्वमयत्वात् तत्र विश्वोत्तीर्णता तिष्ठति। अतो विच्छिन्नरूपेण स्वीकृतशिवभावशक्तिभावापेक्षया पूर्णभावः श्रेष्ठः। म०म०गोपीनाथकविराजमतानुसारं तत्त्वमिदं (यामलम्) सप्तत्रिंशत्तत्त्वरूपेण स्वीकृतम्[३]।

केचन इत्थं प्रतिपादयन्ति यदेतस्मिन् विषये न किञ्चिदपि वक्तुं न वा

---

१. तन्त्रालोकविवेकः, आह्नि०–२४, (पृ० ८४)

२. तन्त्रालोकः (३.६८)

३. भारतीय संस्कृति और साधना (प्रथमखण्ड) : म०म०गोपीनाथ कविराज (पृ० १७)

किमपि विचारयितुं शक्यते । एतदेव हि तत्त्वं सर्वेषां चरमलक्ष्यीभूतं वर्तते । एतदेव शैवानां परमशिवः, शाक्तानां पराशक्तिः वैष्णवानां च श्रीभगवानस्ति । एतदप्यवगन्तव्यं यत् सर्वाणि नामानि केवलं नाममात्रम् । आगमशास्त्रे परमशिवावस्थैव पूर्णतायाः परिचायिकात्वेन आत्मसात्क्रियते, अन्यथा ज्ञान-विज्ञानदृष्टया तत्त्वमिदमव्यक्तमप्राप्यं चास्ति । अव्यक्तं सर्वदा अव्यक्तमेव भवति, उक्तं च तैत्तिरीयोपनिषदि—'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'[1] इति । इदं रहस्यात्मकं विद्यते । यस्य अन्वेषणं भारतीया मनीषिणश्चेतनाविज्ञानमाध्यमेन बोधज्ञानमाधारीकृत्य कृतवन्तः, स एव सिद्धान्तो विंशतिशताब्द्यां महादार्शनिकविटगेंस्टाइनमहोदयेन भाषाविश्लेषणप्रसङ्गे कृतः । एभिरुच्यते यद् यस्य सन्दर्भेऽस्माभिः किमपि न वक्तुं शक्यते, तत्र मौनमेव वरम् । वस्तुतः किमपि एतादृशमपि तत्त्वं विद्यते यत् शब्दद्वारा वक्तुं न शक्यते, तत्तत्त्वं स्वात्मानं स्वयमेवाभिव्यनक्ति । रहस्यात्मकमिदमुच्यते, अर्थाद् यस्य सम्बन्धेऽस्माभिः किमपि वक्तुं न शक्यते, तस्याप्यस्ति सत्तामवश्यमेव स्वीकर्त्तव्या । एतदपि वक्तुं न शक्यते यद् भाषाद्वारा यस्य साध्यचिन्तनस्य सीमा विद्यते, केवलस्य तस्यैव अस्तित्वमस्तीति । सामरस्यरूपेण वा प्रकाशितमलौकिकं परमतत्त्वमेतादृशमेवास्ति, यत्स्वरूपं वाचा लेखेन वाऽवबोद्धुं न शक्यते । अस्यां स्थितौ करुणापूर्णहृदया भारतीया मनीषिणस्तत्त्वमिदमवबोधयितुं प्रयत्नं कृतवन्तः, यस्य संक्षिप्तं स्वरूपं मया प्रस्तुतम् ।

सर्वं एते सिद्धान्ताः श्रीकृष्णयामलेऽपि विसृमराः सन्तीति, तेऽधुना उपसंहारव्याजेन समुपस्थाप्यन्ते ।

उपसंहारः

प्राचीनकाले विभिन्नानां प्रस्थानानामवलम्बनं कृत्वा शाक्तमतं प्रचारितम् । एषु प्रस्थानेषु कौलिकमतं प्रधानमस्ति । अतिप्राचीने काले ऋषिणा दुर्वाससा सहास्य मतस्य सम्बन्ध आसीदिति श्रूयते । दुर्वासा श्रीकृष्णाय आगमशास्त्रस्य शिक्षामदादित्यपि प्रसिद्धिरस्ति । युगान्तरे कामरूपपीठाद् मीननाथेन मत्स्येन्द्रनाथेन वा इदं मतं प्रचारितम् । किञ्चित् पूर्वं पुराणसंहिता, इति नाम्ना पुराणविषयक एको ग्रन्थः प्रचारितः । अस्मिन् ग्रन्थे श्रीकृष्णलीला-विषयस्तान्त्रिकदृष्टया साधनागतदृष्टया च आलोच्यते । प्रसङ्गतया प्राथमिक-लीला-व्यावहारिकलीला-प्रातिभासिकलीलानां च सूक्ष्मं विवरणं तस्मिन् ग्रन्थे वर्तते । तत्र प्राचीनवैष्णवसम्प्रदायस्य कतिपये प्राचीना ग्रन्था अपि उद्धृताः सन्ति ।

---

१. तैत्तिरीयोपनिषद् (२.९)

अनेन विवरणेन स्पष्टमिदं प्रतिभाति यद् वैष्णवसम्प्रदाये साधनायामपि लीलारहस्ये मूलतान्त्रिकरहस्यानि प्रतिपादितानि । प्रसिद्धवेदान्ताचार्यश्रीमदादिशङ्करभगवत्पादस्य श्रेष्ठगुरुणा गौड़पादेन 'श्रीविद्यारत्नसूत्रम्' इति नाम्ना उत्कृष्टतमस्तान्त्रिको ग्रन्थो लिखितः । श्रीकृष्णयामलतन्त्रेऽपि योगस्य साधनायाश्च दृष्ट्या तान्त्रिकदृष्टिर्वैष्णवदृष्टिश्च सम्मिलिता प्रतिपाद्यते ।

श्रीकृष्णयामलतन्त्रे इदमुल्लिखितमस्ति यदूर्ध्वलोकस्यान्तर्गतं स्वर्गलोक-महर्लोक-जनोलोक-तपोलोक-सत्यलोकाः प्रसिद्धाः सन्ति । ब्रह्मलोकस्योपरि चतुर्व्यूहस्थानमस्ति । वैकुण्ठस्य दक्षिणतः संकर्षणो विद्यते । वैकुण्ठस्याधस्तात् पश्चिमतश्च प्रद्युम्नः कामदेवो वा । कामस्योपरि उत्तरतश्च अनिरुद्धो वासुदेवश्च पूर्वे । इमानि स्थानान्येव सत्यलोकस्योपरि वैकुण्ठस्याधश्च अवस्थितानि सन्ति । चतुर्व्यूहस्योपरि ज्योतिर्मयवैकुण्ठधाम परमव्योम वा अस्ति । इदं चतुर्व्यूहमुपलक्षितानां चतुरस्राणां मध्येऽवस्थितमस्ति । अत्र वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्धाख्यस्य चतुर्व्यूहस्य तदुपरि परमव्योम्नो ज्योतिर्मयवैकुण्ठधाम्नश्च उल्लेख वैष्णवपाञ्चरात्रागमप्रतिपादितं चतुर्व्यूहसंवलितं भगवतः परवासुदेवस्य स्वरूपं स्मारयति, यस्य हि विवरणमहिर्बुध्न्य-नारदपाञ्चरात्रादि-संहितादिसु समुपलभ्यते । अस्योपरि कौमारलोकः, यत्र ब्रह्माण्डरक्षकः कार्तिकेयोऽवस्थितः । एषामुपरि महाविष्णोः स्थानमस्ति । स एव सहस्रशीर्षा पुरुषः श्रीकृष्णस्यांशांशादुद्भूतः । महाविष्णोर्मुखात् कारणसलिलमुद्भूतम् । तस्मिन् सलिले महासंकर्षणोऽवस्थितः । एष संकर्षणः शेषस्यावतारभूतः, यमाश्रित्य शेषशायी भगवान् जाग्रत्स्वरूपे सुप्तवत् तिष्ठति । जगतः सृष्टिः प्रलयश्च अस्य भगवतो निश्वास-प्रश्वासरूपे स्तः ! कारणसमुद्रे अर्द्धोन्मीलितैर्नेत्रैर्महायोगिनो ध्याने निमग्नाः सन्ति । तेषां वामपार्श्वे श्रीराधाया अङ्गादुद्भूता महालक्ष्मीरर्द्धोन्मीलितनेत्रैर्व्यंजनयति भगवन्तम् । परमपुरुषस्य गोविन्दस्य ध्यानेन महाविष्णोः पुलकोद्गमो जायते । प्रत्येकं रोमकूपे ब्रह्माण्डानि आविर्भवन्ति । अन्तराले श्रीराधायाश्चिन्तनेन नेत्रकोणेभ्योऽश्रुधारा निर्गता भवन्ति । वामचक्षुषो यमुना, दक्षिणचक्षुषो गङ्गा, मध्यतश्च गोमती उद्भूता भवन्ति । तिस्रो धारा पुनः कारणसमुद्रे प्रविष्टा भवन्ति । जगति ता धारास्तमः (कृष्णवर्णम्), सत्त्वम् (शुभ्रवर्णम्), रजश्च (रक्तवर्णम्) इति नाम्ना प्रसिद्धाः सन्ति ।

इत उपरि त्रिपुरसुन्दरीलोकोऽस्ति । अत्र भैरवा भैरव्यः सिद्धयोगिनो मातृगणाश्च निवसन्ति भगवत्या त्रिपुरसुन्दर्या सह । भगवती च तत्र श्रीयन्त्रे निवसति, यस्य सविशेषं वर्णनं नित्याषोडशिकार्णवादिषु त्रैपुरतन्त्रेषु विद्यते ।

सा कृष्णोत्पन्ना कृष्णरूपा च स्वयम्, रक्तवर्णा चतुर्भुजा चापि। सा एव शुक्लवर्णा वाणी, पीतवर्णा भुवनेश्वरी, रक्तवर्णा त्रिपुरसुन्दरी, श्यामवर्णा कालिका, कृष्णवर्णा नीलसरस्वती चास्ति। पराशक्तिर्दुर्गा साक्षात्कृष्णस्वरूपा। उक्तं च—'दुर्गाख्या या पराशक्तिः साक्षात् कृष्णस्वरूपिणी' (४·११·क) इति।

राधाकृष्णयोर्विपरीतरत्या दुर्गा रामश्च सम्भवतः। नित्यसृष्टचर्थं महाविष्णोरुदरे संकर्षणः प्रविष्टो भवति। महाविष्णोर्नाड्यां गत्वा संकर्षणः कुण्डल्याकारो भवति। एवं सहस्रमुखो भूत्वा मुखरन्ध्राद् बहिर्गतो भवति। महाविष्णुरखिलब्रह्माण्डस्य सर्जनं धारणं संहारं च करोति। तदूर्ध्वं मध्यफणाचक्रे गौरीपुरनामकं चक्रं विद्यते। तत्र भुवनेश्वरीरूपा दुर्गा विराजते। तत्र या देवी निवसति, सा कदाचित् श्यामा, कदाचित् कनकप्रभा चतुर्भुजा तथा कदाचित् शङ्खचक्रगदामुद्गरधारिणी भवति। तस्या निकटे च कालरूपा कालिका तिष्ठति। चक्रस्य दक्षिणतो नीलसरस्वत्या उग्रताराया वा एक जटाया वा स्थानमस्ति। ततः पश्चिमतः शुक्लवर्णा, शुभ्रसत्त्वमयी, ब्रह्मवाग्वादिनी नित्या अवस्थिता। पीतवर्णा भुवनेश्वरी छिन्नमस्तारूपेण परिणता। चक्रस्यास्योत्तरतो योगिनीगणो डाकिनी-लाकिन्यादिभिरावृतस्तिष्ठति। तस्य उत्तरतो भुवनेश्वरी, पश्चिमतश्छिन्नमस्ता, दक्षिणतो नीलसरस्वती वाणी तथा पूर्वतः श्यामा दुर्गा कालिका वा तिष्ठति।

त्रिपुरसुन्दरीप्रसङ्गेनात्र साकारो निराकारश्च शिवो वर्ण्यते। लिङ्गरूपी शिवः कथं नाम पञ्चधा विभक्तो भवतीति च प्रतिपाद्य लिङ्गस्य पुंप्रकृत्यात्मकत्वं साध्यते। अत्र लिङ्गादेव महाविष्णोरुत्पत्तिः संवर्णिता। षष्ठे चाध्याये कृष्ण एव परंब्रह्मेत्युच्यते। तस्य शक्तिः प्रकृतिः सूक्ष्मा सनातनी च। कृष्ण एव ज्योतिर्ब्रह्म जगत्सृष्टिस्थितिप्रलयकारणं सर्वस्वरूपं निष्कलं ब्रह्म।

ब्राह्मणब्राह्मणीसंवादरूपेण प्रवर्तते कृष्णयामलमिति जानीमो वयम्। अत्र सप्तमेऽध्याये प्रसङ्गवशाद् वर्ण्यते यदेतद् ग्रन्थवक्ता ब्राह्मणो गोलोके सुशर्मनामको गन्धर्व आसीत्। कस्माच्चित् प्रमादात् ततः परिभ्रष्टः स प्रथमं मान्धातृतनयो मुचुकुन्दाभिधः सूर्यवंशे समुत्पन्नः। तदनन्तरं ब्राह्मणत्वं प्राप्य कृष्णयामलसंकीर्तनेन पुनः परं धाम जगाम। अतः सुशर्मनामको गन्धर्वोऽस्य तन्त्रस्य वक्तेति सुष्ठु ज्ञायते। अस्य तन्त्रस्य श्रोत्री ब्राह्मणी विशालाक्षी नाम्नी राधाया कटाक्षप्रभवा।

अष्टमेऽध्यायेऽत्र सर्वस्य ब्रह्मरूपत्वं प्रतिपाद्यते। निर्विकारस्य निरञ्जनस्य ज्योतिःस्वरूपस्य ब्रह्मणः सकाशाद् पुंप्रकृत्यात्मकं विश्वमिदं नानारूपेषु प्रतिभासते। इदमेव तद् विश्वोत्तीर्णं विश्वमयं च तत्त्वम्, यदस्माभिः पूर्वं

सप्रमाणं निरूपितम् । विषयोऽयं कृष्णतत्त्व-राधिकातत्त्वयोर्यामलभावमाश्रित्य दशमेऽध्यायेऽपि वर्णितः । एतद् वैशद्यार्थैवास्माभिर्यामलावस्थाया वैशद्येन स्वरूपं विवेचितम् ।

शब्दब्रह्म परंब्रह्म चेति द्विविधं ब्रह्म शास्त्रेषु प्रतिपाद्यते । श्रीकृष्णाख्यं परंब्रह्म यामलेऽस्मिन् प्रतिपाद्यत एव, दशमेऽध्यायेऽत्र वृन्दावनस्य शब्द-ब्रह्मस्वरूपत्वं वर्ण्यते । भगवती सरस्वती वंशीरूपेण प्रादुर्भूतेत्येकादशेऽध्याये, सप्तविधानां नादानाम्, षड्विधानां रागाणां रागिणीनां च, ताल-ग्राम-मूर्च्छनानां च नानाभिधानं वर्णनं वर्तते चतुर्दशेऽध्याये । तत-आनद्ध-सुषिर-घनाख्यानि चतुर्विधानि वाद्यानि चाष्टाविंशाध्याये वर्णितानि । तद्यथा—

ततं वीणादिकं साध्वि आनद्धं मुरजादिकम् ।
वंश्यादिकं च सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम् ॥ (२८.३)

श्लोकोऽयममरकोशे एवं दृश्यते—

ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम् ।
वंश्यादिकं च सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम् ॥ (१.७.४)

एवं परब्रह्मणा सहात्र शब्दब्रह्म सविशेषं प्रतिपाद्यत इति वर्तते किमपि वैशिष्ट्यं कृष्णयामलस्य । याज्ञवल्क्यस्मृतावुच्यते—

वीणावादनतत्त्वज्ञः स्वरजातिविशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति ॥ (३.११५)

एवं च कृष्णयामले शब्दब्रह्मसमाराधनेनापि मुक्तिमार्ग उन्मील्यते । चतुर्विंशेऽध्यायेऽकारादिक्षकारान्ता मातृका स्मर्यन्तेऽष्टादशशतराधिकाना-मवर्णनप्रसङ्गेन । अत्र प्रथमं ककारादिक्षकारान्तक्रमेण तदनु च अकारादि-विसर्गान्तक्रमेण नामानि वर्णितानि । नामक्रमनिरूपणेऽत्र बवयोरभेद इति सिद्धान्तः सम्यगङ्गीकृतः । मन्त्राणां मुद्राणां च निरूपणं दृश्यतेऽत्र त्रयोविंशेऽध्याये ।

भुवनेशी त्रिपुरसुन्दरी च सविशेषमत्र वर्ण्यते । त्रिभङ्गीस्थानाद् समुत्पन्ना देवी त्रिपुरसुन्दरीति व्युत्पत्तिरत्र तस्य पदस्य निरुक्ता । भुवनेश्वर्याः समक्षं स्वयमेव श्रीकृष्णस्त्रिपुरसुन्दरीस्वरूपमङ्गीचकारेति वर्ण्यते षोडशे-ध्याये । तद्यथा—

त्रिभङ्गपुरतो यस्मान्ममैव परमात्मनः ।
जातेयं सुन्दरी साक्षाच्छ्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ॥ (१६.१२)

भगवत्पादेन शङ्कराचार्येण तु प्रपञ्चसारेऽन्यन्निर्वचनं निरूपितम्—

त्रिमूर्तिसर्गाच्च पुराभवत्वात् त्रयीमयत्वाच्च पुरैव देव्याः ।
लये त्रिलोक्या अपि पूरकत्वात् प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम ।। (९.२)

अत्र सप्तदशाध्यायत आत्रयोविंशत्यध्यायं श्रीचक्रनिवासिनीनामावरणदेवतानामस्त्रदेवतानां मुद्राणां च निरूपणं नित्याषोडशिकार्णवपद्धत्या कृतमिति सत्यं श्रीकृष्णस्वरूपैव त्रिपुरसुन्दरी । 'शक्त्या विना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते' (४.७) इति प्रतिपाद्यते नित्याषोडशिकार्णवे । अत्रापि शक्तिहीनः श्रीकृष्णो न किमपि कर्त्तुं शक्त इति वर्ण्यते । तद्यथा—

कृष्णोऽपि शक्तिरहितः कर्त्तुं शक्तो न किञ्चन ।
तस्यापि शक्तिरूपाहं राधिका सर्वतोऽधिका ।।
(२१.३४. ख—२१.३५. क)

श्रीकृष्णस्य त्रिभङ्गिस्वरूपमत्र द्वादशेऽध्याये वर्ण्यते । रसमाधुरीमापिबन् श्रीकृष्णस्तिर्यग्ग्रीवस्तिर्यक्चरणश्च भवति । सैषा रसमाधुरीभरिता वंशीवादनरता कृष्णस्य आकृतिर्मनोहारिणी त्रिभङ्गिनाम्ना प्रसिद्धा । कालिकातामातृका त्रिभङ्गिचरितमात्रस्यैवेति पाण्डुलिपीनां विवरणेऽस्माभिरुक्तम् । त्रिभङ्गिस्वरूपमेतन्न केवलं श्रीकृष्णभक्तानाम्, अपि तु भक्तकवीनां चित्रकाराणां च प्रधानमालम्बनमासीदिति वयं सर्वे जानीमः ।

पञ्चविंशेऽध्यायेऽत्र राधाकृष्णयोरैक्यं प्रतिपाद्यते । तद्यथा—

कृष्णेब्रह्मणि राधायामपीद्भेदो न विद्यते ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्मेत्युच्यते ब्रह्मवादिभिः ।। (२५.२३)

प्रकाशविमर्शात्मकमेकमेव तत्त्वम् । तन्त्राचार्या एतत्तत्त्वं स्वातन्त्र्यमयी चिदिति वा संविदिति वा बोधयन्ति । कृष्णयामले वर्तते संवित्स्वरूपिणी राधा । सैव विश्वोत्तीर्णं विश्वमयं च स्वरूपं धत्ते । शक्त्या राधिकया युक्त एव श्रीकृष्णः किमपि कर्त्तुं प्रभवतीति यामलमेतत्स्वरूपमन्तिमेऽध्यायेऽष्टाविंशेऽत्र सविशेषं निरूप्यते ।

विषय-सूची



श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम्

प्रथमोऽध्यायः

[1]श्रीकृष्णाय नमः

सदाशिवमहेशानब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
यस्यांशांशा नमस्तस्मै कस्मैचित् परमात्मने ॥ १ ॥
नारद उवाच
शाण्डिल्यकुलसम्भूतं भारद्वाजात्मजा सती ।
रूपयौवनसम्पन्ना दिव्यालङ्करणोज्ज्वला ॥ २ ॥
कन्दर्पदर्पशमनं रूपिणं नवयौवनम् ।
गोविन्दनामश्रवणजातहर्षाश्रुलोचनम् ॥ ३ ॥
पुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गं कम्पमानं मुहुर्मुहुः ।
चित्तभित्तिविचित्रश्रीकृष्णरूपमनामयम् ॥ ४ ॥
गोविन्दचरणद्वन्द्वं(न्द्व)सेवानिष्ठितविग्रहम् ।
श्रीकृष्णसत्कथालापप्रसन्नवदनाम्बुजम् ॥ ५ ॥
अनन्यभावं गोविन्दसख्यभावपरायणम् ।
कृष्णक(क्र)मसिक्तहस्तद्वन्द्वं निर्द्वन्द्वलक्षणम् ॥ ६ ॥
गोविन्दहृदयानन्दं सत्कथाश्रवणोत्सुकम् ।
सर्वभूतसमप्रेमाचरणं प्रा(प्रे)रणप्रदम् ॥ ७ ॥
ज्ञानविज्ञानसम्पन्न कृष्ण यन्तु(पातुं)[त्व]मर्हसि ।
[2]इति नीचे मयि यदा हृदयाश्वासनक्रिया ॥ ८ ॥
क्रियते दानदयया श्रीकृष्णेन विलासिना ।
विहसामि तदैवाहं बालवन्मत्तचेष्टितः ॥ ९ ॥

---

१. अत्र 'क'मातृका प्रारभ्यते। २. अत्र 'ख'मातृका प्रारभ्यते।

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दुर्लभा[1]दुद्गात् परम् ।
श्री[2]मद्वृन्दावनपदाद् गोविन्दपदचिह्नितात् ॥ १० ॥
गोपगोपीगणप्रेमवसतेः सुखसम्पदः ।
गोविन्दचरणद्वन्द्वमकरन्दरसोदयात् ॥ ११ ॥
वञ्चितोऽस्मीति मत्वाद्य रौम्युद्वाहुर्विमूढवत् ।
गलद्बाष्पाकुलाक्षोऽस्मि तदीयमहिमा(म)स्मृतेः ॥ १२ ॥
त्वदीय[3]सङ्गमे यादृक् सुखं कमललोचने ।
तत्कोटिकोटिगुणितं सुखं गोविन्दसङ्गमे ॥ १३ ॥
तत्तत्सुखविहीनस्य दुःखमन्यत् सुखं प्रिये ।
तेन क्लिष्टमतिश्चास्मि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ १४ ॥
ब्रह्मानन्दो भवेद् देवि [4]परार्द्धद्विगुणीकृतः ।
गोविन्दसेवानन्दस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥ १५ ॥
तेनैव त्वन्मुखे नित्यं विमुखो सुमुखि प्रिये ।
यदि वाऽऽपतितं दुःखं दृष्ट्वा हृष्टो हसामि वै ॥ १६ ॥
तदत्र कारणं देवि [5]शृणुष्वैकमतिः सती ।
कल्पवृक्ष[6]तलस्थस्य सामान्यं फलमिच्छतः ॥ १७ ॥
यत्तु दुःखं धावतः स्यात् तत्र का परिवेदना ।
श्लाघ्यं भवतु मे दुःखं त्यक्तगोविन्दसम्पदः ॥ १८ ॥
सामान्यसुख[7]लिप्साया यथोचितमिदं फलम् ।
इति स्मृत्वा हसन्नित्यं विलपामि पुनः पुनः ॥ १९ ॥
आकाशस्थो यथा भानुर्जलस्था[8]लीष्वनेकधा ।
[9]प्रकाशते सर्वभूतेष्वेव(वं) कृष्णस्तथा ध्रुवम् ॥ २० ॥
[10]सम्मुखस्थेषु तेष्वेवममलज्ञानं जायते ।
सर्वभूतान्तरस्थोऽसौ भगवान् भूतभावनः ॥ २१ ॥
[11]सर्वगः सर्वपाताले नाहं दुर्गमे [12]भयः ।
यदा कृपावलोकेन [13]तेनैवाहं निरीक्षितः ॥ २२ ॥

---

१. उद्गात्–क. । २. 'मद्' नास्ति–ख. । ३. सङ्गमो-ख. । ४. परार्द्धं-ख. । ५. श्रृणुष्वैकमति–क. । ६. तल्पस्थस्य–क. । ७. लिप्सया–क. । ८. लीयते कथा–क. । ९. प्रकाशन्ते-क. । १०. 'सम्मुखस्थेषु' इत्यस्य स्थाने 'सम्मुखस्थे' इति–क. । ११. सत्रगः–क. । १२. जयः–क. । १३. नैनैवाहं–क. ।

तदा मम भवेत् नृत्यं गीतं चैव विशेषतः ।
प्रिये किं कथयिष्यामि यावद्वै दुर्भगस्य मे ॥ २३ ॥
[1]दुःखमारूढवृक्षस्य पतितस्य फलोदये ।
ब्राह्मण्युवाच
कोऽसि त्वं कस्य वा हेतोश्च तः कस्मात् सुखाच्चिरम् ॥२४॥
वञ्चितोऽसि महाभाग ! कस्मात् स्थानादनुत्तमात् ।
कुत्र तिष्ठति तत्स्थानं प्रभो मे छिन्धि संशयान् ॥ २५ ॥
ब्राह्मण उवाच
शापभ्रष्टाऽसि नात्मानं मां च जानासि भाविनि ।
प्रायः स्त्रियो विपत्काले न स्मरन्ति निजक्रियाम् ॥ २६ ॥
ब्राह्मण्युवाच
वञ्चितोऽसि महाभाग ! कस्मात् स्थानादनुत्तमात् ।
कियद् दूरे च तत्स्थानं तन्मे [2]कथय निश्चितम् ॥ २७ ॥
ब्राह्मण उवाच
श्रीमद्वृन्दावनस्थानादहं भ्रष्टोऽस्मि दुर्भगः ।
श्रीवृन्दावनचन्द्रस्य शापेन परितुष्यते ॥ २८ ॥
तत्तु वृन्दावनस्थानं सर्वलोकमनोहरम् ।
व्यापकं च यथा ब्रह्म नाना सर्वत्र भासते ॥ २९ ॥
सर्वलोकोपरिचरं शिरोमणिरिवोज्ज्वलम् ।
दिव्यवृन्दावनं नाम महावनमनुत्तमम् ॥ ३० ॥
भौमं वृन्दावनत्वं यद्गतं श्रीकृष्णलीलया ।
वृन्दावनं तु त्रिविधं दिव्यं भौमं तु सुन्दरि ॥ ३१ ॥
भौतं च ब्रह्मणा ज्योतिःस्वरूपेण विनिर्मितम् ।
यत्तु दिव्यं तथा भौमं ब्रह्माण्डान्तर्गतं तु यत् ॥ ३२ ॥
दिव्यवृन्दावनस्पर्शाद् दिव्यं रूपं महत्पदम् ।
अद्भुतं दृश्यते भूमौ सर्वेषां पापमोचनम् ॥ ३३ ॥
तदेव द्विविधं साध्वि मा(म)थुरापुरुषोत्तमः ।
ययोः कृतायां यात्रायां पापं याति न संशयः ॥ ३४ ॥
मथुरायां स्वयं साक्षादागतं विपिनं महत् ।
यत्र क्रीडति विश्वात्मा श्रीगोविन्दो निजैर्गुणैः ॥ ३५ ॥

१. अत्रत्य 'ख'मातृका खण्डिता । २. अत्र 'च'मातृका प्रारभ्यते ।

अन्यं [1]महामहे श्रीमत्पुरुषोत्तमसंज्ञया ।
तस्य विश्वेश्वरस्यैव प्रतिमूर्तिर्विरञ्चिना ।। ३६ ।।
प्रार्थिता निजभक्तस्य इन्द्रद्युम्नस्य धीमतः ।
[2]शान्तं दान्तं क्षमायुक्तं वह्निहोमपरायणम् ।। ३७ ।।
कृष्णभक्तजनप्राणप्रतिमं प्रशमायनम् ।
सङ्गीतकुशलाभिज्ञा सर्वशास्त्रार्थकोविदा ।। ३८ ।।
ज्ञानविज्ञानगोविन्दं(न्द)सेवानिर्जितकल्मषा ।
अपारभवपाथोधिं तर्त्तुकामा शु(सु)विस्मिता ।। ३९ ।।
पप्रच्छ ब्राह्मणी कान्तं कान्तं क्लान्तमनाः शुचिम् ।

ब्राह्मण्युवाच

स्वामिन् ध्यायसि किं नित्यं मुखेन परिशुष्यता ।। ४० ।।
कृष्णः क्वचिद् भ्रान्तः स्खलद्गतिः [क्वचित्] ।
क्वचिदुन्मत्तवद् भासि क्वचिद्धससि बालवत् ।। ४१ ।।
रोदिषि क्वचिदुद्बाहुर्गलद्बाष्पाकुलेक्षणः ।
सुखकाले क्लिष्टमना दुःखकाले हसन्मुखः ।। ४२ ।।
निर्लज्जित[ः] प्रकथने निर्भयो दुगमे वने ।
क्वचित् नृत्यसि निर्लज्जो गायस्युच्चस्वरः क्वचित् ।। ४३ ।।
किमिदं ते व्यवसितं न जाने तद् वद प्रभो ।

ब्राह्मण उवाच

प्रिये यद् दुर्लभं लोके तन्मया परिचिन्त्यते ।। ४४ ।।
तदप्राप्तिभयात् शुष्कवदनश्चकितेक्षणः ।
कदाचिद् हृदये तस्याश्वासविश्वासतो मुहुः ।। ४५ ।।
प्रहृष्टहृदयश्चास्मि शान्तात्मा विगतज्वरः ।
यथा धनो लब्धधने विनष्टे तान्तकृत् सदा ।। ४६ ।।
तच्चिन्तावशगो नान्यत् चिन्तयेदेकमानसः ।
एवं लब्धेश्वर[स्य]ास्य दुर्भगस्य दुरात्मनः ।। ४७ ।।
तत्पादसेवासम्बन्धी(न्धाद्) दैवाद् भ्रष्टस्य सुव्रते ।
पुनस्तं प्राप्तुकामस्य दैवान्न घटते च यत् ।। ४८ ।।

---

१. मन्यामहे—च. । २. 'शान्तं' इत्यारभ्य 'भामिनी' इति ४९संख्यक-श्लोकपर्यन्तं पाठो नास्ति—च. ।

तेनैवाहं सदा भ्रान्तः संभ्रान्तो वीक्षितस्त्वया ।
तच्चिन्ताविष्टचित्तस्य पथि यातुः स्खलद्गतेः ॥ ४९ ॥
देह उन्मत्तवद् भाति भावाभावविवर्जिताः(तः) ।
अहं तव सखा बन्धो मा खेदं कुरु भामिनि ॥ ५० ॥
[1]हितार्थं तदधिष्ठानं वनं वृन्दावनं परम् ।
यत्तु भौमं वनं तत्तु [2]जाते भौते व्यवस्थितम् ॥ ५१ ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वभूतशिरोपरि ।
सहस्रपत्रं कमलं भाव्यते सिद्धि(द्ध)योगिभिः ॥ ५२ ॥
दिव्यं वृन्दावनं ध्यात्वा विष्णुर्भूलोकपालकः ।
भौमं वनं च सञ्चिन्त्य ब्रह्मा स्रष्टा श्रुतान्वितः ॥ ५३ ॥
[3]भौतं वृन्दावनं ध्यात्वा शिवः संसिद्धिमागतः ।
एषामेकतमं ध्यात्वा [4]तथैव पुरुषं परम् ॥ ५४ ॥
तरन्ति भवपाथोधिं सर्वे प्राप्तमनोरथाः ।
आबाल्यं [5]तव सख्यं मे प्रिये भक्तासि मे सदा ।
आमूलात् कथयिष्यामि यतो भ्रष्टोऽस्मि तत् शृणु ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे वृन्दावनभ्रष्टविद्याधर-

विद्याधरीप्रश्नः नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥



१. 'हितार्थं''''परम्' इत्यस्य स्थाने 'हितार्थं''''भक्तितत्परम्' इति खण्डितः पाठः—क. । २. ज्ञाते—क. । ३. भौमं—क. । ४. तथैवं—च. । ५. त्वयि—च. ।

द्वितीयोऽध्यायः

नारद उवाच

[1]इत्थं संपृष्टो ब्राह्मण्या ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
अवदद् वदतां श्रेष्ठो गोविन्दैकपरायणः ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच

[1]सर्वाऽधस्ताद् [2]ब्रह्मशिलाधारशक्तिस्वरूपिणी ।
सा द्वितीया परामूर्तिः गोविन्दस्य महात्मनः ॥ २ ॥
तदूर्ध्वे च महाकूर्मः कृष्णस्यांशांशसम्भवः ।
यदूर्ध्वे [3]सखि पातालं स्वर्गाधिकमनोहरम् ॥ ३ ॥
सहस्रवदनो यत्र नागराजो विराजते ।
कूर्मपृष्ठैकदेशे यस्तन्तुवद् दृश्यते सदा ॥ ४ ॥
महातलं तदूर्ध्वे च नागतिर्यक् शिरस्थितम् ।
तलातलं तदूर्ध्वे च तदूर्ध्वे च रसातलम् ॥ ५ ॥
शेषमध्यस्थलस्थं तद् राष्ट्रं सर्वसुखावहम् ।
तदूर्ध्वे सुतलं नाम नानाभूतमनोहरम् ॥ ६ ॥
यत्र दैत्यपतिः श्रीमान् बलिरिन्द्रपदाच्युतः ।
तिष्ठत्यमरसङ्काशः सम्मुखीनगदाधरः ॥ ७ ॥
तदूर्ध्वे वितलं यत्र मत्स्यरूपीजनार्दनः ।
हयग्रीवदैत्यहन्ता तदूर्ध्वमतलं प्रिये ॥ ८ ॥
यत्र तिष्ठति विष्ण्वंशो वराहो धवलाकृतिः ।
शेषचूडामणेरूर्ध्वे शोभते मशको[4]पमः ॥ ९ ॥
कोटियोजनविस्तारं कोटियोजनमुच्छ्रितम् ।
पातालानां च सर्वेषां परिमाणमुदाहृतम् ॥ १० ॥

---

१. 'इत्थं....उवाच' इति नास्ति–च. । २. ब्रह्मशिलाऽन्तर–क. । ३. सखे–च. । ४. यमः–क. ।

---

1. द्वितीयश्लोकादारभ्य ८१संख्यकश्लोकपर्यन्ताः श्रीमद्भागवतमहापुराणे (पञ्चमस्कन्धे १६–२४अध्यायेषु) वर्तन्ते । तत्रत्या विशेषाः पाठा 'भाग०' इति सङ्केतेनात्र संगृहीताः । पृथ्वी-अतल-वितल-सुतल-तलातल-महातल-रसातल-पाताला इति वर्तते लोकवर्णनक्रमस्तत्रत्यः (भाग० ५।२४।७) ।

तामसानां च भूतानां पातालं निलयं ध्रुवम् ।
हिताय भगवांस्तेषां विष्णुर्नानातनुर्वसेत् ॥ ११ ॥
तस्य दन्ते स्थिता पृथ्वी सशैलवनकानना ।
मुस्ताखनर(न)तो लग्ना शोभते मृत्तिका यथा ॥ १२ ॥
त्रिकोणा पृथिवी कान्ते सप्तद्वीपवती सती ।
पीतवर्णा क्षतु(चतुः)चित्रा सप्त[1]सागरमेखला ॥ १३ ॥
विष्णुना क्रोडरूपेण पातालमु(लादु)द्धृता त्वियम् ।
अस्याः संक्षेपतो भागलक्षणं च शृणु प्रिये ॥ १४ ॥
कृष्णेन भक्ता(क्त)रक्षार्थं प्रेषितेन मयेक्षितम् ।
नवभागं पृथिव्या वै नववर्षं विदुर्बुधाः ॥ १५ ॥
इलावर्षं तु भद्राश्वं हरिवर्षं तथैव च ।
केतुमालं रम्यकं च हिरण्मयमथापरम् ॥ १६ ॥
कुरुवर्षं किम्पुरुषं भारताख्यं ततः परम् ।
[1]इलावर्षे च भगवान् भवान्या सहितो भवः ॥ १७ ॥
भगवन्तमनन्ताख्यमुमास्ने(मया) स्वगणैर्वृतः ।
मनुमेतं स जपति निजभावार्थसिद्धये ॥ १८ ॥
[2]ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसङ्ख्यानायाय-
नन्तायाव्यक्ताय नम इति[2] ॥ १९ ॥
पृथ्वीनाभिगतं वर्षं तन्मध्ये स्वर्णपर्वतः ।
सुमेरुः पर्वतस्तस्य पर्वताः सुमनोहराः ॥ २० ॥
नीलः श्वेतः शृङ्गवांश्च रम्यकोऽथ हिरण्मयः ।
हिमवान्निषदो(धो) विन्ध्यो माल्यवान् गन्धमादनः ॥ २१ ॥
स(सु)पार्श्वः कुमुदश्चैव सन्दरो मेरुमन्दरः ।
अन्ये च गिरयो साध्वि रत्नधातुविचित्रिताः ॥ २२ ॥
दिग्विदिक्षु वरारोहे वारिप्रश्रवणोज्ज्वला ।
ब्रह्मलोकान् महादेवी [3]गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ २३ ॥

---

१. इत्यत्र 'च'मातृका समाप्तिः । २. 'ॐ नमो भगवते महीपुरुषायानन्ताय अव्यक्ताय नम इति' इति 'क'संज्ञकमातृकायाम् ।

---

1. इलावृतवर्षवर्णनं श्रीमद्भागवते (५।१६।७-२९; ५।१७) दृश्यते ।

2. भाग. (५।१७।१७)। 3. गङ्गाया उत्पत्तिः, तस्याः विविधभेदाश्च श्रीमद्भागवते (५।१७।१-५), स्वच्छन्दतन्त्रे (१०।१७२-१८१) च वर्णिताः ।

विष्णुपादार्धसम्भूताऽधोऽधमेरोर्भुजं गताः ।
स्वर्गे मन्दाकिनी ख्याता वंक्षुः पूर्वे च भद्रकाः(का) ॥ २४ ॥
उत्तरे यशस्विनी पश्चाद् दक्षिणेऽलकनन्दका ।
भोगवती च पाताले सर्वेषामघनाशिनी ॥ २५ ॥
नदा नद्यो बहुविधा वर्षे वर्षे सुशोभनाः ।
पर्वतानां चतुर्दिक्षु राजन्ते तरवोऽमलाः ॥ २६ ॥
चत्वारः पर्वताकाराः सहस्रयोजनोच्छ्र्याः ।
चूतजम्बूनीपवटो:(टाः) पूर्वादिषु यथाक्रमम् ॥ २७ ॥
देवोद्यानानि चत्वारि चतुर्दिक्षु वरानने ।
नन्दनाख्यं वनं पूर्वे शक्रप्रियकरं परम् ॥ २८ ॥
वनं चैत्ररथं नामा(म) दक्षिणे दक्षिणे शृणु ।
वैभ्राजकं पश्चिमे च सर्वतोभद्रमुत्तरे ॥ २९ ॥
[1]ततो भद्राश्ववर्षं तु मेरोः पूर्वे व्यवस्थितम् ।
तत्र भद्रश्रवा नाम धर्मपुत्रो महायशाः ॥ ३० ॥
हयग्रीवं निजजलैर्यजत्यघविनाशनम् ।
मन्त्रेणानेन कृष्णांशं स्रवन्त्यमललोचने ॥ ३१ ॥
[2]ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नमः ॥ ३२ ॥
मेरोरीशानभागे तु [3]हरिवर्षं सुशोभनम् ।
यत्र वै नृहरिं देवं प्रह्लादोऽर्चति नित्यदा ॥ ३३ ॥
हिरण्यकशिपोः पुत्रो महाभागवतोत्तमः ।
जपत्येवं महामन्त्रमेकान्तहृदयो मुनिः ॥ ३४ ॥
[१]ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आवि-
राविर्भव वज्रनखवज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस
ॐ स्वाहा । अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम्[4] ॥ ३५ ॥

---

१. 'ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजसे स्वाविराविर्भववज्रनखदंष्ट्रा-युध्वयकर्माशयात्रुं तमो ग्रसन्तु स्वाहा । अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठ ॐ चौं चौं ह्रौं स्वाहा' इति 'क'संज्ञकमातृकायाम् ।

---

1. भद्राश्ववर्षवर्णनं तत्रैव (५।१८।१) ।

2. भाग. (५।१८।२) ।

3. हरिवर्षस्य विवरणं श्रीमद्भागवते (५।१८।१७) इति ।

4. भाग. (५।१८।८) ।

सुमेरोरुत्तरे [1]केतुभा(मा)ले र्ल(ल)क्ष्मीर्हरिप्रिया ।
कामदेवं जगद्बीजभूतमर्चति नित्यशः ॥ ३६ ।
लक्ष्मीः समानरूपाभिर्नारीगिनिस(भिरिद)मद्भुतम् ।
मनुं त्रिभुवनाकर्षं जपत्येकान्तमानसा ॥ ३७ ॥

[१]ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषै-र्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलायच्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात्[2] ॥ ३८ ॥

ततो मेरोर्वायुकोणे [3]रम्यके वर्षसत्र(त्त)मे ।
भगवन्तं मत्स्यरूपमर्चन्ति तत्र पूरुषाः ॥ ३९ ॥
स्तुवन्ति मत्स्यसूक्तेन तत्तद्देशनिवासिनः ।
जपन्ति च महामन्त्रं मत्स्यसन्तोषहेतवे ॥ ४० ॥
[२]ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय
प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः[4] ॥ ४१ ॥
मत्स्यावतारो द्विविधः कृतो भगवता पुरा ।
एकः पातालभवने मत्स्येन्द्रः स्वर्णलोहितः ॥ ४२ ॥
वराहस्य [४]वधार्थाय स्वयमेवागतः प्रभुः ।
अयं सुवर्णशफरी[४]रूपो वर्षे च रम्यके ॥ ४३ ॥

---

१. 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषविवक्षितात्मने आकृतेनां विनीतां च विशेषाणां वाधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयायात्ममया-याऽमृतमयाय सर्वमयाय सहस्रतेजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयान्' इति 'क'संज्ञकमातृकायाम् । २. 'ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणाय ओजसे बलाय महामत्स्याय नमः' इति 'क'संज्ञकमातृकायाम् । ३. अत्र 'ग'मातृका प्रारभ्यते । ४. 'रूपो''''रम्यके' नास्ति—ग. ।

---

1. केतुमालवर्षवर्णनम् (भाग. ५।१८।१५-१७) ।

2. भाग. (५।१८।१८) ।

3. अस्य विवरणं श्रीमद्भागवते (५।१८।२४) प्राप्यते ।

४. भाग. (५।१८।२५) ।

[1]चाक्षुसाख्ये मनौ सत्यव्रतार्थं योऽवतीर्णवान् ।
ततो [1]हिरण्मयो [2]मेरोः पश्चाद् दिशि शुभानने ॥ ४४ ॥
कूर्मरूपधरं देवमर्घ्यमर्चति सर्वदा ।
तत्रत्य पुरुषैः सार्धं मनुमेतं प्रजल्पति ॥ ४५ ॥
[3]ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुण-
विशेषणायानुपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो
भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते[2] ॥ ४६ ॥
कूर्मावतारो भगवान् द्विविधः [4]सत्यविग्रहः ।
एको महान् ब्रह्मशिलारूढो ब्रह्माण्डकोटिधृक् ॥ ४७ ॥
समुद्रमथनार्थं तु मन्दराद्रिधरोऽप्ययम् ।
मेरोस्तु नैर्ऋते भागे [3]कुरुवर्षे वसुन्धरा ॥ ४८ ॥
कुरुभिः सह देवेशं वराहं नित्यमर्चति ।
यं यज्ञपुरुषं स्तौति महामन्त्रेण मेदिनी ।
यस्यैव जपमात्रेण पार्थिवत्वं नृणां भवेत् ॥ ४९ ॥
[4]ॐ नमो भगवते मन्त्रतन्त्रलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महा-
ध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय
त्रियुगाय नमस्ते[5] ॥ ५० ॥
सुमेरोर्दक्षिणे भागे वर्षे [5]किम्पुरुषे कपिः ।
हनूमान् वायुपुत्रोऽयमञ्जनाकुल[6]रञ्जनः ॥ ५१ ॥

---

१. चाक्षसाख्ये–ग. । २. 'मेरो····दिशि' नास्ति–ग. । ३. 'ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वगुणविशेषणाय नमो उपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमोऽवस्थानाय नमस्ते' इति 'क'संज्ञकमातृकायाम् । ४. सत्त्वविग्रहः–क. । ५. 'ॐ नमो भगवते मन्त्रतन्त्रलिङ्गाय क्रतवे महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते' इति 'क'संज्ञकमातृकायाम् ६. । रेजनः–क. ।

---

1. हिरण्मयवर्षवर्णनं श्रीमद्भागवते (५।१८।२९) ।
2. भाग. (५।१८।३०) ।
3. कुरुवर्षवर्णनं श्रीमद्भागवते (५।१८।३४) ।
4. भाग. (५।१८।३५) ।
5. किम्पुरुषवर्षवर्णनं श्रीमद्भागवते (५।१९।१-२) इति ।

सीतया सहितं देवं श्रीरामं लक्ष्मणाग्रजम् ।
उपास्ते किन्नरैः सार्धं गन्धमादनपर्वते ।
स्वयं [1]जपति देवस्य मनुमेतं महाबलः ॥ ५२ ॥
[2]ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय
नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय
नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः[1] ॥ ५३ ॥
सुमेरोरग्निकोणे [3]च [2]भारते वर्षसप्त(त्त)मे ।
नरनारायणं देवं नारदः समुपास्ति [4]च ॥ ५४ ॥
व्यासोऽपि यत्र भगवान् श्रीमद्बदरिकाश्रमे ।
ब्रह्माक्षरं जपन् मन्त्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ५५ ॥
[5]ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरताना[6]त्म्याय
नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय
परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नमः[3] ॥ ५६ ॥
सुमेरोरुत्तरे भागे मध्ये तु लवणाम्बुधेः ।
विष्णुलोको महान् प्रोक्तः सलिलान्तरसंस्थितः ॥ ५७ ॥
अत्र स्वपिति धर्मान्ते देवदेवो जनार्दनः ।
लक्ष्मीसहायः सततं शेषपर्यङ्कसंस्थितः ॥ ५८ ॥
मेरोर्दक्षिणदिग्भागे जम्बूवृक्षोऽतिशोभनः ।
अनेकयोजनोच्छ्रायो जम्बूद्वीपस्तदाख्यया ॥ ५९ ॥

---

१. जयति–क. । २. 'ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय आर्यलक्षणशीलव्रयाय नम उपशिक्षितात्मने उपशिक्षितलोकाय नमः साधुवादनिकर्षणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः' इति 'क'संज्ञकमातृकायाम् । ३. 'च' इत्यस्य स्थाने 'व'–क. । ४. 'च' इत्यस्य स्थाने 'तु'–ग. । ५. ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसगुरवे आत्मरामाधिपतये नमो नमः' इति 'क'संज्ञकमातृकायाम् । ६. 'त्म्याय' इत्यारभ्य 'जगदीश्वरम्' इति ८८ संख्यकश्लोकपर्यन्तं पाठो नास्ति–ग. ।

---

1. भाग. (५।१९।३) ।
2. भारतवर्षवर्णनम् (भाग. ५।१९।९-१०) ।
3. भाग. (५।१९।११) ।

कर्मभूमिरयं भद्रे लवणोदेन वेष्टितः ।
प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुरत्राधिपो महान् ॥ ६० ॥
अस्मिन् वर्षे महाभागे [1]पर्वतान् शृणु कथ्यते ।
मल्ल(ल)यो मङ्गलप्रस्थो मैन्यान्य(नाक)स्त्रिकु(कू)टस्तथा॥६१॥
ऋषभः [1]कुक्कुटः [2]कोल्लः सद्यो(ह्यो) देवगिरिः प्रिये ।
श्रीशैलोऽपि ऋश्य(ष्य)शृङ्गो महेन्द्रो विन्ध्य एव च ॥ ६२ ॥
वारिधार[:] शुक्रि(क्ति)मांश्च पारिपा(या)त्रस्तथैव च ।
ऋक्षो द्रोणश्चित्रकूटो नीलो रैवतकस्तथा ॥ ६३ ॥
गोवर्धनस्तु ककुभ इन्द्रनी(की)लगिरिस्तथा ।
गोकामुखः कामगिरिः प्राधान्यात् कथितास्त्विमे ॥ ६४ ॥
एषां नित्यं व(वै) प्रभवा नदा [3]नद्यश्च शोभनाः ।
पुनन्ति भारतं वर्षं तासां नाम शृणु प्रिये ।। ६५ ।
चन्द्रवंशा(श्या) ताम्रपर्णी कृतमालावटोदका ।
वैहायसी भीमरथी कावेरी च पयस्वती(नी) ॥ ६६ ॥

---

१. कूटकः—भाग. ।

---

1. पर्वतानां विवरणं तत्रैव (५।१९।१६) दृश्यते, यथा—'भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्ब-प्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसङ्ख्याताः' इति ।

2. अयं पाठो भाग. (५।१।१६) प्राचीनहस्तलेखेन समर्थ्यते ।

3. नदीनां विवरणं (भाग. ५।१९।१८) एवमेव—'चन्द्रवसा(वंश्या) ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करवर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुरन्धः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिर्ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्व(व)ती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः' इति ।

वेणा च कृतवेणा च तुङ्गभद्रा च नर्मदा ।
सुरसा शर्करावर्ता ऋषिकुल्या महानदी ॥ ६७ ॥
गोदावरी च निर्विन्ध्या पयोष्णी कौशिकी तथा ।
मन्दाकिनी गोतमी(मती) च यमुना च सरस्वती ॥ ६८ ॥
तापी रेवा सुखोभा(षोमा) व(च) चन्द्रभागा मरुद्वृधी(धा) ।
चर्मण्वती चौन्व(रोध)वती वितस्ता सरयूस्तथा ॥ ६९ ॥
वेदस्मृतिः शतद्रुश्च विश्चा(श्वा)सिक्री तथैव च ।
आत्रेयी करतोया च नद्य एताः सुशोभना ॥ ७० ॥
नदा अन्धश्च शोणश्च लौहित्यो भैरवादयः ।
अस्मिन् भारतवर्षे च [1]उपद्वीपान् वदाम्यहम् ॥ ७१ ॥
स्वर्णप्रस्थं चन्द्रमर्कमावर्तकं तथा परम् ।
सिंहलं [2]मन्दहरिणं पाञ्चजन्यं तथैव च ॥ ७२ ॥
लङ्कामिति विजानीहि द्वीपान् भारतमध्यगान् ।
जम्बूद्विगुणविस्त[ा]रः [3]प्लक्षद्वीपो विराजते ॥ ७३ ॥
वृत इक्षुरसोदेन समुद्रेण महोर्मिना ।
नद्यो नदाः पर्वताश्च सर्वतः सन्त्यनेकशः ॥ ७४ ॥
आसीत् तत्राधिपो नाम्नेध्मर्वा(बा)हुर्धर्मविग्रहः ।
अनेकयोजनायामः प्लक्षस्तत्र विराजते ॥ ७५ ॥
तन्नाम्ना द्वीपराजोऽयं सुखदः सर्वदेहिनाम् ।
ततस्तु [4]शाल्मलीद्वीपो द्विगुणः प्लक्षतः प्रिये ॥ ७६ ॥
सुरोदेन समुद्रेणावृतो यत्रास्ति शाल्मलिः ।
अनेकयोजनोच्छ्रायो बहुयोजनविसृ(स्तृ)तः ॥ ७७ ॥
तत्र प्रियव्रतसुतो रोचनोऽधिपतिः स्मृतः ।
तत्र प्रिये [5]कुशद्वीपे घृतोदेनावृतः शुभे ॥ ७८ ॥

---

1. उपद्वीपानां विवरण (भ.ग. ५।१९।३०) यथा—'तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणको मन्दरहरिणो पाञ्चजन्यः सिंहलो लङ्केति ।'

2. अयं पाठो भागवतमहापुराणस्य प्राचीनहस्तलेखेन समर्थ्यते ।

3. प्लक्षद्वीपस्य विवरणं श्रीमद्भागवते (५।२०।१-७) दृश्यते ।

4. शाल्मलीद्वीपवर्णनं तत्रेव (५।२०।८-१२) दीयते ।

5. कुशद्वीपस्यवर्णनं तत्रेध (५।२०। १३-१७) दृश्यते ।

यत्राग्निप्रतिमः श्रीमान् कुशस्तवो विराजते ।
तन्नाम्ना द्वीपवर्योऽयं नानासुखसमृद्धिमान् ॥ ७९ ॥
हिरण्यरोमा(रेता) तस्येशः प्रियव्रतसुतो बली ।
नदा नद्यः पर्वताश्च बह्वो हि हिरण्यमयः(याः) ॥ ८० ॥
[1]क्रौश्वद्वीपस्ततो भद्रे क्षीरोदेनावृतो बलः ।
क्रौश्वनामा यत्र राजा धृतपृष्टः(ष्ठः) सुरोपमः ॥ ८१ ॥
मेरोक्त(स्तु) पूर्वदिग्भागे मध्ये क्षीरार्णवस्य च ।
तत्रापि चतुरोमासान् सुप्तस्तिष्ठत्यसौ हरिः ॥ ८२ ॥
नदा नद्यः पर्वताश्च सन्त्यत्र बहुभिर्गुणैः ।
[2]शाकद्वीपस्तत्परस्ताद् दधिमण्डोदकेन वे(वै) ॥ ८३ ॥
सिन्धुना वेष्टितो यत्र शाको नाम महांस्तरुः ।
त्रिशल्लक्षयोजनोर्ध्वो रत्र(ह्यत्र) धातुर्वि(वि)निर्मितः ॥ ८४ ॥
राजा मेध्य(धा)तिथिर्यत्र प्रियव्रतसुतः प्रियः ।
तस्माद् द्विगुणविस्तारः [3]पुष्करद्वीप उत्तमः ॥ ८५ ॥
सौवर्णं पुष्करं यत्र पुण्यं ब्रह्मासनं प्रिये ।
अनेकयोजन[ा]यामं सर्वभूतमनोहरम् ॥ ८६ ॥
प्रियव्रतसुतस्तत्र राजा सर्वजनप्रियः ।
शुद्धोदकसमुद्रेण वेष्टितं सर्वकामिकम् ॥ ८७ ॥
नदा नद्यः पर्वताश्च बहवः सन्ति तत्र वै ।
तत्रस्थाः पुरुषा नित्यं ब्रह्माणं जगदीश्वरम् ।
मनुमेतं जपन्तो वै यजन्ति ज्ञानविग्रहाः ॥ ८८ ॥
[4]ॐ यत् तत् कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जना अर्च-
यन्ति भेदेनैकान्तमद्वैतं तस्मै नमो भगवते नमः ॥ ८९ ॥
इति ते कथितं देवि द्वीपवर्षादिकं मया ।
लोकालोकस्तत्परस्ताद् गिरिर्धरणिवेष्टितः ॥ ९० ॥

1. क्रौश्चद्वीपस्य विवरणं तत्रैव (५।२०।१८-२३) ।
2. शाकद्वीपवर्णनं तत्रैव (५।२०।२४-२८) ।
3. पुष्करद्वीपस्य तत्रैव (५।२०।२९-३३) ।
4. यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत् ।
एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नम इति ॥ (भाग. ५।२०।३३) ।

भित्तिवद् राजते भूमेः संस्थानं चारुहासिनि।
शुद्धोदकोत्तरे तीरे श्वेतो नामाऽन्यभूधरः॥ ९१॥
तत्र तिष्ठति देवेशो विष्णुर्लक्ष्मीसहायवान्।
भूर्लोकः कर्मभूमिश्च राजसानां महात्मनाम्॥ ९२॥
स्थानं तद् वर्णितं भद्रे तदूर्ध्वे यन्निशामय।
वृक्षाग्रात् पर्वताग्राच्च पादागम्यान्मही[1]तलात्॥ ९३॥
पञ्चाशद्योजनोर्ध्वे च वहुरूपाः सहस्रशः।
प्रेतभूतपिशाचाद्या मांसासृक्पूयभोजिनः॥ ९४॥
यथा वराङ्गि [2]ग्रामान्ते [3]निवसन्ति कुपूरुषाः।
स्वर्गस्यान्ते तथा भ्रष्टाचारास्ते देवयोनयः॥ ९५॥
सहस्राणां च पञ्चाशद्योजने गुह्यकाश्चिरम्।
धर्माधर्मपरिज्ञानविहीना निवसन्ति तैः (वै)॥ ९६॥
सदैव सुखिनः श्यामा लोमशा दीर्घमन्यवः।
लम्बोदरौष्ठाः पुष्टाङ्गा हृष्टपुष्टजनप्रियाः॥ ९७॥
शौण्डिका नगरस्यान्ते यथा दुर्धरविग्रहाः।
तथा [4]श्च(च)रन्ते [5]नियतं ते ध्रुवं देवयोनयः॥ ९८॥
ततः सुमुखि गन्धर्वा दिव्यगानविलासिनः।
नानायन्त्रकलाभिज्ञाः कामदेवस्वरूपिणः॥ ९९॥
[6]सहस्रं च (चैव) पञ्चाशदूर्ध्वे ते निवसन्ति वै।
यथा पुरस्य निकटे राजन्ते नृत्यकोविदाः॥ १००॥
नर्तकाः स्वर्गनिकटे देवानां गायना(का) इमे।
तदूर्ध्वे [7]सार्धलक्षे च निवसन्ति महाव्रताः॥ १०१॥
विद्याधरा महाभागे नानाविद्याविशारदाः।
वन्दिता वन्दिनः श्रीमन्महेन्द्रस्तुतिकारिणः॥ १०२॥
नक्षत्रस्योपरि ततो[8]ऽप्सरोलोकोऽतिशोभनः।
सर्वेषां वाञ्छनीयो यो विचित्रसुखकाङ्क्षिणाम्॥ १०३॥
[9]तत्राध्वि प्रथना [10]जाता लक्षसंख्या वराङ्गना।
देववेश्या नृत्यगीतकुशला मदिरेक्षणाः॥ १०४॥

---

१. तल्लान्-क। २. ग्राभान्ते-क। ३. विसन्ति-क। ४. स्व-ग। ५. निधनं-क। ६. सहस्रां-ग। ७. सार्द्धं-क। ८. ऽत्तरो-ग। ९. तन्त्राछि-क। १०. ज्ञाता-क।

मोहयन्ति [1]मोहन्या दृष्ट्वैव देवदानवान् ।
ये चेन्द्रपदमिच्छन्ति तपोयोगबलादिना ॥ १०५ ॥
कुर्वन्ति लीलया तेषां तपोभङ्गं [2]तपस्विनाम् ।
श्रेष्ठा तासामुर्वशी च वशीकृतजगत्त्रया ॥ १०६ ॥
ततो[3]ऽन्या विप्रचित्ताख्या सर्वचित्तविमोहिनी ।
अन्या तिलोत्तमा काचित् सर्वभूतमनोहरा ॥ १०७ ॥
तिलं तिलं समाहृत्य रूपाणां विधिना कृता ।
रम्भाद्याश्च वरारोहे यदर्थं मम किल्विषम् ॥ १०८ ॥
नगरान्ते राजवेश्या यथा चार्वङ्गिसंस्थिता ।
तथैवाप्सरसः सर्वाः स्वर्गान्ते चारुभूषणाः ॥ १०९ ॥
ततो लक्षत्रयोर्द्धे(र्ध्वे) च यमलोकोऽतिशोभनः ।
पुरी संयमनी तत्र सर्वसंयमकारिणी ॥ ११० ॥
निवसन्ति महात्मानो राजानः पुण्यकर्मिणः ।
मुनयो देवगन्धर्वा धर्मराजप्रियङ्कराः ॥ १११ ॥
गोविन्दसेवाकुशला हरिनामपरायणाः ।
धर्माधर्मविचारज्ञो यत्र राजास्ति धर्मराट् ॥ ११२ ॥
चतुर्भुजः श्यामलाङ्गः कृष्ण[4]पूजापरायणः ।
पापिनस्तं च पश्यन्ति विकटास्यं भयङ्करम् ॥ ११३ ॥
श्रीपदा(स्पर्शात्) [5]प्रोर्ध्वरोमाणं कालदण्डधरं जडम् ।
तेनैव गीतं गोविन्दनामश्रुतिरसायनम् ॥ ११४ ॥
शृण्वन्ति धीराः संशुद्धाः साधवः कृष्णलालसाः ।
आनयैनं बन्धयैनं पातयामुं च [6]पापिनम् ॥ ११५ ॥
पादं [7]विन्ध्यस्य पापस्य करं [8]विन्ध्यस्य दुर्मतेः ।
इत्यादिकं पापिनस्तच्छ्रुण्वन्त्यज्ञानमोहिताः ॥ ११६ ॥
अत ऊर्ध्वे भुवर्लोकमूर्ध्वे वै लक्षयोजनैः ।
वामनाख्यो वसेद् विष्णुर्बलिर्येनैव याचितः ॥ ११७ ॥
लक्ष्म्या सेवितपादाब्जः सर्वदेवनिषेवितः ।
तस्योपरि सहस्रांशुर्योऽसौ साक्षात् स्वयं हरिः ॥ ११८ ॥

---

१. विमोहत्या दृष्ट्वैव–क । २. तपरिचनःम्–क । ३. ऽन्य–क । ४. पूजां–ग । ५. प्रोर्द्धरोमाणां–क । ६. पापिनाम्–क । ७. छिन्ध्यस्य–ग । ८. छिन्ध्यस्य–ग. ।

[1]भुवर्लोकस्य सीमान्ते ज्योतीरूपो विराजते ।
सप्तसमि(प्ति)समारूढः सप्तलोकैकपावनः ॥ ११९ ॥
यन्नामस्मृतिमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
एकचक्ररथान्तस्थं जपाकुसुमसन्निभम् ॥ १२० ॥
पद्मयुग्माभयवरान् विवृण्वन्तं कराम्बुजैः ।
ध्यायन्ति योगिनः सर्वे यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ।
मन्त्रेणानेन धर्मज्ञे सर्वधर्ममहेश्वरम् ॥ १२१ ॥

ॐ ह्रां ह्रीं सः ।

ॐ [2]आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं
मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति
भुवनानि पश्यन्[1] ॥ १२२ ॥
गायत्रीं गायतः पुंसो ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
श्रीमद्गोविन्दभक्तस्य मुक्तस्य शुद्धचेतनः(सः) ॥ १२३ ॥
कालचक्रस्य सूर्यस्य रथचक्रस्य मध्यतः ।
गतिर्भवति नान्यस्य भक्तिहीनस्य दुर्मतेः ॥ १२४ ॥
स्वर्गलोकस्तदुपरि यत्र देवः पुरन्दरः ।
सर्वेषामेव देवानामधिपोऽदितिनन्दनः ॥ १२५ ॥
सुमेरोः पूर्वदिग्भागे वासस्तस्य महात्मनः ।
चतुर्दन्ता गजा यस्य माद्यन्ति द्वारपार्श्वतः ॥ १२६ ॥
ऐरावताद्य[ा]: प्राणेशि करिण्यश्च महाबलाः ।
उच्चैःश्रवा नाम हयः पय(व)मानरयो महान् ॥ १२७ ॥
मन्दुरा अधितिष्ठन्ति तद्वंशप्रभवाः परे ।
कारिकाविलसद् वक्त्रीश्वासभूषणभूषिताः ॥ १२८ ॥
अपर्यापितपर्याणां(णा) घण्टाघर्घरनादिताः ।
श्यामकर्णाश्चारुवर्णा है(हे)षारवभयङ्कराः ॥ १२९ ॥
हयराजा विराजन्ते राजमानाः सहस्रशः ।
पञ्चैव देवतरवो दिव्यरूपं(प)धराश्चिरम् ॥ १३० ॥

---

१. अत्र 'ग'मातृका खण्डिता । २. आकृष्णो न रजसा—क. ।

---

1. ऋग्वेद (१।३५।२)।

विकसत्पुष्पनिचया यथेप्सितफलप्रदाः ।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च मन्दारः पारिजातकः ॥ १३१ ॥
हरिचन्दनमित्येते रत्नानि प्रवस(सुव)न्ति वै ।
प्रयच्छन्ति सदार्थिभ्यो वस्त्रालङ्करणादिकम् ॥ १३२ ॥
चन्द्रकान्तशिलाजालच्युतमात्रामलं जलम् ।
पिवन्ति देवतास्तत्रामृततुल्यं वरानने ॥ १३३ ॥
अमृतं भुज्यते सर्वं सर्वा(र्वं)भक्ष्योत्तमोत्तमम् ।
एनं रसायनं भक्ष्यं भोज्यं चोष्मं(ष्यं) तथैव च ॥ १३४ ॥
ते ह्यंचवंमि(स्रवन्ति) महादेवि यच्छन्ति कामधेनवः ।
यत्र श्रीनन्दनोद्यानं देवकन्याः सहस्रशः ॥ १३५ ॥
सङ्गीतनिपुणा नित्यं नृत्यगीतपरायणाः ।
पुलोमयां(जां) शचीं देवीमिन्द्राणीं कनकप्रभाम् ॥ १३६ ॥
सेवन्ते मधुरालापैः [1]स्वरङ्गन(ण)गताङ्गनाः ।
कल्पद्रुमतले देव्यो गृहमेधीयकर्मभिः ॥ १३७ ॥
यत्र स्फटिककुडयां च [2]अधोवक्त्रा निजेक्षणे ।
पद्मभ्रान्त्या निरीक्षन्ति(न्ते) हसद्वक्त्रा पराभवन् ॥ १३८ ॥
सर्वदेवगणैर्युक्ता सुधर्मा नाम वै सभा ।
गणका नात्र विद्यन्ते चिन्ताविद्याविशारदाः ॥ १३९ ॥
चिन्तामणिं गले बध्वा सर्वं जानन्ति तत्रगाः ।
अमरावती पुरी ह्येषा विश्वकर्मविनिर्मिता ॥ १४० ॥
दत्ता भगवता पूर्वं शक्राय ब्रह्मणा प्रिये ।
सुमेरोरग्निदिग्भागे पुरी ज्योतिर्मयी शुभा ॥ १४१ ॥
अग्निर्वैश्वानरो देवः सर्वदेवाग्रभुग् विभुः ।
हवनीयगा(यैर्गा)र्हपत्यैः क्रव्यादैरग्निवृत्ततः(भिर्वृतः) ॥ १४२ ॥
पुरा यमस्य सदनं स्वर्लोके विश्वकर्मणा ।
कृता तत्र स्थितिर्नैव गौरवेण भयेन च ॥ १४३ ॥
समासन परित्यज्य तदधो वसतिः कृता ।
भुवर्लोके पितुः पादसमीपे वामनस्य च ॥ १४४ ॥

---

१. 'स्वरैर्गेयैर्वराङ्गना' इति पाठः स्यात् । २. 'पद्मभ्रान्ता निजेक्षणे' इति पाठान्तरम् ।

पितर(ताऽ)स्य [च] जगच्चक्षुः पितृव्यस्तु पुरन्दरः ।
हेतुना तेन तदधः पुरी संयमनी प्रिये ॥ १४५ ॥
तद्दक्षिणे पुरी चान्या राक्षसानां महात्मनाम् ।
क्राव्यादीति च विख्याता मांसास्थिरक्तपूरिता ॥ १४६ ॥
पुरा ब्रह्मतनोर्जाता तस्तनुं(या तनुः) रक्षिता विभोः ।
भोक्तुमिच्छोरन्यतमा स रक्षो नाम दिक्पतिः ॥ १४७ ॥
विष्णुना निर्जितः पूर्वं पातालतलमाविशन् (त्) ।
दत्वा कन्यां विश्रवसे पुलस्त्यतनयाय च ॥ १४८ ॥
मुनिवीर्यात्तत्र (स ?) जातान् पुत्रांस्त्रीपु(नु)[प]लभ्य च ।
रावणं कुम्भकर्णं च विभीषणमिति प्रिये ॥ १४९ ॥
ते च कृत्वा तपो घोरं प्रसाद्य जगतां पतिम् ।
ब्रह्माणं परमैश्वर्यं बलमायुर्यथाक्रमम् ॥ १५० ॥
प्रापुर्बलाद् विनिर्जित्य ज्येष्ठं भ्रातरमात्मनः ।
लङ्कामधिवसद् राजा रावणो लोकरावणः ॥ १५१ ॥
ब्रह्मदत्तां पुरीं यक्षेश्वरायैलविलाय च ।
या दिग्गतोज्ज्वला मेरोः कान्ते दक्षिणपश्चिमा ॥ १५२ ॥
तत्र वासो रक्षसां वै सुकृतो विश्वकर्मणा ।
विष्णुत्रासाच्च्युतास्तस्मात् स्वर्गलोके (नि ?)वसन्ति ते ॥१५३॥
रावणः कुम्भकर्णश्च द्वावेतौ हरिकिङ्करौ ।
विष्णुना रामरूपेण निहतौ स्वेन कर्मणा ॥ १५४ ॥
पुनर्जन्मान्तरे तेन वैरात् स्वपदमागतौ ।
र[ा]क्षसाधिपतिः श्रीमान् रामभक्तो विभीषणः ॥ १५५ ॥
आस्ते लङ्केश्वरः सुष्ठु राक्षसेन्द्रगणैर्वृतः ।
सुमेरोः पश्चिमे भागे वसन्ति वरुणस्य वै ॥ १५६ ॥
वारुणीति च विख्याता पुरी सर्वगुणैर्युता ।
जलानामधिपो देवः प्रचेताः पाशधृग् विभुः ॥ १५७ ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशश्चन्द्रबिम्बसमानतः(नः) ।
ततो गन्धवती दिव्या वायवी नगरी शुभे ॥ १५८ ॥
तत्राधिपो जगत्प्राणः पवनः कश्यपात्मजः ।
ततो लङ्का नाम पुरी स्वयं रुद्रेण निर्मिता ॥ १५९ ॥

दत्ता भक्ताय मित्राय कुबेराय महात्मने ।
लङ्का भ्रातृविरोधेनेत्यलकां वसति यक्षराट् ॥ १६० ॥
यत्र क्रूरैर्यक्षगणैर्धनानामधिपः प्रभुः ।
पुरा ब्रह्मवपुः पुत्रः स्वयं खादितुमुद्यतः ॥ १६१ ॥
स यक्षस्तत्कुले जाता कन्या चेडविडा शुभा ।
मुनिवीर्यात् तया लब्धः कुबेरो नाम वै सुतः ॥ १६२ ॥
तद्दक्षिणे महाभागे ऐशानी रुद्रवल्लभा ।
पार्वत्या सहितो यत्र रुद्रो वसति सर्वदा ॥ १६३ ॥
इत्यष्टलोकपाला मे कथिता लोकभावनाः ।
येषा स्मरणमात्रेण दुःखग्रामाद् विमुच्यते ॥ १६४ ॥
एते तु सप्तवह्न्याद्या लोकपाला महौजसः ।
यजन्ति मन्त्रतन्त्राभ्यां महेन्द्रममराधिपम् ॥ १६५ ॥
[1]ॐ नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्तिवृत्रहन् ॥ १६६ ॥
[1]अतो लक्षद्वयादूर्ध्वे चन्द्रलोकोऽतिशोभनः ।
योऽत्रिनेत्रसमुद्भूतः क्षीरोदार्णवसम्भवः ॥ १६७ ॥
नक्षत्रमण्डलं सोमादुपरिष्टाद् विलक्षितः ।
उडुमण्डलतः सौम्यः उपरिष्टाद् विलक्ष(क्षि)तः ॥ १६८ ॥
गुरुदारेषु यो जातस्तारायामतिसुन्दरः ।
यस्मिन् जाते देवगणा बभूवुर्निष्प्रभाः क्षणात् ॥ १६९ ॥
द्विलक्षे तु बुधात् काव्यः शम्भुना मिलितः पुरा ।
लिङ्गद्वारा शुक्ररूपो भूत्वा यः पुत्रतां गतः ॥ १७० ॥
शुक्राद् भौमो द्विलक्षे तु [2]सुरेज्यो [3]नियुत द्वये ।
भौमेज्ययोर्मध्यभागे वैकुण्ठो भगवान् हरिः ॥ १७१ ॥
लक्षत्रये गुरोः [4]सौरिः [5]सौरेर्लक्षद्वयोपरि ।
सप्तर्षयो ध्रुवस्तस्मात् पञ्चलक्षे व्यवस्थितः ॥ १७२ ॥

१. 'ॐ न किं इन्द्रत्वादुत्तरो न क्याह्यायोस्त्रि वृत्रहन्' इति 'क'संज्ञकमातृकायाम् । २. अत्र 'ङ'मातृका प्रारभ्यते । ३. तियुत—क । ४. शौरिः—क. । ५. शौरे—क ।

1. चन्द्रलोकादारभ्य ध्रुवलोकपर्यन्तं विवरणं किञ्चिदन्तरेण (भाग. ५।२२।८-१७;।५।२३।१-९) इत्यत्र दृश्यते ।

यः पञ्चहायनो बालः स भ्रातुर्वाक् शरार्दितः ।
गत्वा मधुवनं विष्णु[1]मयजन्मनुनाऽमुना ॥ १७३ ॥
ॐ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ।
इमं मन्त्रं प्रजपते बालकाय महौजसे ॥ १७४ ॥
सत्यलोकात् समागत्य पृश्निगर्भो हरिः स्वयम् ।
अदात्तस्मै निजपदं [2]स्वर्गिना(णा)मुपरि स्थितम् ॥ १७५ ॥
[3]तत्रस्थं पुरुषं साक्षाद[4]जितं परमेश्वरम् ।
विष्णवंशमव्ययं शान्तो यजेदेकमना ध्रुवः ॥ १७६ ॥
योऽजितो नाम भगवान् निर्मथ्य क्षीरनीरधिम् ।
अपाययत् सुरान् सर्वानमृतं दिव्यभोजनम् ॥ १७७ ॥
ध्रुवलोके महाभागे स वै वसति [5]नित्यदा ।
आध्रुवं स्वर्गलोको[6]ऽयं यत ऊर्ध्वं शृणु प्रिये ॥ १७८ ॥
महर्लोकः क्षितेरूर्ध्वमेककोटिप्रमाणतः ।
यत्र तिष्ठति यज्ञेशो नृवराहः स्वयं प्रभुः ॥ १७९ ॥
[7]धरणीधारणार्थं तु स्थापयित्वा स्वकां तनुम् ।
अतले च हिरण्याक्षं हत्वा देवैः प्रपूजितः ॥ १८० ॥
तस्योपरि हयग्रीवो भगवान् भूतभावनः ।
[8]वसेत् कोटिद्वयोर्ध्वे च जनो लोके सुखावहे ॥ १८१ ॥
सनन्दाद्या महात्मानो ब्रह्मणः प्रतिमूर्तयः ।
यजन्ति ज्ञानयज्ञेन हयशीर्षं जनार्दनम् ॥ १८२ ॥
ततः परं तपो[9]लोको भूमेः कोटिचतुष्टये ।
योजनानां च सुभगे यत्रास्ते स त्रिविक्रमः ॥ १८३ ॥
पुरा यो दानवेन्द्रस्य [10]वाग्धूलेरध्वरं ययौ ।
[11]धृत्वा वै वामनं रूपं धुन्धुमारस्य वै तथा ॥ १८४ ॥
बलेरप्यध्वरं गत्वा त्रिधा कृत्वा [12]निजां तनुम् ।
पाताले च भुवर्लोके वामनोऽत्र त्रिविक्रमः ॥ १८५ ॥
तं [13]नु त्रिविक्रमं देवं तपोलोकनिवासिनः ।
यजन्ति ज्ञानयज्ञेन तत ऊर्ध्वं च यत् शृणु ॥ १८६ ॥

---

१. मग्रजन्मनुताऽमुना-क. । २. सुधीना-ङ. । ३. तत्रस्थः-ङ. । ४. हितं-ङ. । ५. नित्पदा-क. । ६. यमत-ङ. । ७. धरिगी-ङ. । ८. वत्से-क. । ९. लोके-क. । १०. वाष्कलेरध्वनं-ङ. । ११. कृत्वा-क. । १२. निजं-क. । १३. तु-ङ. ।

उपरिष्टादतः सत्यं कोटिरष्टौ प्रमाणतः ।
ब्रह्मलोक इति ख्यातो यत्र ब्रह्मा जगद्गुरुः ॥ १८७ ॥
[1]तत्र ब्रह्मा पृश्नि[2]गर्भं भगवन्तमधोक्षजम् ।
नारदाद्यैः परिवृतो यजन्नास्ते महाप्रभुम् ॥ १८८ ॥
बलरामस्तु भगवांस्तदूर्ध्वे वसति स्वयम् ।
श्वेतो नीलाम्बरधरो यस्यांशो धरणीधरः ॥ १८९ ॥
तमोगुणमयः श्रीमान् महावैकुण्ठदक्षिणे ।
वैकुण्ठाधरः पश्चिमे च कामदेवो रजोगुणः ॥ १९० ॥
[3]तदूर्ध्वे चोत्तरे पार्श्वेऽनिरुद्धो ज्ञानविग्रहः ।
सत्त्वभूतस्तु पूर्वस्यां वासुदेवः सनातनः ॥ १९१ ॥
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्याणां चतुष्टयम् ।
स्थानं क्रमेण कथितं वैकुण्ठ[4]भुवनादधः ॥ १९२ ॥
सत्यादुपरि वैकुण्ठो योजनानां प्रमाणतः ।
भूर्लोकात् परिसंख्यातः कोटिषोडशसम्मितः ॥ १९३ ॥
[5]ऊर्ध्वोर्ध्वक्रमतः [6]पर्यक् चतुर्णां [7]च चतुष्टयम् ।
कोटियोजन[8]मानं तु एकैकस्य वरानने ॥ १९४ ॥
स्थानं चतुष्कोटि[9]मितं मध्ये विष्णोः परं पदम् ।
ज्योतिर्मयं तेजसा [10]च सर्वभूतमनोहरम् ॥ १९५ ॥
परमव्योमनाथस्य विष्णोरतुलतेजसः ।
वेदाः स्तुवन्ति यं नित्यं परमानन्दविग्रहम् ॥ १९६ ॥
ॐ तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम्[1] ॥ १९७ ॥
वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्तयः ।
चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदापङ्कजधारिणः ॥ १९८ ॥
सर्वे नीलाम्बुदश्यामाः सर्वे नीलाम्बुजेक्षणाः ।
चारुप्रसन्नवदनाः पीतकौशेयवाससः ॥ १९९ ॥
किरीटिनः कुण्डलिनो [11]हारिणो वनमालिनः ।
सर्वे च [12]नूतन(नूत्न)वयसः कन्दर्पाधिकसुन्दराः ॥ २०० ॥

१. ततो—क. । २. गर्भः—क. । ३. तदूर्ध्वे—ङ. । ४. भवना—क. । ५. ऊर्ध्वोधः क्रमतः—क. । ६. परियक—क. । ७. तु—ङ. । ८. यानं—ङ. । ९. मयं—क. । १०. तव—ङ. । ११. द्वारिणो—क. । १२. नूपवयसः—क. ।

1. ऋग्वेद (१।२२।२०) ।

रूपयौवनसम्पन्ना लक्ष्मीरूपा मनोहराः ।
वसन्ति यत्र वै [1]देव्यो नानाभूषणभूषिताः ॥ २०१ ॥
यत्र नैःश्रेयसं नाम [2]वनं कामदुघैर्द्रुमैः ।
[3]सर्वर्तु कुसुमैर्भ्राजत् कैवल्यमिव मूर्तिमत् ॥ २०२ ॥
विष्णुदेहोद्भवैर्दिव्यैर्मुमुक्षुगणसेवितैः ।
मन्दारकुन्दपुन्नागचम्पकाम्बुज[4]पाटलैः ॥ २०३ ॥
वकुलैः पारिजातैश्च सन्तानैर्हरिचन्दनैः ।
देवव्रजाः [5]सपत्नीका गायन्ति चरितानि च ॥ २०४ ॥
मङ्गलानि सुरम्याणि यत्र विष्णोर्महात्मनः ।
पारावताः सारसाश्च कोकिला हंसबर्हिणो ॥ २०५ ॥
गायन्ति [6]वैष्णवीं गाथां मुकुन्दप्रतिमूर्तयः ।
[7]यन्न गच्छन्ति पापिष्ठाः खलाः पाखण्डिनो जनाः ॥२०६॥
तत्रैव भगवान् साक्षात् श्रिया सह जनार्दनः ।
[8]आस्ते विष्णुः स्वयं कर्ता स्वयं हर्ता स्वयं प्रभुः ॥ २०७ ॥
वैकुण्ठाख्या पुरी चेयमयोध्या कथ्यते बुधैः ।
विष्णुः स्वयं रामचन्द्रः साक्षात् ब्रह्म सनातनम् ॥ २०८ ॥
सैषा सीता स्वयं लक्ष्मीस्तस्या वेदवती सखी ।
तथ्यं कर्तुं वचस्तस्याः पृथिव्यामवतारिता ॥ २०९ ॥
अयोनिसम्भवा भूमौ लक्ष्मणाख्यो धनुर्धरः ।
अनन्तोऽनन्तमहिमा [9]शङ्खचक्रान्वितो करौ ॥ २१० ॥
शत्रुघ्नो भरतश्चैव हनूमांश्च खगाधिपः ।
एभिर्नीला[10]म्बुदश्यामो हरिः शार्ङ्गधनुर्धरः ॥ २११ ॥
द्विधा भूतः किम्पुरुषे हनुमत्प्रीतये [11]स्वकाम् ।
स्थापयित्वा तनुं विष्णुर्वैकु[12]ण्ठपुरमागतः ॥ २१२ ॥
वृन्दा[13]नाम्न्यसुरी साध्वी विष्णुना रमिता पुरा ।
तुलसीत्वं गता शापात् तेन वृन्दावनं वनम् ॥ २१३ ॥

---

१ देव्यै—क. । २. वर—ङ. । ३. सर्वत्र—क. । ४. पाटलिः—ङ. । ५. सप्त्नीका—ङ. । ६. 'वैष्णवीर्गाथा' इति शोभनः पाठः । ७. यत्र—क. । ८. आंस्ते—क. । ९. चक्रशङ्खान्वितौ—क. । १०. म्बुजश्यामो—क. । ११. स्वकान्—ङ. । १२. ण्ठं परमागतः—क. १३. नामसुरी—ङ. ।

यत्र [1]वैकुण्ठलोके तद् विष्णोः प्रियतरं परम् ।
तस्योपरिष्टात् कौमार(रो) द्वात्रिंशत् कोटिमानतः ॥२१४॥
[2]श्रीशार्ङ्गिपद्ममधुपः शिवपुत्रो महायशाः ।
सेनाध्यक्षो कार्तिकेयो यत्र ब्रह्माण्डरक्षकः ।
ध्वजस्तस्योपरिष्टात्तत्कोटिरेका(कः) प्रमाणतः ॥ २१५ ॥
ब्रह्माण्ड[3]भाण्डोदरवर्तितानि
[4]स्थानानि सर्वाण्यनुबन्धितानि ।
यच्चेत्[5]शैतान्यनुचिन्तितानि
[6]स्युस्तस्य वैकुण्ठसुखप्रदानि ॥ २१६ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे भूवायूर्ध्वलोकवर्णनं
नाम तृ(द्वि)तीयोऽध्यायः ॥ २ ॥



१. वैकुण्ठवत् लोके—क. । २. श्रीशाङ्घ्रिपद्म—ङ. । ३. भाण्डोद्भववर्ति—क. । ४. 'स्थाना''''बन्धितानि' नास्ति—क. । ५. सैन्यान्यनु—क. । अत्र यच्चेन-सैतान्यनुचिन्तितानीति शुद्धः पाठः प्रतीयते । ६. भूतस्य—ङ. ।

तृतीयोऽध्यायः

ब्राह्मणी उवाच

अतः परतरं किञ्चित् अस्ति नास्तीति सुव्रतः ।
स्थानात् स्थानं महाभाग ! तन्मे कथय निश्चितम् ॥ १ ॥
तथ्यं पथ्यं भवद्वाक्यामृतं श्रुतिरसायनम् ।
पीत्वा श्रुतिपुटे कान्त ! [1]तृप्तिर्मे नहि जायते ॥ २ ॥

ब्राह्मण उवाच

[2]ईदृशान्यण्डजातानि सेश्वराणि [3]वृहन्ति च ।
[4]महानन्तप्रसूतानि लोम्नि लोम्नि स्थितानि च ॥ ३ ॥
महाविष्णोर्महाभागे कृष्णांशांशभवस्य च ।
पुरैवासन् महाविष्णोर्मुखेभ्यस्तु सनातनाः ॥ ४ ॥
आपः कारण[5]भूतास्तु तासु [6]वासमकल्पयन् ।
महासङ्कर्ष[7]णश्चापि मुखात्तस्य महात्मनः ॥ ५ ॥
[8]तां शय्यां कल्पयित्वा तु सहस्रवदनो विभुः ।
प्रसुप्तो भगवांस्तत्र शेषशायी जगद्गुरुः ॥ ६ ॥
[9]स वै जाग्रत्स्वरूपोऽपि प्रसुप्त इव [10]लक्ष्यते ।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ७ ॥
सहस्रबाहुर्विश्वात्मा सहस्रांशुः स्वयं महान् ।
कारुण्यजलमध्यस्थो विश्वेशः सर्वतोमुखः ॥ ८ ॥
सर्वतः पाणि[11]पादं तु सर्वतोऽक्षिशिरोधरः ।
सर्वतः श्रवणघ्राणः सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ९ ॥
यस्यैकश्वास[12]निश्वासकाले जीवन्ति देवताः ।
श्वासप्रवेशकाले च विनश्यन्ति च ते पुनः ॥ १० ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या इन्द्रचन्द्रादयोऽपरे ।
अचलः सर्वभूतानां बीजभूतः सनातनः ॥ ११ ॥

---

१. तृप्तिर्मम नहि—ङ. । २. ईदृशान्यच्च—क., ईशानान्यण्ड—ङ. । ३. बहन्ति—ङ. । ४. महासन्त—क. । ५. भूतास्ता—क. । ६. वांस—क. । ७. णस्यापि—ङ. । ८. तं शैन्याङ्क कल्प—ङ. । ९. सर्वजाग्र—ङ. । १०. लक्ष्यसे—क. । ११. पादस्तु—ङ. । १२. विश्रामकाले—ङ. ।

पुरुषः [1]पुरुषैर्नित्यमि(मी)ड्यते ज्ञानदृष्टिभिः ।
एष कारुण्य[2]जलधावर्धोन्मीलितलोचनः ॥ १२ ॥
सर्वाधारब्रह्मशिलारूढो योगीश्वरेश्वरः ।
तपश्चरति वै ध्यायन् गोविन्दचरणाम्बुजम् ॥ १३ ॥
वामपार्श्वगता तस्य राधिकादेहसम्भवा ।
महालक्ष्मी [3]रत्नदण्डं व्यजनं परिगृह्य वै ॥ १४ ॥
वीजयन्ती परिचरे[4]दर्धोन्मीलितलोचना ।
ध्यायमानस्य गोविन्दं लोमहर्षो [5]व्यजायत ॥ १५ ॥
[6]प्रतिलोम्न्यभवंस्तत्र ब्रह्माण्डान्यन्तराणि वै ।
[7]कृपावलोकिनीं राधां सर्वभूतमहेश्वरीम् ॥ १६ ॥
[8]चिन्तमानस्य नेत्रान्तादश्रुधारा व्यजायत ।
यमुना वामतो जाता गङ्गा दक्षिणनेत्रतः ॥ १७ ॥
गोमती मध्यमात् नेत्रात् कारुण्यजलधिं च ताः ।
[9]पुनत्यः प्रविशन्तीव तमःसत्त्वरजोमयाः ॥ १८ ॥
कृष्णशुक्लरक्तवर्णाः [10]कोटीन्दुसदृशप्रभाः ।
[11]प्रतिवक्त्रं जगज्ज्यो(द्यो)नेः स्थूलरूपस्य विश्वततः ॥ १९ ॥

॥ [12]इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे गुणातीतकारणजलराशि-
परमव्योमनाथमहापुरुषलोकवर्णनं नाम
चतुर्थो(तृतीयो)ऽध्यायः ॥ ३ ॥



---

१. पुरुषे नित्यमिति''''दृष्टिभिः—ङ. । २. जलधारवर्षोन्मी—क. । ३. रत्न दण्डं—क. । ४. दर्ध्वोन्मी—ङ. । ५. व्यजायते—क. । ६. इति लोम्न्यभवांस्तेन-क. । ७. कृपावतो फणीं राधां—ङ. । ८. चिन्त्यमानस्य—ङ. । ९. पुनन्तः—ङ. । १०. कोटीन्द्रसदृश—ङ. । ११. प्रतिचक्रं—क. । १२. 'इति''''ऽध्यायः-नास्ति क. ।

चतुर्थोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच

तत ऊर्ध्वं महादेव्या लोको भुवनपावनः ।
चतुःषष्टिकोटिमितो योजनानां च सर्वतः ॥ १ ॥
भैरवाणां भैरवीणां सिद्धानां सिद्धयोगिनाम् ।
प्रमथानां मातृकाणां सुन्दरीणां वरानने ॥ २ ॥
वसति तत्र वसति श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ।
चक्रे रेखात्रययुते वेदद्वारोपशोभिते ॥ ३ ॥
त्रिवृत्ते षोडशदले तथाष्टदलकर्णिके ।
[1]शक्रकोणयुते तद्वद् द्विदशार[2]युते प्रिये ॥ ४ ॥
अष्टकोणे त्रिकोणान्तर्बिन्दुयुक्ते महाप्रभे ।
[3]अत्र सा परमेशानी सर्वदेवनमस्कृता ॥ ५ ॥
कोटिकोटिब्रह्मविष्णुशिवादि[4]शीर्षभूषणैः ।
नीलरत्नादिभिर्नित्यं [5]निधृतचरणाम्बुजा ॥ ६ ॥
पुरा [6]त्रिभङ्गपुरतः कृष्णस्याऽव्यक्तजन्मनः ।
अनादिनिधनस्याऽपि [7]जातेयं त्रिपुरातनी ॥ ७ ॥
स्वयं कृष्णस्वरूपा च कृष्णाज्ञावशवर्तिनी ।
[8]चतुर्भुजा रक्तवर्णा रक्ताभरणभूषिता ॥ ८ ॥
पाशाङ्कुशधनु[9]र्बाणान् बिभ्रती [10]सिद्धवन्दिता ।
[11]शुक्लवर्णा त्वियं [12]वाणी पीता वै भुवनेश्वरी ॥ ९ ॥
रक्तवर्णा यदा देवी [13]श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ।
श्यामवर्णा कालिकेयं कृष्णा नीलसरस्वती ॥ १० ॥
दुर्गाख्या या पराशक्तिः साक्षात्कृष्णस्वरूपिणी ।
विपरीतरतौ राधाकृष्णयो रसरूपिणोः ॥ ११ ॥

---

१. शत्रुकोणयुते तत्त्वद्वीपर्दशार–ङ. । २. युति–क. । ३. तत्र–क. । ४. शेषभूषणैः–ङ. । ५. निर्घु(घृ)ष्ट–ङ. । ६. तिभङ्ग–ङ. । ७. जायतेयं–क. । ८. चतुर्भुक्ता–क. । ९. बाणं–क. । १०. सिद्धयोगिनी–क. । ११. शुक्ल-वर्णा–क. । १२. बापि–क. । १३. स्वयं त्रिपु–क. ।

[1]जाता वैं(वे)तौ महात्मानौ दुर्गारामौ जगत्प्रभुः(भू) ।
[2]या दुर्गा सैव गोविन्दो राधा [3]सङ्कर्षणः पुमान् ॥ १२ ॥
[4]राधया निर्मिता[5]वेतावाद्यावाद्यरसेन च ।
[6]तं समाकृष्य सा देवी महाविष्णूदरान्तरे ॥ १३ ॥
प्रवेशयामास नित्या सृष्ट्यर्थं [7]जगतां पुरा ।
तस्य नाभिगतः श्रीमान् कुण्डलित्वं [8]समाश्रितः ॥ १४ ॥
सहस्रवदनो भूत्वा मुखरन्ध्राद् विनिर्गतः ।
विभर्ति स महाविष्णुर्ब्रह्माण्डान्यखिलानि च ॥ १५ ॥
प्रसूते सकलं विश्वं प्रलये संहरत्यसौ ।
तस्य मध्यफणाचक्रे [9]पूर्वगे चक्रमुत्तमम् ॥ १६ ॥
गौरीपुरमिति ख्यातं यत्र तिष्ठति सा शिवा ।
या दुर्गा साऽपि लोकेऽस्मिन् [10]स्थित्वा त्रिपुरसुन्दरी ॥ १७ ॥
स्थितिं सृष्टिं विनाशं च कुरुते सहितेश्वरा ।
[11]तस्योर्ध्वं च प्रदेशे नु सर्वदेवस्वरूपिणी ॥ १८ ॥
[12][समुद्रमथने पूर्वं यं धृत्वा पुरुषोत्तमः ।
तं रूपं बिभ्रती राधा जगदानन्दकारिणी ॥ १९ ॥
दुर्गादिसर्वशक्तीभिरावृता परमेश्वरी ।
षट्कोणोपरिबिन्दुस्था तद्द(द)ष्टदलचिह्निता ॥ २० ॥
चतुर्द्वारयुते स्थाने चतुस्रंच(रस्र)विराजिते ।
तोरणोदातपत्रादिचामरध्वजचिह्निते ॥ २१ ॥
चन्द्रातपयुते रत्नवेदिकोपरिमण्डपे ।
सदाशिवमहाप्रेतसिंहासनविराज(जि)ते ॥ २२ ॥
रत्नप्राकारपरिखादुग्धाम्बुधिविराजिते ।
पुष्यत्कदम्बविपिने सदामोदितदिङ्मुखे ॥ २३ ॥

---

१. याता—ङ. । २. 'या'नास्ति—क. । ३. शङ्करपुमान्—क. । ४. राधा—क. । ५. वेद्या वाद्येनाद्यरसेन—क. । ६. तमसाऽऽकृष्य—ङ. । ७. भजतां—ङ. । ८. समास्थितः—ङ. । ९. पूर्ध्वगे—ङ. । १०. स्थिरा त्रिभुवनेश्वरी—ङ. । ११. 'तस्योर्ध्वं' इत्यारभ्य 'भानुत्वमागतः' इति ३९ संख्यकश्लोकपर्यन्तं पाठो नास्ति—ङ. । १२. 'समुद्रमथने''''भानुत्वमागतः' इति कोष्ठस्थः पाठः प्रतीयतेऽनावश्यकः ।

कल्पवृक्षवनाकीर्णवटच्छायासुशोभिते ।
चक्रराजे महादेवी राधिका परमेश्वरी ॥ २४ ॥
षट्कोणे भ्रातरस्तत्र सेवाततपरमानस(ा): ।
अष्टपत्रेऽप्यष्टगोपी या कृष्णप्राणवल्लभा ॥ २५ ॥
सुदामाद्या द्वारदेशे (च?)प्रान्ते गोपी स्थिता पुनः ।
सर्वशास्त्रेषु तन्त्रेषु गोपिता गोपवासिनी ॥ २६ ॥
रहस्यं तस्य वक्ष्यामि शृणु देवि वरानने ।
मथने जलधेः पूर्वं मोहिता देवतागणा: ॥ २७ ॥
यक्षराक्षसगन्धर्वा असुरोरगभूमिजाः ।
ज्ञानहीने ततस्तस्मिन् मोहिनी विष्णुरूपिणी ॥ २८ ॥
विष्णुश्च भगवान् तत्र रसरूपे निमज्जतुः ।
मनसैवं च कृतवान् दधिदुग्धसमन्विते ॥ २९ ॥
देशे गोगोपगोपीभिः सेविते गिरिकन्धरे ।
कदम्बवरवृक्षादिचिह्निते तटिनीतटे ॥ ३० ॥
एकोऽहं च द्विधा भूत्वा क्रीडितव्यं स्थलान्तरे ।
सर्वदेवाश्च देव्यश्च सुरभ्यादिश्च गोव्रजाः ॥ ३१ ॥
जायन्तां च भूमौ शीघ्रमिति तन्मनव(सि) स्थितम् ।
चिरं तप्त्वा तपश्चात्र गिरिराजो हिमालयः ॥ ३२ ॥
सहितो मेऽनया शोकान् वृक(ष)भानुत्वमागतः ।
पुरा गौरीति या कन्या हरधेनुप्रतिश्रुता ॥ ३३ ॥
नारदस्य महर्षेस्तु हरिता सा यतः पुनः ।
सखीभिर्वनमध्ये तु शिवं सा मनसा गता ॥ ३४ ॥
ततः प्रभृति तस्यैव पर्वतस्य महात्मनः ।
कन्यैका विष्णवे देया ततो यास्याम्यहं भुवि ॥ ३५ ॥
विष्णुमायां ततो ध्यात्वा तपस्तेपे सुदुष्करम् ।
ततः प्रसन्ना सा देवी मोहिनी विष्णुरूपिणी ॥ ३६ ॥
उवाच सुचिरं प्रीता कन्यात्वं तव यास्यति ।
पृथिव्यां जातस्य भवने बृक्(ष)भान्वाह्वयस्य ते ॥ ३७ ॥
इयं या मोहिनीशक्तिः राधिकात्वं प्रयास्यति ।
विष्णवे वासुदेवाय तां दत्त्वा सुकृती भव ॥ ३८ ॥

ततोऽप्यन्तर्द्धिमा(र्हिता) देवी सोऽपि सर्व्वोत(द्योऽद्रि)सत्तमः।
योगेन पृथ्व्यामगमद् वृक(ष)भानुत्वमागतः] ॥ ३९ ॥
गौरी[1]लोकपुरस्तात् [2]तु योगिनीगणवेष्टिता।
तिष्ठत्यखिलभूतानां जननी [3]सकलेश्वरी ॥ ४० ॥
कदाचित् जलदश्यामा कदाचित् कनकप्रभा।
चतुर्भुजा शङ्खचक्रशूलमुद्गर[4]धारिणी ॥ ४१ ॥
तत्समीपे महादेवी कालिका कालरूपिणी।
चक्रस्य दक्षिणे भागे श्रीमन्नीलसरस्वती ॥ ४२ ॥
[5]उग्राय(प)त्तारकारत्वात् साप्युग्रतारेति कीर्तिता।
सा [6]चैवैकजटा देवी सा च नीलाम्बुदप्रभा ॥ ४३ ॥
सा वै नील[7]पताका च नानारूपा महोदया।
[8]सैवात्र त्रिपुरा ख्यातो(ता) सैवेयं भुवनेश्वरी ॥ ४४ ॥
शुक्लवर्णा च या देवी पश्चिमस्यां दिशि स्थिता।
शुद्धसत्त्वमयी नित्या ब्रह्मवाग्वादिनी परा ॥ ४५ ॥
[9]गौरवर्णा च या देवी क्षीरोदमथनोत्थिता।
सैव दक्षिणदिग्भागे श्रीः श्रीविष्णोःप्रिया परा ॥ ४६ ॥
[10]पीतवर्णा च या देवी श्रीमत्त्रिभुवनेश्वरी।
[11]कदा मुक्तिं ददासीति विष्णुना कथिता यदा ॥ ४७ ॥
तदा [12]क्रुद्धा भगवती शीर्षं चिच्छेद सा स्वकम्।
कम्पयामास देवस्य परिवारान् सुविस्मितान् ॥ ४८ ॥
करे गृहीत्वा मुण्डं स्वं रक्ता रक्तकलेवरा।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्गोविन्दं पुरुषोत्तमम् ॥ ४९ ॥
जगतां जननी नित्या सर्वेषामी[13]श्वरी सदा।
जयदेव महेशान कथमेवं त्वयोच्यते ॥ ५० ॥

---

१. पुरः–क.। २. सा–ङ.। ३. राधिका सती–क.। ४. धारिका–क.। ५. तत्रापत्तारिकात्वात साऽप्युग्रभावेति–ङ.। ६. वैचैक–क.। ७. पताकी–क.। ८. 'सैवात्र....भुवनेश्वरी' नास्ति–ङ.। ९. 'गौरवर्णा....प्रिया परा' नास्ति–ङ.। १०. 'पीतवर्णा....भुवनेश्वरी' नास्ति–क.। ११. कदापि मुक्तिदासीति प्रोवाचोद्धाय(च्चैर्य)दा हरिः–ङ.। १२. रुपा–ङ.। १३. श्वरं–क.।

ततस्तामाह भगवान् [1]लज्जातोयधिमज्जितः ।
मातर्मातः प्रसीद त्वं मातर्मातः क्षमस्व माम् ॥ ५१ ॥
सदा मोक्षप्रदाऽसि त्वं सिद्धासि भुवने[2]श्वरी ।
ये त्वदीयपदाम्भोजमकरन्दविनोदिनः ॥ ५२ ॥
तेभ्यः सदाऽद्यप्रभृतिभोगस्वर्गापवर्गदा ।
भव देवी महेशानि सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ५३ ॥
इत्युक्त्वा भगवान् कृष्णः स्कन्धे तच्छिर मु(उ)त्तमम् ।
कोमलेन करेणैव करुणावरुणालयः ।
सुविन्यस्य चकारैनां यथैव [3]पूर्वसंस्थिताम् ॥ ५४ ॥
तदवधि विधिविष्णवीशानदेवेन्द्रमौलि-
स्फुरदमलकिरीटाराध्यपादारविन्दा ।
त्रिभुवनजननीयं शुद्धसत्त्वा प्रशस्ता
प्रविलसितसमस्ता गीयते छिन्नमस्ता ॥ ५५ ॥
यस्या एव [4]पदाम्भोजममन्दानन्दमानसाः ।
मुनयः साधु[5]सन्धानां निर्वृत्तिं प्रापुरुत्तम[ा]म् ॥ ५६ ॥
वदन्ति देवताः सर्वाः [6]प्रणयाविष्टचेतसः ।
सत्यं सत्यप्रदां शश्वद् भुक्तिमुक्तिप्रदां हि[7]ताम् ॥ ५७ ॥
[8]उत्तरे चक्रराजस्य योगिनीगणवेष्टिता ।
डाकिनीलाकिनीभ्यां च सेविता सिद्धियोगिनी ॥ ५८ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे [9]गौरीलोकवर्णनं नाम

[चतुर्थोऽध्यायः] ॥ ४ ॥



१. त्वज्जितोदधिमुज्जितः—ङ. । २. श्वरि—ङ. । ३. पूर्ववत् स्थिताम्—ङ. । ४. पदाम्भोजामन्दा—ङ. । ५ सद्धानां—ङ. । ६. प्रलया—ङ. । ७. याम्—ङ.। ८. 'उत्तरे''''सिद्धयोगिनी'इत्यस्य स्थाने 'उत्तरे चक्रराजस्य सुस्थिता शिवरूपिणी । राधिकां मोक्षदां हृष्टा सदोपासन्ति यगिोनी । डाकिनी-लाकिनीभ्यां च सेविता सिद्धयोगिनी ॥' इति—क. । ९. 'गौरीलोकवर्णनं' इत्यस्य स्थाने 'गौरीलोकवर्णने श्रीकृष्णचन्द्रप्राणस्वरूपिणीश्रीमतीराधादेव्याः परमपदचक्रराजकथनं' इति—क. ।

पञ्चमोऽध्यायः

नारद उवाच

एवमेवं समाकर्ण्य ब्राह्मणी ब्रह्मवित्तमा ।
प्रणयाविष्टचित्तेन पुनः पप्रच्छ सादरम् ॥ १ ॥

ब्राह्मणी उवाच

अतः परोऽस्ति को लोकः कथ्यतां तथ्य[1]भाषितम् ।
पथ्यं समस्तलोकानां शोकपहरण प्रिय ॥ २ ॥

ब्राह्मण उवाच

गौरी[2]लोकः प्रिये प्रोक्तः शिवलोकं [3]शृणु प्रिये ।
तन्मध्ये बिन्दुचक्रे च बिन्दु[4]गर्भः सदाशिवः ॥ ३ ॥
लिङ्गरूपी कृष्णलि[5]ङ्गान्निर्गतो भगवान् पुरा ।
आत्मानमतिकामार्त राधाविरहबाधया ॥ ४ ॥
[6]महालिङ्गमुज्जहार स्वकीयं रभसा प्रभुः ।
चिक्षेप च पुनर्लिङ्गमभवत् तस्य धामतः ॥ ५ ॥
पुनस्तद्वत् समुद्धृत्य चिक्षेप च जगद्गुरुः ।
एवं यत् पञ्चधालिङ्गं क्षिप्तवान् परमेश्वरः ॥ ६ ॥
अविनष्टं स्वलिङ्गं तु दृष्ट्वा तद् विरराम वै ।
तल्लिङ्गं पञ्चधा तस्य व्याप्तं लोकं महाप्रभम् ॥ ७ ॥
ज्योतिर्मय[7]वपुर्मात्रमनन्तोर्ध्वाध एव च ।
स कदाचिन्निराकारः साकारश्च क्वचिद् भवेत् ॥ ८ ॥
साकारः पञ्चवदनो दशबाहुस्त्रिशूलधृक् ।
व्याघ्रचर्मधरो [8]नित्यं त्रिनेत्रः स्फाटिकप्रभः ॥ ९ ॥
सूक्ष्मं लिङ्गं पञ्चरूपं पञ्चभूतमयं शिवम् ।
पञ्चधा तन्महादेवी सेवते पञ्चमी परा ॥ १० ॥
वर्धमानं तु तद् दृष्ट्वा देवी त्रिपुरसुन्दरी ।
[9]योनिभूता [10]पराशक्तिर्लिङ्गमावृत्य शोभना ॥ ११ ॥

---

१. भूषितम्–ङ. । २. लोकं–ङ. । ३. शृणुष्व मे–ङ. । ४. गर्तः–क. ।
५. ङ्गालिङ्गतो–ङ. । ६. महीलि–क. । ७. वपुमत्रिमनन्तोर्द्ध्वोऽध–क. ।
८. 'नित्यं' नास्ति–क. । ९. मौलिभूता–ङ. । १०. पराशक्तेर्लिङ्गनावृत–ङ. ।

आनन्दरूपा सा नित्या ब्रह्मज्योतिःस्वरूपिणी ।
[1]एवं भावं गता सिद्धा ज्ञानविज्ञानरूपिणी ॥ १२ ॥
पुंप्रकृत्यात्मकं लिङ्गं भावाभावविवर्जितम् ।
तद् ब्रह्म परमं सूक्ष्मं परमानन्दकन्दलम् ॥ १३ ॥
निर्विकारं निराकारं दुर्गमं सर्वयोगिनाम् ।
दुर्दर्शं दुर्लभं योगिध्येयं सर्वनमस्कृतम् ॥ १४ ॥
यं सिद्धाः परमं ज्योतिर्वेदान्तार्थविशारदाः ।
केचित् पुरुषमित्याहुः प्रकृतिं चापरे जनाः ॥ १५ ॥
केचित् [2]शैवा[ः] शिवं चैव विष्णुं चैव तथा परे ।
जगत्कारणमेके वै शब्दयोनिं तथैव च ॥ १६ ॥
धर्ममेके ज्ञानमेके वदन्त्यन्ये [3]परं पदम् ।
तल्लिङ्गमध्ये [4]यो बिन्दुस्तं कामं विद्धि भाविनी ॥ १७ ॥
विराड्देहो महाविष्णुर्जातो ब्रह्माण्डकोटिधृक् ।
तेनैव सकलं [5]सृष्टमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ १८ ॥
[6]गुह्यमेतत् प्रवक्ष्यामि सर्वलोकहितं परम् ।
असुरैर्निजिते देवे मायारूपो जगत्प्रभो(भुः) ॥ १९ ॥
विभूतिधृग् जटाधारी अस्ति(स्थि)मालाविभूषणः ।
संहाररूपी पाखण्डैरावृतो भूतरूपिभिः ॥ २० ॥
शीघ्रं वरं ददात्येव परिणामे च नाशकम् ।
वरलोभाच्च दैतेया शिवसेवां प्रचक्रिरे ॥ २१ ॥
तदैव विष्णुना शीघ्रं तस्य नाशं करोत्यसौ ।
न नाशो वैष्णवस्येति मत्वा शिवं पुराऽसृजन् ॥ २२ ॥
दैत्यमध्येऽपि ये नित्यं विष्णुभक्ताः पुरातनाः ।
अद्यापि तेषां संस्थानं विद्यते सृष्टिमण्डले ॥ २३ ॥
शिवसेवापरो लोकः क्षणं सुखमवाप्स्यति ।
पश्चाच्च दुःखजलधौ समूलेन निमज्जति ॥ २४ ॥

---

१. एकभावं–ङ. । २. गुरोः गिरं चैवं–ङ. । ३. परस्परम्–क. । ४. ऽधो बिन्दुस्त्वं–क. । ५. विश्वमि–क. । ६. गुह्यमेतदित्यारभ्य ३९संख्यकश्लोकपर्यन्तं पाठो नास्ति–ख. ङ. ।

धर्मलोपप्रवर्तेव शिव एव प्रगीयते ।
कलिकाले विशेषेण शिवभक्तिपरा नराः ॥ २५ ॥
महानरकयात्रार्थं विष्णुं निन्दन्ति दुर्जनाः ।
विष्णु[1]स्थानं कलौ गुप्तं भविष्यति न संशयः ॥ २६ ॥
केशवेन कृता काशी दत्ता तस्मै शिवाय च ।
तन्नाम्नैव सुविख्याता काशी मुक्तिप्रिया [2]सखी ॥ २७ ॥
शिवस्थानेऽतिपाखण्डास्तत्र यास्यन्ति वासतः ।
नित्यं पापरतास्तत्र नरके यान्ति दुःखिताः ॥ २८ ॥
कायवाङ्मानसैर्लोकाः पापमेवाचरन्ति वै ।
काश्यां कृतं च यत्पापं गिरितुल्यं भवेत् प्रिये ॥ २९ ॥
सर्वनाशाय लोकानां नरकाय न संशयः ।
काशीवासे मनो याति कथितं तव [3]भामिनि ॥ ३० ॥
मरणे मुक्तिदा काशी [4]केशवेन विनिर्मिता ।
कलौ च मुक्तिनाशाय पाखण्डिभिः समावृता ॥ ३१ ॥
यत्र कुत्रापि संस्थाय नीत्वा च सकलाः समाः ।
अन्तकाले श्रिता काशी पीयूषेण समावृता ॥ ३२ ॥
भोगाल्लोभाद् रागतो वा मध्ये वयसि संश्रिताः ।
नरकाय तदा काशी न विमुक्तिर्भवेत् पुनः ॥ ३३ ॥
पुण्यात्मनां यथा मुक्तिर्यथा पापोपजीविनाम् ।
नरकोऽपि भवत्येवं विषतुल्या स्मृता ततः ॥ ३४ ॥
न मुक्तिः कलिकाले तु नृणां भवति भाविनि ।
तदर्थमेव लोकानां काश्यां वासो भविष्यति ॥ ३५ ॥
नित्यं पापरता लोका यतो यास्यन्ति तद्युगे ।
काशीपापकृतां मुक्तिर्नास्ति कल्पशतैरपि ॥ ३६ ॥
शिवोऽपि लोकनाशाय तादृशं रूपमाश्रितः ।
नाशं करोति लोकानां सेवकाना[5]मपि ध्रुवम् ॥ ३७ ॥

---

१. अत्र 'ग'मातृका पुनश्चारभ्यते । २. सखि-ग. । ३. भाविनि-क. ।
४. न विमुक्तिर्भवेव पुनः-क. । ५. मधि-क. ।

संहाररूपी यस्मात् यः संहारे सर्वदा रुचिः ।
शीघ्रं वै लोकयात्रार्थं वरं दत्त्वा विनश्यति ॥ ३८ ॥
देवप्रतारिता लोकाश्चोदिता विष्णुमायया ।
नाशाय मुक्तिमार्गाणां पाखण्डित्वं व्रजन्ति वै ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे [1]शिवलोककथने
काशीमाहात्म्यपाखण्डिकथनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



१. 'शिवलोक''''पञ्चमोऽध्यायः' इत्यस्य स्थाने 'सदाशिवलोककथनम्' इति—ङ. ।

षष्ठोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच

अधो वृन्दावनादूर्ध्वे शिवलोकस्य सुन्दरि।
[1]विरजाख्यमहानद्याः पारे परम[2]शोभने ॥ १ ॥
परं ज्योतिर्मयं स्थानमगम्यं मनसामपि।
अनेकसूर्य[3]चन्द्रर्क्षप्रभया सहसमु(समम)द्भुतम् ॥ २ ॥
दुर्दर्शं दुर्लभं दिव्यं निराभासं निरञ्जनम्।
निर्विकारं निरालम्बं निराकारं [4]निरुत्तरम् ॥ ३ ॥
नित्यानन्दं नित्यशुद्धं [5]निश्चितं निर्विशेषणम्।
[6]निःसीमं निर्मलं नित्यं [7]निःश्रेयसमनामयम् ॥ ४ ॥
सर्वाकारं सर्वरूपं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वगं सर्वविश्रान्तं नितान्तं योगिनांप्रियम् ॥ ५ ॥
एकमेवाद्वयं [8]ब्रह्म आकाशवदनन्तकम्।
वदन्ति वेदविच्छ्रेष्ठा वेदान्तवेदिनोऽपरे ॥ ६ ॥
सर्वव्यापि[9]सदाद्यन्तरहितं सत्यमूर्जितम्।
सच्चिदानन्दमद्वैतं [10]ब्रह्मानन्दश्च निष्कलम् ॥ ७ ॥
वदन्त्यन्ये ज्ञानविदः सर्वज्ञं कारणं परम्।
तत्तत्त्ववेदिनः सिद्धाः कृष्णाऽभिन्नं वदन्ति तत् ॥ ८ ॥
केचिद् वदन्ति गोविन्दपादङ्गुष्ठनखातपम्।
ज्योतिर्मयशरीरातमज्योतिरित्य[11]परे विदुः ॥ ९ ॥
ब्रह्मज्योतिर्मयं कृष्णं कृष्णज्योतिरिदं परम्।
केचिद् वदन्त्यथाऽन्यो[12]ऽन्यमभेदं कृष्णब्रह्मणोः ॥ १० ॥
सूर्ये सूर्य्यांशुनिचये यथा भेदो न विद्यते।
परंब्रह्मणि गोविन्दे ब्रह्मण्यपि तथैव च ॥ ११ ॥

---

१. विरजाख्याम–क.। २. शोभना–ग.। ३. चन्द्रार्कप्रभसहसमद्भुतम्–ग., चन्द्रार्कप्रभा सदृशमद्भुतम्–ङ.। ४. निरन्तरम्–क. ग.। ५. विशिष्टं–ङ.। ६. निरन्तं–ङ.। ७. नैःश्रेयस–ङ.। ८. ब्रह्मोत्याकाशवदनान्तकम्–क.। ९. सदाऽसत्यर–क., सदात्यन्त–ख.। १०. ब्रह्मानन्तश्च–क. ग.। ११. परं–क. ग.। १२. ऽन्यं ह्यभेदं–ङ.।

प्रकृतिः सा परा सूक्ष्मा व्यक्ता[1]ऽव्यक्ता सनातनी ।
मुक्तानां च गतिः सैव योगिनां च तपस्विनाम् ॥ १२ ॥
सर्वमुक्तिप्रसङ्गे च महाप्रलयसंज्ञके ।
प्रविशन्ति परंब्रह्मतेजो ब्रह्मजगत्पतेः ॥ १३ ॥
सृष्टिकाले च तस्माद् वै जगन्ति प्रभवन्ति च ।
यद्भयाद् वान्ति वाताश्च सूर्यस्तपति [2]यद्भयात् ॥ १४ ॥
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्नि[3]र्भारं वहति मेदिनी ।
कालः कलयते लोकान् निमेषात्मा स्वयं प्रभुः ॥ १५ ॥
कूर्मो विभर्ति धरणीं ब्रह्मा सृजति यद्भयात् ।
पालनं कुरुते विष्णुर्हरः संहरते भयात् ॥ १६ ॥
तदेव [4]निष्कलं ब्रह्म निरीहं निर्गुणं परम् ।
कृष्णपादाद् विनिर्गत्य व्याप्तं तेन जगत्त्रयम् ॥ १७ ॥
अनन्तकोटिब्रह्मा[5]ण्डभाण्डान्तर्बहिरेव तत् ।
पुंप्रकृत्यात्मकं लिङ्गं तस्माज्जातं परापरम् ॥ १८ ॥
तदेतत् पुरुषश्चायं कारणं [6]जलमेव तत् ।
[7]महानन्ततदेवेदं तद् वै [8]विष्णुः सनातनम् ॥ १९ ॥
तद् ब्रह्मा तच्च [9]रुद्रश्च तदिन्द्रो वरुणश्च [10]तत् ।
वह्निर्यमश्च रक्षश्च वायुर्यक्षाधिपस्तथा ॥ २० ॥
[11]एकं ब्रह्माऽद्वितीयं तन्नान्यदस्तीति किञ्चन ।
यतो वाचो निवर्तन्ते ह्यप्राप्यमनसा सह ॥ २१ ॥
तत्स्वर्गस्तच्च मर्त्यो वै तत् पातालं च भामिनि ।
द्वीपवर्षसमुद्रान्तं सर्वं ब्रह्मात्मकं प्रिये ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे ज्योतिर्ब्रह्मलोक-
वर्णनं [12]नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

---

१. 'ऽव्यक्ता' नास्ति—क. । २. तद्भयात्—ग. । ३. र्भावं—ङ. । ४. निष्फलं-क. । ५. ण्डमादान्त—ग., ण्डब्रह्माण्डाद्—ङ. । ६. मल—ङ. । ७. महानं वस्तुदेवेदं—क., ब्रह्मानन्दस्तत्रेदं—ग. । ८. विष्णुं—क. ग. । ९. रुद्रं च—ङ. । १०. यत्—क. ग. । ११. एवं—क. ग. । १२. 'नाम षष्ठोऽध्यायः' नास्ति—ङ.।

सप्तमोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच

एतत् पदं परं सूक्ष्मं प्रविशन्ति मुमुक्षवः।
अस्मात् परतरं कान्ते! कान्तं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ १ ॥
श्रीमद्वृन्दावनाख्यं च सर्वभूतमनोहरम्।
तत्पुरं ब्रह्मघटितं प्रेमानन्दरसान्वितम् ॥ २ ॥
अनन्तयोजनायाममनन्तयोजनोच्छ्रितम्।
योजनानन्तविस्तारं सर्वरत्नमयं शुभम् ॥ ३ ॥
सुवर्णरत्नमाणिक्यमणिनिर्मितमन्दिरम्।
भ्रमरै[1]र्नादितं [2]सुष्ठु कल्पवृक्षतलेऽमले ॥ ४ ॥
सुवर्णवेदिकाभिश्च शोभितं सुमनोहरम्।
परिखाभिरनन्ताभी रत्ननिर्मितभित्तिभिः ॥ ५ ॥
नदीभिरमृतोदाभिर्नदैश्च परिशोभितम्।
गोवर्धनाद्यैर्गिरिभी रत्नधातुविचित्रितैः ॥ ६ ॥
कल्पवृक्षादिभिर्वृक्षैर्मणिमाणिक्यवर्षिभिः।
सुशीलाद्यैर्धेनुवृन्दैः शोभितं तद् वनं महत् ॥ ७ ॥
सुशीला सुरभिश्चैव श्यामली [3]धवली तथा।
पिशङ्गाक्षी च कपिला दीर्घघोणा शुचिस्मिता ॥ ८ ॥
मदालसा मन्दगतिर्वृन्दा गोविन्दवल्लभा।
धूमला पिङ्गला गङ्गा पिशङ्गी मणिकस्तनी ॥ ९ ॥
हंसी वंशी प्रिया नित्या नैचिकीगणपूजिता।
कृष्णप्रियाद्या गावस्ता लक्षसंख्याः सुशोभनाः ॥ १० ॥
पद्म[4]गन्धपिशङ्गाख्यौ बलीवर्दावतिप्रियौ।
प्रतिलोम्नि च ब्रह्माण्डं धारयन्त्यो रस[5]प्रदाः ॥ ११ ॥
राजन्ते बहवो यत्र गोविन्दप्रतिमूर्तयः।
गोपालास्तस्य देवस्य दक्षिणाङ्गाद्विनिर्गताः ॥ १२ ॥

---

१. वारितं–क., वासितं–ग.। २. सुभ्रु–ग.। ३. धरणी–ङ.। ४. गन्धा–क. ग.। ५. अत्र 'ग'मातृका पुनश्च खण्डिता।

बर्हिबर्हकृतोत्तंसाः कोटिचन्द्रनिभाननाः ।
[1]महार्घ्य(र्घ)रत्नघटितस्फुरन्मकरकुण्डलाः ॥ १३ ॥
कम्बुग्रीवा महात्मानः [2]सुदन्ताः सुन्दराधराः ।
जितकामधनुश्चारुभ्रूलताः कमलेक्षणाः ॥ १४ ॥
माणिक्य[3]मुकुरोद्दण्डगण्डमण्डलमण्डिताः ।
रत्नालङ्कारसंशोभि[4]कण्ठदेशाभिसुन्दराः ॥ १५ ॥
मुक्ताहारलतोपेतपीनवक्षःस्थलश्रियः ।
वनमालावैजयन्तीमालाभ्यां च विराजिताः ॥ १६ ॥
हेमाङ्गदल[5]सद्धस्ताश्चारुकङ्कणपाणयः ।
रत्नदण्डधराश्चारुपीतकौशेयवाससः ॥ १७ ॥
केचिच्छृङ्गं [6]वादयन्तो वेणुवाद्यरताश्च के ।
मुरलीवाद्यनिरताः शङ्खवाद्यरताश्च के ॥ १८ ॥
केचिन्नृत्यन्ति गायन्तो हसन्तो हासयन्ति च ।
धावन्तो धावतः केचित् प्रतिगर्जन्ति गर्जतः ॥ १९ ॥
[7]कृष्णे नृत्यति नृत्यन्ति गायन्ति गायतोऽपरे ।
प्रशंसन्ति [8]वादयन्तो वादकांश्च तथाऽपरान् ॥ २० ॥
नृत्यमानेषु सर्वेषु [9]वेणुना स्वरसम्पदा ।
स्वयं बहुविधो भूत्वा सुस्वरं गायति प्रभुः ॥ २१ ॥
प्रबाल[10]बर्हस्तवकस्रग्धातुकृतभूषणः ।
कृष्णो नीला[11]म्बुदश्यामः पीतवस्त्रो[12]ऽम्बुजेक्षणः ॥ २२ ॥
[13]भ्रामणोलङ्घनोत्क्षेपप्रस्फोटनविकर्षणैः ।
क्वचित् [14]स्यन्दोलिकाभिश्च क्वचिद् भूपतिचेष्टया ॥२३॥
क्वचिच्च दर्दुरप्लावैः क्वचिन्मृगखगेहयाः(या) ।
क्रीडाभिर्विविधाभिश्च विविधैरुप[15]हासकैः ॥ २४ ॥
एको देवो बहुविधः क्रीडते गोपबालकैः ।
गोपालाः सुवलस्तोककृष्णदामसुदामकाः ॥ २५ ॥

---

१. महार्हरत्नपटित–क. । २. सुदण्डाः–ङ. । ३. मुद्गरो दण्ड–ङ. । ४. कम्वदेशीति सु–क. । ५. सद्धस्त्रा–क. । ६. बीजयन्तो–ङ. । ७. कृष्ये–क. । ८. वन्दयन्तो–ङ. । ९. वैश्वला–ङ. । १०. बर्हभुवः स्रग्वालकृत–ङ. । ११. म्बुज–क. । १२. ऽम्बुदेक्षगः–ङ. । १३. भ्रामगोल्लङ्घगोत्क्षेपप्रास्फोटनविकर्षणैः–क. । १४. स्पन्दो–ङ. । १५. हासिकैः–ङ. ।

किङ्किणी[1]भद्रसेनांशुकलविङ्कप्रियङ्कराः ।
पुण्डरीक[2]विकङ्काख्यद्युमत्सेनविलासिनः ॥ २६ ॥
[3]मन्दरार्जुनगन्धर्व[4]वसन्तोज्ज्वलकोकिलाः ।
सनन्दनविदग्धाद्या एते प्रियसुहृत्तमाः ॥ २७ ॥
कृष्णदेहोद्भवाः श्यामगौराङ्गा दिव्यरूपिणः ।
विशाल[5]वृषभौजस्विदेवप्रस्थवरुथपाः ॥ २८ ॥
[6]माकन्दकुसुमापीडमणिबन्धकरन्धमाः ।
मन्द[ा]रश्चन्दनं कुन्दः [7]कुलिन्दकुलिकादयः ॥ २९ ॥
कनिष्ठरूपास्ते गोपाः प्रभोः सेवानियोजिताः ।
मण्डलीभद्रयक्षेन्द्रभटभद्राङ्गगोभटाः ॥ ३० ॥
[8]तटवर्धनभद्रेहवीरभद्रमहागुणाः ।
कुलवीरमहाभीमदिव्यशक्तिसुरप्रभाः ॥ ३१ ॥
[9]रणस्थिरः सुस्थिरश्च स्थिरानन्दपुरन्दरौ ।
एते वै ऋषयो मर्त्यलोकमासाद्य जन्मभिः ॥ ३२ ॥
उग्रैस्तपोभिर्गोविन्दं [10]प्रसाद्य जगदीश्वरम् ।
गोपत्वं प्राप्य सुचिरं [11]कृष्णध्यानाहृतङ्यसः ॥ ३३ ॥
कृष्णेन सहिता नित्यं गोलोके विहरन्ति ते ।
गोपालाः कृष्णसुहृदो [12]रहस्यज्ञा इमे पुराः ॥ ३४ ॥
बाह्ये वृन्दा[13]वनप्रान्ते महाकन्दवनस्य च ।
भाण्डीरकवटस्याधः केषाञ्चिद् वसति[:] प्रिये ॥ ३५ ॥
बृहद्वने च केषाञ्चित् केचिदाम्रवने तथा ।
[14]स्थलपद्मवने केचित् केचित् मधुवनान्तरे ॥ ३६ ॥
मन्दारविपिने केचित् पारिजातवने परे ।
खादिरे विपिने केचित् केचित् तालवने प्रिये ॥ ३७ ॥

---

१. तन्त्र से—क. । २. विटङ्काभ्यां द्विमतसेन—ङ. । ३. मन्थरार्जन—क. । ४. वसतो जल—क. । ५. वृषभोजस्विदे—ङ. । ६. मणिरङ्गक—ङ. । ७. कुलिन्दः—ङ. । ८. भद्रवर्धणभद्रे तु वीर—ङ. । ९. बलः स्थिरः—ङ. । १०. प्रसाद—क. । ११. कृष्णध्यानकृत्ताङ्हसः—ङ., अत्र 'कृष्णध्यानहृतांहसः' इति शुद्धः पाठः प्रतीयते । १२. रहसज्ञां—ङ. । १३. वनस्यान्ते—क. । १४. 'स्थल''''प्रिये' इति पङ्क्तित्रयं नास्ति—क. ।

अशोकाख्ये वने केचिन्निवसन्ति शुचिस्मिते ।
राधाकृष्णरसक्रीडासमये समुपस्थितान् ॥ ३८ ॥
तान् दृष्ट्वा क्रीडिता देवी भुवनत्रयसेविता ।
प्रविष्टा विपिनं घोरं लीलया गजगामिनी ॥ ३९ ॥
तद् दृष्ट्वा तत्प्रिय[1]सख्याः [2]षडङ्गेषु बलादयः ।
प्रविष्टाः षट् तदन्ये ये वनात्तस्माद् बहिर्गताः ॥ ४० ॥
एतस्मिन्नेव समये सान्त्वयामास राधिकाम् ।
वृन्दावनं समानीय हसन् कृष्णोऽब्रवीदिदम् ॥ ४१ ॥
अद्यप्रभृति राधायाः वनेऽस्मिन् [3]प्रविसन्ति ये ।
ते तु प्रवेशमात्रेण भवन्तु वरयोषितः ॥ ४२ ॥
वनाद् बहिर्गता [4]भूयः स्वस्वरूपा यथा पुरा ।
गोपालाः कृष्णवचसा भयसंत्रस्तमानसाः ॥ ४३ ॥
एतच्छ्रुत्वा च वचनं कृष्णस्य परमात्मनः ।
ये गतास्तद्वनं ते च स्त्रीत्वं प्राप्तास्तदन्तिके ॥ ४४ ॥
निवसन्ति महाभागे ये चान्ये वनवासिनः ।
मनस्विनो महात्मानो गोपा[5]लास्ते तपस्विनः ॥ ४५ ॥
तपसा तोषमापन्नस्तेषां वृन्दावनेश्वरः ।
दिदृक्षु(क्षू)णां च मध्येऽसावाविर्भूय कृपानिधिः ॥ ४६ ॥
एकेन वपुषा तेषां प्रेमबद्धो [6]दयाम्बुधिः ।
अन्येन वपुषा वृन्दावने क्रीडति राधया ॥ ४७ ॥
श्रीमद्वृन्दावनेश्वर्या चन्द्रावल्या च मायया ।
गोपवेशधरो गोपैर्गोपीभी रसविग्रहः ॥ ४८ ॥
शृङ्गारोचितवेशाढ्यः श्रीमद्[7]गोपालनागरः ।
गोपिकास्तत्र या भद्रे [8]ताः शृणुस्व(ष्व) वदामि ते ॥ ४९ ॥
[9]तासां नामा(म)गुणाख्याने सुखं मे जायते भृशम् ।
श्रीराधा या [10]पराशक्तिः स्वयं श्रीकृष्णरूपिणी ॥ ५० ॥
नित्या रसमयी शक्तिः श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी ।
चन्द्रावली तथा चान्या त्रिपुरादेहसम्भवा ॥ ५१ ॥

---

१. सखाः—ङ. । २. षडङ्गे सुचलादयः—ङ. । ३. निवसन्ति—क. । ४. यूयं—ङ. । ५. लास्तु—ङ. । ६. रसाम्बुभिः—क. । ७. गोलोकना—ङ. । ८. याताः श्रृणु व—क. । ९. 'तासां····भृशम्' नास्ति—ङ. । १०. परामूर्तिः—क. ।

राधाविरहबाधाभिर्बाधितःसे(तस्ये)श्वरस्य च ।
क्रीडार्थं निर्मिता देव्योच(व्यश्च)न्द्रकोटि[१]सुशीतलाः ॥ ५२ ॥
चन्द्रावलीति विख्याता नागरीवृन्दवन्दिता ।
विरहानलतप्ताङ्ग आह्लादमकरोद्यतः ॥ ५३ ॥
[२]चन्द्रावलीति लोकेऽस्मिन् गीयते चन्द्रनायभा (?) ।
ललिताख्या परा देवी या साक्षाद् भुवनेश्वरी ॥ ५४ ॥
रिरंसुर्भगवान् कृष्णो रतिकालेऽन्यमानसाम् ।
आलक्ष्य तां महादेवीं त्यक्तवान्यां वशमागतः ॥ ५५ ॥
तेन दोषेण सा देवी च्युता वृन्दावनादतः ।
तस्या [३]एकांशतः पुंस्त्वान्नारदश्चाऽभवन्मुनिः ॥ ५६ ॥
विशाखाऽन्या तथा श्यामा पद्मा शैव्या च भद्रिका ।
तारा विचित्रा गोपाली पालिका चन्द्रशालिका ॥ ५७ ॥
मङ्गला विमला [४]वीणा तरलाक्षी मनोरमा ।
कन्दर्पमञ्जरी मञ्जुभाषिणी [५]चाञ्जनेक्षणा ॥ ५८ ॥
कुमुदा कैरवी सारी शारदाक्षी विशारदा ।
[६]शङ्करी कुङ्कुमा कृष्णा साराङ्गीन्द्रावली शिवा ॥ ५९ ॥
तारावली गुणवती सुमुखी केलिमञ्जरी ।
हारावली चकोराक्षी भारती [७]कामिलादिकाः ॥ ६० ॥
एताः संक्षेपतः प्रोक्ताः श्रेष्ठा गोपकुमारिकाः ।
राधाङ्गसम्भवाः कोटिसंख्या वै वरयोषितः ॥ ६१ ॥
राधायाश्च प्रियाः सख्यो यास्ताः [८]शृणु वरानने ।
सुचित्रा चम्पकलता रङ्गदेवी [९]सुदेविका ॥ ६२ ॥
तुङ्गविद्येन्दुलेखा च मण्डली मणिकुण्डला ।
कुरङ्गाक्षिः मालती च माधवी च मदालसा ॥ ६३ ॥
मञ्जुला चन्द्रतिलका सुमध्या मधुरेक्षणा ।
मञ्जुमेधा शशिकला [१०]गुणचूडा [११]वराङ्गदा ॥ ६४ ॥

---

१. समप्रभाः—क. । २. 'चन्द्रावली····ऽन्यमानसाम्' इति पङ्क्तित्रयं नास्ति—ङ. । ३. एकाङ्गतः—ङ. । ४. नीला—क. । ५. वा(ख)ञ्जनेक्षणा—क. ६. केशरी—क. । ७. कामिनादिकाः—ङ. । ८. शृणुष्व वरानने—ङ. । ९. सुवेदिका—क. । १०. गुणच्युडा—ङ. । ११. वराङ्गना—क. ।

कमला कामलतिका सुरङ्गी प्रेममञ्जरी ।
माधुरी चन्द्रिका चन्द्रा सुवला तनुमध्यमा ॥ ६५ ॥
कन्दर्पसुन्दरी मञ्जुकेशी केशवमोहिनी ।
इत्याद्या रूपशीलाढ्याः प्राणतुल्याः किशोरिकाः ॥ ६६ ॥
अन्याः शृणु सखी तस्या लासिका केलि[1]कन्दली ।
कादम्बरी शशिमुखी चन्द्ररेखा प्रियम्वदा ॥ ६७ ॥
मदोन्मदा मधुमती वासन्ती कलभाषिणी ।
रत्नवेणी मणिमती कर्पूरतिलकोज्ज्वला ॥ ६८ ॥
एता वृन्दावनेश्वर्याः प्रायः सारूप्यमागताः ।
अन्याः सख्यो महादेव्या मनोज्ञा [2]मणिमञ्जरी ॥ ६९ ॥
सिन्दूरा चन्दनवती कौमुदी मदिरालसा ।
काननादिगताः सख्यो वृन्दाकुन्दलतादिकाः ॥ ७० ॥
कामदा नाम या देवी सखीभावे विशेषभाक् ।
महालक्ष्मी [3]समानैता राधया तुलिता गुणैः ॥ ७१ ॥
कटाक्षमात्रब्रह्माण्डकोटिक्षोभकराः पराः ।
राधाज्ञावशवर्तिन्यः श्रीकृष्णसुखदायिकाः ॥ ७२ ॥
यासां कटाक्षमात्रेण ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
कृतार्थमिव मन्यन्ते [4]स्वात्मानं जगदीश्वराः ॥ ७३ ॥
अथ वृन्दावनेशस्य दासदासीगणान् शृणु ।
मधुपिङ्गलपुष्पाङ्गहासाङ्काद्याविदूषकाः ॥ ७४ ॥
कडारभारतीबन्ध[5]चारुवेषादयो विटाः ।
चेटाभङ्गुरभृङ्गारसन्धिक[6]प्रहिणादयः ॥ ७५ ॥
रक्तकः [7]पत्रकः पत्री [8]मधुकम्वो मधुव्रतः ।
शालिकस्तालिको माली भानुमालाधरादयः ॥ ७६ ॥
तद्वेणु[9]शृङ्गमुरलीयष्टिपाशादिधारिणः ।
पृथुकाः पार्श्वगाः केलिकलापालापकौशलाः ॥ ७७ ॥

---

१. सुन्दरी—ङ. । २. मानमञ्जरी—ङ. । ३. 'समानैता' इत्यस्य स्थाने 'एतै' इति—क. । ४. आत्मानं—ङ. । ५. गन्धवेशादयो—क. । ६. गृहिलादयः—क. । ७. पर्णी पत्रकः मधु—ङ. । ८. मधूकण्ठो—ङ. । ९. शुद्धमु—ङ. ।

पल्लवो मङ्गलः फुल्लः कोमलः कपिलस्तथा ।
[1]सुविशालविशालाक्षरसालरसशालिनः ॥ ७८ ॥
जम्बुनाद्याश्च ताम्बूल[2]परिष्कारविचक्षणाः ।
पयोदवारिदाद्याश्च [3]नीरसंस्कारकारिणः ॥ ७९ ॥
वस्त्रसंस्कारनिपुणाः सारङ्गबकुलादयः ।
प्रेमकन्दो महागन्धसैरिन्ध्रमधुकन्दलाः ॥ ८० ॥
मकरन्दादयश्चामी [4]सदाशृङ्गारकारिणः ।
सुमनाः कुसुमोल्लासपुष्प[5]हासहरादयः ॥ ८१ ॥
गन्धाङ्गरागमाल्यादिपुष्पोपस्कारकारिणः ।
केशसंस्कारकुशलौ सुबन्धकरभाजनौ ॥ ८२ ॥
कर्पूरकुमुदावेतौ दर्पणार्पणकर्मणि ।
शीतलः प्रगुणः [6]स्वक्षो विमलः कमलस्तथा ॥ ८३ ॥
[7]स्थानपीठधरा एते परिचर्यापरायणाः ।
[8]धनिष्ठाचन्दनकलागुणमालारतिप्रभाः ॥ ८४ ॥
धरणीसुप्रभाशोभारम्भाद्याः परिचारिकाः ।
गृहसम्मार्जनालेपक्षीरावर्तादिकोविदाः ॥ ८५ ॥
चेट्यः कुरङ्गीभृङ्गारीसुलम्बालम्बिकादिकाः ।
[9]चतुरश्चारणो धीमान् [10]पेशलाद्याश्चरोत्तमाः ॥ ८६ ॥
चरन्ति गोपगोपीषु नानावेषेण ये सदा ।
[11]दूतीविशारदोतुङ्गवावदूकमनोरमाः ॥ ८७ ॥
[12]नीतिसारादयः केलि कलौ [13]वामाकुलेषु च ।
वृन्दावृन्दारिका[14]सेनासुबालाद्याश्च दूतिकाः ॥ ८८ ॥
[15]कुञ्जादिसंस्क्रियाभिज्ञा वृन्दा तासु [16]वरीयसी ।
[17]वीणानाम वरा दूती ख्याताऽन्या पूजिता वने ॥ ८९ ॥

---

१. सुविलासवि–ङ. । २. परिवारिविचक्षणा–क. । ३. नीलसं–ङ. । ४. तदा–ङ. । ५. हासो ह–क. । ६. स्वच्छो–क. । ७. स्थालपीठ–क. । ८. 'धनिष्ठा''''कोविदाः' इति पङ्क्तित्रयं नास्ति–क. । ९. चतुरश्चतुरो धी–क. । १०. ते चलाद्या–ङ. । ११. दूता विशारदा–क. । १२. नीतसा–ङ. । १३. रामादिकेषु–क. । १४. मेलासु–क. । १५. अङ्ख्यादि–ङ. । १६. वलीयसी–ङ. । १७. वीराणाम–ङ. ।

[1]शोभनो द्वीपनाद्याश्च दीपिकाधारिणो मताः।
विचित्रवारमधुरा वाराद्यास्तस्य वन्दिनः ॥ ९० ॥
विद्याधरा वयं कान्ते! गोविन्दवशवर्तिनः।
चन्द्रभाससूर्यभासप्रभासोद्भासभासकाः ॥ ९१ ॥
सुशर्मा नर्मदश्चैव रतिहासो रतिप्रियः।
इत्याद्यादेवगन्धर्वा वृन्दावननिवासिनः ॥ ९२ ॥
सुशर्मेति च मन्नाम गोविन्दप्रियबान्धवः।
नानायन्त्रकलाभिज्ञो नानाविद्याविशारदः ॥ ९३ ॥
सुन्दरः शोभनवचाः सुकण्ठो मधुराकृतिः।
[2]मद्गीतरागश्रवणे गोविन्दप्रीतिरुत्तमा ॥ ९४ ॥
रसावेशस्य समये राधया पद्मलोचने।
कृष्णेन निर्मितः पूर्वं [3]सङ्गीतश्रवणेच्छया ॥ ९५ ॥
निर्माय सुन्दर[4]तरं मामुवाच महाप्रभुः।
अनन्यचेताः सततं ममैव कुरु सेवनम् ॥ ९६ ॥
ममाज्ञापालनं नित्यं धर्मोऽयं तव सुव्रत।
धर्मादस्मात् परिभ्रष्टो मदन्यमानसो भवान् ॥ ९७ ॥
लोकादस्मात् च्युतो नित्यं भविष्यति नृपात्मजः।
पुनर्मान्धातृतनयः सनयस्त्वं भविष्यसि ॥ ९८ ॥
मुचुकुन्दाभिधः सूर्यवंशे संशितविक्रमः।
ब्राह्मणत्वं पुनः प्राप्य[5]मद्भावगतकिल्विषः ॥ ९९ ॥
प्राप्स्यसीदं परं धामेत्युक्तं भगवता पुरा।
त्वमेव [6]राधिका या श्रीकटाक्षप्रभवा सती ॥ १०० ॥
सुकण्ठा सुदती श्यामा सुन्दरीगुणमन्दिरम्।
नृत्यगीतकलाभिज्ञा नानारसविशारदा ॥ १०१ ॥
मदर्थं निर्मिता देव्या [7]मत्वा मां कामकामलम्।
[8]सुभृत्यं चातिप्रियं भर्तुर्नानागुणविशारदम् ॥ १०२ ॥
नृत्यगीतान्तरत्वं वै दातुं मह्यं शुचिस्मिते।
विद्याधरी विशा[9]लाक्षी [10]नाम्ना विष्णुप्रिया प्रिये ॥ १०३ ॥

---

१. शोभनाङ्गी एलाद्याश्च–ङ.। २. सङ्गीतवाद्यश्रवणैर्गोवि–ङ.। ३. सुगीत–क.। ४. वरं–क.। ५. मद्भागवत–क.। ६. राधिकायाः–क.। ७. मद्वामाङ्कामकामनः–ङ.। ८. स्वभृत्यं–ङ.। ९. लाक्षि–क.। १०. नाना-ङ.।

दैवादेवावयोस्तस्मात् च्युतिर्वृन्दावनादिह ।
यतस्तत् कथयिष्यामि पश्चादन्यच्छृणुष्व मे ॥ १०४ ॥
मत्सङ्गिनोऽन्ये सुभगे [1]नर्तकाः सुमनोहराः ।
चन्द्रहासेन्दुहासौ च श्रीमांश्चन्द्रमुखादयः ॥ १०५ ॥
सुधाकरसुधानादशारङ्गाद्या मृदङ्गिनः ।
कलावन्तश्च महती वादिनो गुणसागराः ॥ १०६ ॥
कलकण्ठः सुकण्ठश्च सुधाकण्ठो मधुस्वरः ।
भारतः शारदो विद्या[2]विलासः सरसादयः ॥ १०७ ॥
सर्वप्रबन्धनि[illegible]णार्रसंज्ञास्तालधारिणः ।
कन्दुकादिपरिस्कारी रोचिको रुचिराननः ॥ १०८ ॥
निर्णेजकास्तु सुमुखो दुर्लभो रञ्जनादयः ।
वर्धमानो विश्वकर्मा खट्वारथकृदुत्तमः ॥ १०९ ॥
सुचित्रश्च विचित्रश्च ख्यातौ चित्रकरावुभौ ।
दामसन्धानकुचरपेटी[3]सिक्त्यादिधारिणः ॥ ११० ॥
कारकः कुन्तकन्तोलकरन्तकटुलादयः ।
[4]मन्थस्य परिकर्तारौ ख्यातौ [5]पवनकर्मठौ ॥ १११ ॥
गृहाङ्गणमहोद्यानसम्मार्जनकराः प्रिये ।
पुण्यपुञ्जपुण्यगन्धपुण्यशीलसुशीलकाः ॥ ११२ ॥
एते वै मुनयो नित्यं तपसाऽऽराध्य केशवम् ।
[6]अनादृत्यापरंवस्तु गोविन्दं पुरुषोत्तमम् ॥ ११३ ॥
भजन्त्यनन्यया भक्त्या सर्वे गोविन्दमानसाः ।
ऋषिर्वृद्धश्रवानाम संसेव्य जगदीश्वरम् ॥ ११४ ॥
सुरङ्गाख्यः कुरङ्गोभूद् वृन्दावनचरः [7]सदा ।
ऋषिर्वेदशिरानाम तपसाऽऽराध्य केशवम् ॥ ११५ ॥
प्रेमाभिलाषी कृष्णस्य दधिलोलो[8]ऽभवत् कपिः ।
ऋषिर्व्याघ्रभ्रमरकावति भक्तौ महाप्रभोः ॥ ११६ ॥
भजतः [9]किङ्करौ भूत्वा कृष्णाज्ञावशवर्तिनौ ।
अपान्तरतपानाम मुनिराधाध्य केशवम् ॥ ११७ ॥

---

१. नर्तकाश्च मनो–ङ. । २. विलाससर–ङ. । ३. शिञ्ज्यादि–ङ. । ४. मन्थरूपा विकर्तारौ–क. । ५. श्रवणकर्मठौ–ङ. । ६. अन्यादृत्यापवर्गं तु गोवि· क. । ७. परः–ङ. । ८. ऽभ्रमत्–क. । ९. कुक्कुरौ–क. ।

श्रीकृष्णप्रीतिजनको राजहंसः [1]कलस्वनः ।
शिखिनं कार्तिकेयस्य [2]कृष्णभक्तिपरायणम् ॥ ११८ ॥
नृत्यन्तं रभसा द्वारि पश्यन्ति वनवासिनः ।
[3]मणिमण्डप[4]सम्बद्धौ गोविन्दस्तुति[5]पाठकौ ॥ ११९ ॥
अतिप्रीतिकरौ दिव्यौ शुकौ दक्षविचक्षणौ ।
ये च दासास्तथा गोपाः पशु[6]वर्गास्तथैव च ॥ १२० ॥
बृहद्वने वसन्त्येते गोविन्दस्य पुरोत्तमे ।
संक्षेपात् कथिताः श्रीमद्गोविन्दस्य वरानने ॥ १२१ ॥
गोलोकपरिषद[7]वर्गा उत्तमा ये सुपर्वणाम् ।
अथ राधा महादेव्याः शृणु दासीगणान् प्रिये ॥ १२२ ॥
लवङ्गमञ्जरी रागमञ्जरी गुणमञ्जरी ।
भानुमत्यमर[8]श्रेष्ठा सुप्रिया रतिमञ्जरी ॥ १२३ ॥
रागलेखाकलाकेलिर्भूरिदाद्याश्च दासिकाः ।
नान्दीमुखी[9]बिन्दुमतीत्याद्याः सन्धिविधायिकाः ॥ १२४ ॥
सुहृत्पक्षतया ख्याताः श्यामलामङ्गलादिकाः ।
प्रतिपक्षतया ख्यातिं [10]गताश्चन्द्रावली[11]मुखाः ॥ १२५ ॥
गन्ध[12]र्व्यस्तु कलाकण्ठी सुकण्ठी पिककण्ठिकाः ।
कलावत्यो [13]रसोल्लासा गुण[14]तुङ्गस्वरोद्धुराः ॥ १२६ ॥
या विशाखा कृतं गीतं [15]गायन्त्यः सुखदा विभोः ।
वादयन्ते च सुषिरं तना(ता)न[16]द्धद्र(घ)नान्यपि ॥ १२७ ॥
[17]मानिन्यो नर्मदाप्रेमवतीकुसुमपेशलाः ।
सुगन्धा नलिनी चास्याः पादरञ्जनकारिका ॥ १२८ ॥
वस्त्ररङ्गं करे तस्या मञ्जिष्ठा रङ्गवत्यपि ।
[18]पालिगन्धी च सैरिन्ध्र्यौ चित्रिणी चित्रकारिणी ॥ १२९ ॥

---

१. कलः पुनः–ङ. । २. कृष्णस्य भक्ति–ङ. । ३. मानमण्डप–ङ. । ४. सम्बन्धौ–क. । ५. यावकौ–क. । ६. बद्धास्त–ङ. । ७. बद्धा–ङ. । ८. श्रेष्ठा–क. । ९. वृन्दु–ङ. । १०. सन्ता–ङ. । ११. शुभाः–ङ. । १२. र्व्यस्सुकला–क. । १३. रसोद्वासा–ङ. । १४. तुङ्गासुरोत्कराः–ङ. । १५. गायन्तः–ङ. । १६. कुशलान्यपि–ङ. । १७. मालिन्यो–क. । १८. पाणिगन्धी–ङ. ।

मान्त्रिकी तान्त्रिकी चैव चिन्ताविद्याविशारदे ।
तथा कात्यायनीत्याद्या दूतिका वयसाधिकाः ॥ १३० ॥
[१]वाद्यसम्मार्जन[२]करा सुभाग्यामञ्जुला[३]भिधा ।
भृङ्गी मल्ली मतल्ली च पुलिन्दकुलनन्दनाः ॥ १३१ ॥
मनसाऽऽराध्य गोविन्दं प्रापुस्तस्यैव सन्निधिम् ।
ब्राह्मण्यो गार्गीमुख्याश्च [४]सुमुख्यः शीलसुव्रताः ॥ १३२ ॥
[५]दत्तं वृन्दावने याभिर्याचमानाय भोजनम् ।
श्रीकृष्णाय [६]सतृष्णाय न [७]लब्धमेतत्परं पदम् ॥ १३३ ॥
किं वर्ण[८]यामि धरणीं [९]सुरसुन्दरीणां
भाग्यानि याः कुलकलङ्कविशङ्कचित्ताः ।
लज्जां विहाय पतिपुत्रकुटुम्ब[१०]वर्गान[ा]-
कृश्य घोरविपिने हरिमेव भेजुः ॥ १३४ ॥
हैयङ्गवीनदधिदुग्धविदग्धभक्ष्य-
मिष्ठान्नपाननवपिष्टकतेम[११]नानि ।
सद्योऽनवद्यचरितां चरितान्दधत्यः
स्नेहानुबन्धविवसा [१२]उपढौकयन्त्यः ॥ १३५ ॥
यासां स्वकीयसुहृदामनुवृत्तिभाजां
[१३]मध्येगता मधुरभोजनचारुपानैः ।
कृष्णः [१४]सतृष्णहृदयः [१५]सदयः सदैव
शुद्धेन्द्रियोऽपि जगतामधिपो ययाचे ॥ १३६ ॥
संयाच्य यज्ञभुगपिप्रथितो व्रजस्य
बालव्रजैः परिवृतो बुभुजे सदन्नम् ।
[१६]पूर्णोडुराज इव तैः खचरोडुसङ्घै-
रीषद्विकासमृदुहास[१७]मुखः सुखेन ॥ १३७ ॥

---

१. वाह्यस–ङ. । २. करे–ङ. । ३. भिधे–ङ. । ४. सुमुखा–क. । ५. दत्ता–क. । ६. सदृष्णाय–ङ. । ७. चकमे–ङ. । ८. याम–ङ. । ९. 'सुर' नास्ति–क. । १०. वन्धानाकृष्य घोर–ङ. । ११. नादि–ङ. । १२. नुप–क. । १३. अधोगतो–क. । १४. सदृष्ग–ङ. । १५. सदैव–क. । १६. पूर्णेन्दु-राज–क. । १७. नुमः सुखेन–ङ. ।

नमस्तस्मै भगवते कस्मैश्चित् परमात्मने ।
स्त्रियोऽपि सविधं नीताः [1]पातितः पुरुषो गुणी ॥ १३८ ॥
न लभ्यते दुर्लभः [2]सः चिरसेवनकर्मभिः ।
स्त्रीणामपि स्वल्पसेवावश(शं) सद्भाग्यजृम्भितम् ॥१३९॥

नारद उवाच

इति विहितविषादः कम्पमानाङ्ग[3]यष्टि-
र्वलितनयनपाथोधारयाऽस्या धरायाः ।
विपुलपुलक[4]पूर्णोऽप्यार्द्रय(र्द्रयन्) रे(वे)णुराजी-
र्विधिमनवधितापा व्याक्षिपन् संरुरोद ॥ १४० ॥
अहह हत[5]विधे त्वं क्रूरकर्मासि सत्यं
घटयसि [6]घटनीयं नो भवेद् [7]यत्कदाचित् ।
अखिलरसविलासी शीतलः कृष्णचन्द्रः
कलयति कलयाऽसौ [8]तापतापं ममैव ॥ १४१ ॥
त्वमसि कठिनमूर्तिर्हा विधे निर्दयस्त्वं
यदिह पतति [9]वत्से नावधत्से कदापि ।
कुमुदवदनमुद्रां खण्डयत्येव शीघ्रं
विधुरति विधुरोऽपि स्मर्यतां कोऽत्र हेतुः ॥ १४२ ॥
त्वमसि कठिनकर्मा भिन्नमर्मा जनानां
यदहमिह सुशर्मा नष्टशर्मा बभूव ।
पुनरपि न विधातस्तद्विधातव्य[10]मास्तां
जनयति भजनं नो कृष्णपादारविन्दे ॥ १४३ ॥
तव भवति चरित्रं चित्रमत्रैव धातः
कुचतरुसविधस्थस्यास्य मध्ये फलानि ।
क्वचन सुचिरमुच्चैर्भूरुहारोह[11]भाजं
प्रसभमयमकस्माद् दण्डजे दण्डपातः ॥ १४४ ॥

---

१. पातिनः—क. । २. सुचिर—ङ. । ३. रागवल्लीर्वलित—ङ. । ४. पूर्णोप्याद्रियन्ते अय वाजीर्विधि—ङ. । ५. विधिस्त्वं—ङ. । ६. शयनीयं—क. । ७. यत्कदापि—ङ. । ८. नानुतापं—ङ. । ९. वहसि नावध्यसे—ङ. । १०. मास्त्वं—क. । ११. भाजि—ङ. ।

सकलभुवनवल्लीमौलि[1]पुष्पायितं यत्
मधुरमधुरमूर्त्या चारुवृन्दावनं सत्।
तदुपरि मम वासं कारयित्वा [2]विधात-
र्भ्रमयसि भव[3]सिन्धावेषकस्ते विडम्बः॥ १४५॥
वृन्दावनेन्द्रमुखदर्शनहर्षराशिः
सन्त्याजितो विघटिता मधुरस्थली सा।
तत्रातिचित्रसुचरित्रकथा गता मे
जागर्ति [4]किन्त्वपरमत्र विधेर्विधेयम्॥ १४६॥
पितुरपि [5]निजकीर्तिर्दूषितापद्मयोने-
र्जनकमनुगतस्य त्वं [6]कुले धूमकेतुः।
जनयति [7]जनकस्ते दुर्जनस्यापि शैत्यं
यदिह भवति नित्यं साधुसन्तापकत्वम्॥ १४७॥
वृन्दावनेन्द्रमुखचन्द्रसुधापि नूनं
दूरीकृता नयनचारुचकोरवक्त्रात्।
तत्तद्विलासमृदुहासविलोकनं मे
शोकापनोदन[8]करं हरता [9]विधातः॥ १४८॥
दुर्भागधेयमवधेयमये यदि स्या-
न्मृत्युं कथं न कुरुषे कुरुषे ह मानः(नम्)।
श्रीकृष्णदेव[10]सुखसेवनकारिणो ये
नस्युः किमिन्द्रियवतामपि जीवनेन॥ १४९॥
ये कृष्णचन्द्रविमुखा विमुखास्त एव
ये कृष्णचन्द्रविरता विरतास्त एव।
ये कृष्णचन्द्रविरसा विरसास्त एव
ये कृष्णचन्द्रकुधियः कुधियस्त एव॥ १५०॥

---

१. पुष्पायुतं—क.। २. विधातु—क.। ३. सिद्धावे—ङ.। ४. विन्दुप—क.। ५. निकीर्ण(ते)र्दूषकः—ङ.। ६. कुतो—क.। ७. जनकस्तु—क.। ८. हरं—क.। ९. विधातुः—क.। १०. शुभमेव—ङ.।

[1]जीवन्ति जीवनधृतोऽपि न जीवलोके
ये कृष्णचन्द्रचरणाम्बुजमाश्रिता [2]नो ।
संसारतापपरितापितसर्वदेहा
वृक्षा यथा खरखरांशु[3]विशुष्कशाखाः ॥१५१॥
हरि हरिपादाम्भोजसेवाकृता मे
[4]परिहरसि सुखं तद् राधिकाया [5]वनान्ते ।
अनुदिनमिह दुःखं दीयते कातरेऽस्मिन्
विरम विरम [6]धातर्बद्ध एषोऽञ्जलिस्ते ॥ १५२ ॥
लावण्यपुञ्जमनुरञ्जन[7]मञ्जुलाभं
श्यामं [8]वपुर्नयनतो नयसि स्म दूरे ।
एतावतैव विरमात्र [9]कृतोऽञ्जलिस्ते
कृष्णं [10]हृदो बहिरितो न [11]विधे विधेहि ॥ १५३ ॥
वृन्दारवृन्दमपि वृन्दति यत्पद नो
वृन्दावनादुत ततश्च्यवतश्चिरं मे ।
कृष्णस्मृतिं हृदयवर्त्मनि चेत् पिधत्से
किं पौरुषं भवति [12]मूर्छितमूर्च्छनेन ॥ १५४ ॥
धातर्न [13]चात्रपरमस्ति पौरुषं
[14]यद् दुःखदावानलदाहितं माम् ।
निपात्य तूर्णं [15]भवलावणार्णवे
[16]मायाभ्रमो भ्रामयसि प्रकामम् ॥ १५५ ॥
मरकत[17]मुकुराभं चारुविम्बाधरौष्ठं
विमलकमलनेत्रं कुण्डलोद्दण्डगण्डम् ।
वितनुकुटिलचापभ्रूलतं दीर्घनाशं(सं)
पुनरपि भविता [18]चेच्छ्रीमुखं दृक्पथे मे ॥ १५६ ॥

---

१. जीवन्तु—ङ. । २. 'नो'इत्यस्य स्थाने 'वा'—क. । ३. विशुद्ध-शाखाः—क. । ४. परिहरति—क. । ५. दिनान्ते—क. । ६. 'धातर्बद्ध' इत्यस्य स्थाने 'धात'-ङ. । ७. रञ्जनाभं-ङ. । ८. वपुस्ते यवतो—क. । ९. कृतो-ञ्जलिस्ते—क. । १०. 'हृदो' नास्ति—क. । ११. विधेहि धेहि—क. । १२. 'मूर्द्दित'नास्ति—ङ. । १३. चातःप—क. । १४. 'यद्'इत्यस्य स्थाने 'यः'-क. । १५. भवना रसार्णवे—ङ. । १६. मायाभूमौ—ङ. । १७. मुकुटाभं—ङ. । १८. 'चेत्'इत्यस्य स्थाने'ते'—ङ. ।

केलीकदम्बतरुराजतले त्रिभङ्ग-
स्फूर्जत्तमालदलकोमलनीलदेहः ।
संतप्तकाञ्चनसमुज्ज्वलपीतवासा
हासावलोकन[1]मनोभववैभवाढ्यः ॥ १५७ ॥
बिम्बाधरेण मुरली कररीविलासी
मायूरपिच्छपरिलाञ्छितचारुचूडः ।
आभीरबालककुलेन विहारकारी
राधापतिर्मम पुनर्भविताऽनुकूलः ॥ १५८ ॥
श्यामं सुन्दरविग्रहं नवरसस्निग्धं मनोहारिणं
सर्वाङ्गे घनसारचर्चित[2]ममुं वेणुं क्वणन्तं [3]मुदा ।
मूले नीपमहीरुहः स्मितमुखं रक्तारविन्देक्षणं
द्रक्ष्यामि प्रियमुत्तमं पुनरपि श्रीकृष्णदेवं क्षणम् ॥ १५९ ॥
पास्यामि कर्णकुहरेण कदम्बमूले
भूयो हरेर्मुरलिकामधुरा[4]रुतानि ।
कन्दर्पकोटि[5]कमनं नवनीरदाभं
द्रक्ष्यामि तद्वपुरपूर्वमनोज्ञरूपम् ॥ १६० ॥
इत्येवं तस्य रुदतो लुठतो धरणीतले ।
अश्रुवारितरङ्गिण्यां स्नपिता पुलकाङ्किता ॥ १६१ ॥
कम्पमानाङ्गलतिका विस्मिता सुस्मितानना ।
[6]सम्प्रोच्छ्य(ञ्छ्य) भृशमस्रूणि प्रणयाविष्टमानसा ।
[7]अवदच्छुद्धहृदया प्रेमगद्गदया गिरा ॥ १६२ ॥

ब्राह्मणी उवाच

भूयः कथय शुद्धात्मन् वृन्दावन[8]कथामथ ।
श्रोतुकामो(मा)स्मि नियतं श्रीकृष्णगुण[9]तृष्णया ॥ १६३ ॥

---

१. मनोहरवैभ–क. । २. तनुं–ङ. । ३. सदा–ङ. । ४. कृतानि–क. । ५. दलनं–ङ. । ६. 'सम्प्रोचय अश्रमाष्णूणि प्रलयाविष्टमानसा'–ङ. । ७. अवदत्तुङ्ग-हृदया–ङ. । ८. कथा मम–ङ. । ९. हृ(इ)च्छया–ङ. ।

कथय कथय गाथाः कान्त कान्तस्य तस्य
क्षपय [1]मम नितान्तं [2]तान्ततां कान्तदेह ।
न कुरु मनसि तापं स्वल्प उद्बोधकाले
स्मर [3]सपदि हृदि श्रीकृष्णनाम प्रकामम् ॥ १६४ ॥
विचरति तव चित्ते तद्वनान्ताच्च्युतोऽह-
मिति विरमतु वार्ता ययुतः(?) कृष्णचिन्ता ।
प्रसरति रसरूपं तत्र वृन्दावनं हि
स्वयमुदयति राधाराधितः कृष्णचन्द्रः ॥ १६५ ॥
वदनमनुदिनं श्रीकृष्णकृष्णेति नाम्ना
प्रणयविनयचेताश्चित्तजेता पुनीहि ।
[4]जनुरनुगमितस्याऽपीन्द्रियाणां नियन्तु-
र्मुरहरचरणाब्जं ध्यायतो भूः पदं तत् ॥ १६६ ॥
उच्चैः समुच्चार्य विचार्य [5]मायं
सर्वत्र तन्त्रे [6]जपकृष्णमन्त्रम् ।
प्रभोश्चरित्रामृतमत्र पीत्वा
संसारसर्पस्य जहाति [7]दर्पम् ॥ १६७ ॥
शृणु [8]वचनमिदं श्रीकृष्ण गोविन्द राधा-
[9]रमण नवतमालश्याम [10]गोलोकनाथ ।
इति विशदहृदोच्चैर्भण्यतां साधय(धु)बुद्धे
भवतु तव नितान्तं तापशान्तिर्ममाऽपि ॥१६८॥
दिव्यवृन्दावनकथासुधापूरेण पूरयन् ।
मत्कर्णकुहरं कान्त [11]प्रशान्तहृदयो भव ॥ १६९ ॥
नारद उवाच
इत्थं निगदितो विप्रकान्तया प्राणकान्तया ।
अवदद् वदतांश्रेष्ठः प्रेम्णाऽतिमधुरं वचः ॥ १७० ॥

---

१. 'मम'इत्यस्य स्थाने 'मे'–क.। २. कान्ततां–ङ.। ३. स्वपदि–ङ.। ४. यन्नरं गमित–ङ.। ५. माऽर्थं–ङ.। ६. जयश्रीकृष्ण–ङ.। ७. दर्भम्–क.। ८. सुखदमिष्टं श्री–क.। ९. 'रमणनवनमाल' इत्यस्यस्थाने 'जलदमाल'–क.। १०. लोकैकनाथ–क.। ११. प्रसान्त–क.।

[1]ब्राह्मण उवाच

शृणु भूयः कथां दिव्यां द्वि(दि)व्यवृन्दावनस्य ताम्।
सुखं मे जायते सुभ्रुर्मतिस्ते यत ईदृशी ॥ १७१ ॥
अन्नप्रदानमात्रेण ययुः श्रीकृष्णसन्निधिम्।
ब्राह्मण्यः [2]किमतो ब्रूमस्तेषां वै महनीयताम् ॥ १७२ ॥
भक्तिं रक्तिं विदधते ये कृष्णचरणाम्बुजे।
नित्यं तद्गुणशुश्रूषानन्दानन्दित[3]चेतसः ॥ १७३ ॥
पापानुतापविकला अपि चाण्डालयोनयः।
श्रीमद्वृन्दावनेश्वर्याः चेट्यो भृङ्गारिकादिकाः ॥ १७४ ॥
पुरा राधां समाराध्य प्राप्तस्तत्परमं पदम्।
[4]नित्यं तद्गुणशुश्रूषानन्दानन्दितचेतसः ॥ १७५ ॥
सुवलोज्ज्वलगन्धर्वमधुमङ्गलरक्तकाः ।
विजयाद्या रसालाद्याः पयोदाद्या विटादयः ॥ १७६ ॥
[5]भ्रातृकल्पास्तु राधायाः श्रीकृष्णस्य प्रिया इमे।
अन्तर्बहिश्चराः सिद्धा अविरोधसमागमाः ॥ १७७ ॥
[6]आसन्नाः सर्वदा [7]शुङ्गीपिशङ्गीकल[8]कन्दलाः।
मञ्जुला[9]विदुलामन्दामृदुलाद्यास्तु बालिकाः ॥ १७८ ॥
[10]समांसमीनाः सुनदा यमुनाबहुलादयः।
भौमे वृन्दावने ह्येताः संसेव्य जगदीश्वरीम् ॥ १७९ ॥
प्राप्ता वृन्दावनं दिव्यं योगीन्द्रै[11]र्यन्न लभ्यते।
पीना वत्सतरी तुङ्गी[12]कुक्कुटी[13]मृदुमर्कटी ॥ १८० ॥
कुरङ्गी[14]रङ्गिणी ख्याता चकोरी चारुचन्द्रिका।
मयूरी सुन्दरी नाम्नी सारिके [15]सूक्ष्मधी शुभे ॥ १८१ ॥

---

१. 'ब्राह्मण उवाच' नास्ति-क.। २. किमुत्तदभूमस्तेषां—क.। ३. चेतसा-ङ.। ४. 'नित्यं''''चेतसः' पङ्क्तिरेषा नास्ति—ङ.। ५. भातृकन्यास्तु—ङ.। ६. आसन्नः—क.। ७. शुद्धिः पि—ङ.। ८. क्रन्दनाः—ङ.। ९. विन्दुला—ङ.। १०. अत्रत्य 'ग'मातृका पुनश्चारभ्यते। ११. यंत्र—क.। १२. कम्भटी—ङ.। १३. वृद्धमर्कटी—ङ.। १४. रङ्गली—ङ.। १५. सूचमरी शुभे—ङ.।

यशांसि [1]ललितादेव्याः [2]ललितानि स्वनाथयोः ।
पठन्त्यौ चित्रया वाचा ये चित्रीकुरुतः सखीम् ॥ १८२ ॥
निजकुण्डेचरीं तुण्डिकेरींनाम [3]बालिकाम् ।
दर्शयन्तीं [4]गतेर्माद्यं प्रशंशससदेश्वरी ॥ १८३ ॥
[5]एतत्ते कथितं साध्वि राधादेव्याः सुखप्रदम् ।
दासदासीवृन्दमिदं संक्षेपाच्छृणु [6]तत्परम् ॥ १८४ ॥
अथ कृष्णस्य राधायाः प्रियद्रव्याणि यानि [7]च ।
तानि ते [8]कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये ॥ १८५ ॥
वृन्दावनं नामवनं राधाकृष्णप्रियं [9]महत् ।
नैःश्रेय[10]साद्विना श्रेयः सर्वतः [11]सुखदं परम् ॥ १८६ ॥
असंख्यकल्प[12]वृक्षाणां छाया[13]शीतलमुत्तमम् ।
श्रीकृष्णचरणद्वन्द्वलक्षणैर्लक्षितं सदा ॥ १८७ ॥
ध्वजवज्राङ्कुशा[14]म्भोजैरम्भोजैरपि सम्भृतम् ।
नवपल्लव[15]शय्याभिर्दिव्याभिः [16]क्वापि दीपितम् ॥१८८॥
माद्यद्भि[17]रनुनृत्यद्भि[18]र्मधुपैः क्वापि [19]झङ्कृतम् ।
क्वचिन्मयूरपक्षैश्च गोविन्द[20]शिरसश्चुतैः ॥ १८९ ॥
आकीर्णं नृत्यमानाया राधायाः पदचिह्नितैः ।
सालक्तैः[21]रङ्कितं क्वापि मालाभिः कुसुमैः क्वचित् ॥ १९० ॥
क्वचित् [22]गलितभूषाभिर्भूषितं भूषितानने ।
क्वचिन् [23]नृत्यैः क्वच्चिद् गीतैः क्वचिद् वाद्यैर्मनोरमैः ॥१९१॥

---

१. वनिता—ङ. । २. ललिताविश्वनाथयोः—ङ. । ३. मरालिकाम्—ङ. । ४. गतेर्मा तत्प्रगल्भं रसदेश्वरी—ङ. । ५. 'एतत्ते""साध्वि' इत्यस्य स्थाने 'प्रथितं साध्वी'—ग. । ६. च्छृणुत परम्—क., 'तत्परम्'नास्ति—ग. । ७. 'च' नास्ति—क. ग. । ८. 'कथयि""मनाः'इत्यस्य स्थाने 'कथयामि""मनाः'-ङ. । ९. 'महत्""श्रेयः'नास्ति—ग. । १०. साद् वा श्रेयः—क. । ११. शुभदं-ङ. । १२. वृक्षगतां छाया—ङ. । १३. 'शीतलमुत्तमम्'नास्ति—ग. । १४. 'म्भोजैरम्भोजै'नास्ति ग., शाभ्यासैरम्भो—ङ. । १५. शाखाभि—ङ. । १६. कापि-ग. । १७. रत्र नृ—ङ. । १८. मयूरैः—ङ. । १९. रञ्जितम्—ङ. । २०. शिर-संश्रुतैः क., शिरसंस्थितैः—ग. । २१. रञ्जितं—ङ. । २२. तडिद्भिर्भूषाभिर्बृंहितं-ङ. । २३. नृत्यं—क. ।

रम्यं श्रीकृष्णचन्द्रस्य रसमूर्तेः रतिस्थलम् ।
सुवर्णवर्णवेदीभिरुद्दीप्तं मणिवालुभिः ॥ १९२ ॥
रत्नकुट्टिममञ्चेन रत्नसिंहासनैः क्वचित् ।
[1]रमणीयमणिबद्धमूले नीपमहीरुहः ॥ १९३ ॥
यत्र कृष्णाङ्गसम्भूतः [2]शीतलः शीतभानुवत् ।
तन्मूले भगवान् श्यामो महामरकतद्युतिः ॥ १९४ ॥
विभ्रत् [3]पीताम्बरं चारु श्रीमन्निगमशोभनम् ।
किङ्किणीकल[4]झङ्कारान् हंसकौ [5]हंसगामिनौ ॥ १९५ ॥
कुरङ्गनयनाचित्तकुरङ्गहरसिञ्जनौ ।
अङ्गदेरङ्गदाभिख्ये चक्रवणे नामकङ्कणे ॥ १९६ ॥
मुद्रारत्नमुखीं दिव्यां नानारत्नविनिर्मिताम् ।
हारं ताराभणिं तद्वत् मणिमालां तडित्प्रभाम् ॥ १९७ ॥
वद्धराधाप्रतिकृति[6]निष्कं हृदयमोदनम् ।
कौस्तुभं च मणिश्रेष्ठं दत्तं कालियकान्तया ॥ १९८ ॥
कुण्डले मकराकारे रतिरागाधदैवते ।
किरीटं रत्नसारं च चूडां भुवनमोहिनीम् ॥ १९९ ॥
रत्नविम्बविडम्बं च शिखण्डिखण्डमण्डलम् ।
आखण्डलस्य कोदण्डदण्डभण्डलखण्डकम् ॥ २०० ॥
रागवल्लीं च [7]गुञ्जाली तिलकं दृष्टिमोहनम् ।
पत्रपुष्पमयीं मालां वनमालां पदावधि ॥ २०१ ॥
वैजयन्तीं वै जयन्तीं कुसुमैः पञ्चवर्णकैः ।
लीलापद्मं सदा स्मेरं पद्माननसमप्रभम् ॥ २०२ ॥
शरच्चन्द्राभिधं [8]श्रीमन्मुकुरं मणिनिर्मितम् ।
दिव्यरत्नस्फुरन्मुष्टि तुष्टिदां [9]नामकर्तरीम् ॥ २०३ ॥
[10]मन्द्रघोषविषाणं च वंशीं भुवनमोहिनीम् ।
श्रीराधाहृदयाम्भोजहंसीमानन्दकन्दलीम् ॥ २०४ ॥

---

१. रमणीयरमणीवद्ध—ग. । २. अत्र 'ग'मातृका पुनश्च खण्डिता। ३. पीडास्मरश्चारु—ङ. । ४. हुङ्कारां—क. । ५. हंसगञ्जनौ—ङ. । ६. विद्धं—क. । ७. गुल्मा(ल्मि)नी—ङ. । ८. श्रीमन्मुद्गरं—ङ. । ९. वामकर्तरीम्—ङ. । १०. मन्त्रघोष—ङ. ।

षड्रन्ध्रबन्धुरं वेणुं ख्यातं [1]मदनहुङ्कृतम् ।
काकलीमूकितपिकां मुरलीं [2]सरलाभिधाम् ॥ २०५ ॥
गौरीं च गुञ्जरीं [3]रागावनुरागिणि रञ्जयन् ।
गायन् श्रीराधिकादेव्या नाममन्त्रं जगद्वशम् ॥ २०६ ॥
त्रैलोक्य[4]मण्डनंनाम हेमदण्डं कराम्बुजे ।
[5]वीणां प्रवीणां महतीं महतामपि मोहने ॥ २०७ ॥
अनङ्गरङ्गिणीनाम्ना या [6]शृङ्गारतरङ्गिणी ।
पाशौ पशुवशीकारौ दोहनीममृतप्रदाम् ।
शोभते सर्वशोभाढ्यो लीलया मधुराकृतिः ॥ २०८ ॥
लावण्येन निकामकामकमनो राधादिगोपीमनो
यत्रापत्रपयन् सपत्रकुसुमं गण्डस्थले मण्डयन् ।
वेणुं वादयते [7]दयासमुदयात् धेनूर्वने चारयन्
तद् रेणूत्कटधूसरो नवघनश्यामद्युतिर्द्योतते ॥ २०९ ॥
यन्मूले [8]सुचरित्ररत्नघटया [9]संघट्टिते निर्मले
स्वं बिम्बं व्रजबालकाः स्म नियतं मुह्यन्ति संलोच्यते ।
[10]सुच्छायोऽधिकशीतलः क्षितितले लक्ष्मीर्यतो लक्ष्यते
भूयः सुन्दरि सुन्दरो रसतरुर्भूयान्म[11]माक्षणः पथि ॥ २१० ॥
श्रीकृष्णस्य वामपार्श्वे राधा सर्वेश्वरेश्वरी ।
विद्युद्द्युति[12]विडम्बाङ्गी जगन्मोहनकारिणी ॥ २११ ॥
बिभ्रती करपद्माभ्यां पङ्कजद्वयमुत्तमम् ।
कुटिलैः केशपाशैश्च [13]बद्धधम्मिल्लमुज्ज्वलम् ॥ २१२ ॥
अलकालिकुलैः शश्वदाकुलं मुखपङ्कजम् ।
तिलकं स्मरयन्त्राख्यं हारं कृष्णमनोहरम् ॥ २१३ ॥
रोचनौ [14]रत्नताटङ्कौ नासामुक्तां प्रभाकरीम् ।
छत्रं कृष्ण[15]प्रतिछायं पादकं मदनाभिदम् ॥ २१४ ॥

---

१. मदनझङ्कृतम्—ङ. । २. रसनाभयाम्—ङ. । ३. वागावक्षरागेन—ङ. । ४. मण्डलं—क. । ५. 'वीणां'नास्ति—ङ. । ६. शुद्धा रतिरङ्गिणी—ङ. । ७. यदा समु—ङ. । ८. सुचिरं तु रत्न—ङ. । ९. सङ्घाट्टते निर्मिते—क. । १०. स्वच्छायो-क. । ११. मात्त—क. । १२. विडम्बात्ती—ङ. । १३. बहुधर्मित्वसुज्ज्वलम्—ङ. । १४. रत्नतारकौ—क. । १५. द्युतिछायां—क. ।

स्यमन्तकान्यपर्यायं शङ्खचूडाशिरोमणिम् ।
कान्त्या [1]क्षिपन्तं चन्द्राकौं सौभाग्यमणिमुत्तमम् ॥ २१५ ॥
कटकांश्चटकाकारान् केयूरेमणिकर्बुरे ।
कृष्णनामाङ्कितां मुद्रां विपक्षमदमर्दिनीम् ॥ २१६ ॥
काञ्चीं काञ्चनचित्राङ्गीं नूपुरे रत्नगोपुरे ।
वृन्दावनेन्द्रमारुद्धे ययोः सिञ्चितमञ्जरी ॥ २१७ ॥
वासो मेघाम्बरं नाम कुरुबिन्दनिभस्तथा ।
[2]आद्यं स्वप्रियमभ्रामं रक्तमन्यं प्रियं प्रियम् ॥ २१८ ॥
सुधांशुदर्पहरणं दर्पणं मणिनिर्मितम् ।
आनन्देनाऽप्यवनता गोविन्दचरणाम्बुजे ॥ २१९ ॥
शलाकां शर्मदां हैमीं स्वस्तिदां रत्नकङ्कतीम् ।
मल्लारश्च धनाश्रीश्च रागौ हृदयमोदनौ ॥ २२० ॥
आभ्यां श्रीकृष्णचरितं गायन्तीं चारुवल्लकीम् ।
[3]वल्लभ्यां च (चैव) संगृह्य कृष्णध्यानपरायणा ॥ २२१ ॥
[4]छालिक्यं दधितं नृत्यं कुर्वती सुमनोहरम् ।
गायन्तीं देवगान्धारं प्रशंसन्ती परं मुदा ॥ २२२ ॥
पुष्पशय्यागता देवी दिव्यपानरता क्वचित् ।
ताम्बूलं विमलं चारु श्रीमत्कर्पूरवासितम् ॥ २२३ ॥
यच्छन्ती निजकान्ताय चर्वयन्ती शुचिस्मिता ।
दोलायमाना [5]हिन्दोलैः क्वचित् सिंहासनस्मिता ॥ २२४ ॥
क्वचित् क्रीडागिरौ रम्ये राधा कृष्णश्च [6]क्रीडतः ।
कन्दर्प[7]कस्थलीनामवाटिकायां क्वचित् प्रिये ॥ २२५ ॥
यत्र कुण्डद्वयं राधाकृष्णनाम्ना विराजते ।
कृष्णकुण्डे क्वचिद् राधा राधाकुण्डे क्वचिद् विभुः ॥२२६॥
विहारं कुरुते नित्यं [8]एकत्रैव क्वचिन्मिथः ।
यदा सा प्रकृतिर्भूत्वा रिरंसति च केशवः ॥ २२७ ॥

---

१. क्षिपन्तौ–क. । २. 'आद्यं''''प्रियम्' इत्यस्य स्थाने 'आद्याणुप्रियमच्छ्राभं रक्तिमन्तं प्रियप्रियम्'–ङ. । ३. वल्लक्यां च–क. । ४. छागिक्यं दैत्यं नृत्यं–ङ. । ५. हिल्लोलैः–ङ. । ६. क्रीडितः–क. । ७. कहनीनाम–ङ. । ८. एक एव–क. ।

राधाकुण्डविहारी स्यात् तदैव रसलीलया ।
यदा सा पुरुषो भूत्वा [1]रन्तुमिच्छति राधिका ॥ २२८ ॥
कृष्णकुण्डे तदा देवी विहरन्ती विशेज्जलम् ।
ततो जलात् समुत्थाय नानालीलारसादिभिः ॥ २२९ ॥
कृत्वा विहारं संस्मृत्य स्वस्वरूपा भवेत् पुनः ।
कृष्णे च राधिकायां च पुंस्त्रीभेदो न विद्यते ॥ २३० ॥
कृष्णो वा राधिका देवी राधिका वा प्रभुः स्वयम् ।
नाम्ना गोवर्धनो यत्र क्रीडाभूमिधरः परः ॥ २३१ ॥
नीलमण्डपिकाघट्टः कन्दरी मणिकन्दली ।
घट्टो मानसगङ्गायाः पारङ्गो नाम विश्रुतः ॥ २३२ ॥
सुविलासतरानाम तरिर्यत्र [2]विराजते ।
नाम्ना नदीश्वरः शैलो मन्दिरं स्फुरदिन्दिरम् ॥ २३३ ॥
आस्थानीमण्डपः पाण्डुगण्डशैलासनोज्ज्वलः ।
आमोद[3]वर्धनो नाम्ना परमामोदवासितः ॥ २३४ ॥
[4]पावनाख्यं सरः क्रीडा[5]कुञ्जपुञ्ज[6]स्फुरन्नरम् ।
कुञ्जाः काममहातीर्था मन्दारमणिकुट्टिमाः ॥ २३५ ॥
न्यग्रोधराजो भाण्डीरः कृष्णराधाप्रियः सदा ।
[7]अरङ्गरङ्गभूर्नाम लीलापुलिनमुज्ज्वलम् ॥ २३६ ॥
राधाविरहदुस्स्थस्य रुदतो वामनेत्रतः ।
[8]या धारा निर्गता सैव यमुनेति निगद्यते ॥ २३७ ॥
या धारा निर्गता दक्षनेत्राद् गङ्गेति सा मता ।
या धारा नासिकामध्याद् गोमती सा शुचिस्मिते ॥ २३८ ॥
[9]धाराभिस्तिसृभिः [10]पूर्णं [11]जातं [12]कुण्डत्रयं महत् ।
कृष्णदेहनिर्गताभिः पीतं तत्कामधेनुभिः ॥ २३९ ॥
पुनस्ताभिः [13]प्रच्युतास्ता अक्षय्याः सरितोऽभवन् ।
गोमुत्रैर्यमुनाक्षीरैः [14]गङ्गाविड्भिस्तु गोमती ॥ २४० ॥

---

१. रङ्गमिच्छति—ङ. । २. विराजिते—ङ. । ३. रञ्जनो—ङ. । ४. पारनाख्यं—ङ. । ५. कुञ्जपुञ्ज—ङ. । ६. स्फुरत्तटम्—ङ. । ७. अनङ्गरङ्गाभूताम-लीला—क. । ८. सा राधा निर्गता—ङ. । ९. राधाभिस्तिसृभिः—ङ. । १०. पूर्वं—क. । ११. यातं—ङ. । १२. कुञ्जत्रयं—क. । १३. प्रस्तुतास्ता—क. । १४. गङ्गाविदिड्भु—ङ. ।

गोलोकमण्डना या सा यमुना कृष्णवल्लभा ।
यमुनायां महातीर्थं खेलतीर्थमनुत्तमम् ॥ २४१ ॥
राधाकृष्णप्रियतरं खेलते यत्र राधिका ।
अतिप्रेष्ठेन कृष्णेन सर्वदेवेश्वरेण च ॥ २४२ ॥
प्रियस्थानं मया प्रोक्तं प्रियद्रव्यं [१]प्रियङ्करम् ।
[२]शरदिन्दुस्तु मुकुरो राधाकृष्णप्रियः सदा ॥ २४३ ॥
[३]लीलापद्मं सदा स्मेरं व्यजनं [४]मधुमारुतम् ।
शिञ्जनीमञ्जुलसरं गेन्दुकश्चित्रकोरकः ॥ २४४ ॥
विलासकार्मणं नाम [५]कार्मुकं स्वर्णचित्रितम् ।
दिव्यरत्नस्फुरन् मुष्टितुष्टिदा नामकर्तरी ॥ २४५ ॥
मन्द्रघोषो विषाणोऽस्य वंशी भुवनमोहिनी ।
[६]मणिरङ्गाट्टवीयुग्मं राधाकृष्णप्रियं परम् ॥ २४६ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले परब्रह्मलोकवर्णने सगणरहस्य-
वृन्दावनवर्णनं नाम [७]सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥



१. श्रणु प्रिये–क. । २. शरदिन्दुकुमुद्वारो–ङ. । ३. लीला यस्सं सदा-क. । ४. मधुमारुतौ–क. । ५. कामुकं–रु. । ६. सगित्रं याटनी युग्मं–रु. । ७. 'सप्तमोऽध्यायः'नास्ति–ङ. ।

अष्टमोऽध्यायः

नारद उवाच

ततस्तं भगवद्गाथागानसन्धानकारिणम् ।
भूयः पप्रच्छ कुशला स्वामिनं वल्गुभाषितम् ॥ १ ॥

ब्राह्मणी उवाच

यत्ते ब्रह्मपुरस्योर्ध्वे कथितं पुरमद्भुतम् ।
महाविष्णुशिरोदेशे सहस्रशिरसस्तथा ॥ २ ॥
मस्तकोपरि [1]तत्रान्यं यदि विद्याधरेश्वर ।
तदा तत्रैव भृङ्गारभङ्गुराद्याः कथं विभोः ॥ ३ ॥
निवसन्ति [2]भवन्तोऽपि तन्मे कथय निश्चितम् ।
क्वचित् कुरङ्गीभृङ्गारीसुरङ्गाद्याश्च योषितः ॥ ४ ॥
अपि लक्ष्मीशिरोदेशे वसन्ति महदद्भुतम् ।
एते मानुषनामानः कथमेषामुपर्यहो ॥ ५ ॥
एष मे संशयो जातो हृदये हृदयेश्वर ।
द्विभुजः कथितः कृष्णः [3]त्वया योगेश्वरेश्वरः ॥ ६ ॥
स कथं बहुशीर्षोऽपि तन्न [4]जानामि तत्त्वतः ।
सहस्रशीर्षो पुरुषः प्रोक्तः सर्वेश्वरः प्रभुः ॥ ७ ॥
ततोऽधिकतरत्वं च कृष्णस्य कथ्यते कथम् ।
ब्रह्माण्डकोटिकोटीषु व्यापकत्वेन संस्थितम् ॥ ८ ॥
[5]घटे आकाशवन्नित्यं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
ज्योतीरूपं परंब्रह्म सर्वगं [6]सर्वविच्छिन्नम् ॥ ९ ॥
[7]ततोऽपि महीकृष्णस्य श्रूयते भवतो मुखात् ।
सदाशिवाख्यं परमं [8]लिङ्गमाद्यं निरामयम् ॥ १० ॥
शिवशक्त्यात्मकं साक्षात् चिदानन्दं परात्परम् ।
ततोऽपि कृष्णमाहात्म्यं श्रूयते भवतो मुखात् ।
कथमेतत् सम्भवति संशयं छिन्धि सुव्रत ॥ ११ ॥

---

१. तद्भाज्यं यदि–क. । २. भवत्सोऽपि–ङ. । ३. उद्धा (अद्धा)–ङ. । ४. जानाति–ङ. । ५. घटेष्वाकाश–ङ. । ६. सर्वमिच्छिवम्–क. । ७. अत्रस्य 'ग'मातृका पुनश्चारभ्यते । ८. लिङ्गमायं–क. ।

नारद उवाच

इति पृष्टः परं प्रेम्णा [1]ब्राह्मण्या संशितव्रतः।
ब्राह्मणीं तामुवाचेदं क्षपयन् हृदि संशयम् ॥ १२ ॥

[2]ब्राह्मण उवाच

अनाद्यन्तमिदं भद्रे पुरं वृन्दावना[3]भिधम्।
ब्रह्मभूतं कामगमं सर्वकामैकपूरकम् ॥ १३ ॥
अत्यद्भुतमद्भुतानां मङ्गलानां च मङ्गलम्।
भक्त्या विभर्ति शिरसि महाविष्णुर्जगत्पतिः ॥ १४ ॥
प्रभोः पादाम्बुजादेतज्जातं मे विभ्रतः पुरम्।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डभर्ता वै भवितास्म्यहम् ॥ १५ ॥
सहस्रवदनो नागो महानन्त इति श्रुतः।
[4]स सहस्रैः शिरोभिस्तद् बिभर्ति भुवनं विभोः ॥ १६ ॥
वसन्ति तत्र ये लोकाः कृष्णसेवापरायणाः।
सर्वे मनुष्यनामानो मानुष्य व्यवहारिणः ॥ १७ ॥
यावन्तो जन्तवो भद्रे [5]नरश्रेष्ठास्त एव हि।
मानुष्यं दुर्लभं लोके तदेव क्षणभङ्गुरम् ॥ १८ ॥
वसन्ति तत्र ये नित्या मनुष्या ब्रह्मरूपिणः।
वयं च निर्मितास्तेन तच्छक्त्या [6]निवसामहे ॥ १९ ॥
[7]अपि तत्स्थस्य भृङ्गस्य ब्रह्मापि न [8]समो भवेत्।
देवा अपि मनुष्यत्वमिच्छन्ति कमलानने ॥ २० ॥
मानुष्यलोकमप्राप्य न किञ्चित्साध्यते जनैः।
अपि ब्रह्मत्वमाप्नोति मानुषीं योनिमाश्रितः ॥ २१ ॥
तस्मान्मानुष्यधर्मा स भगवान् भूतभावनः।
मनुष्यरूपैः स्वाकारैर्भक्तिप्रेमसमन्वितैः ॥ २२ ॥
पूज्यते [9]सर्वलोकेशः सर्वदा नरनीरधिः।
द्विभुजात् सकलं विश्वमुत्पन्नं कमलेक्षणे ॥ २३ ॥

---

१. ब्राह्मण्याः—ग., ब्राह्मणः—ङ.। २. 'ब्राह्मण''''कामैकपूरकम्' नास्ति-क.। ३. भिधाम्—ग.। ४. सहस्रशिरोभिस्तद्वद् बिभर्ति—क.। ५. नराः श्रेष्ठास्तथैव हि—ङ.। ६. निवसाम्यहम्—क. ग.। ७. अयि—क.। ८. चमो-ग.। ९. सर्वलोके स—क. ग.।

नानाकारं निराकारं तस्मादेतच्चराचरम् ।
बीजं [1]तु द्विदलं प्रोक्तं व्यक्ताव्यक्तं शुचिस्मिते ॥ २४ ॥
तस्माद् बहुदलं तद्वद् शाखापल्लवसंहतम् ।
एवं द्विभुजतः सर्वं विद्धि सत्यं वदाम्यहम् ॥ २५ ॥
यद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं स कृष्ण इति कथ्यते ।
एकः कृष्णो द्विधाभूतो मुमुक्षुभजनैषिणोः ॥ २६ ॥
उपकाराय [2]शुद्धात्मा वेदविद्भिः [3]स गीयते ।
मुक्तो ब्रह्मपदं याति तदङ्गं ज्योतिरुत्तमम् ॥ २७ ॥
भक्तः कृष्णपदं साक्षात् [4]सेवते[5]ऽमल[य]ा धिया ।
ज्योतीरूपं तु मुक्तानां भक्तानां द्विभुजाकृतिः ॥ २८ ॥
[6]अपर्यन्तगुणत्वाच्च स महाविष्णुरुच्यते ।
प्रकृतिः सा परा सूक्ष्मा श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ।
पुंप्रकृत्यात्मकं [7]लिङ्गं स सदाशिव उच्यते ॥ २९ ॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा[1] ।
कृष्णः साक्षात् क्रीडते गोपिकाभि-
र्गोपैः शश्वत(द्)दु[8]र्विभाव्यः समन्तात् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे वृन्दावनरहस्ये [9]विद्याधरी-
सन्देहहरणं नाम [10]अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥



---

१. तद् विमलं—ङ. । २. श्रुतात्मा—क. । ३. 'स' इत्यस्य स्थाने 'च' इति—क. ग. । ४. सेव्यते—क. ग. । ५. मनसा धिया—ङ. । ६. अपर्यन्तस्तु गत्वा च-ङ. । ७. नित्यं—ङ. । ८. दुर्विभावः—क. । ९. 'विद्याधरीसन्देह' नास्ति—ङ. । १०. नवमोऽध्यायः—ग., 'अष्टमोऽध्यायः' नास्ति—ङ. ।

---

1. श्वेता० उपनिषद (६।११) ।

नवमोऽध्यायः

नारद उवाच

इति हरिगुणगाथागानसन्धानदक्षं
विपुलपुलकपूर्णं विश्रुतास्राक्षिताक्षम् ।
[1]शिवसि पुटितहस्ता तत्पदान्तं निधाय
द्विजकुल[2]महिला तं [3]चारुवाग्भिर्जगाद ॥ १ ॥

ब्राह्मणी उवाच

ब्रह्मन् [4]यत्कथितं मह्यं वनं त्रैलोक्यमोहनम् ।
[5]समस्तजगदाधारं ज्योतीरूपं महत्पदम् ॥ २ ॥
दिव्यं वृन्दावनं नाम निर्मितं केन तत्पुरा ।
तन्मे कथय प्राणेश गोविन्दप्रियबान्धव: ॥ ३ ॥

ब्राह्मण उवाच

[6]वयमेतन्न जानीमो गीतवाद्यरताश्चिरम् ।
[7]रसोन्मत्ता जडात्मानो ज्ञानकर्मबहिष्कृताः ॥ ४ ॥
सदाशिवोऽपि [8]सम्पूर्णं नैव वेत्ति महामतिः ।
न ब्रह्मा शङ्करश्चापि न [9]विष्णुस्तत्परं पदम् ॥ ५ ॥
जानन्ति पद्मपत्राक्षे किमिन्द्राद्याः सुरेश्वराः ।
[10]वयं गोविन्दपादाब्जयशःकीर्तन[11]लोभिताः ॥ ६ ॥
पश्यन्तोऽन्यं न पश्यामो गोविन्दचरणं विना ।
शृण्वन्तोऽन्यं न शृणुमो विना गोविन्दकीर्तनम् ॥ ७ ॥
[12]महतः सुभगे भाग्याद् दैवाच्छ्रुतमिदं मया ।
यत्त्वया पृष्टमाश्चर्यं वृन्दावनकृते शुभे ॥ ८ ॥

---

१. शिरसि सपदि पत्युः श्रीपदान्तं—ङ. । २. महिमा—ङ. । ३. चाटु वाग्भि—क. ग. । ४. या कथितं—क. ग. । ५. सर्वलोकोपरि शिवं ज्योती—क. ग. । ६. इतः पूर्वं 'अखण्डानन्दसम्पूर्णं' इत्यनावश्यकः पाठः—ङ. । ७. वसेन्मत्ता जडाश्चातो ज्ञान—क. ग. । ८. सर्वज्ञो महाविष्णुर्जगत्पतिः—क. ग. । ९. विष्णुस्तत्पदं परम्—ग. । १०. श्रीमद्गोविन्दचन्द्रस्य यशः—ङ. । ११. शोभिताः—क. ग. । १२. तथापि सुभगे—क. ग. ।

वनेऽस्मिन् क्रीडतां गोपबालकानां [1]मुखाच्छ्रुतम् ।
[2]क्रीडन्तस्ते च सुभगे श्रान्ता भाण्डीरकं वटम् ॥ ९ ॥
गत्वा मूले तस्य [3]तरोर्दिव्ये शाद्वलकोमले ।
स्थाने निविष्टा अन्योन्यं [4]कथां चक्रुः कुमारकाः ॥ १० ॥
[5]केचित् कृष्णकथां दिव्यां केचिद् राधाकथां तथा ।
वृन्दावनकथां केचिद् [6]गोलोकानां तथाऽपरे ।
बलरामं पुरस्कृत्य पप्रच्छुर्वनचारिणः ॥ ११ ॥

गोपबालका ऊचुः

बलराम महाभाग श्रीकृष्णप्रियबान्धव ।
वृन्दावनमिदं केन निर्मितं तद् वदस्व नः ॥ १२ ॥
त्वं चात्र कुत [7]आयातः कोऽसि जातोऽसि [8]कुत्र वा ।
एतत्प्रश्नद्वयं देवं वयं शुश्रूषवः परम् ।
आख्याहि संशयं छिन्धि हृदये [9]हृदयेश नः ॥ १३ ॥

बलराम उवाच

[10]वृन्दावनमिदं केन निर्मितं व्रजबालकाः ।
[11]आत्मनोऽपि यथा जन्म न जानामि कुतोऽपि तत् ॥१४॥
यूयं मत्पूर्वजन्मान इति मे हृदये [12]स्मृतिः ।
[13]समुद्भूय पुरोऽपश्यं सूक्ष्मान् कृष्णहृदिस्थितान् ॥ १५ ॥
ततो गोपीश्च गाश्चैव तथाऽन्यान् वनचारिणः ।
अहं त्ववर [14]जन्मास्मि कथं पृच्छन्ति मार्भकाः ।
भवन्त एव जानन्ति गोविन्दस्य रहः परम् ॥ १६ ॥

---

१. महात्मनाम्—क. ग. । २. श्रमोऽभवन्महाभागे श्रान्ता-क. ग. । ३. तरोर्द्दिव्ये शाद्वनकोमले—ङ. । ४. कथाश्चक्रुः—ङ. । ५. तत्र कृष्णकथां केचित् केचिद्—ङ. । ६. गोपानां च तथा—ङ. । ७. आयातो लोकोऽयं वा कुतः प्रभो—ङ. । ८. के तव—ग. । ९. हृदयेन च—क. ग. । १०. 'वृन्दा''''बालकाः' इत्यस्य स्थाने 'एतल्लोकस्य तत्त्वं मे न ज्ञातं व्रजबालकाः'—ङ. । ११. आत्मनो वा तथा—ङ. । १२. स्थितम्—ङ. । १३. 'समुद्भूय''''स्थितान्' इत्यस्य स्थाने 'यदुत्पन्नः पुरो पश्यन् युष्मान् कृष्णहृदिसंस्थितान्'—क., 'यदुत्पन्नः पुरोपश्यं युष्मान् कृष्णहृदि स्थितान्'—ग. । १४. एवास्मि तत्किं पृच्छ—ङ. ।

बालका उचुः

गोविन्दस्य भवान् मान्यो यथा [१]नान्यस्तथैव हि ।
तस्मान्यतोऽस्मन्मान्योऽसि दासास्तव वयं विभो ॥ १७ ॥
यां तं त्वामनुगच्छामः [२]स्थितं त्वां पर्युपास्महे ।
त्वयि [३]हृष्टे वयं हृष्टाः क्लिष्टे क्लेशितमानसाः ॥ १८ ॥
वयं चानुगता राम कृष्णस्यानुमते त्वयि ।
[४]यत्तत्त्वं त्वं जानासि तत्किं जानीमहे वयम् ॥ १९ ॥
[५]एवमेव विजानीमो नीपमूले स्थितस्य वै ।
[६]कृष्णस्याङ्गात् समुत्पन्ना दिव्यरूपा किशोरिकाः ॥ २० ॥
तत्कालसम्भवा किन्तु वयं [७]वो गोपबालकाः ।
तत्परं यत्कृतं तेन तत्सर्वं [८]विद्महे परम् ॥ २१ ॥
विना राधा सङ्गमं च विना त्वज्जन्मकारणम् ।
[९]इत्युक्ते सुबलेनाथ हसन्ति तरवो लताः ॥ २२ ॥
पक्षिणो भ्रमराश्चैव जलस्थलनिवासिनः ।
ततः स चकिताक्षस्तु लज्जितो मुसलायुधः ।
वृक्षांल्लताः पक्षिणस्तु पप्रच्छ स्वच्छया गिरा ॥ २३ ॥

[१०]बलराम उवाच

यूयं पूर्वभवा वृक्षा गोविन्दप्रतिमूर्तयः ।
पक्षिणः कल्पलतिकास्तत्त्वं व्र(ब्रू)त जगत्प्रभो[ः] ॥२४॥
केनेदं निर्मितं [११]श्रीमद्वृन्दावनमनुत्तमम् ।
किमीहः स किमाधारः किंरूपः किंप्रियः परः ।
तत्कथ्यतां महाभागा मह्यं शुश्रूषवे चिरम् ॥ २५ ॥

---

१. नान्यस्तथा क्वचित्–ङ. । २. स्थितस्त्वां–क. ग. । ३. हृष्टे वयं हृष्टाः–ग., तुष्टे तुष्टचित्ताः–ङ. । ४. यत्र स्वं त्वं–क., यत्र त्वं त्वं–ग. । ५. एकमेव हि जानीमो–ङ. । ६. कृष्णस्याज्ञा समु–ङ. । ७. 'वो'नास्ति–क., 'वो'इत्यस्य स्थाने 'मे'–ङ. । ८. विग्रहे–क. ग. । ९. इत्युक्तेषु वने नाथ-ङ. । १०. 'बलराम उवाच'नास्ति–ङ. । ११. श्रीवृन्दावनमुत्तमम्–क. ग. ।

ब्राह्मण उवाच

ततस्तं प्रेमवचनैर्बलरामं महाबलम् ।
प्रणिपत्य च ते सर्वे वृक्षपक्षिलता[1]गणाः ।
ऊचुः [2]प्रहृष्टमनसो [3]गोविन्दस्मरणोत्सुकाः ॥ २६ ॥

तरव ऊचुः

[4]वयं तु पूर्वजन्मानो भगवद्देहसम्भवाः ।
आत्मनश्चोपभोगार्थं सृष्टा भ्रूक्षेपमात्रतः ॥ २७ ॥
[5]रहस्यज्ञा वयं तस्य देव नास्त्यत्र संशयः ।
नान्यस्मै [6]कथितुं शक्ताः तं विना पुरुषोत्तमम् ॥ २८ ॥
राधायां त्वयि गोविन्दे विशेषो नैव विद्यते ।
[7]तस्मै प्रष्टुं प्रयुञ्जेत नान्यो वक्तुं [8]क्षमस्तु नः ॥ २९ ॥

लता ऊचुः

वयं तल्लोमजा[9]देव तेनैव रोपिता इह ।
तत्तत्त्वं सैव जानाति नान्यो जानाति कश्चन ॥ ३० ॥
किं वयं लतिका वृक्षाः पक्षिणो मुग्धचेतसः ।
यावदेतद् वनं[10]जातं तावज्जानीमहे वयम् ॥ ३१ ॥
अयं वृन्दावनासीनः पुरुषः श्यामलाकृतिः ।
स्रष्टाऽस्य विपिनस्याद्यः सर्ववित् कमलेक्षणः ॥ ३२ ॥
[11]किन्नु वृन्दावनं स्थानं कुतो जातमिति प्रभो ।
न जानीम एतदर्थं केन वा निर्मितं पुरा ॥ ३३ ॥

पक्षिण ऊचुः

आदौ स्थानं ततो [12]वृक्षास्ततस्ते लतिकाः स्थिताः ।
वयं तत्र पक्षिणस्तु तदन्ते भ्रमरादयः ॥ ३४ ॥
स्थानं विना कुतो वृक्षा लता वा वृक्षमाश्रिता ।
[13]पक्षिणो वृक्षशोभार्थं वयं हि फलभोगिनः ॥ ३५ ॥
तत्रैव भ्रमरा नित्यं जाताः पुष्पद्रुमेषु च ।
भ्रमन्ति मधुपानार्थं दिव्यपानपरायणाः ॥ ३६ ॥

---

१. गताः—क. ग. । २. प्रकृष्टमनसो—क. ग. । ३. गोविन्दस्य रसोत्सुकाः—ङ. । ४. यूयं तु—ङ. । ५. रहस्यं चारयन् तस्य—ङ. । ६. कथितं शक्त्या—ङ. । ७. तस्मै प्रच्छन्नमुच्यते तन्नान्यो—ङ. । ८. क्षमस्व नः—ग., क्षमस्ततः—ङ. । ९. चैव तेनैवारोपिता—ङ. । १०. यातं—ङ. । ११. किन्तु—क. ग. । १२. वृक्षास्तनस्ते—क., वृक्षास्तदन्ते—ङ. । १३. 'पक्षिणो……सरःसु च' नास्ति—क. ग. ।

तथा जलचराद्येव सरित्सु च सरःसु च ।
पक्षिणो हंसचक्रा[1]ह्वसारसाद्या महौजसः ।
कृष्णप्रीतिकराः सर्वे तद्देहप्रभवा वयम् ॥ ३७ ॥

मृगा उचुः

[2]वयं गोविन्दनयनकटाक्षप्रभवा विभो ।
वृन्दावनचराः सर्वे मोहितास्तस्य मायया ॥ ३८ ॥
तद् वंशीमधुराराव[3]हृतश्रवणचेतसः ।
तद्रूपाः कृष्णनयनास्तत्प्रेमवशगाश्चिरम् ॥ ३९ ॥
न जानीमः केन जातं स्थानमेतन्मनोहरम् ।
वनमेतत् कल्पितं [4]वा पशवो मुग्धचेतसः ॥ ४० ॥
यद् रहस्यं भवज्जन्म [5]तदाश्चर्यं जगत्प्रभो ।
जानन्तोऽपि न जानीमः कथितुं [6]तत्र(न्न) युज्यते ॥ ४१ ॥
प्रश्नमेतन्महाभाग श्रीगोविन्दं रसाम्बुधिम् ।
निवेदय रहस्यं तन्नान्योऽस्ति कथितुं क्षमः ॥ ४२ ॥

ब्राह्मण उवाच

वृक्षपक्षिमृगादीनां श्रुत्वा वाक्यं हितं प्रियम् ।
बलरामो महाभागः सर्वेषां प्रियकारकः ॥ ४३ ॥
उपसंगम्य गोविन्दं वेणुवादनतत्परम् ।
पपात् दण्डवद् भूमौ चरणाम्भोरुहान्तिके ॥ ४४ ॥
पादपद्मं भगवतो ध्वजवज्राङ्कुशाङ्कितम् ।
ब्रह्म ज्योतिर्मय[7]नखं सिषेच नेत्रवारिभिः ॥ ४५ ॥
एतस्मिन्नेव समये दिव्यरूपा सरस्वती ।
सर्वभूतहितार्थाय कृष्णतत्त्वविवित्सया ॥ ४६ ॥
जिह्वाग्रस्था जगद्योनेर्बलरामस्य धीमतः ।
सा वै जगाद मधुरं येन प्रीतोऽभवत् प्रभुः ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे भगवदुद्देशोनाम
[8]नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

---

१. 'ह्व' नास्ति–क. ग., अत्र 'ग'मातृका समाप्तिः । २. यद् गोवि-ङ. । ३. कृत–क. । ४. वी पाशवो–क. । ५. तद् रहस्यं जग–क. । ६. तत्त्व-मुज्झते–ङ. । ७. मखं–ङ. । ८. 'नवमोऽध्यायः' नास्ति–ङ. ।

दशमोऽध्यायः

श्रीबलराम उवाच

राधाकान्त जगन्नाथ श्रीमद्गोलोकनागरः(र) ।
श्यामसुन्दर गोपीश गोकुलानन्द[1]चन्द्रमः॥ १ ॥
वृन्दावनसुखानन्दपीतवासः प्रियः प्रभो ।
ब्रह्मपादाम्बुजज्योतिर्व्याप्तलोकत्रयान्तर ॥ २ ॥
शब्दब्रह्ममयी वंशी प्रियपद्मदले[2]क्षण ।
प्रेमभक्तिपुष्पमय वनमालाविभूषित ॥ ३ ॥
गोविन्द गोगणार्तिघ्न गोपते [3]गोगणाश्रित ।
प्रसीद देव पद्माक्ष गोपीजनमनोहर ॥ ४ ॥
कथयस्वात्मनस्तत्त्वमतिगुह्यं महाप्रभो ।
कस्त्वं [4]का राधिका देवी को वाऽहं शंस मे विभो ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

अहमात्मा परंब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ।
शब्दब्रह्ममयः साक्षात् स्वयं प्रकृतिरीश्वरः ॥ ६ ॥
आद्यन्तरहितः स्थूलसूक्ष्मातीतः परात्परः ।
स्वयं ज्योतिः स्वयंकर्त्ता [5]स्वयंहर्ता स्वयंप्रभुः ॥ ७ ॥
कटाक्षमात्रब्रह्माण्डकोटि[6]सृष्टिविनाशकृत् ।
सदाशिवमहाविष्णुविष्णुब्रह्मादिकारकः ॥ ८ ॥
नराकृतिर्नित्यरूपी वंशीवाद्यप्रियः सदा ।
इन्द्रनीलमणिश्यामो द्विभुजो मधुराकृतिः ॥ ९ ॥
पूर्णेन्दुकोटिवदनो लीलालावण्यवारिधिः ।
पुण्डरीकदलाकारनयनः प्रेमसागरः ॥ १० ॥
जितकामधनुर्दिव्यभ्रूलतो वनितोत्सवः ।
नित्यत्रिभङ्गललितस्तिर्यग्ग्रीवातिसुन्दरः ॥ ११ ॥

---

१. चक्रमः—क. । २. चणे—ङ. । ३. गोगणार्चित—क. । ४. वा—ङ. ।
५. स्वयंप्रभुः स्वयंगुरुः—क. । ६. वृष्टि—क. ।

शब्दब्रह्ममयीवंशीवदनो [1]रसवारिभिः(धीः)।
वनमाली पीतवासाः सुकुञ्चितशिरोरुहः॥ १२॥
बर्हिबर्हकृतोत्तंसः परिजातावतंसकः।
शुद्धप्रेमा[2]नन्दमयः सर्वदा नवयौवनः॥ १३॥
[3]काले कालस्वरूपोऽहं कालात्मा [4]कालगोचरः।
कालातीतः [5]सर्वसह[ः] सर्वकारणकारणम्॥ १४॥
[6]चित्स्वरूपो ज्ञानरूपोऽद्वितीयः [7]सर्वदृक् परः।
एतद्रूपः सदैवाऽहं ह्रासवृद्धी न मे क्वचित्।
बलराम जगद्योने! किं भूयः प्रष्टुमिच्छसि॥ १५॥

श्रीबलराम उवाच

अनन्तसूर्यचन्द्राग्निप्रकाश[8]सदृशं तव।
तनुपाद[9]नखज्योतिः किमिदं तद् वदस्व मे॥ १६॥

श्रीकृष्ण उवाच

[10]यद्भयाद् वान्ति वाताः सूर्यस्तपति यद्भयात्।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्भावं वहति मेदिनी॥ १७॥
यतो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसा सह॥ १८॥
ज्योतिर्ब्रह्ममयं तेजो मच्छरीराद् विनिर्गतम्।
ममानेन न भेदोऽस्ति ब्रह्मज्योतिर्वरं परम्॥ १९॥
पृथिव्यापोवह्निरूपैर्वायुरूपैस्तथैव च।
आकाशरूपैर्नानेव भाति सर्वत्र सर्वतः॥ २०॥
ब्रह्माण्डकोटिकोटीषु मत्तेजस्तत् सनातनम्।
सर्वजीवान्तरे बाह्ये भाति सर्वगतं सदा॥ २१॥
आकाशवत् सदा दृश्यं जलाधारे यथा रविः।
दुर्लभं दुर्गमं तद्वद् दुर्दर्शं सर्वगं शुचिः॥ २२॥

---

१. रसवान्निधिः—ङ.। २. रङ्गमयः—ङ.। ३. कालाकाल—ङ.। ४. नलगोचरः—ङ.। ५. सर्वशः—ङ.। ६. विस्वरूपो—क.। ७. सदृक् परः—क.। ८. सदृशस्तव—ङ.। ९. नभज्योतिः—ङ.। १०. 'यद्भयाद्' इत्यारभ्य 'श्रीकृष्ण उवाच'इति पर्यन्तं पाठो नास्ति—क.।

शुभदं मोक्षदं सत्यं पादाङ्गुष्ठाद्विनिर्गतम् ।
एतज्ज्ञात्वा योगिनस्तु यान्ति निर्वाणमुत्तमम् ॥ २३ ॥

श्रीबलराम उवाच

बलमेतत् कुतो जातं यत्र तिष्ठसि नित्यदा ।
अनेकचन्द्रतारार्ककोटिकोटिसमच्छविः ॥ २४ ॥
नानावृक्षलताकीर्णं नानामृगगणावृतम् ।
नादितं पक्षिभिर्भृङ्गैः सर्वर्तुभिरधिष्ठितम् ॥ २५ ॥
गीतवाद्यादिभिर्नित्यं मुदितं सर्वतः सुखम् ।
गोपीगोपगणाकीर्णं गोवत्सैरुपशोभितम् ॥ २६ ॥
अनेकयोजनायामं बहुयोजनविस्तृतम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवं किमिदं तद् वदस्व मे ॥ २७ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

एकोऽनेकस्वरूपोऽहं सर्वशक्तिमयः पुमान् ।
मद्देहादुद्गतं ज्योतिः सर्वभूतमयं परम् ॥ २८ ॥
पृथ्वीमयं जलमयं तेजोमयमनामयम् ।
मरुन्मयं व्योममयं सर्वभूतमकल्मषम् ॥ २९ ॥
तस्मादेतत् परं जातं स्थानं सर्वनमस्कृतम् ।
चिन्तामणिमयी भूमिरमृतं जलमत्र वै ॥ ३० ॥
ब्रह्मतेजोमयं ज्योतिस्त्रैलोक्योद्दीपकं महत् ।
सुखस्पर्शः सदा वायुः शब्दब्रह्ममयं शुभम् ॥ ३१ ॥
प्रकाशरूपमाकाशमच्छमानन्दमन्दिरम् ।
अत्र गोवर्धनोनाम पर्वतः प्रीतिवर्धनः ॥ ३२ ॥
महालक्ष्म्याः श्रियश्चैव पुरुषश्चाहमव्ययः ।
प्रतिवारिघटे यद्वत् सूर्योऽप्येको बहूयते ॥ ३३ ॥
प्रतिचक्षुरहं तद्वत् सर्वदास्मि वने बल ।
मल्लोमवृन्दतो जातं वनमेतत् सुशोभनम् ॥ ३४ ॥
तेन वृन्दावनं नाम प्रथितं वनमुत्तमम् ।
मम पादाम्बुजाज्जाता दासी वृन्देति नामतः ॥ ३५ ॥

तयैवारोपितं नित्यं तयैव परिरक्षितम् ।
[1]सेचितं चामृतरसैर्वनमत्यन्तमुत्तमम् ॥ ३६ ॥
तेन वृन्दावनं नाम वनमत्यन्तदुर्लभम् ।
एतन्मनसि सञ्चिन्त्य परमानन्दमुत्तमम् ॥ ३७ ॥
जनः प्राप्नोति विपुलं तदेवानुदिनं स्मर ।
[2]अयं नीपतरुः श्रीमान् पृष्ठदण्डात् समुद्गतः ॥ ३८ ॥
मम प्रियतरः शश्वत् सर्वर्तुकुसुमोत्सवः ।
यस्य मूले सदैवाऽहं तिष्ठामि मधुराकृतिः ॥ ३९ ॥
मत्पादाङ्गुलितो जाताः पञ्चैव तरवः शुभाः ।
सन्तानकादयः सर्वे सर्वरत्नमयाः स्थिराः ॥ ४० ॥
सन्तानकः पारिजातो मन्दारो [3]हरिचन्दनः ।
कल्पवृक्ष इति ख्याता ज्वलज्ज्वलन[4]सन्निभाः ॥ ४१ ॥
स्वर्णमूला [5]मणिस्कन्धा दिव्या मरकतच्छदाः ।
मुक्ता[6]वैडूर्यपुष्पाढ्याः पद्मरागफलोत्तमाः ॥ ४२ ॥
धाराभी रसयुक्ताभीर्वर्षन्तः सर्वतो दिशः ।
[7]मच्छ्वासान्निर्गतो वायुः शीतलः सुमनोहरः ॥ ४३ ॥
स कालिन्दीवारिबिन्दून्(बिन्दु)नानापुष्परजोवहः ।
मनसो मे [8]समभवन्नाकेशाः सर्वतो दिशः ॥ ४४ ॥
भासयन्तो वनं सर्वमत्यन्तं सुखदैः करैः ।
चक्षुषस्तु तथैवार्का ग्रहनक्षत्रनायकाः ॥ ४५ ॥
[9]मनसो मे समभवन् [10]नाकेशाः सर्वतोदिशः ।
[11]भासन्ते भाभिरिष्टाभिः सुखदाभिरितस्ततः ॥ ४६ ॥
अर्कः शीतलतां याति शशाङ्को याति चोष्णताम् ।
इच्छया मे भगवतो वृन्दावनविहारिणः ॥ ४७ ॥

---

१. सिञ्चितं वाऽमृतरसैर्वनमेतत् सुरोत्तम–क. । २. 'अयं''''मधुराकृतिः' इति पङ्क्तित्रयं नास्ति–क. । ३. हरिचन्दनम्–ङ. । ४. सन्निभीः–क. । ५. मणिगन्धा–ङ. । ६. वैदूर्य–ङ. । ७. मच्छ्वासादुद्गतो–क. । ८. समभवन् राकेशाः–ङ. । ९. 'मनसो''''दिशः' इति पङ्क्तिरेषा नास्ति–ङ. । १०. 'राकेशा' इति पाठः 'ङ'संज्ञकमातृकाया ४४श्लोके धृतोऽत्र संयोजनीयः । ११. भासन्तो वाभि–क. ।

स्वर्णरौप्यमणिमहा[1]वैडूर्याद्यैर्विनिर्मिताः ।
[2]कुट्य[ः] सन्त्यत्र विविधाः मम देहविनिःसृताः ॥ ४८ ॥
[3]प्रतिकल्पद्रुमतले राजन्ते चन्द्रसूर्यवत् ।
निकुञ्जा अत्र शोभन्ते लताभिर्वेष्टिताः शुभाः ॥ ४९ ॥
नादिता भ्रमरीवृन्दैर्मधुमत्तकलस्वनैः ।
मत्केशपाशसञ्जातैः गन्धर्वैरिव गायनैः ॥ ५० ॥
मदीयनयनप्रान्तजातैर्बर्हिगणैः शुभैः ।
शब्दायमाना नृत्यद्भिश्चित्रिता घनबन्धुभिः ॥ ५१ ॥
सुवर्णवालुकाभूमौ ध्वजवज्राङ्कुशादिभिः ।
[4]मत्पादपद्मचिह्नैश्च लक्षितं लक्षणान्वितम् ॥ ५२ ॥
मम कालस्वरूपस्य निमेषाद् ऋतवश्च षट् ।
तैरेव सेवितं नित्यं वनमेतत् समन्ततः ॥ ५३ ॥
मम सप्तस्वराज्जाताः पक्षिणो दिव्यरूपिणः ।
कोकिलः सारसो हंसः कपोतः शुकसारिकाः ॥ ५४ ॥
दात्यूहश्च मदोन्मत्ता मन्नामगुणगायकाः ।
श्वेतपीतारुणश्यामानानावर्णाश्च केचन ॥ ५५ ॥
मन्मनोहारिणः सर्वे शब्दब्रह्म[5]स्वरूपिणः ।
एतत्ते कथितं गुह्यं [6]गोपायस्व समाहितः ।
वृन्दावनरहस्यं [7]तत् सर्वतन्त्रेषु [8]निष्ठितम् ॥ ५६ ॥

ब्राह्मण उवाच

इति निगदति कृष्णे राधिकायां [9]सतृष्णे
भगवति बलरामः पूर्णकामश्चिराय ।
विनयनयमनोज्ञां प्रेममाधुर्य[10]धुर्यां
वदनसदनमध्ये काममङ्गीचकार ॥ ५७ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे वृन्दावनरहस्यनिरूपणं
[नाम] [11]दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

---

१. वैदूर्या–ङ. । २. कुड्यः सन्त्यत्र–क., कुट्यन्यत्र–ङ. । ३. प्रतिकर्मद्रुम–क. । ४. सत्पाद–क. । ५. स्वरूपतः–क. । ६. गोपाय सुसमाहितः–ङ. । ७. यत्–ङ. । ८. निश्चितम्–क. । ९. सद्रुष्णे–ङ. । १०. पूर्णां–क. । ११. 'दशमोऽध्यायः' नास्ति–ङ. ।

एकादशोऽध्यायः

श्रीबलराम उवाच

भगवन् सर्वभूतेश लोकाध्यक्ष परात्पर।
वंशी तवाधरे केयं नित्यरूपा [1]विराजते।
जाता कथमिहाश्चर्यं तन्मे कथय सत्पते॥ १॥

श्रीकृष्ण उवाच

ममैवाधरबिम्बस्था [2]सरस्वत्या जयं तनुः।
महाप्रलयकालान्ते जाता परमतुष्टये॥ २॥

श्रीबलराम उवाच

महाप्रलयकालोऽसौ कथं स्यात् कथ्यतां विभो।
अधरे वा कथं तस्या वासस्ते पुरुषोत्तम॥ ३॥

ब्राह्मण उवाच

इत्थं स [3]पृष्टः श्रीकृष्णः प्रणयाविष्टचेतसः।
बलरामेण सर्वेषामवदद् वदतांवरः॥ ४॥

श्रीकृष्ण उवाच

आकीटब्रह्मपर्यन्तं जीवानां बलराम भोः।
सर्वेषां मुक्तिकालो [4]वै महाप्रलय उच्यते॥ ५॥
तस्मिन् काले जले भूमिर्जलं [5]वैश्वानरे तथा।
वैश्वानरस्तु मरुति मरुन्नभसि लीयते॥ ६॥
ततो नभश्च महति प्रकृत्या च तथा महान्।
गुणाः सत्त्वादयश्चापि लीयन्ते तत्र [6]सारत:॥ ७॥
गुणेषु लीयमानेषु गुणवन्तो महौजसः।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या रजःसत्त्वतमोभुवः॥ ८॥
[7]क्रमशस्ते विलीयन्ते तत्रैव गुणं[8]कर्मिणः।
शम्भुर्ब्रह्मणि ब्रह्मा च विष्णौ सत्त्वगुणान्विते॥ ९॥

---

१. विराजिते–ङ.। २. सरस्वत्यहं मत्तनुः–ङ.। ३. तृष्णः–क.। ४. यों–ङ.। ५. विश्वा–क.। ६. सुन्दर–ङ.। ७. क्रमतस्ते–ङ.। ८. कर्मणि–ङ.।

विष्णुश्चैव महाविष्णौ कोटिब्रह्माण्डविग्रहे ।
स एव हि महाविष्णुः प्रभविष्णुः सदाशिवे ॥ १० ॥
पुंप्रकृत्यात्मके दिव्ये महाप्रकृतिसंज्ञके ।
सोऽपि ज्योतिर्मये सूक्ष्मे साक्षान्मद्धामरूपके ॥ ११ ॥
लयं यातेष्वथैतेषु सूक्ष्मे ब्रह्मणि केवले ।
मम श्यामशरीरे तत्प्रविष्टं ज्योतिरुज्ज्वलम् ॥ १२ ॥
अतः सर्वे देवगणा मम देहसमाश्रिताः ।
तथा देव्यश्च सर्वाणि भूतानि भूतभावनः ॥ १३ ॥
सूक्ष्मरूपाणि तिष्ठन्ति प्राप्तनिष्ठानि [1]लक्षशः ।
सूक्ष्मभूताः सूक्ष्मभूते मम तेजस्यनन्तके ॥ १४ ॥
प्रविशन्ति यतो जीवा हृतप्राणा हृतेन्द्रियाः ।
ततः सर्वे न जानन्ति मामैकं विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥
स्थूलं वाप्यथवा सूक्ष्मं सूक्ष्मासूक्ष्मपरं च वा ।
यदि कश्चिज्जनस्तस्मिन् काले तिष्ठति सेन्द्रियः ॥ १६ ॥
तदा जानाति किं सूक्ष्मं किं स्थूलं मामजं विभुम् ।
यत्तु दृश्यं तद् विनाशि [2]यद् दृश्यं तदक्षयम् ॥ १७ ॥
दृश्यादृश्यपरं नित्यं कृष्णं मां सर्वसाक्षिणम् ।
जानीहि त्वं महाबाहो व्यक्ताव्यक्तं परात्परम् ॥ १८ ॥
यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि [3]चोत्तमः[1] ।
[4]अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥
तस्मादहं [5]सूक्ष्ममयोऽस्म्यहं स्थूलमयः पुमान् ।
अहमात्मा परंब्रह्म प्रकृतिश्चाहमुत्तमा ॥ २० ॥
सदाशिवो महाविष्णुर्महालक्ष्मीरहं परा ।
त्वमहं च तथा दुर्गा सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥ २१ ॥
विष्णुश्चाहं [6]सत्त्वगुणः सर्वे चान्ये मदंशकाः ।
महाप्रलयकाले च [7]यदङ्गे मम यत्स्थितिः ॥ २२ ॥

---

१. लक्षणः—ङ. । २. यदतैदृश्यं—क. । ३. चोत्तरः—ङ. । ४. अतोऽस्मि वेदे लोके च—क. । ५. सूक्ष्मययो—क. । ६. स च गुणः—ङ. । ७. यदङ्के—ङ. ।

---

1. (भगवद्गीता १५।१८।)

तानहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमना बल ।
वैकुण्ठनायका नित्यं [1]विष्णवः सत्त्वमूर्तयः ॥ २३ ॥
आश्रित्य चरणाम्भोजे धरण्यश्च सहस्रशः ।
लक्ष्मी लक्ष्मीस्तथा वृन्दा भक्ता ये शरणैषिणः ॥ २४ ॥
ब्रह्माण्डं [2]पालयन्त्येते मम शक्त्युपबृंहिताः ।
मम सत्त्वं समाश्रित्य ब्राह्मणाः सृष्टिहेतवः ॥ २५ ॥
रजोगुणमयास्ते वै ज्ञानात्मानो महौजसः ।
चतुर्मुखाः अष्टमुखाः षोडशास्यास्तथा परे ॥ २६ ॥
द्वात्रिंशद्वदनाः केचिच्चतुष्षष्ठिमुखास्तथा ।
अनन्तवदनाः सर्वे ह्यनन्तगुणकीर्तयः ॥ २७ ॥
सृष्टिं कुर्वन्ति सततं मम शक्त्युपबृंहिताः ।
अहङ्कारे तथा रुद्राः पञ्चवक्त्रा महोज्वलाः ॥ २८ ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशास्त्रिनेत्रा दीर्घमन्यवः ।
व्याघ्रचर्माम्बरधराः [3]सुचारुदशबाहवः ॥ २९ ॥
देवर्षिसिद्धगन्धर्वचारणैः किन्नरैरपि ।
वेष्टिताः शक्तिनिकरैस्तथा दशमुखा बल ॥ ३० ॥
[4]विंशदास्यास्त्रिंशदास्याश्चत्वारिंशन्मुखास्तथा ।
पञ्चाशद्वदनाः केचित् षष्टिवक्त्रास्तथा परे ॥ ३१ ॥
शतवक्त्राः सहस्रास्या लक्षकोटिमुखास्तथा ।
क्षयं कुर्वन्त्यजाण्डेषु मम शक्त्युपबृंहिताः ॥ ३२ ॥
हस्तावाश्रित्य तिष्ठन्ति मरुत्वन्तो महौजसः ।
सहस्रनयनाः केचिल्लक्षकोटीक्षणास्तथा ॥ ३३ ॥
नेत्रे मम समाश्रित्य सूर्या लक्षसहस्रशः ।
सहस्ररश्मयः केचिल्लक्षकोट्यंशुराशयः ॥ ३४ ॥
तेजोभिः प्रतिब्रह्माण्डं प्रकाशन्ते ममाज्ञया ।
तिष्ठन्ति मन आश्रित्य शशाङ्काः शीतरश्मयः ॥ ३५ ॥
शमयन्ति [5]जगत्तापं बीजानि जनयन्ति च ।
अश्विनीपुत्रनिवहो मन्नासापुटमाश्रितः ॥ ३६ ॥

---

१. वैष्णवाः–ङ. । २. पालयन्ते ते–ङ. । ३. सुबाहुदश–क. । ४. विंशत्यङ्घ्रिगदास्याश्च द्वाविंशन्मुखास्तथा–ङ. । ५. जगन्नाथं–क. ।

विदध्याद्व्याधिरहितं [1]सर्वभूतं विभूतिमत् ।
मम तालुं समाश्रित्य वरुणा लोकपालकाः ॥ ३७ ॥
[2]रसैर्नानाविधैर्भान्ति नियतं [3]दिव्यमूर्तयः ।
ममैव मर्मस्थानानि समाश्रित्य समीरणाः ॥ ३८ ॥
लोकपालाः स्पर्शगुणाः [4]सर्वभूतशुभावहाः ।
श्रोत्रे मम समाश्रित्य दिशश्च विदिशस्तथा ॥ ३९ ॥
शब्दलिङ्गाश्च तिष्ठन्ति [5]सर्वभूतसुखप्रदाः ।
[6]त्वचं मम समाश्रित्य औषध्यस्तरवस्तथा ॥ ४० ॥
हितार्थं सर्वभूतानां मयि तिष्ठन्ति नित्यशः ।
मेढ्रं मम समाश्रित्य नानाब्रह्माण्डवासिनः ॥ ४१ ॥
प्रजानां पतयः सर्वे प्रशान्ताः शान्तमूर्तयः ।
[7]रेतोभूताश्च नियतं [8]सृजन्तो यतमानसाः ॥ ४२ ॥
पायुं मम समाश्रित्य मित्रा लोकेश्वराश्चिरम् ।
मम बुद्धिं समाश्रित्य नियतं देव पुरोधसः ॥ ४३ ॥
दीव्यन्ति शुक्रसहिताः पण्डिता ज्ञाननिश्चिताः ।
मम नाभिं समाश्रित्य [9]कामानि विविधानि च ॥ ४४ ॥
प्रत्यजाण्डं नरस्थानि प्रकाशन्ते महाबला(ल) ।
शिरो मम समाश्रित्य द्यावो भान्ति सहस्रशः ॥ ४५ ॥
मुखबाहुरूपादेषु वर्णास्तिष्ठन्ति मे विभोः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव सहस्रशः ॥ ४६ ॥
ममैव जठरे नित्यं कोटिब्रह्माण्डधारकः ।
प्रभविष्णुर्महाविष्णुस्तिष्ठ[10]त्यतुलशक्तिमान् ॥ ४७ ॥
शक्तयो राधिकाद्याश्च त्रिपुराद्यास्तथाऽपराः ।
दुर्गाद्याः दुर्गतारिण्योऽपरास्तेजोंऽशसम्भवाः ॥ ४८ ॥
तिष्ठन्ति मम वामांशे दक्षिणांशे च मे भवान् ।
[11]जिह्वास्थलं समाश्रित्य मम देवी सरस्वती ॥ ४९ ॥

---

१. सर्वभूतिविभूतिमत्–क. । २. वासैर्नाना–ङ. । ३. दिवमूर्तयः–ङ. । ४. सतभूतसुखावहाः–क. । ५. नित्यशः परमात्मने–क. । ६. 'त्वचं''''नित्यशः' इति पङ्क्तिद्वयं नास्ति–क. । ७. रेतोहताश्च–क. । ८. सृष्टयर्थे–क. । ९. काशीनि–क. । १०. त्यद्भुतशक्तिमान्–क. । ११. जिह्वाङ्गुलं–ङ. ।

विलसत्यतुला [1]नीला प्रेमसारस्वतान्तरे ।
एतस्मिन्नन्तरे सैव वागीशा मां मनोहरम् ॥ ५० ॥
[2]भ्रमन्तं विपिने दृष्ट्वा कोटिचन्द्रनिभाननम् ।
पीताम्बरं घनश्यामं नवकञ्जदले[3]क्षणाम् ॥ ५१ ॥
समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् ।
सुचारुबाहुयुगलं नानालङ्करणोज्ज्वलम् ॥ ५२ ॥
सुनसं सुन्दरग्रीवं कौस्तुभोद्भासितोरसम् ।
श्रीवत्सलेमावलिभी राजन्तीर्भिविराजितम् ॥ ५३ ॥
आजानुगतया नीप[4]रुचालङ्कृतकन्धरम् ।
[5]पञ्चवर्णपुष्पचारुमालयाऽपि सुशोभितम् ॥ ५४ ॥
हेमाङ्गदतुलाकोटिकिरीटै रत्ननूपुरैः ।
भासितं सस्मितं दिव्ये निकुञ्जे जनवर्जिते ॥ ५५ ॥
[6]जिह्वामूलाद्विनिःश्रि(सृ)त्य दीव्यन्ती सा सरस्वती ।
दिव्यरूपधरा सुष्ठु कटाक्षयति सुस्मिता ।
प्रेम्णाऽतिमधुरं कान्ता प्रोवाच वचनं शनैः ॥ ५६ ॥

सरस्वती उवाच

मामिच्छेति जगत्कान्त श्यामसुन्दरविग्रहः ।
त्वयाऽहं रतिमिच्छामि रतिनाथ सनातन ॥ ५७ ॥
त्रिभुवनजनबन्धो पूर्णकारुण्यसिन्धो
कलय मयि दृगन्तं [7]स्वान्तजः शान्त आस्ताम् ।
भवति रतिरतीव प्राणकान्तेऽतिकान्ते
मुखरयति मुखं मे किं करोमि क्व यामि ॥ ५८ ॥
नीलेन्दीवरसुन्दराक्षियुगलं बिम्बाविडम्बाधरं
[8]लीलालोलकपोलमण्डल[9]तले कुण्डोल्लसत्कुण्डलम् ।
विद्युद्विद्युति चारुपीतवसनं स्मेरस्मरस्मारिणं
श्यामं मोहनमोहनं प्रियतमं दृष्ट्वैव[10]मुग्धास्म्यहम् ॥५९ ॥

१.लीला–ङ. । २. भवन्तं–ङ. । ३. त्तणे–क. । ४. अजातकृत–ङ. । ५. पञ्चवर्ण पुरुचारु–क. । ६. जिह्वास्थलाद्भि–क. । ७. स्वान्तरः–ङ. । ८. नीला–क. । ९. तलो दण्डोल्ल–क. । १०. तृप्तास्म्यहम्–ङ. ।

मधुमधुरिममत्तैः षट्पदैर्गुञ्जमानैः
स्फुरति तिमिरपुञ्जं [1]वञ्जुलैर्मञ्जुकुञ्जे ।
लसितहसितभासा [2]गुञ्जयन्तं जयन्तं
हरिहरिभुविकस्त्वां नानुरज्येत जन्तुः ॥ ६० ॥
रतिरतिजरतीनामप्यहो श्याममूर्ते
भवभवति गतं किं किं पुनर्यौवनानाम् ।
श्रुतिवियति [3]सुरूपं देवदेहानुरूपं
यदि चलति चलामः किं पुनर्दृक्पुरस्तात् ॥ ६१ ॥
दिनमनु दिननाथः स्वैः करैः पद्मिनीनां
वदनमलिनिमानं नाशयेद् वासयेच्च ।
अपि सकलकलाभिर्द्योतको दिग्वधूनां
[4]कथमह कुमुदिन्यां चन्द्रमा नो दयालुः ॥ ६२ ॥
मेघश्यामशरीरधीरभगवन् संसारसारस्य ते
तद्रूपामृतसागरेषु तनुते तृप्तिं तनूमात्रकः ।
शुष्कं काष्ठचयं विना [5]घनगुणैर्जीर्णं विशीर्णं पुनः
पाषाणं च विना [6]विनामृततनुं नित्यं पशुघ्नं विना ॥६३॥
तरणिदुहितृनीरैर्निर्भरस्नानकारी
तदमलकमलान्तः षट्पदप्रेमपत्न्याः ।
[7]मधुररुतविधात्र्या मान्त्यदीक्षाकृतश्च
[8]प्रसरति नववायुर्योषितां हर्तुमायुः ॥ ६४ ॥
[9]कृत्वा मम कुचयोः श्रीकृष्णपादारविन्दं
सपदि परमबन्धोः कृन्धि कन्दर्पदर्पम् ।
तव वदनमुदीक्ष्य प्राणनाथस्य सत्यं
क्षणमपि धृतिहीनो नोच्छ्वसिन्य(त्य)द्य सद्यः ॥६५॥

---

१. रञ्जनैर्म–ङ. । २. सञ्जयन्तं–ङ. । ३. स्वरूपं–ङ. । ४. कथमिह–क. । ५. घनगुणै–क. । ६. विना स्मृत–क. । ७. मधुरहृत–रु. । ८. प्रसवति–ङ. । ९. कृष्ण मम–क. ।

[1]रचयसि वचनं चेत् कान्तकान्तं नितान्तं
तव हि रहित[2]हितजीवाः किं च वक्तुं न [3]शक्या[:] ।
मयिदयित कुरुष्व प्रेमगाढोपगूढं
भवतु हिमतनोस्ते [4]स्पर्शतस्तापशान्तिः ॥ ६६ ॥
क्रीडामानवरूपिणो भगवतोरूपेण धर्मा[5]हृता
मर्मस्पर्शनदर्शने विततरङ्गेनाऽपि नीतं मनः च ।
सर्वं सर्वत एव कर्ममधुरं [6]स्मेरेण विस्मारितं
[7]श्रीश्रीकृष्ण स्वतृष्णया मम पुनः [8]प्राणैः प्रयाणं कृतम् ॥६७॥
कान्त प्रान्तरमेतदद्भुतमसौ कुञ्जः कृतो [9]वञ्जुलैः
[10]गुञ्जत् षट्पदपुञ्जमञ्जुलतमो मध्ये तमः पूरितः ।
राकानायकरोचिषाऽपि रजनी रोचिष्मती राजते
तत् किं मां समुपेक्षसे नवरसां वेशाधिकां [11]नायिकाम् ॥६८॥
[12]मनोहृतं मानसमोषकेन
कृतं कृतं तत्र च नास्ति मे क्षतिः ।
प्राणान् गृहीत्वा [13]रसिकेन्द्र किं ते
विधेहि [14]शान्तिं मयि धेहि दृष्टिम् ॥ ६९ ॥

ब्राह्मण उवाच

एवमुक्ते सरस्वत्या [15]मौनीभूयः परः पुमान् ।
[16]अतिष्ठदिष्टहृदयः सुप्तमीन इव ह्रदः ॥ ७० ॥
ततः सा प्रेमसंस्निग्धा [17]हृदया हृदयाधिपम् ।
चक्षुष्कोणेन पश्यन्तं वनं वृन्दावनाभिधम् ।
[18]लक्षयन्ती पुनर्वाणी प्रोवाच मधुरस्वना ॥ ७१ ॥

---

१. वचयसि—क. । २. 'हित'नास्ति—ङ. । ३. शक्ताम्—क. । ४. स्पर्शशान्तिः समन्तात—क. । ५. कृता—क. । ६. स्मेरेश—ङ. । ७. 'श्रीश्रीकृष्ण स्वतृष्णया' इत्यस्य स्थाने 'श्रीश्रीकृष्णाया'—क. । ८. प्राणाः प्रयाणे स्थिताः-क. । ९. रञ्जनैः—ङ. । १०. कुञ्जपद्—ङ. । ११. राधिकाम्—ङ. । १२. मनोकृतं—क. । १३. रसिके इह किं—क. । १४. शान्तिमपि धेहि—क. । १५. योनिर्भूयः—ङ. । १६. अनिष्टदिष्ट-क. । १७. 'हृदया'नास्ति—ङ. । १८. लक्षयन्तीं—ङ. ।

सरस्वती उवाच

उक्ता प्रेमकथा स्मिता[1]ऽमृतरसैः संस्नापिता ते तनु-
र्बाहुस्वर्णमृणालमूलमनिशं सन्दर्शितं तृष्णया ।
श्रीश्रीकृष्ण तथापि चेन्न विहितं युष्मादृशां मे हितं
किं मूढोऽसि किमत्र [2]वा न चतुरा किं [3]वा न जीवी स्मरः ॥७२॥

वक्षोरुहस्वर्णपयोरुहाभ्यां
भुजे भुजादण्डसुमण्डिताभ्याम् ।
मुखेन्दुपीयूषरसैस्तथाऽपि
न चेत्प्रसन्नोऽसि मनोभवो मृतः ॥ ७३ ॥

ब्राह्मण उवाच

इत्युक्तो भगवान् कृष्णो वाग्देव्या प्रेमलिप्सया ।
नो चचाल च नोवाच दृशा विपिनमैक्षत ॥ ७४ ॥
[4]इङ्गितज्ञा ततो वाणी वसन्तं पुरतो हरिम् ।
स्मितैः संस्नापयामास वसन्तवर्णनोत्सुका ॥ ७५ ॥
ऋतुराजं वर्णयितुमथारभत सुव्रता ।
वाग्देवता देवताभिः सेविता भाविताऽसकृत् ॥ ७६ ॥

सरस्वती उवाच

मन्दश्चन्दनमारुतश्चलति यत् क्रीडारथः केतवः(की)
चूतानां मुकुलानि यस्य महिषी स्मेरानना माधवी ।
छत्रं यस्य च [5]केसरस्य कुसुमं यद्दर्पणश्चन्द्रमा
दण्डे यस्य च चम्पकस्य कलिका राजा ऋतूनामयम् ॥७७॥
यद् दूताः किल कोकिलाः कलरवैः केलिकला[6]स्तन्वते
सेना यस्य शिलीमुखाः कलकली कोलाहलं कुर्वते ।
पुष्पान्तः कुहरे पुरोहित[7]हतो यस्य स्मरं स्मारकः
श्रृङ्गारोत्तरतन्त्रकस्य विपिने राजा ऋतूनामयम् ॥ ७८ ॥
मधुस्रवद्भिः कुसुमैर्मनोहरैर्मधुव्रतव्रातवृतैः ससौरभैः ।
[8]कुहूरुतैः कोकिलकामिनीनां मधुः सिषेवे मधुसूदनस्त्वाम् ॥७९॥

---

१. प्रेमरसैः—क. । २. बालचतुराः किं—ङ. । ३. बालजीवी—ङ. । ४. इङ्गितज्ञानतो वाणी—क. । ५. केशवस्य—ङ. । ६. स्तनस्वतो—क. । ७. इतो—क. । ८. कुहूरतैः—क. ।

यत्पाद्यानि मधूनि चूतमुकुलं यस्यार्घ्यमर्घ्यान्वितं
यस्यैवाचमनीयमद्भुतमितोऽमन्दोमरन्दोधिकम् ।
पुष्पं यस्य समन्ततोऽप्यविरतं गन्धानुबन्धोत्तमं
[1]यद् भूयो मलयानिलो विषकलो यस्य प्रदीपो विधुः ॥८०॥
[2]नैवेद्यं च फलानि यस्य विलसत् पत्रोपरि भ्राजते
वाद्यं माद्यदुदारकोकिलगणो लीलालको यस्य [3]च ।
यत् पुङ्खा भ्रमराः सुविभ्रमभृतः स्वं मस्तकं नामभि-
र्वल्ली वायुविधूतपल्लवमहो नव्यातिनव्यं द्रुतम् ॥ ८१ ॥
यस्याचार्यवरो विचारचतुरः सर्पत्यसौ दर्पतः
शृङ्गारोत्तरतन्त्र[4]मन्त्रनिपुणः कन्दर्प [5]इष्टः पुनः ।
वासन्त्या निजकान्तयाऽप्यनुगतो लोकत्रयीमोहनं
कर्त्तुं साधु[6]मधुरमधुद्विषमपि त्वां किं यजन्त्यञ्जसा ॥ ८२ ॥
मधुरिपुमपि सख्यू रूपचौरं च दृष्ट्वा
मधुरिह कुसुमेषोः [7]कोकिलैरन्वकारम् ।
तरुणतरुभिरुच्चेस्त्वां परीहासदक्षो
विकिरति मरुतोऽसौ केतकी धूलिभारम् ॥ ८३ ॥
[8]मधूकमाद्यन्मधु[9]पालिपालितः
पिकेन[10]चञ्चत्पुटपाणिलालितः ।
विलोलमौलिर्मुकुलै रसालयं
क्रियाद्रसालः [11]सुदृशां दृशां मुदम् ॥ ८४ ॥
अशोकपुष्पाण्यरुणारुणानि
स्मरस्य रोषाग्निकणा इवाऽभवन् ।
प्रियेण हीना वरयोषि[12]तोऽटवी-
[13]र्दग्धुं समर्थानि वृतानि वायुभिः ॥ ८५ ॥

---

१. यत्कृपा मलया—ङ. । २. 'नैवेद्यं च' नास्ति—क. । ३. 'च' नास्ति—क. । ४. 'मन्त्र' नास्ति—ङ. । ५. एष पुनः—क. । ६. मधुमधु—क. । ७. कोकिलैर्जल्पकारम्—क. । ८. 'मधूक' नास्ति—क. । ९. पाणिपाणितः—ङ. । १०. चञ्चुः पुट—ङ. । ११. सदृशां—ङ. । १२. तो च वै—ङ. । १३. दग्धं समर्थाम्बुभिरालिवायुभिः—क. ।

कलिन्दकन्याजलशीतलेन
[1]समीरितो मन्दसमीरणेन ।
दलैश्च पुष्पैश्च फलैश्च शश्वद्
रङ्गं लवङ्गो [2]तप आततान ॥ ८६ ॥
[3]उदेति पीयूषकरः करोति
दिशां प्रकाशं भवतो मुखोपमाम् ।
[4]लब्धुं सुधादानकरः सुरेभ्यो
[5]नभस्यसौ किं रभसा [6]तपस्यति ॥ ८७ ॥
सकोरकाः पुन्द्रकवीरुदेषा
सम्मोहयामास मनो मुनेरपि ।
[7]चूतद्रुमे वायुविधूतविद्रुमाः
चिरं भ्रमद्भिर्भ्रमरैः समाकुला ॥ ८८ ॥
कुहुः कुहुः कोकिलकामिनीनां
कलोद्धुराः केलिगिरो बभूवुः ।
अनेककालार्जितमानभाजां
[8]मानक्षपेव स्मरदूतिकानाम् ॥ ८९ ॥
माद्यन्ति भृङ्गाः कुसुमावलीषु
माध्वीकमाच्छिद्य निजप्रियामुखात् ।
पिबन्ति कूजन्ति च दीर्घनिःस्वनं
विदूरयन्ति प्रमदाऽतिदुर्मदम् ॥ ९० ॥
तमालमालां विदलद्भिरद्भुतं
दलैर्नवीनैर्वन[9]देवतार्च्चनैः ।
कस्तूरिकागन्धमुपाहरन्ति [10]किं
हरे तव श्यामशरीरसाम्यतः ॥ ९१ ॥

---

१. समाविभोः–ङ. । २. लय–ङ. । ३. मुदेति–क. । ४. लब्ध–क. । ५. नष्टं ह्यसौ–क. । ६. न पश्यति–रु. । ७. हेमद्रुमे–क. । ८. मानं च ये वा-ङ. । ९. देवताभिः–क. । १०. 'किं' नास्ति–क. ।

हेमचम्पकहिरण्य[1]वेतसो
निर्गतभ्रमरधूमदर्शनात् ।
[2]संरुदन्त्य इह प्रोषितकान्ताः
कारयन्ति कुचमौक्तिकमैत्रीम् ॥ ९२ ॥

तद् [3]धूलियुक्तोदरपाणि[4]युग्मः
प्रसूनबाणस्य सखाऽयमुद्भटः ।
प्राणान् ग्रहीतुं विरहातुराणां
[5]शल्यं दधौ केतकिकैतवेन ॥ ९३ ॥

पद्मानि सद्मानि मरालबध्वाः
[6]प्रवेष्टुकामानिह षट्पदौघान् ।
[7]प्रमाद्यतो हुङ्कृतिवावदूकां-
स्तरङ्गहस्तैर्यमुना निषेधति ॥ ९४ ॥

[8]करुणांस्तरुणान् हसन्ति किं
विलसद्भिः कुसुमैः समन्ततः ।
तरुणीः कुरुते वशेन चे-
न्मरणं वः शरणं भविष्यति ॥ ९५ ॥

[9]स किंशुको बालदिवाकरांशुकं
दधत् प्रसूनं प्रचयं प्रकाशितम् ।
यूनामुरोदारुणरक्तसिक्तान्
[10]नखानिह स्मारयति स्मरस्य ॥ ९६ ॥

भुजङ्गमागर्तमुपासते स्म
ते चलद् बलं तं पथिका विवृण्वते ।
जह्रुर्वनं दावकृशानुना कृशं
कुरङ्गशावाः प्लुतिरङ्गशालिनः ॥ ९७ ॥

भ्रमरैः कोकिलैः पुष्पैर्मुकुलैः स्तवकैर्दलैः ।
साहाय्यं कुरुते स्मैष पुष्पेषोः सुहृदो [11]जये ॥ ९८ ॥

---

१. चेतसो–ङ. । २. रुंरुदत्यिह कान्त कारयन्–क. । ३. धूलिलिप्ता–ङ. । ४. युग्मं–क. । ५. शून्यं दधौ–ङ. । ६. प्रविष्टु–ङ. । ७. क्रमाद्यतो–ङ. । ८. कलुषास्त–ङ. । ९. न–ङ. । १०. मुखानिह–ङ. । ११. जयैः–ङ. ।

एवं वदन्तीं वाग्देवीं सर्वभूत[1]मनोरमम् ।
ततोऽरुणदृशं(शा) दृष्ट्वा कृष्णः क्रोधवशं गतः ॥ ९९ ॥
अवदद् वदतांश्रेष्ठो मेघगम्भीरया गिरा ।
संकल्पकल्पना[2]भिज्ञः प्रज्ञः सार्वज्ञकर्मणि ॥ १०० ॥

[3]अहम् (श्रीकृष्ण) उवाच

किं [4]वन्द(लग)से पुरस्तान्मे प्रगल्भा [5]त्वं पुमानिव ।
[6]इतोऽपयाहि कल्याणि कल्याणं स्वं यदीच्छसि ॥ १०१ ॥
आत्मारामोऽस्मि कामार्ते न च रंस्ये त्वया समम् ।
विकारकारणेनापि [7]ह्यविकारी पुरुषोत्तमः ॥ १०२ ॥
अद्भुतं चारुचरितं मयैवाद्य विलोकितम् ।
[8]यद्देहात्त्वं समुत्पन्ना तेन सार्ध्वं रिरंससि ॥ १०३ ॥
तद्भवद्देशं पृच्छामि गच्छ गच्छ मम स्थलात् ।
स्थावरत्वमितो गच्छ यतस्तुष्टास्मि भामिनि ॥ १०४ ॥
[9]कम्पमाना ततो देवी प्रोवाच ब्रह्मरूपिणी ।
रूदन्ती गद्गदगिरा दीर्घनिःश्वासशालिनी ॥ १०५ ॥

सरस्वती उवाच

त्वमेव सर्वभूतात्मा भूतानामीश्वरः प्रभो ।
भर्ता भ्राता पिता त्वं सुतः सुहृदुत्तमः ॥ १०६ ॥
[10]त्वत्तो भूतं भविष्यं च वर्तमानं च यद्विभो ।
कृष्ण किं वा करिष्यामि क्व यास्यामि वदस्व तत् ॥ १०७ ॥
मनो गृहीतं भवता श्यामसुन्दरविग्रह ।
श्यामधाम भवद्रूपं दृष्ट्वाऽहमिह मूर्च्छिता ॥ १०८ ॥
तत्त्वया [11]रन्तुमिच्छामि प्राणिनां प्राणनायक ।
भवतो वचनादेव यास्यामि दुरवस्थितिम् ॥ १०९ ॥
स्थावरत्वमपीच्छामि त्यक्तुं त्वां नहि कामये ।
ततः सन्तुष्टहृदयः [12]सदयोऽहमुवाच ताम् ॥ ११० ॥

---

१. मनोरमाम्–ङ. । २. भिश्च–क. । ३. 'अहम् उवाच'नास्ति–क. । ४. वलस्ते–क. । ५. 'त्वं'नास्ति–ङ. । ६. इतः प्रयाहि–ङ. । ७. 'ह्य'नास्ति–क. । ८. यद्धेतुत्वं–क. । ९. कल्पमाना–क. । १०. त्वत्तो–क. । ११. वर्णमिच्छामि–क. । १२. सदैवाहमुवाच–ङ. ।

[श्रीकृष्ण उवाच]
कम्पमानां मन्त्रयोनिं गायत्रीमातरं बल ।
अव्यर्थ[1]वचनश्चास्मि सर्वशक्तिसमृद्धिमान् ॥ १११ ॥
[2]याहि स्थावरतां भद्रे न त्वां त्यक्ष्यामि मा रुद ।
ततो दिव्ये मणिमये स्थाने देवी सरस्वती ॥ ११२ ॥
[3]अविवासानन्तफणा का वा सा शतपर्वणी ।
सर्वरत्नमयी वृन्दावने मत्परिपालिते ॥ ११३ ॥
तृणराजस्य महिषी राजयन्ती दिशस्त्विषा ।
[4]यामहं तत्त्वतो जाने तथैव च सदाशिवः ॥ ११४ ॥
महाविष्णुश्च जानाति ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
जानन्ति भैरवी चापि [5]कदाचिद् वा मुनीश्वराः ॥ ११५ ॥
देवकिन्नरयक्षा[6]द्यास्त्वां न जानन्ति केचन ।
[7]सैषा देवी स्थावरत्वं गता मत्कोपमात्रतः ॥ ११६ ॥
एवं वाग्वादिनी देवी भ्रष्टश्री [8]धरणीं गता ।
स्थावरत्वं गतायां तु [9]सरस्वत्यां महाबल ॥ ११७ ॥
निःशब्दाः सकला लोका निःशब्दं [10]विपिनं मम ।
न कुहुं कोकिलाश्चैव कुर्वन्ति भ्रमरा अपि ॥ ११८ ॥
नीरावाः सम्बभूवुस्ते पक्षिणो वनवासिनः ।
[11]ततोऽहं विस्मयाविष्टो नखाग्रात् [12]कर्त्रिकां शुभाम् ॥ ११९॥
[13]सृष्ट्वा [14]तया रत्नमय्या वंशकान्तां चकर्तताम् ।
तन्मध्यपर्वद्वितये हस्तद्वयमिते शुभे ॥ १२० ॥
अन्तश्छिद्रा सरन्ध्रा च मुरली चारुनादिनी ।
द्वादशाङ्गुल[15]मानस्तु वेणुः सर्वजनप्रियः ॥ १२१ ॥
[16]सप्तदशाङ्गुलिमिता वंशी सम्मोहिनी परा ।
[17]अर्धाङ्गुलान्तरोन्मानतारादिविवराष्टका ॥ १२२ ॥

---

१. वचनं चास्मि—ङ. । २. अत्र 'घ'मातृका प्रारभ्यते । ३. अविरासानन्तफलाकारा सा—घ. ङ. । ४. तामहं—घ. । ५. कतिचित्त्वां मुनी—ङ. । ६. द्यास्तां—घ. । ७. एषा—क. । ८. कवलीकृता—ङ. । ९. सरस्वत्या महाबलाः—क. । १०. विपिने—ङ. । ११. अत्र 'ख'मातृका पुनश्च प्रारभ्यते । १२. कर्णिकां—ङ. । १३. सृष्टा—घ. । १४. त्वया—ङ. । १५. मानं तु—घ. ङ. । १६. सदा दशा—क. ख. । १७. 'अर्धा''''परा' इति पङ्क्तिद्वयं नास्ति—ख. ।

आनन्दिनी महानन्दा जगदार्कर्षिणी परा ।
महाप्रलयकालादौ यद्वृत्तं कर्म [1]मत्कृतम् ॥ १२३ ॥
तत्सर्वं [2]चैव जानाति [3]सर्ववेदस्वरूपिणी ।
कृतमेतत् त्रयं यत्नात् परमानन्दहेतुकम् ॥ १२४ ॥
अधोंऽशतस्ततस्तस्या धनुः सप्तविनिर्मितम् ।
निकुञ्जे स्थापितं [4]सर्वं देवतानां हितेच्छया ॥ १२५ ॥
ऊर्ध्वांशि[5]तश्च तस्या वै त्रिदण्डध्वज एव च ।
एतस्मिन्नेव काले सा वाग्देवी ब्रह्मरूपिणी ।
तुष्टाव मधुराभिश्च वाग्भिर्मामीश्वरेश्वरम् ॥ १२६ ॥

[6]सरस्वती उवाच

ॐ नमस्ते नमस्ते स कोऽपि ते पारगो नहि ।
कारुण्यामृतसिन्धो त्वमपराधं क्षमस्व मे ॥ १२७ ॥
नमो नमस्ते पुरुषः प्रधानः
प्रधानपुंसोरपि दुर्विभाव्यः ।
सनातनं ब्रह्म तवाङ्गतेज-
स्तेजस्विने सर्वमहेश्वराय ॥ १२८ ॥
यस्यांशभूता विधिविष्णुरुद्राः
कुर्वन्ति सृष्टिस्थितनाशकर्म ।
स एव यस्यांशकलाविशेष-
स्तमव्ययं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ १२९ ॥
त्वमेव भूमिः सलिलं त्वमेव
त्वमेव तेजः पवनस्त्वमेव ।
नभस्त्वमेवासि रथाङ्गपाणे
विना भवन्तं न च किञ्चिदस्ति ॥ १३० ॥
त्वमर्यमा त्वं क्षणदाधिनाथ-
स्त्वमेव सौम्यस्त्वमसीह जीवः ।
त्वमेव शुक्रो मिहिरात्मजस्त्वं
राहुस्त्वमेवासि च केतवस्त्वम् ॥ १३१ ॥

---

१. यत्कृतम्–घ. ङ. । २. यैव–घ. ङ. । ३. सर्वदेवस्व–क. ख. । ४. सर्वदेवतानां–व. । ५. तस्तु–ङ. । ६. 'सरस्वती उवाच' इत्यारभ्य 'अहम् (श्रीकृष्ण) उवाच' (पृ० ९३) इति पर्यन्तं पाठो नास्ति–घ. ।

वारास्त्वं तिथयो लग्नं राशयो मासवत्सराः ।
पक्षौ मूहुर्ताः करणाः कालस्त्वं कालधर्मवान् ॥ १३२ ॥
त्वमेव सर्वं सकलाधिनाथ
विनैव ते किञ्चन वस्तु नास्ति ।
परं हि [1]दीनान् दयसे दयालो
दयामपि [2]श्याम कथं जहासि ॥ १३३ ॥
माया[3]भ्रमीभ्रमितमानस[4]नक्रचक्रं
संसारसागरमनङ्गतरङ्गदुःस्थम् ।
[5]प्राचः(श्चः) परश्च(राश्च) इह [6]मध्यगतास्म(श्च) लोका
ज्ञात्वा तरन्ति भवतश्चरणारविन्दम् ॥ १३४ ॥
त्वमेव शक्तिः परमा त्वमेव
सदाशिवः [7]सर्वशिवप्रदो नः ।
विष्णुर्महांस्त्वं विधिविष्णु[8]शम्भव-
[9]स्त्वमेव देवो त्वहते न किञ्चित् ॥ १३५॥
इन्द्रस्त्वमेव ज्वलनस्त्वमेव
[10]त्वमेव कालोऽसि च निर्ऋतिस्त्वम् ।
त्वमेव पाशी पवनस्त्वमेव
नृवाहनस्त्वं गिरिशस्त्वमेव ॥ १३६ ॥
ब्रह्मा [11]त्वमेवाऽहि वरस्त्वमेव
त्वत्तोऽन्यदास्ते न च किञ्च वस्तु ।
श्रीकृष्ण वामनहरे मधुकैटभारे
पद्मापते कमलनेत्र मुकुन्द विष्णो ॥ १३७ ॥
दीनेश भूमिधर [12]भूमगुणौघसिन्धो
मां पाहि [13]ईश करुणावरुणालयस्त्वम् ।
[14]सारङ्गपाणेऽच्युतदीनबन्धो
समस्तलोकेश्वर[15]वृन्दवन्द्य ॥ १३८ ॥

---

१. दीनामुदयसे—क. ख. । २. त्वं हि कथं—ङ. । ३. 'भ्रमी'नास्ति—क. ख. । ४. चक्रचक्रं—ङ. । ५. प्राज्ञः—ङ. । ६. मन्यजनातिरेका—ङ. । .७ सर्वशिवप्रदाता—ङ. । ८. सम्भव—ङ. । ९. रुद्रस्त्वमेव देवास्त्वहते न —क. ख. । १०. 'त्वमेव'नास्ति—ङ. । ११. त्वमेवासि—ङ. । १२. भूरिगुणैक्यसिन्धो—क. ख. । १३. पाहि करुणा—क. ख. । १४. शारङ्ग—क. ख. । १५. ब्रह्मवन्द्य—क. ख. ।

ममास्थि[1]राया: [2]स्थिररूपदेव
क्षमस्व सर्वं परितोऽपराधम् ।
ये देवलोका धृतदीर्घशोका:
संसार संतापित सर्वदेहाः ॥ १३९ ॥
[3]समाश्रयन्ते तव [4]पादपद्मं
ते निवृत्ति कृष्णपरां लभन्ते ।
किं वर्णयामो भवतो महित्वं
योगेश्वरस्यापि सदीश्वरस्य ॥ १४० ॥
[5]अपाङ्गभङ्ग्या हि करोषि सृष्टिं
स्थितिं लयं विश्वसृगच्युतेशैः ।
तवैव पादाम्बुजधूलिहारिणीं
नाकस्रवन्तीं दूरितौघहारिणीम् ॥ १४१ ॥
योगेश्वरो भक्तिविनम्र[6]मूर्त्या
धृत्वा [7]विषादी च सदाशिवोऽभूत ।
तवाश्रिता ये पदपङ्कजं प्रभो
समाश्रयास्ते जगतां भवन्ति ॥ १४२ ॥
कुरु [8]प्रसादं मम चञ्चलायाः
क्षमस्व कृष्णाऽगणितापराधम् ।
त्वमेव विष्णुः स्थितये जनानां
तथा [9]विधाताप्यसि सृष्टिहेतुः ॥ १४३ ॥
विनाशहेतुर्जगतां कपाली
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय कस्मै ।
श्यामस्त्वमेको [10]बहवस्त्वदङ्गाः
[11]पीतारुणश्वेतविचित्ररूपाः ॥ १४४ ॥

१. राद्याः—क. ख. । २. स्थिरदेवरूप—क. ख. । ३. श्रमा—ङ. । ४. पद्म-युग्मं—क. ख. । ५. अपाङ्गभङ्गाद्धि करोषि—ङ. । ६. मूर्ध्ना—ङ. । ७. विषादं हि सदा—क. ख. । ८. प्रसारं—क. ख. । ९ त्वमप्यसि—ख. । १०. बहवस्त-दङ्गजाः—ङ. । ११. पीताब्जकश्वेत—ङ. ।

भूता भविष्या भगवन्भवन्तो
भवन्तमाद्यं समुपाश्रयन्ते ।
नादिर्न मध्यो न च तेऽवसानो
न वाऽगुणी त्वं सगुणो न [१]चासि ॥ १४५ ॥
न वेदवित्त्वामपि [२]वेदकेन्ये
[३]को(का) वाऽस्मि देव क्षमया क्षमस्व ।
[४]त्वमेव सम्मोहमहौषधिर्नृणां
त्वत्तो भवेत् शश्वदहो महोदयः ॥ १४६ ॥
तवैव पादाम्बुजमाश्रितास्मि
प्रभो प्रसीद क्षमया क्षमस्व ।
त्वमेव शीतांशुसहस्रतुल्यो
हिमोपमश्चन्दनराशिशीतलः ॥ १४७ ॥
साधारधाराधर[५]देहदेव
प्रसीद शान्तिं कुरु तापितायाः ।
न ते गुणोक्तौ चतुरश्चतुर्मुखो
न पञ्चवक्त्रोऽपि च सञ्चचार ॥ १४८ ॥
[६]षडाननो यत्र जडाननोऽभूत
सहस्रशीर्षाश्त(स्त)मजस्रमातनोत् ।
तत्रैकवक्त्रा बत केह वामा
वकी वराकीव विशीर्ण[७]शीला ॥ १४९ ॥
त्वन्मायया भ्राम्यति विश्वमेतद्
विश्वं प्रभो देव मयि प्रसीद ।
[८]न ते विदुर्वेदविदः पुराणाः
पुराणमाद्यं पुरुषं [९]पुराणम् ।
अपाङ्गभङ्गेन विधेहि देव
प्रभोः [१०]प्रसीद क्षमया क्षमस्व ॥ १५० ॥

---

१. वासि—क. ख. । २. वेदकोऽन्ये—ङ. । ३. करोमि देव—ङ. । ४. 'त्व-मेव''''क्षमस्व' इति पङ्क्तिद्वयं नास्ति—क. ख. । ५. देवदेव—ङ. । ६. सदाननो योऽत्र—ङ. । ७. शीलाः—क., शीलः—ख. । ८. मा ते— क. ख. । ९. प्रधानमू-क. ख. । १० प्रसादं क्षमया—ङ. ।

श्यामसुन्दर मामिच्छ न त्वां [1]त्यक्तुमिहोत्सहे ।
कृतं मया तपो घोरं [2]प्राप्तुं त्वां [3]दुरवग्रहम् ॥ १५१ ॥
यत्र तत्रैव [4]जन्मास्तु प्रसादान्निग्रहात् तव ।
[5]मद् वाञ्छितो [6]भवत्सङ्गो [7]मा(म?)ऽनुगृह्णातु सर्वदा ॥१५२॥

बलराम उवाच

ततः किमकरोद्देवी किं वा त्वमकरोः प्रभो ।
तन्ममाचक्ष्व भगवन् श्रोतुं कौतूहलं परम् ॥ १५३ ॥

[8]श्रीकृष्ण उवाच

बलराम महाभाग भूयो देवी सरस्वती ।
मामेव परितुष्टाव वाग्भिरिष्टाभि[9]रञ्जसा ॥ १५४ ॥
[10]प्रणयाविष्टहृदया हृदयानन्दकारिणो ।
अजस्रस्रवदस्राक्षी स्वेदवारिप्रपूरिता ॥ १५५ ॥

सरस्वती उवाच

जय जय कारण कारणविष्णो [11]जय जयिनां जयि निरयवि जिष्णो ।
जय धरणीधर धरणिपते जय सुजनव्रजवृजिनहते जय ॥ १५६ ॥
जय गणनायक नाथ हरे जय भवसागर तरणतरे जय ।
[12]जय वृन्दावनविपिनविहारी जयदानवगण[13]मुण्डनकारी ॥ १५७ ॥
जय देवाधिपमौलिविलासी जय चेतो हररूपविकासी ।
जय रससागर करुणासिन्धो जय नवनागर निरुपधिबन्धो ॥ १५८ ॥
जय [14]जगदुद्भवयोनिरनादे जय वेदात्मक वेदविदादे ।
जय विषमाशुग समसुषमान्त जय शामितशमनभयसुशान्त ॥ १५९ ॥

---

१. त्यक्तुं न महोत्सहे—ङ. । २. प्राप्तं—ङ. । ३. दुरवग्रहः—क. ख. । ४. जन्मान्तप्रसादान्निग्रहोत्तर—ङ. । ५. सद्वाञ्छितो—ङ. । ६. भवतु सङ्गे मा- ङ. । ७. मात्र गृह्णातु—क. ख. । ८. 'श्रीकृष्ण उवाच' नास्ति—ङ. । ९. रञ्जना- क. ख. । १०. प्रलया—ङ. । ११. 'जय....जिष्णो' नास्ति—ङ. । १२. वृन्दा- विपिनविराजितविहारी—क. ख. । १३. छेत्तृकारी—क. ख., अत्र छेदनका रीति पाठः साधुः । १४. जगदद्भुतयोनि—क. ख. ।

जय कल्पान्तसुकल्पित[1]तल्प जय [2]नतकल्पमहीरुगनल्प ।
जय कमलोदरसोदर[3]दृष्टे जय [4]परिपालितबहुतरसृष्टे ॥ १६० ॥
जय यमिनां हृदयाम्बुजगामी जय वामाकुलकेलिसुकामी ।
जय पीतांशुकवेष्टितमूर्ते जय मुनिमोहमनोरथपूर्ते ॥ १६१ ॥
जय रिपुवारिधिशोषाऽगस्ते जय भुवने परिगीतसमस्ते ।
जय [5]युवजनगणमानसचोर जय लीलामयनित्यकिशोर ॥ १६२ ॥
जय कनकाङ्गदसङ्गतबाहो जय कमलास्य [6]कलानिधिबाहो ।
जय जगतीतलवलयनिदान जय नानासुखकलितनिधान ॥ १६३ ॥
जय कलिकल्मषराशिविमोक्ष जय वरपापिगणार्पितमोक्ष ।
जय नरकिन्नरदनुजनिवन्द्य जय [7]सुरनागगणैरभि[8]नन्द्य ॥ १६४ ॥
जय सेवितपदविपदपनोद जय नित्यं रसकेलिसमोद ।
जय जय [9]हरिहर परिहररोषं जय[10]करुणांकुरु मे जहि दोषम् ॥ १६५ ॥

नमस्ते समस्तेश्वरस्येश्वराय
नमस्ते नमस्ते महिम्नां वराय ।
[11]प्रसीदावसीदामि गाढं चिराय
प्रभो नीलजीभूतयूथाभकाय ॥ १६६ ॥
प्रभो [12]त्वत्प्रसादान्न किञ्चापलभ्यं
[13]य एवाश्रयन्ते पदं तेऽविलभ्यम् ।
नमस्ते कदम्बस्रजा शोभिताय
नमस्ते सुवर्णांशुकेनावृताय ॥ १६७ ॥
[14]नमस्ते किरीटे मयूरच्छदाय
नमस्ते कपोले सपुष्पच्छदाय ।
नमस्तेस्तु कर्णे मणिकुण्डलाय
नमस्तेमुखाम्भोजनुर्मण्डलाय ॥ १६८ ॥

---

१. इतः पूर्वं 'जनयत'–क. ख. । २. 'नत'नास्ति–क. ख. । ३. तुष्टो-क. ख. । ४. परिपाति तवाद्भुतसृष्टे–क. ख. । ५. युवतिगण–क. ख. । ६. कमलानिधि–क. ख. । ७. सुरराग–क. ख. । ८. वन्द्य–ङ. । ९. हरिरवि परि–ङ. । १०. करुणाङ्कुर–ङ. । ११. प्रसीदावसादाभिगाढं–क. ख. । १२. त्वत्प्रसादात् किञ्चा–क. ख. । १३. यत्र वाश्रयन्ते पदान्ते–ङ. । १४. 'नमस्ते ....मण्डलाय'नास्ति –क. ख. ।

नमस्ते कपोलोल्लसच्चन्द्रकाय
नमस्तेऽरुणाम्भोजपत्रेक्षणाय ।
नमस्तेऽरुणौष्ठाय विम्बाधराय
नमस्ते लसत्स्मेर[1]दिव्यस्मराय ॥ १६९ ॥
नमस्ते त्रिरेखाढ्यकण्ठोच्छ्रिताय
नमस्ते शिलापीठवक्षस्थलाय ।
नमस्तेस्तु मुक्ताफलालङ्कृताय
नमस्ते भ्रमत्षटपदैर्झङ्कृताय ॥ १७० ॥
नमस्ते भुजादण्डसमण्डिताय
[2]नमस्तेंऽसचञ्चद्वतंसाश्रिताय ।
नमस्तेऽरुणद्योतपाणिद्वयाय
नमस्तेस्तु नाभीगभीरह्लदाय ॥ १७१ ॥
नमस्तेऽरुणावासपादाम्वुजाय
नमस्ते नखेन्दुद्युतिद्योतिताय ।
नमस्ते मनोभूशतैर्वाञ्छिताय
नमस्ते जगन्मोहसम्मोहनाय ।
नमस्ते नमस्ते [3]नमस्ते प्रियाय
[4]प्रसीद प्रभो मे प्रसीद प्रसीद ॥ १७२ ॥

अहम् (श्रीकृष्ण) उवाच

इतः परं स्थिरा कान्ते भव त्वं स्थिरमानसे ।
तवैव वदनाम्भोजच्यवद्वागमृतार्णवे ॥ १७३ ॥
स्नानात् [5]पानात् सुतृप्तोऽस्मि न त्वां त्यक्ष्यामि मा रुद ।
[6]अद्यानवद्यचरिते करिष्यामि तवेप्सितम् ॥ १७४ ॥
इदं स्तोत्रं पठिष्यन्ति ये नरा रचितं त्वया ।
तेषामेवास्मि नियतं प्रेमभक्तिप्रदायकः ॥ १७५ ॥
वलरामेत्त्युक्तवीत मयि सा न च किञ्चन ।
प्रोवाच लज्जा पाथोधिनिमग्ना कलितांशुका ॥ १७६ ॥

---

१. दीव्यत्स्मराय–ङ. । २. 'नमस्तें....पाणिद्वयाय' नास्ति–ख. । ३. प्रियाय प्रसीद–क. ख. । ४. प्रभो मे प्रसीद–क. ख. । ५. 'पानात्' नास्ति–ङ. । ६. आद्यानवद्य–ङ. ।

ततः सा परमप्रीत्या क्रोडे कृत्वा सुचुम्बिता ।
वंशी [1]तदहसम्भूता परमानन्दचेतसा ॥ १७७ ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुश्रोणि पुनर्मे [2]वसनान्तरे ।
यावद् ब्रह्माण्डब्रह्माण्डकर्तृ नै(ने)व सृजाम्यहम् ॥ १७८ ॥
भूतानां सृष्टितः पूर्वं सम्भूय ब्रह्मणोमुखात् ।
प्राप्य तस्यैव पत्नीत्वं शापान्मुक्ता [3]भविष्यसि ॥ १७९ ॥
ततः सरस्वती तूर्णं सा जिह्वामूलमागता ।
हसन्ती परिहासेन मामुवाच विशङ्किता ॥ १८० ॥

सरस्वती उवाच

भगवन् वक्तुकामाऽस्मि त्रासान्न त्वां वदाम्यये ।
यत्कृतं भवता [4]तन्न क्लीबेन क्रियते [5]न किम् ॥ १८१ ॥
किन्त्वेकस्याऽपराधस्य शाप एको ममोचितः ।
शापद्वयं त्वया दत्तं त्वामहं शप्तुमुत्सहे ॥ १८२ ॥
स्वदेहजां च मां यस्माद् विगर्हयसि केशव ।
तस्मात् [6]स्वाङ्गजया सार्धं [7]रंस्यत्याग्रहिलो भवान् ॥ १८३ ॥
जगत्सर्वं त्वयि न्यस्तं न्यस्ताः प्रकृतयस्तथा ।
पुरुषाश्च तथा कृष्ण त्वमेवैकः सनातनः ॥ १८४ ॥
त्वय्यैव प्रलयं यान्ति उत्पतन्ति रमन्ति च ।
[8]त्वामेवं विपिने दृष्ट्वा रिरंसा रमया मया ॥ १८५ ॥
[9]कृतेमं(यं) सर्वदोषघ्न क्षमस्व दोषमीश्वर ।
इत्युक्त्वा सा महादेवी विरराम सरस्वती ॥ १८६ ॥
अहं तु लज्जया किञ्चित् तामुवाच यशस्विनीम् ।
अनेन विधिना [10]सेव्या वंशी मे प्राणवल्लभा ॥ १८७ ॥
बिम्बाधराम्बु[11]जाधःस्तान्मधुमत्तालिनिःस्वना ।
शब्दब्रह्ममयी साक्षाद् मृतसञ्जीवनी परा ॥ १८८ ॥

---

१. तद्देशसम्भूता—घ. । २. रसनान्तरे—घ. । ३. भविष्यति—ख. । ४. तत्र—घ. । ५. तु किम्—क. ख. । ६. त्वां पूजया—ङ. । ७. रंस्याद्याग्रहितो भवान्—घ. । ८. त्वामेकं—ङ. । ९. कृते मम सर्वं—ङ. । १०. सेयं—क. ख. ङ. । ११. जाधस्थान्म—घ. ङ. ।

यस्याः [1]कलरवं श्रुत्वा निर्जीवोऽपि सजीवताम् ।
प्राप्तवान् बलरामात्र महाविष्णुर्निदर्शनम् ॥ १८९ ॥
वह्नेः शैत्यं जलस्तम्भं तरुशैलमृदां तथा ।
द्रावणं [2]रवमात्रेण करोति क्षणमात्रतः ॥ १९० ॥
[3]ममत्वाद् माधवे सेयं [4]सर्वाह्लादनकारिणी ।
सदाशिवेशानरुद्रविष्णुब्रह्मपुरातनी ॥ १९१ ॥
या सम्मोहनकारिणी त्रिजगतां संस्तम्भिनी[5]वारिणो
या शश्वत् कुलकामिनी कुलवसच्चेतोवशीकारिणी ।
याऽप्युच्चाटन[6]नाटिनी रिपुहृदां [7]संनादिता संस्थिता
सेयं चित्रमहौषधिर्विजयतां वंशी सदोन्मादिनी ॥ १९२ ॥
वंशीमाहात्म्यमेतद् [8]विपठिष्यन्ति द्विजातयः ।
श्रोष्यन्ति च भविष्यन्ति द्रुतं द्रुतं कवीश्वराः ॥ १९३ ॥
[9]ममैव चरणाम्भोजे भक्तिस्तेषां सुनिश्चला ।
भविष्यति महाबाहो सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ १९४ ॥
मोक्षार्थी लभते मोक्षं भुक्त्यर्थी भुक्तिमाप्नुयात् ।
कामार्थी लभते कामं [10]श्रूयतां मुरलीरुतम् ॥ १९५ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे श्रीकृष्णबलराम-
प्रश्ने शब्दब्रह्मस्वरूपिण्याः वंशिकायाः प्रादुर्भावः
[11]एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥



१. कलनत्वं–क. ख. । २. वरमात्रेण–घ. ङ. । ३. मम रोमचि(षि)रे सेयं–घ. । ४. सर्वक्लेदनकारिणी–ङ. । ५. वारिणी–घ. । ६. नाशिनी–क. ख., नार्दिनी–घ. । ७. श्रीरामचन्द्रे स्थिता–घ. ङ. । ८. मे पठिष्यन्ति–घ. ङ. । ९. 'ममैव....कथा श्रुता (श्लो. १२।१)'नास्ति–घ. । १०. श्रुतायां–ङ. । ११. 'एकादशोऽध्यायः'नास्ति–ङ. ।

द्वादशोऽध्यायः

श्रीबलराम उवाच

भगवन् परमश्रेष्ठ श्रेष्ठवंशीकथा श्रुता ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि त्रिभङ्गत्वं कथं तव ॥ १ ॥
तन्मे कथय गोविन्द [1]बिन्दाद्यानन्द[2]सन्ततम् ।
[3]त्वं हि गुह्यस्योपदेष्टा स्वात्मनो नापरः क्वचित् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु ते कथयिष्यामि बलराम [4]यथा मम ।
त्रिभङ्गत्वं कामिनीनां मनोनयनरञ्जनम् ॥ ३ ॥
महानन्दाभिधां वंशीं कराभ्यां प्रतिगृह्य वै ।
[5]प्रहसद्वदनो [6]लीलारसचञ्चलमानसः ॥ ४ ॥
जगाम [7]शनकैर्नीपमूलमानन्दविग्रहः ।
[8]तस्मिन् दिव्यतरोर्मूले [9]मणिवद्धे महाप्रभे ॥ ५ ॥
सुवर्णवेदिकामध्ये निर्मले [10]प्रतिबिम्बिते ।
संपश्यन्नात्मनात्मानं स्वयमेव विमोहितः ॥ ६ ॥
अतसीपुष्पवर्णाभं मूर्ध्नाबद्धशिरोरुहम् ।
[11]कोटिन्दुसुन्दरमुखं सुनसं सुस्मिताधरम् ॥ ७ ॥
रक्तपद्मदलाकारनयनं [12]भ्रूलतोन्नतम् ।
सुचारुकर्णविन्यस्तराजन्मकरकुण्डलम् ॥ ८ ॥
[13]सुरदं [14]शोभनग्रीवं नानालङ्करणोज्ज्वलम् ।
द्विभुजं वेणुमुद्राढ्यं पीन[15]वक्षःस्थलाश्रयम् ॥ ९ ॥

---

१. विन्द्वाभ्यानन्द—क. ख.; विद्यानन्द—घ. । २. सन्ततिम्—क. ख.; सम्भव—ङ. । ३. तं हि—घ. । ४. कथा—घ. । ५. प्रहसन् वदनो—ङ. । ६. वीगारस—ङ. । ७. पानकै—घ. । ८. यस्मिन्—घ. । ९. मानवद्धे—ङ. । १०. प्रतिचिन्तितः—घ.; प्रतिविम्वितम्—ङ. । ११. कोटिस्मरसुन्दर—ङ. । १२. भ्रूलतोऽन्वितम्—क.; भ्रूलतान्वितम्—ख. । १३. सुन्दरं—क. ख. घ. । १४. शोभनं—घ. । १५. वक्षःस्थलश्रियम्—घ. ङ. ।

आजानुलम्बितश्रीमद्वनमालाविराजितम् ।
वैजयन्त्या मालया च मणिना कौस्तुभेन च ॥ १० ॥
[1]श्रीवत्सरोमावलिभिः सर्वभूतमनोहरम् ।
सुकटिं पीतवसनं सुजानूरुसुजङ्घकम् ॥ ११ ॥
सुकोमल[2]तराङ्घ्र्यब्जनखचन्द्रविराजितम् ।
ततो मे मुग्धचित्तस्य बभूव सरसं मनः ॥ १२ ॥
ततः शृङ्गारनामायं रसः प्रादुर्बभूव ह ।
श्यामवर्णः सुखमयः सर्वलोकैकमोहनः ॥ १३ ॥
रसादानन्द [3]आनन्दादनुभावो बभूव ह ।
आत्मना [4]रन्तुमिच्छामि नारी [5]भूत्वा पृथग्वपुः ॥ १४ ॥
इति सञ्चिन्त्य[6]मानस्य [7]मनस्तद्रसतां [8]गतम् ।
स्वयमेवं [9]द्विधा भूत्वा परमानन्दरूपिणी ॥ १५ ॥
[10]रसस्वरूपिणी चाहं स्वयंरूपा विनिर्गता ।
विद्युतपुञ्जसमा गौरी दिव्याभरणभूषिता ॥ १६ ॥
त्रैलोक्य[11]मोहनी कान्ता [12]नीलाम्भोजदलेक्षणा ।
सुदती सुस्मिता सुभ्रूः [13]सुकपोल[14]तलोज्ज्वला ॥ १७ ॥
[15]वक्त्रालकालिसंशालो [16]चक्रपद्मा मनोहरा ।
मन्दारमालाविभ्राजत्सुकुञ्चितशिरोरुहा ॥ १८ ॥
कटाक्षमात्रब्रह्माण्डकोटिसम्मोहकारिणी ।
कोटिकन्दर्प[17]लावण्या सुनसा सुन्दरी वरा ॥ १९ ॥
समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डला ।
कम्बुग्रीवा महादेवी नानाभरणराजिता ॥ २० ॥

---

१. श्रीवत्सलोमा–क. ख. घ. । २. तरं चक्रनख–क. ख.; तराङ्घ्र्यान्त-नख–घ. । ३. आनन्दाद् दत्तभावो–ङ. । ४. वर्णमि–क. ख. । ५. भूता–क. ख. । ६. मानश्च–घ. । ७. मनस्तत्र सतां–घ. ङ. । ८. गतः–ङ. । ९. विधा–क. ख. । १०. रसरूपिणी चाहं तु स्वयं–क. ख. । ११. मोहिनी–क. ख. घ. । १२. वीणाम्भोज–ङ. । १३. सुकोमल–ङ. । १४. तयोज्ज्वला–क. ख. । १५. चकाल–घ.; रकाल–ङ. । १६. वक्रपद्म–ध.; वक्रप[illegible]–ङ. । १७. लावण्यसुनसा–क. ख. ।

मुक्ताहारलतोपेतपीनवक्षोरुहद्वया ।
मृणाल[1]ललिताभ्यां च पङ्कजद्वयमुत्तमम् ॥ २१ ॥
रक्तपद्मदलाकार[2]रक्ताभ्यामरुणच्छविः ।
नानालङ्कार[3]युक्ताभ्यां नखांशुचयराजितम् ॥ २२ ॥
कराभ्यां विभ्रती [4]चारु बैजयन्तीविभूषिता ।
सिंहवत्तनुकङ्कालन्यस्तदिव्यपटा[5]वृता ॥ २३ ॥
सुवर्णरत्नघटितकिङ्किणीजालमण्डिता ।
लावण्यसरिदावर्तचारुनाभिसरोरुहा ॥ २४ ॥
सुभगा शोभनकटिः सुनितम्बा सुखावहा ।
सुचारुकदलीस्तम्भतुल्यजानुविराजिता ॥ २५ ॥
लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमोहिनी ।
जितकूर्मोन्नतपदा रत्ननूपुररञ्जिता ॥ २६ ॥
तस्या [6]विनिर्गतायास्तु रत्नालङ्कार[7]वाससाम् ।
ध्वनिना[8]कृष्टचित्तोऽहं तां पश्यामि मुहुर्मुहुः ॥ २७ ॥
ततो मे विस्मयो जातः काऽसाविह [9]समागता ।
किं वा सरस्वती भूयो दिव्यरूपधरा स्वयम् ॥ २८ ॥
[10]द्वितीया मे तनुर्वेयं [11]स्वसुखार्थमुपस्थिता ।
इत्थं वितर्कितस्यापि ममैव मधुराकृतेः ॥ २९ ॥
तां दिदृक्षोर्मदोन्मत्तां राधिकां मोहनाकृतिम् ।
आत्मानमर्पयन्तीश्च कटाक्षबाणवर्षिणीम् ॥ ३० ॥
सुवर्णमेघमालां च विद्युद्भूषणभूषिताम् ।
परमानन्दसम्मुग्धचित्तं चातक[12]पक्षिणम् ॥ ३१ ॥
परमानन्दलोभेन [13]लुब्धस्य रसवारिधेः ।
मुग्धस्यात्मप्रदानार्थं [14]वीक्षतो मुखमण्डलम् ॥ ३२ ॥

---

१. ललिकाभ्यां–ङ. । २. रक्ताढयामरुणच्छवी–ङ. । ३. युक्ताढयां–ङ. । ४. 'चारु'इत्यस्य स्थाने 'च'–क. ख. । ५. वृतम्–क. ख. । ६. विनियुता-ङ. । ७. वाससा–घ । ८. कृष्णचित्तोऽहं पश्यामि–क. ख. । ९. मिहागता–ख. घ. ङ. । १०. द्वितीयात्मतनु–ङ. । ११. स्वसुखाय उपस्थिता–क. ख. । १२. पक्षिणाम्–क. ख. । १३. विकृष्य–ङ. । १४. वीक्ष्यतो–क. ख. ।

तिर्यग्ग्रीवत्वमगमन्मम सर्वेश्वरस्य तु।
[1]तत्प्रेम्णो [2]रसमिश्राच्च परमानन्दयोगतः॥ ३३॥
उल्लासादात्मनः साक्षाद् बहुरूपत्वमिच्छतः।
आलिङ्गितस्यैव सख्याद् वक्षोदक्षिण[3]दिग्गतम्॥ ३४॥
ततो गोपाः षडङ्गेभ्यो जाताः श्रीसुबलादयः।
[4]पुनरङ्गे प्रविविशुर्विद्युत्पुञ्जा [5]इवाम्बुधेः॥ ३५॥
[6]पश्यन्तस्तां वरारोहां लज्जयाऽधोमुखा [7]द्रुतम्।
[8]तत्प्रेमपाशसम्बद्धचित्तस्य चरणद्वयम्॥ ३६॥
मणिनूपुरयुग्मेन शृङ्खला[9]बद्धवद् बभौ।
ततो मम पादाम्भोजा[10]द्रक्तकाद्या महौजसः॥ ३७॥
तुष्टुवुः प्रेमवचसा [11]प्रणयाविष्टचेतसा।
हे नाथ चरणं त्वेकमस्मभ्यं दर्शय प्रभो॥ ३८॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां तुष्टये स्वयमेव हि।
ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजलक्षणं [12]दक्षिणं पदम्॥ ३९॥
तिर्यग्ग्रीवमुदारश्रीर्ब्रह्मविष्णुशिवार्चितम्।
अकार्षं [13]राम सततं यतोऽहं भक्तवत्सलः॥ ४०॥
कृत्वाऽऽमनोऽपि दुःखौघं भक्तानां [14]सुखकारकः।
भक्ता मम प्रिया नित्यं भक्तानामस्म्यहं प्रियः॥ ४१॥
[15]एतान्येव कारणानि त्रिभङ्गत्वं गतस्य मे।
नित्यं सत्यं चित्स्वरूपमानन्दरसविग्रहम्॥ ४२॥
रूपमेतत् सदा ध्यायन् महाविष्णुस्तपश्चरेत्।
[16]ब्रह्मै वेदं हृदि ध्यात्वा [17]सृष्टिकृच्चासकृद् विभो।
रुद्रोऽपीदं चित्स्वरूपं ध्यात्वा सिद्धिमितो गतः॥ ४३॥

---

१. तत्प्रेम्णा—ङ.। २. रसमिश्राख्य—घ.। ३. दिग्जितम्—क. ख.। ४. पुनर्प्राचिविशु—क.; पुनर्प्रचिविशु—ख.। ५. इव घनाम्बुदे—क. ख.। ६. पश्यन्तं तां—क. ख.; पश्यन्तस्त्वां—घ.। ७. द्रुतम्—ङ.। ८. तत्प्रेमवश्यो सम्बद्ध—क. ख.; प्रेमपाशसम्बद्ध—ङ.। ९. बद्धते बभौ—क. ख.। १०. 'द्रक्तकाद्या''''वज्राङ्कुशाः'(श्लो.३९) नास्ति-क. ख.। ११. प्रलयाक्लिष्टचेतसा-ङ.। १२. दर्शितं पदम् —घ.। १३. वाम—ङ.। १४. शुभकारकः—ङ.। १५. एतस्यैव—घ.। १६. यदि—क. ख.। १७. सृष्टिं कृत्वा सकृद्—ङ.।

एतत् त्रिभङ्गरसविग्रहमादिभूतं
भूतेशविष्णुविधिचित्रविचित्र[1]सेव्यम् ।
[2]ध्यात्वा त्रिभङ्गचरितं परितः शृणोति
यस्तस्य हृत्सरसिजे सततं वसामि ॥ ४४ ॥
इति ते सर्वमाख्यातं त्रिभङ्गचरितं मम[3] ।
बलराम महाबाहो किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे कृष्णदिव्यवृन्दावन-
रहस्यान्तर्गताऽभिन्नराधारहस्ये श्रीराधाऽविर्भावो
भगवत्त्रिभङ्गनित्यरूपाविर्भावो नाम
[4]द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥



१. लेखम्—क. ख. ङ. । २. एवं त्रिभङ्ग—क. ख. । ३. अत्र 'घ'मातृका समाप्तिः । ४. 'द्वादशोऽध्यायः' नास्ति—क. ।

त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीबलराम उवाच

ततः किमभवत् पश्चात् त्रिभङ्गत्वं गते त्वयि ।
तन्मे कथय गोविन्द यदि तेऽस्ति कृपा मयि ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

तद्रूपबद्धचित्तस्य स्पृहा तस्यां ममाऽभवत् ।
रिरंसामि तया सार्धं न च मां सा प्रसीदति ॥ २ ॥
अतिमुग्धमना [1]दैन्यं दिधीर्षामि पुनः पुनः ।
अत्यन्तं निकटं [2]भूत्वा सापि दूरस्थिता भवेत् ॥ ३ ॥
यदि दूरस्थितां मत्वा निजचेतो [3]निवारितां (ता) ।
तदा [4]वामांशभागाऽस्ति [5]क्वणत्काञ्चनकङ्कणा ॥ ४ ॥
धावमानेव न प्राप्या तिष्ठतः सम्मुखस्थिता ।
[6]ममात्मारामचित्तस्य [7]चित्तमाकर्षती सती ॥ ५ ॥
कदाचिन्मम पृष्ठस्था माया[8]झङ्कृतनूपुरा ।
[9]हसत्याच्छाद्य हस्ताभ्यां [10]गाढ(ढं) नेत्रसरोरुहैः(हे) ॥६॥
तद्रूपमुग्धचित्तस्य मम निश्चेतनस्य वा ।
अलङ्काराणि मालेव वासांसि मुरली तथा ॥ ७ ॥
[11]आकृष्य त्वरितं याति नाऽहं प्राप्नोमि हस्ततः ।
एवं शश्वन्महादेवी मोहयित्वा मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥
आयाति याति सा नित्यं न मनाग् वशगा मम ।
तच्चित्ताकर्षणोपायो मनसा चिन्तितो मया ॥ ९ ॥
मणिमन्त्रौषधैरेव दुःसाध्यमपि साध्यते ।
[12]तस्मादेषाऽखर्वगर्वा वशगा मे भविष्यति ॥ १० ॥

---

१. दौर्भ्यां–क. ख. । २. मत्वा–क ख. । ३. निराकृतम्–ङ. । ४. वामाङ्ग-सम्भाति–क.; वामाङ्गसंयाति–ख. । ५. क्षणत्का–ङ. । ६. ममात्मरोम–ङ. । ७. चित्तमाकर्षयत्–क. ख. । ८. सूकितनूपुरा–क. ख. । ९. सहस्याच्छाद्य–क.; सकृद्याच्छाद्य–ख. । १०. गात्रं नेत्र–क. ख. । ११. आहृत्य–ङ. । १२. तस्मात्साऽखर्वं–ङ. ।

ततः स्वयं मणिश्चाहमभवं स्मृतिमात्रतः ।
चिन्तामणिरिति ख्यातश्चिन्तिते सर्वकामदः ॥ ११ ॥
यो वध्नाति मणिं कण्ठे स हि वाञ्छाफलं लभेत् ।
मोहनाख्यो महामन्त्रः स्वयमेवाह[1]मव्ययः ॥ १२ ॥
[2]मत्पूर्वं देवता[3]देहे प्रविष्टं वै मदाज्ञया ।
कामाशां प्रकृतेर्वंशमंशं वृन्दावनक्षिते[:] ॥ १३ ॥
ब्रह्मांश[4]मेकतां नीतं परंब्रह्माद्वयात्मकम् ।
तदेवाहं तत्प्रकृतिस्तत्कामस्तत्परं पदम् ॥ १४ ॥
[5]एकमेवाक्षरं ब्रह्म सर्वदेवस्य मोहनम् ।
अस्य स्मरणमात्रेण वशगाः सर्वदेवताः ॥ १५ ॥
या विद्या ये तथा मन्त्रा एतदक्षरवर्जिताः ।
न सिद्धिर्विद्यते तासु तेषु राम सुनिश्चितम् ॥ १६ ॥
ततो वृन्दारण्य[6]भूमावौषधिश्चाहमव्यया ।
भूत्वा तस्या वशोपायं करोम्येकमना बल ॥ १७ ॥
चिन्तामणिमणिमालां कोट्यम्बरमणिप्रभाम् ।
गले बध्वा चिन्तयामि तां कामवशगश्चिरम् ॥ १८ ॥
नानौषधिप्रयोगेण विधाय तिलकादिकम् ।
[7]तामाकर्षितुमिच्छामि सर्वाकर्षणकारिणीम् ॥ १९ ॥
ततः सा राधिका सिद्धयोगिनीगणवन्दिता ।
अदृश्यरूपतां याता मम मस्तकभूषणम् ॥ २० ॥
मयूरपिच्छं समणिं सञ्जहारातिलीलया ।
पुनः पूर्वकृतां मालाभालङ्कराणि वाससी ॥ २१ ॥
मह्यं दत्वा गता दूरं मनो मे कीदृशं कृतम् ।
ततोऽहमस्या वश्यार्थं मन्त्रं भुवनमोहनम् ॥ २२ ॥
ध्यात्वा तद्रूपममलं जजाप परमाद्भुतम् ।
[8]मनुना तेन जप्तेन कामः प्रादुर्बभूव [9]यः ॥ २३ ॥

---

१. मान्यदः—क. ख. । २. यत्पूर्वं—क. ख. । ३. 'हे प्रविष्टं''''तत्प्रकृ' (श्लो. १४) नास्ति—ङ. । ४. मेकं तां—क. । ५. एवमेवा—क. ख. । ६. भूमौ चौषधि—क. ख. । ७. तामाकर्षयितु—क. ख. । ८. मन्मना—ङ. । ९. ह—ङ. ।

तेनैव मोहिता देवी मम वश्याऽभवत् क्षणात् ।
स कामस्तां [1]संनिरीक्ष्य स्वयमेव विमुग्धवान् ॥ २४ ॥
ततो जहास सा बाला [2]कोटिचन्द्रनिभानना ।
मन्त्रस्य शक्त्या सम्मुग्धा सुस्निग्धा साऽधिकं मयि ॥ २५ ॥
असौ सम्मोहनो मन्त्रः साक्षात्कामकलात्मकः ।
[3]महाप्रकृतिरूपोऽपि स्वयं च परमः पुमान् ॥ २६ ॥
अस्मात् प्रकृतयः सर्वाः सम्भविष्यन्ति चापराः ।
अस्माद् वै पुरुषाः सर्वे त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २७ ॥
ब्रह्माण्डं कोटिकोटीषु मन्त्रोऽयं सर्वमोहनः ।
मोहनस्तम्भनाकर्षमारणोच्चाटनानि च ।
भवन्त्यत्र न सन्देहस्त्वहमेव स्वयं मनुः ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे [4]श्रीकृष्णराधारहस्ये
सम्मोहन[5]मनुचिन्तामणिमहौषधिरूपाविर्भावः
[नाम] [6]त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥



१. निरीक्ष्यस्म–क. ख. । २. कोटिकामनिभा–ङ. । ३. महात्मप्रकृति–क. ख. । ४. 'श्री'नास्ति–ङ. । ५. मनुमौषधिरूपाविर्भावः–क. ख. । ६. 'त्रयोदशोऽध्यायः'नास्ति–ङ. ।

चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

वशगापि महादेवी यदि नातिप्रसीदति ।
ततस्तां स्तोतुमारब्धवानहं प्रेमगद्गदः ॥ १ ॥
शब्दब्रह्ममयीं वंशीं मूर्छयन् स्वरसम्पदा ।
ततो व्यक्तोऽव्यक्तरूपो नादः सप्तविधोऽभवत् ॥ २ ॥
निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यम[1]धैवताः ।
पञ्चमश्चेति तैर्नादैः रागाः समभवंश्च षट् ॥ ३ ॥
एकैकस्यानुगामिन्यो रागिन्यः षट् षडुज्ज्वलाः ।
तथा तालगणाश्चैव त्रयो ग्रामास्तथैव च ॥ ४ ॥
[2]ताराद्याश्च त्रयश्चैव मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः ।
ततो भगवती देवी गायत्री त्रिपदाऽभवत् ॥ ५ ॥
ततोऽपि [3]वेदाश्चत्वारः श्रुतयश्च ततः पराः ।
ततोऽपि देहजैर्देवैः सस्त्रीकैः सूक्ष्ममूर्तिभिः ॥ ६ ॥
स्वरै रागै रागिनीभिस्तालैर्ग्रामैस्तथैव च ।
ताराद्यैर्नादभेदैश्च मूर्च्छनाभिः समन्ततः ॥ ७ ॥
गायत्र्या [4]च महादेव्या [5]वेदैश्च श्रुतिभिः सह ।
प्रसादनार्थं तस्या वै स्वयमेवाहमव्ययः ॥ ८ ॥
सर्वदेवस्तुतः सर्वदेवताहृदयेश्वरः ।
[6]अस्तु वै(वत्)श्लक्ष(क्ष्ण)या वाचाभविष्यद् गुणनामभिः[7] ॥९॥
[8]ॐअनादिरूपे चिच्छक्तिज्ञानानन्दप्रदायिनो(नि) ।
आदिदेवार्चिते नित्ये राधिके शरणं भव ॥ १० ॥
इन्दुकोटिसमानास्ये इन्दीवरदलेक्षणे ।
ईश्वरीशानजननि [9]राधिके त्वं भजस्व माम् ॥ ११ ॥

---

१. दैवताः—क. ख. । २. तालाद्याश्च—ङ. । ३. देवाश्च—क. ख. । ४. [ ]श्च—क. ख. । ५. देवैश्च—क. ख. । ६. आन्तरं सूक्ष्मया वाचा—ङ. । ७. इतः परं 'अहम् उवाच'इत्यनावश्यकः प्रतीयते—क. ख. ङ. । ८. अनादिरूप-विभक्ति—क. ख. । ९. राधिका—ङ. ।

उज्ज्वले उज्ज्वलरसप्रिये परमदुर्लभे ।
ऊर्ध्वाऽधोव्यापिनीचारु[1]तनुश्रीजितमन्मथे ॥ १२ ॥
[2]ऋतुषट्कसुखामोदयुक्ताङ्गेऽनङ्गवर्धिनि ।
[3]ऋक्षमालाधरे धीरे राधिके त्वं भजस्व माम् ॥ १३ ॥
एकानेकस्वरूपाऽसि नित्यानन्दस्वरूपिणी ।
[4]ॐकारानन्दहृदये राधे किं मामुपेक्षसे ॥ १४ ॥
ओमित्येकाक्षराकारे क्षराक्षरपरापरे ।
ॐकारध्वनिसम्भूताऽऽनन्दरूपे निरामये ॥ १५ ॥
बिन्दुरूपे निरालम्बे परब्रह्मस्वरूपिणि ।
अभिनिष्ठान(अप्यधिष्ठान)रूपायै शब्दातीते नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥
कमले कालिके कान्ते [5]कुटिलकुन्तले वरे ।
[6]कामप्रदे कामिनि त्वं कामुकं किङ्करं कुरु ॥ १७ ॥
खरांशुकोटिसङ्काशे खञ्जरीटविलोचने ।
[7]खले (तु ?) रमखलीकारे खेलस्व [8]खगवाहने ॥ १८ ॥
[9]गलन्मदगजग्रामगमने गणनायिके ।
गगनाब्जगते गीते गच्छ मां गरुण्डध्वजम् ॥ १९ ॥
धर्मबिन्दुशोभितास्ये घूर्णमानाक्षिघूर्घुरे ।
घनसारेण घटिते घ्राणाग्रगजमौक्तिके ॥ २० ॥
चारुचन्दन[10]चर्चाङ्गे चराचरविचारिणि ।
चकोराक्षि चञ्चलाभे मां किं चकर्थचञ्चलम् ॥ २१ ॥
छन्दांसि छद्ममानुष्या छटया छादितानि ते ।
छदप्रिये छोटिकया [11]छविशान्तिनिभा भव ॥ २२ ॥
जगज्जननि जन्तूनां [12]जीवातो जन्मवर्जिते ।
[13]जलजास्ये जलेशानि मां जानीहि जनप्रिये ॥ २३ ॥
झटिति ज्ञानविदिते झञ्झाझर्झररूपिणि ।
झिण्टीकुसुमसंशोभा पराभाविनि मामव ॥ २४ ॥

---

१. तरुःश्री–क. ख. । २. ऋतुषट्के–ङ. । ३. रूक्षमाला–क. ख. । ४. एकारानन्द–क. ख. । ५. कले कुटिलकुण्डले–ङ. । ६. 'कप्रदे कामिनी त्वं च कामुकाङ्कङ्करं कुरु'–क. ख. । ७. खलोऽनन्तमखलीकारे–ङ. । ८. भगवाहने–ङ. । ९. गदन्मद–क. ख. । १०. चार्वङ्गे–ङ. । ११. छविशालिनिभा–ङ. । १२. 'जीवाते' इति पाठान्तरम्–क. ख. ङ. । १३. जन्मना च जले–क. ख. ।

टं टं टमिति [1]टङ्कारि घण्टोल्लासितमानसे ।
[2]टलस्थल[ा]धारस्टाले(स्थाने) त्राहि मां शरणागतम् ॥ २५ ॥
ठद्वयानन्दसङ्काशे [3]चकोरप्रियकारिणि ।
[4]ठकाराक्षररूपे त्वं [5]त्राहि मां काममोहितम् ॥ २६ ॥
[6]डिं डिं डिं डिमडाङ्कारि [7]वेणुवादविनोदिनि ।
विनोदय डकाराख्ये स्मरेण चिरदुःखितम् ॥ २७ ॥
[8]ढक्काराद्यानन्दिचित्ते ढुण्ढिनाथार्चिताङ्घ्रिके ।
[9]ढकारवर्णरूपे त्वमात्मानमुपढौकय ॥ २८ ॥
[10]तरुणी तरुणानन्द तापिनी [11]तनुरूपतः ।
तपस्विनां तपोगम्ये तत्त्वं तारिणि तारय ॥ २९ ॥
स्थिरानन्दे स्थिरप्रज्ञे स्थिरप्रेमरसप्रदे ।
स्थिर[12]सर्वेश्वरूपे त्वमस्थिरं मां स्थिरं कुरु ॥ ३० ॥
देवाधिदेवतामौलौ दीव्यन्ती दिविदीपिका ।
दयामयि दकाराख्ये दूनं नूनं दयस्व माम् ॥ ३१ ॥
धन्ये धर्मप्रिये धीरे धर्माधर्मविवर्जिते ।
धराधरधरोद्धारधुरीणे धर माऽधुना ॥ ३२ ॥
नित्यानित्ये निरालम्बे नित्यानन्द[13]लतोन्नते ।
नमस्ते नर्तने नीलनयने नयशालिनि ॥ ३३ ॥
परब्रह्मस्वरूपाऽसि परमानन्दवन्दिते ।
पाथोजपुलिनप्रीते पुनीहि पथिकं प्रिये ॥ ३४ ॥
फुल्लाम्भोजातवदने फलरूपिणि फेत्कृते ।
फलत्कपालफलके फलिनं त्वं कुरुष्व माम् ॥ ३५ ॥
ब्रह्मज्योतिर्व्रते वाले [14]वरुणालयवासिनि ।
[15]वरे चरय मां बीरे वचनामृतवर्षिणि ॥ ३६ ॥

---

१. झङ्कारि—क. ख. । २. 'टलस्थल''''गतम्' इति पङ्क्तिरेषा नास्ति-क. ख. । ३. ठकुरप्रिय—ङ. । ४. चकारा—क. ख. । ५. पाहि—क. ख. । ६. डिं डिमं तदाकारि—क. ख. । ७. वेणुवाद्यवि-क. ख. । ८. ढकारा व—क. ख. । ९. ढक्कारवं तु रूपत्व—क. ख. । १०. तरणी तरणानन्दं—क. ख. । ११. तरुरूपतः क. ख. । १२. सर्वस्वरूपे—क. ख. । १३. नते जने—क. ख. । १४. चरणा-क. ख. । १५. वरं वरय—ङ. ।

भावानन्दे भवानन्दे भावाभावविवर्जिते ।
भवभाविनि भावानां भवनं [1]भूतिभाविनि ॥ ३७ ॥
मन्दमन्दस्मिते मुग्धे मधुराक्षरमोदिते ।
माद्यन्ती मकरन्देन मालामयि मतामयि ॥ ३८ ॥
यज्ञालये यज्ञरूपा योगिनां योगमूर्तिका ।
यतिनां यत्तसो(पो) लभ्या यायामि शरणं हि ताम् ॥ ३९ ॥
रम्ये रक्तेक्षणे राधे राधिके रमणीरमे ।
रामे मनोरमे रत्नमाले रममया समम् ॥ ४० ॥
रेफस्तु सर्वमन्त्राणामाधारः कथ्यते बुधैः ।
[2]तस्याधानस्वरूपेयं तेन [3]राधेति साध्यते ॥ ४१ ॥
रेफस्तु वह्निराख्यातो यज्ञे वह्निः प्रतिष्ठिताः ।
देवाः प्रतिष्ठिता यज्ञे ततो वर्षं तदौदनम् ॥ ४२ ॥
[4]ततस्तु सर्वभूतानि नानावर्णाकृतीनि च ।
सर्वं तदाधीयते [5]यत्तेन राधेति कथ्यते ॥ ४३ ॥
नानाविधै रसैर्भावैर्जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
[6]स्रष्टुं प्राप्ता मया त्वं हि राधिका कार्यसाधिका ॥ ४४ ॥
मम देहस्थितैः सर्वैर्देवैर्ब्रह्मपुरोगमैः ।
आराधिता यतस्तस्माद् राधेति [7]परिकीर्तिते ॥ ४५ ॥
लक्ष्मी लक्षलक्षिते त्वं लक्ष्यलक्षणलक्षगे ।
ललामललिते लास्य लीलालापिनि मामव ॥ ४६ ॥
वासुदेवार्चिते विद्ये वेदवादबहिर्गते ।
वरदे वसनावीते वलन्ती बलिनं कुरु ॥ ४७ ॥
शब्दातीते शब्दरूपे शान्ते सर्वादिरूपिणि ।
शाश्वती त्वं शक्तिकले श्रय मां शक्तिशालिनम् ॥ ४८ ॥
समस्तस्य प्रिये साध्वि सीमन्तोपरि संस्थिते ।
सकले सकलेशानि [8]नित्यं मे स्याः सहायिनि ॥ ४९ ॥
षट्पदी षटपदी चञ्चद् वनमालाविभूषिते ।
षड्ऋतूत्सवसम्पन्ने षण्मुखेशे दयस्व माम् ॥ ५० ॥

---

१. भूति—ङ. । २. तस्मान्नैव स्व—क. ख. । ३. बाध्येति—क. ख. । ४. तदस्तु—क. ख. । ५. ये तेन—क. ख. । ६. अष्टौ प्राप्ता निधिस्त्वं—क. ख. । ७. परिकीर्त्यते—ङ. । ८. सत्यं—क. ख. ।

षट्चक्रैकनिवासि[नि] षड्दर्शनविदर्शिते ।
षट्कर्मणां कर्मषट्कविधात्री षडरिपुञ्जया ॥ ५१ ॥
हंसरूपे हेमगर्भे हंसगामिनि हारिणि ।
[1]हंसकारकृतप्राणे कथं हरसि मां क्षणात् ॥ ५२ ॥
क्षमारूपे क्षमाशीले क्षीणमध्ये क्षणान्विते ।
अक्षमालाधरे देवि सिद्धविद्ये नमोऽस्तु ते ॥ ५३ ॥
एवं स्तुता मया देवी कृष्णेन परमात्मना ।
प्रससाद रसमयी योगिनामपि दुर्लभा ॥ ५४ ॥
राधां निरीक्ष्य [2]सप्रेमदृष्ट्या सपदि मामथ ।
समाश्वा[3]स्यैकमनसा बद्धयाऽभीतिमुद्रया ॥ ५५ ॥
[4]वामेन पाणिपद्मेन पद्मयुक्तेन शोभना ।
आत्मानं दातुकामापि किञ्चिन्नोवाच लज्जया ॥ ५६ ॥
ततोऽहं च जगत्स्वामी तस्या रूपेण मोहितः ।
निक्षिप्य मुरलीं भूमौ तामालिङ्गितुमुत्तमाम् ॥ ५७ ॥
एतस्मिन्नेव समये तद्देहप्रतिबिम्बतः ।
चतुर्भुजा कापि शक्तिस्तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ ५८ ॥
इमामेकाकिनीं प्राप्य [5]बलात्त्वं रन्तुमिच्छसि ।
साधि [6]पाशाङ्कुशधरा वराभयकराऽपरा ॥ ५९ ॥
रक्तवर्णा त्रिनेत्रा च रक्ताम्बरसमुज्ज्वला ।
रक्ताभरणमालाढ्या समुत्तुङ्गस्तनद्वया ॥ ६० ॥
[7]रत्ननूपुरसम्पद्भ्यां पद्भ्यां सम्पाद्य वेदिकाम् ।
नानारत्नमयीं दिव्यां ज्वलज्ज्वलनसन्निभाम् ॥ ६१ ॥
जपन्तीं मोहनं मन्त्रं [8]क्लींकारं भुक्तिमुक्तिदम् ।
आकर्षयन्ती नितरामङ्कुशेन मनो मम ॥ ६२ ॥
[9]बन्धयन्ती प्रेमदाम्ना हसन्ती [10]वामपाणिना ।
मा भयं कुरु सर्वेश प्राप्स्यसीमां वराङ्गनाम् ॥ ६३ ॥

---

१. ॐकार–क. ख. । २. सच्छेम–ङ. । ३. स्यैव मनसा–ङ. । ४. 'वामेन लज्जया' इति पङ्क्तिद्वयं नास्ति–क. ख. । ५. बाला त्वं वर्गमिच्छसि–क. ख. । ६. या साङ्कुशधरा–ख. । ७. लसन्नूपुर–क. ख. । ८. हुंकारं–क.; झंकारं–ख. । ९. बद्धयन्ती–ङ. । १०. राम-क. ख. ।

वन्दितां सकलैर्देवैः सर्वशक्तिशिखामणिम् ।
वरं दास्यामि ते कृष्ण प्रसन्नवदनो भव ॥ ६४ ॥
प्रकृतिस्त्वं [1]पुमांश्च त्वं त्वमहं [2]त्वमियं विभो ।
आत्मारामोऽस्मि भगवान् विमोहोऽयं कुतस्त्वयि ॥ ६५ ॥
इत्येवं च प्रजल्पन्ती कल्पयन्ती सुकल्पनाम् ।
अ[ा[विरास महादेवी सर्वशक्तिशिरोमणिः ॥ ६६ ॥

अहम् (श्रीकृष्ण) उवाच

का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कुतो जाताऽसि सुन्दरि ।
किमर्थमिह वाऽऽयाता कथ्यतां मा विलम्ब्यताम् ॥ ६७ ॥

भुवनेश्वरी उवाच

अहमस्या महादेव्या द्वितीया मूर्तिरुत्तमा ।
महामायाऽस्मि देवेश जगन्मोहनरूपिणी ॥ ६८ ॥
तव [3]वक्त्रोदितां श्रुत्वा स्तुतिं श्रुतिरसायनीम् ।
इहाऽऽयातास्मि वरद वरं दातुं समुद्यता ।
किमिच्छसि [4]जगत्स्वामिंस्तुभ्यं दास्यामि [5]तद्विभो ॥६९॥

अहम् (श्रीकृष्ण) उवाच

प्रसन्ना यदि मे देवी वरमेकं प्रयच्छतु ।
असौ भवतु सुप्रीता गौराङ्गी विश्वमोहिनी ॥ ७० ॥
[6]तव प्रसादाद् यद्येषा वश्या मम भवत्युत ।
ममापि पूज्या भवती भविता भुवनेश्वरी ॥ ७१ ॥

भुवनेश्वरी उवाच

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् प्रधानपुरुषेश्वर ।
भाविता तव वश्येयं राधा त्रैलोक्यसुन्दरी ॥ ७२ ॥
यदा त्वया [7]वर्णमालास्तुतिर्वशकरी कृता ।
[8]तदैवेयं महादेवी स्वयं तव वशं गता ॥ ७३ ॥

---

१. पुमांस्त्वं वै त्वं—क. ख. । २. त्वमिमं—क. ख. । ३. वक्रोदितां—ङ. । ४. जगत्स्वामिन् स्तुत्यं दा—क. ख. । ५. यद्विभो—क. ख. । ६. 'तव····भुवनेश्वरी' इति पक्तिद्वयं नास्ति—क.ख. । ७. रन्तुमानास्तुति—ङ. । ८. यदैवेयं—क. ख. ।

संनिरीक्ष्य भवद्रूपं त्रैलोक्यातिमनोहरम् ।
आकर्ण्य वंशीनिनदं का स्त्री न स्याद्विमोहिता ॥ ७४ ॥
त्वया प्रोक्तमिदं स्तोत्रं राधामोहनमोहनम् ।
यः पठेत्तस्य तुष्टाऽसौ प्रदास्यति मनोगतम् ॥ ७५ ॥
वयं तद्वशगा नित्यं विश्वं च सचराचरम् ।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभाः सदा ॥ ७६ ॥
[1]ध्यात्वा देवीं जगद्योनिमादिभूतां सनातनीम् ।
राधां त्रैलोक्यविजयां [2]जयां सर्वसुखप्रदाम् ॥ ७७ ॥
जपन्नष्टाक्षरं मन्त्रं [3]पठन् स्तोत्रं समाहितः ।
[4]प्रणमेत् परया भक्त्या करस्थास्तस्य सिद्धयः ॥ ७८ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाद्या अणिमालघिमादयः ।
अथ [5]तस्या महामन्त्रं कथयामि शृणुष्व तम् ॥ ७९ ॥
[6]क्लीवं च वह्निसंयुक्तमनन्तं तदनन्तरम् ।
नादविन्दुकलायुक्तं [7]राधिकायै ततः परम् ॥ ८० ॥
[8]हृदयान्तो महादेव्या [9]मनुरष्टाक्षरः परः ।
अस्य स्मरणमात्रेण किन्न सिध्यति साधनम् ॥ ८१ ॥
इदं स्तोत्रमसौ मन्त्रो यस्य वाचि प्रवर्तते ।
त्रैलोक्यसुन्दरी राधा चित्ते यस्य सदा [10]स्थिता ॥ ८२ ॥
तस्य [11]वाक्सिद्धिरतुला धनधान्यादिसम्पदः ।
भविष्यन्ति न सन्देहो भुवनेशी [12]वचो यथा ॥ ८३ ॥

॥ श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधावशीकारे भुवनेश्युत्पत्तिर्भगवन्मुखविनिर्गता [13]वर्णमालास्तुति[14]श्चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

---

१. 'ध्यात्वा'इत्यस्य स्थाने 'त्वां'—क. ख. । २. पथां—क. ख. । ३. पठेत-ङ. । ४. प्रणमेतत परया—क. ख. । ५. तस्यामहं मन्त्रं—क. ख. । ६. 'क्लीवं च' इत्यस्य स्थाने 'ङकारं'—क. ख. । ७. राधिकार्ण ततः—ङ. । ८. हृदयान्ता—क. ख. । ९. मनुरष्टाकरः—क. ख. । १०. स्थिरा—ङ. । ११. 'वाक्'इत्यस्य स्थाने 'वा'—ङ. । १२. वचनो यथा—क. ख. । १३. वस्तुमाला—ङ. । १४. 'चतुर्दशोऽध्यायः'नास्ति—ङ. ।

पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीबलराम उवाच

स्तुयन्ते च महादेव्यास्त्वयि लब्धवरे सति ।
किं कृतं भुवनेश्वर्या त्वया वा किं तदुच्यताम् ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

ततोऽहं प्रकृतिं नित्यामुवाच भुवनेश्वरीम् ।
देवि यस्ते वरो दत्तस्तथ्यं तं कुरु सुव्रते ।
अन्यथा त्वादृशीनां च वचनं कीदृशं भवेत् ॥ २ ॥

ब्राह्मण उवाच

ततः कृष्णपरीक्षार्थं मनसा साऽप्यचिन्तयत् ।
समस्तभुवनेशानी सदा त्रैलोक्यवन्दिता ॥ ३ ॥
अयं विश्वेश्वरो देवो भवेद्वा न भवेदथ ।
कथमस्मै वरो दत्तः किमर्थं विजने वने ॥ ४ ॥
इत्याशङ्क्य पुनः साध्वी मेघगम्भीरया गिरा ।
ईषद्धसितसुस्निग्धा जगाद भुवनेश्वरी ॥ ५ ॥

भुवनेश्वरी उवाच

तया देव्यानन्दमय्या विहर्तुं यदि [1]ते मनः ।
भगवञ्छृणु भवद्वाक्यं नानृतं कथयाम्यहम् ॥ ६ ॥
नानाविभवसंयुक्तान् [2]गृहानतिमनोहरान् ।
विचित्ररत्नरचितान् [3]सर्वर्तुं सुखदान् कुरु ॥ ७ ॥
[4]रत्नभित्त्यावृतां वाटीं दिव्याट्टालक[5]गोपुराम् ।
राजतारकूटकूटकोष्ठां [6]स्वर्णैरलङ्कृताम् ॥ ८ ॥
रत्नकूटैर्महाहर्म्यैर्महामरकतस्थलैः ।
शोभितां [7]सकलैश्वर्ययुक्तां मुक्ता [8]परिष्कृताम् ॥ ९ ॥

---

१. मे—ङ. । २. सुप्रलीति—ङ. । ३. सर्वसुखप्रदान्—क. ख. । ४. रत्न-भीत्या कृतां—क. ख. । ५. गोकुलाम्—क. ख. । ६. स्वर्णेऽलङ्कृताम्—क. ख. । ७. सकलैश्वर्यैर्युक्तां—क. ख. । ८. विनिष्कृताम्—क. ख. ।

असहायं जनं मत्वा न नारी वशगा भवेत् ।
[१]सहायानात्मनस्तुल्यान् [२]नरः प्रेमैकभाजनान् ॥ १० ॥
वाहनानि विचित्राणि शय्याभोजनभाजनम् ।
नानावर्णानि वस्त्राणि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ११ ॥
उपार्जय सुरङ्गः किं वरस्त्रीं [३]रन्तुमर्हसि ।
वसुमान् [४]पशुमान् श्रीमान् गुणवान् कामिनीप्रियः ॥ १२ ॥
तत्रैव वसुमान् श्रेष्ठः श्रीमद्गुणवतोरपि ।
दृष्टस्त्वं गुणवान् कृष्ण वंशीवाद्यविशारदः ॥ १३ ॥
रूपवान् श्यामदेहोऽसि दृष्टमात्रविमोहनः ।
गुणे वाप्यथवा रूपे न [५]चास्ति [६]सदृशस्तव ॥ १४ ॥
गुणिनं रूपिणं दृष्ट्वा त्वामहं मोहिताऽभवम् ।
[७]किं तु मे परया शक्त्या कुरु वित्तादिसञ्चयम् ॥ १५ ॥
यदीच्छस्यनया [८]रन्तुं त्रैलोक्याऽकृष्टरूपया ।
यदा त्वं सकलैश्वर्ययुक्तः समसहायवान् ।
तदैवेयं महादेवी तव वश्या भविष्यति ॥ १६ ॥

अहम् (श्रीकृष्ण) उवाच

यदुच्यते महेशानि [९]करिष्यामि न संशयः ।
भवत्या वाक्सुधासारैः [१०]सारैस्तृप्तोऽस्मि नान्यथा ॥ १७ ॥
इत्युक्त्वा(क्त्वा ? क्ता) भुवनेशानी मत्पुरो निश्चला स्थिता ।
ततोऽहं प्रहसद्वक्त्रो बलराम जगत्पते ॥ १८ ॥
सस्मार पूर्वजान् गोपान् श्रीदामप्रभृतीन् हृदा ।
ततः प्रादुर्बभूवुस्ते षडङ्गा दिव्यतेजसः ॥ १९ ॥
दक्षिणांशाद् ब्राह्मणा मे सञ्जाता ब्रह्मवादिनः ।
वामांशाच्च प्रशंसाढ्या गावः शतसहस्रशः ॥ २० ॥
शृणु साधो महाश्चर्यं गोलोको [११]रचितस्तथा ।
लीलया [१२]सर्वधर्माश्च मयैव परमेष्ठिना ॥ २१ ॥

---

१. सहायात्म—क. ख. । २. नदुः प्रे—क. ख. । ३. वर्णमर्हसि—क. ख. । ४. 'पशुमान्' नास्ति—क. ख. । ५. वास्ति—क. ख. । ६. सदृश एव—क. ख. । ७. किं तत्त्वं परया—ङ. । ८. वर्णं—क. ख. । ९. करिष्याम्योऽथ किं सती—ङ. १०. साकैस्तु—ङ. । ११. रचितो यथा—ङ. । १२. सर्वधर्मज्ञ—क. ख. ।

ये ब्राह्मणाः समुद्भूता देहान्मम महात्मनः ।
ते वै सामर्ग्यजुर्वेदान् पठित्वा मङ्गलाक्षरैः ॥ २२ ॥
वास्तुयागं ततः कृत्वा स्थाने स्थाने [1]समुद्गराः ।
गृहारम्भेऽनर्घ्यमर्घ्यं दत्त्वा वृन्दावनक्षितौ ॥ २३ ॥
छन्दोभिर्विविधैर्वेदपाठं [2]विदधुरुत्तमाः ।
ये [3]सर्वे मम देवस्य देहाज्जाता महौजसः ॥ २४ ॥
तेषां देहेभ्य उत्पन्ना गोपाः शतसहस्रशः ।
[4]ते वै सम्मुखमागत्य प्रोचुर्मां पुरुषोत्तमम् ॥ २५ ॥
वयं [5]किं किं करिष्यामस्तदाज्ञापय भो प्रभो ।
ततस्तान् पुरुषान् दिव्यगृहादिरचनेष्वहम् ॥ २६ ॥
देवान् नियोजयामास सर्वकर्मविशारदान् ।
[6]ये गावो मम देहाद् वै [7]जातास्ते सम्मुखस्थिताः ॥ २७ ॥
उचुः किं वा करिष्याम आज्ञापय महामते ।
[8]ततोऽहं कृपयाविष्टस्तान् [9]गाः प्रति जगाद ह ॥ २८ ॥
रसैर्नानाविधैर्द्रव्यै[10]र्भोगैः पूरय मे [11]पुरम् ।
[12]विश्वकर्माद्या एते वै रचयिष्यन्ति वाटिकाम् ॥ २९ ॥
तानाप्यायध्वमत्य[13]न्तबलवन्तो[14]ऽतिहर्षिताः ।
यथा भवेयुर्मल्लोका गतशोकादि[15]कल्मषाः ॥ ३० ॥
तथा चरध्वं [16]भो गावो नित्यशुद्धा ममाज्ञया ।
कल्पवृक्षाः पूर्वजाता ये ये तानब्रुवं ततः ॥ ३१ ॥
स्वर्णै रत्नैर्मरकतैर्मणिभि[17]र्वज्रविद्रुमैः ।
वैडूर्यैः पद्मरागैश्च मञ्जिष्ठाभिः समन्ततः ॥ ३२ ॥

---

१. समुद्भवा—ङ. । २. विदधतुरुत्तमाः—क. ख. । ३. पूर्वे—ङ. । ४. तेन सम्मु—क. ख. । ५. किञ्चित् करि—क. ख. । ६. यो—क. ख. । ७. जातास्ताः सम्मुखे स्थिताः—ख. । ८. ततोऽतिकृपया—क. ख. । ९. गोपान् प्रति—क. ख. । १०. भागैः—ङ. । ११. पुनः—ङ. । १२. विश्वकर्माग—ङ. । १३. न्तं—क. ख. । १४. ऽभिह—ङ. । १५. किल्विषाः—क. ङ. । १६. नो—क. । १७. र्व्रजवि—ङ. ।

मौक्तिकै रजतैर्नित्यं पूरयध्वं वनं मम ।
ततः [1]स्रवत्सुरत्नानि कल्पावनिरुहेष्वथ ॥ ३३ ॥
ममाज्ञयाऽचिरं राम [2]सर्वेशितुरनामयः ।
अगदं सादरं देवान् [3]निजदेहसमुद्भवान् ॥ ३४ ॥
विश्वकर्माण एतानि रत्नानि विविधान्यहो ।
भासयन्तो दशदिशो विदधीत विचित्रिताम् ॥ ३५ ॥
[4]पुरीमपूर्वां सिद्धेशाः [5]सर्वसिद्धनमस्कृताम् ।
रत्नछत्राण्यनेकानि चारूणि चामराणि च ॥ ३६ ॥
नाना[6]विधा वेदिकाश्च गृहान् [7]रत्नविनिर्मितान् ।
रत्नभित्तीरनेकाश्च रथ्याश्च (व ? त्व)रमेव च ॥ ३७ ॥
अट्टालानि गोपुराणि विटङ्कानि सहस्रशः ।
उद्यानानि च रम्याणि [8]धेनूनां निलयान्यथ ॥ ३८ ॥
वृषभाणां गृहाण्येव नानामणिकृतान्यहो ।
वत्सवत्सतरीणां च सद्मानि [9]विविधानि च ॥ ३९ ॥
रत्नैर्निर्मितपात्राणि भाण्डानि विविधान्यहो ।
रत्नकुम्भसहस्राणि [10]भृङ्गारान् रत्ननिर्मितान् ॥ ४० ॥
नानारूपैर्विचित्राणि वाद्यभाण्डानि कोटिशः ।
[11]सोपानानि च रम्याणि नानारत्नमयान्यथ ॥ ४१ ॥
ध्वजाश्चन्द्रातपव्यूहं पताकाश्च सहस्रशः ।
अग्निशौचानि वासांसि सुवर्णरचितानि च ॥ ४२ ॥
एवमादीनि सर्वाणि कुरुताद्य ममाज्ञया ।
इत्थं ममाज्ञया तेषु कर्त्तुं कर्मोद्यतेषु च ॥ ४३ ॥
इतस्ततो विभ्रमत्सु [12]प्रणयाविष्ट[13]कृत्स्वथ ।
क्षणमीक्षणपाथोजे निमील्य स्थितवानहम् ॥ ४४ ॥

---

१. श्रीवत्सरत्नानि—ङ. । २. सर्वेप्सितु—क. ख. । ३. नित्यदेह—ङ. । ४. पुरीमपूर्णां—क. । ५. सर्वसिद्धिन—क. ख. । ६. वेदिवे—क.; वेदीवे—ख. । ७. तत्र वि—क. ख. । ८. वै नृणां नि—ङ. । ९. विविधान्यथा—ङ. । १०. भृङ्गारास्तत्र निर्मिताः—ख. । ११. गोयानानि च यानानि नाना—ङ. । १२. प्रलयारिष्ट—ङ. । १३. क्रित्सुखो—ङ.; अत्र 'कृत्सुखां'इत्यपि पाठान्तरम् ।

ततो ममेच्छया काचिन्नगरी [1]सा गरीयसी ।
स्वान्ताद् बहिर्ययौ सान्द्रमानन्दकन्दकन्दली ॥ ४५ ॥
गोलोकाख्या धृताऽभिख्या चित्रधातुविनिर्मिता ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशा चन्द्रकोटिसुशीतला ॥ ४६ ॥
ततस्तान् भगवान् [2]सोऽहं ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ।
निजदेहसमुद्भूतास्तस्यां पुर्यां न्यवासयम् ॥ ४७ ॥
ततो धेनूः समानीय वत्सांश्च वृषभानथ ।
ततो वत्सतरीश्चापि प्रतिगेहं महाभुज ॥ ४८ ॥
स्थापयामास [3]विश्वात्मा पुण्डरीकदलेक्षणः ।
ततोऽहं भगवानादौ ब्राह्मणान् ब्रह्मवर्चसः ॥ ४९ ॥
[4]अर्चयामास गास्तद्वद् वृषान् दृष्टिमनोहरान् ।
सन्तुष्टा ब्राह्मणाः प्रोचुः कृताञ्जलिपुटास्ततः ॥ ५० ॥
मोहिता मायया मह्यमाशीर्वाक्यपुरस्सरम् ।
[5]तत्तद् भवतु ते नाथ यद्यत् ते मनसेप्सितम् ॥ ५१ ॥
[6]नानृतं ममेदं राम वचनाद् [7]भवतां मम ।
भवन्तु तरवः [8]स्वच्छनित्यपुष्पफलोत्सवाः ॥ ५२ ॥
नानारूपधरा नित्याः स्थिरच्छाया निरामयाः ।
एकैकस्य पञ्चशाखाः पल्लवाढ्याः सहस्रशः ॥ ५३ ॥
शाखाश्चतस्रो येषां वै चतुर्दिक्षु समागताः ।
शाखैका च [9]तदूर्ध्वे वै दिव्यपुष्पफलैर्वृता ॥ ५४ ॥
शाखानामपि सर्वासां गुणाः सन्तु पृथक् पृथक् ।
[10]पूर्वाः शाखाः समाश्रित्य खादिष्यन्ति फलानि ये ॥ ५५ ॥
बाला अपि भविष्यन्ति तरुण्यस्तरुणा इह ।
[11]दक्षशाखाः समाश्रित्य खादिष्यन्ति च ये फलम् ॥ ५६ ॥

---

१. 'सा'नास्ति—ख. । २. 'सोहं'इत्यतः परं 'कृत्वा मूर्त्यन्तरं निजम् । अन्तः प्रविश्य सर्वेषां' इत्यधिकः पाठः 'ङ'संज्ञकमातृकायाम्, स चानावश्यकः प्रतीयते । ३. विद्यान् सा पुण्ड—क. ख. । ४. अर्चयामासस्तद्वर्षान् धेनुर्दृष्टि-क. ख. । ५. तदुद्भवतु—ङ. । ६. तान् कुरुध्वमिदं वाम—ङ. । ७. भवतु मम—ख. । ८. सुष्ठु नित्य—क. ख. । ९. यदूर्ध्वं—क. ख. । १०. पूर्वां शाखां—क. ख. । ११. दक्षशाखां—क. ख. ।

[1]कुमारास्ते भविष्यन्ति [2]बाला वृद्धा अपि द्विज (जाः) ।
उत्तराश्च समाश्रित्य खादिष्यन्ति फलानि ये ॥ ५७ ॥
तरुणास्ते भविष्यन्ति युष्माकं [3]क्वचनाद् द्विजाः ।
पश्चिमाभिमुखाः शाखा आश्रित्य तत्फलानि ये ॥ ५८ ॥
खादिष्यन्ति भविष्यन्ति ते वृद्धा [4]ज्ञानशालिनः ।
[5]ऊर्ध्व [6]शाखाः समाश्रित्य तत्फलानि द्विजोत्तमाः ॥ ५९ ॥
खादिष्यन्ति जना ये [7]वै मत्स्वरूपास्त एव हि ।
भविष्यन्ति [8]महात्मानो नित्यं तुल्यवयोगुणाः ॥ ६० ॥
एवमस्त्विति ते [9]प्रोचुर्वेदहस्ता द्विजातयः ।
कुण्डानि मम तेजोभि[10]र्भवन्तु विविधानि च ॥ ६१ ॥
[11]सरांसि निर्मलान्येव पीयूषसदृशैर्जलैः ।
पूरितानि पद्मरागवैडूर्योपस्कृतानि च ॥ ६२ ॥
[12]येषां जलावगाहेन भवेद्रूपविपर्ययः ।
भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पानैश्च [13]सर्वैर्द्रव्यैः प्रपूरिताः ॥ ६३ ॥
गृहा भवन्तु मे विप्राः नानाविभवसंयुताः ।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणान् सङ्के गवामन्तिकमास्थितः ॥ ६४ ॥
तानहं पूजयामास प्रधानपुरुषेश्वरः ।
ततस्तुष्टा वृषा गावः प्रोचुः [14]संहृष्टमानसाः ॥ ६५ ॥
[15]श्यामरूपः किमर्थं त्वमिह प्राप्तो महेश्वरः ।
वयं [16]तत्त्वं चिकीर्षामः कथ्यतां पुरुषोत्तम ॥ ६६ ॥
तान् प्रत्यध्रुवमिदं [17]विनयावनतस्थितः ।
[18]प्रसवध्वं प्रसूतीस्ता याभिर्मे व्याप्यते वनम् ॥ ६७ ॥
[19]प्रसवध्वं पृथून् गावो नानारूपान् महौजसः ।
गजान् [20]हयान् खरानुष्ट्रांश्च मरींश्च सहस्रशः ॥ ६८ ॥

---

१. कुमारास्तु–क. ख. । २. 'बाला''''भविष्यन्ति' नास्ति–क. ख. । ३. 'क्वचनाद् द्विजाः' नास्ति–ङ. । ४. ज्ञानमानिनः–क. ख. । ५. (उत्तर) पूर्वाः–ङ. । ६. शाखां–क. ख. । ७. ये–ङ. । ८. महाभागा–ङ. । ९. प्रोचुश्चारुहस्ता–ङ. । १०. विविक्त यि–क. ख. । ११. सर्वांगि–ङ. । १२. 'येषां''''भवे' नास्ति–ङ. । १३. चर्व्यैर्द्रव्यै–ङ. । १४. संकृष्ट–क. ख. । १५. श्यामरूपं–क. ख. । १६. तच्च–ङ. । १७. विनयावनताः स्थिताः–ङ. । १८. प्रसरध्वं–ङ. । १९. प्रसरध्वं पशून्–ङ. । २०. 'हयान्' नास्ति –ङ. ।

मृगान् सिंहान् रुरून् व्याघ्रान् भल्लूकान् महिषानपि ।
शरभान् [1]शस्त्रिणश्चैव शूकरांश्च [2]गजादिकान् ॥ ६९ ॥
नानारूपान् पक्षिणश्च सर्वभूत[3]मनोहरान् ।
[4]एवमुक्ता मया गावो [5]जगदुस्तास्तथास्त्विति ॥ ७० ॥
भूयः सम्भूय संसृजुस्त्वरया तान् यथोदितान् ।
इत्थं विनिर्मितां दृष्ट्वा पुरीं च परमसुन्दरीम् ॥ ७१ ॥
ममैव प्रतिमूर्तिः सा ज्योतीरूपा विवेश माम् ।
ततः प्रसन्नवदनो जगाद भुवनेश्वरीम् ॥ ७२ ॥

अहम् (श्रीकृष्ण) उवाच

शृणु देवी परं तत्त्वमात्मनः कथयामि ते ।
अहं सर्वेश्वरो देवः प्रकृतिश्च पुमानहम् ॥ ७३ ॥
आत्मारामोऽस्मि सुभगे धनैः किं मे प्रयोजनम् ।
मत्तो गुणाः समुद्भूता निर्गुणोऽस्मि गुणेन किम् ॥ ७४ ॥
सर्वगः सर्वरूपोऽस्मि रूपैरन्यैर्न मे फलम् ।
यतस्त्वं [6]प्राकृतैर्वाक्यैर्विमोहयसि मां शुभे ॥ ७५ ॥
मायासि [7]विकृतैर्ज्ञाता प्रकृतिस्त्वं भवानघे ।
मत्तोऽन्यत्सकलं शक्त्या निजया मोहयिष्यसि ॥ ७६ ॥
ललितेति च विख्याता भविष्यसि जनैः सुरैः ।
अहं वै प्रकृतिः सूक्ष्मा परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ ७७ ॥
[8]रसस्वरूपिणी देवी सैवाहं राधिका शुभे ।
पश्य मां दिव्यया दृष्ट्या यादृशं यावदात्मकम् ॥ ७८ ॥
आत्मानं च पुनः पश्य किं स्वरूपासि सुन्दरि ।
इत्यु(क्त्वा ? क्ता) भुवनेशानि तत उन्मील्य दर्शने ॥ ७९ ॥
ददर्श विश्वरूपं मां परमात्मानमद्भुतम् ।
ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रसुरासुरनरोरगैः ॥ ८० ॥

---

१. गवांश्चैव—क. ख. । २. 'गजादिकान्' नास्ति—क. ख. । ३. मनोरमान्—ङ. । ४. 'एवमुक्ता""यथोदितान्' इति पङ्क्तिद्वयं नास्ति—ख. । ५. तडिद्धस्तुस्तथा—ङ. । ६. प्रकृतिर्वा—क. ख. । ७. 'विकृतैर्ज्ञाता' इत्यस्य स्थाने 'द्विकृते'—क. ख. । ८. विश्वरूपिणी—ङ. ।

स्थावरैर्जङ्गमैर्जीवैः पूरिता [1]जाण्डकोटिभिः ।
[2]समाश्रिता लोमकूपैर्महता विष्णुना परम् ॥ ८१ ॥
सहस्ररश्मिकोटीभिः प्रतिलोमप्रकाशितम् ।
द्विजराजवाजिराजद्रोमस्तोमविलान्तरम् ॥ ८२ ॥
त(स)प्तकोटिकोटीभिरन्तरीक्षायितं [3]ध्रुवम् ।
ग्रहेशैर्भासितदिशैरभितस्तूपशोभितम् ॥ ८३ ॥
पृथ्व्याऽद्भिस्तेजसा वायुनभो[4]व्योमभिः शोभितम् ।
गन्धस्नेहरूपस्पर्शशब्दैरपि समाश्रितम् ॥ ८४ ॥
किमन्यत्ते वदिष्यामि मयि सर्वं ददर्श सा ।
ततः परमदुर्दर्शं समालोक्य समाकुला ॥ ८५ ॥
निमीलितवती नेत्रे भुवनेशी विमोहिता ।
भूयः स्वयं च नेत्राणि प्रोन्मीलयति निर्भरम् ॥ ८६ ॥
जगज्जनमनोहारी रूपदर्शनलालसा ।
पुनः पुनरुदीक्षन्ती जगौ गद्गदया गिरा ॥ ८७ ॥
अहो रूपमहो रूपमहो रूपं मनोहरम् ।
क्षणेनालोकयाञ्चक्रे प्रकाशेन दिशो दश ॥ ८८ ॥
किं किं दृष्टमद्य किं किमालोकितमहो ! अहो ।
मुग्धाऽस्मि विस्मिता कृष्ण कस्ते जानाति जृम्भितम् ॥८९॥
सा मामैक्षत पुनरपि द्विभुजं वनमालिनम् ।
सुचारुवदनं शान्तं वेणुवादनतत्परम् ॥ ९० ॥
अहं पुनर्जगत्स्वामी देव्या ऊर्ध्वकरद्वयम् ।
आकृष्य निजहस्तोर्ध्वे स्थापयामास मायया ॥ ९१ ॥
अधोहस्तद्वये वंशी गीयमान उवाच ताम् ।
पश्य मां त्वं महादेवि [6]भामिन्यात्मानमप्युत ॥ ९२ ॥
इत्युक्ता संभ्रमाक्रान्तमानसा विस्मयान्विता ।
हसन्ती भुवनेशानी मामैक्षदक्षिकोणतः ॥ ९३ ॥
गोविन्दमद्भुताकारमरविन्ददलेक्षणम् ।
नीलजीभूतसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् ॥ ९४ ॥

---

१. जन्तुकोटिभिः—ङ. । २. 'समा''''परम्'इति पङ्क्तिरेषा नास्ति—क. ख. । ३. मम—क. ख. । ४. द्यामभिः—क. ख. । ६. तामित्यात्मा—ङ. ।

अङ्कुशं [1]दक्षिणोर्ध्वे च पाणौ पाशं च सव्यतः ।
शब्दब्रह्ममयीं वंशीमधः पाण्यम्बुज[2]द्वये ॥ ९५ ॥
दधानं सगुणाधानं निदानं सकलस्य च ।
चतुर्भुजं भ्राजमानं वैजयन्त्या च मालया ॥ ९६ ॥
कण्ठलम्बितया चारुकदम्बकुसुमस्रजा ।
मल्लारनाम्ना रागेण गायन्तमनुरागतः ॥ ९७ ॥
समस्तलोकवन्द्याया राधिकाया गुणान् मुहुः ।
ततः [3]पुनर्निजाकारं वराभयकरं परम् ॥ ९८ ॥
द्विभुजं कीदृशं जातं पश्यन्ती विस्मिताऽभवत् ।
अयं हि द्विभुजः कस्मादजनीह चतुर्भुजः ॥ ९९ ॥
अहं चतुर्भुजा दैवात् क्षणेन द्विभुजाऽभवम् ।
किमत्र [4]कारणं त्वस्ति न [5]ज्ञातुं मयि शक्यते ॥ १०० ॥
किमनेन स्वयं वापि कृतो रूपविपर्ययः ।
ममैवात्रेति सा देवी चिन्तयामास मोहिता ॥ १०१ ॥
पुनरून्मील्य नयने दृष्ट्वा निजभुजद्वयम् ।
मम बाहुद्वयोर्ध्वे च पाशाङ्कुशसमन्वितम् ॥ १०२ ॥
मनसा चिन्तयामास कम्पान्वितकलेवरा ।
असौ विश्वेश्वरो देवो नान्योऽस्ति सदृशोऽमुना ॥ १०३ ॥
अयमेव जगत्स्वामी प्रकृतीनामधीश्वरः ।
अयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा ह्ययं सर्वेश्वरेश्वरः ॥ १०४ ॥
इमं वेदा न जानन्ति [6]देवा अपि कदाचन ।
अनेनैव मया सार्धं जगत्सृष्टं चराचरम् ॥ १०५ ॥
अस्मै बलिं सदा देवा यच्छन्ति मम मायया ।
अस्मात्परं नास्ति किञ्चित् तस्माद् ब्रह्म परो ह्यसौ ॥१०६॥
सदाशिवमहाविष्णुविष्णुब्रह्मशिवादयः ।
अस्यांशांशा भविष्यन्ति [7]चास्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१०७॥

१. दक्षिणार्द्धे—क. ख. । २. द्वयोः—क. ख. । ३. पूर्णनिजाकारं—ङ. । ४. कारणमस्ति—ङ. । ५. ज्ञातुमपि श—ङ. । ६. ते देवाऽपि—क. ख. । ७. वास्मिन्—क. ख. ।

प्रकृतेः पुरुषस्त्वं च प्राकृत्यं पुरुषस्य च ।
कर्तुं कारयितुं शक्तः स्वयं प्रकृतिरीश्वरः ॥ १०८ ॥
किं वायं प्रकृतिः साक्षात् किं वायं परमः पुमान् ।
निश्चयं नाधिगच्छामि नित्यरूपे सनातने ॥ १०९ ॥
चतुर्भुजां मां द्विभुजां करोति
स्वयं [1]विधाता द्विभुजश्चतुर्भुजः ।
सहस्रबाहोरपि देहकर्ता
भर्ता सतां मे भगवान् प्रसीदतु ॥ ११० ॥
इति सञ्चिन्त्य सा देवी समस्तभुवनेश्वरी ।
पपात् दण्डवद् भूमौ मम पादाम्बुजान्तिके ॥ १११ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे दिव्यवृन्दावनोपाख्याने
गोलोकनिर्माणं भुवनेश्वरीमोहनं नाम
[2]पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥



१. 'विधाता'नास्ति-क. ख. । २. 'पञ्चदशोऽध्यायः' नास्ति-क. ।

षोडशोऽध्यायः

बलराम उवाच

ततः किमकरोद्देवी भवता [1]किमनुष्ठितम् ।
तन्मे कथय धर्मज्ञ श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

मां दृष्ट्वा परमेशानं सकलाश्चर्यरूपिणम् ।
मूर्च्छिता दण्डवद्भूमौ पतित्वा च पुनः पुनः ॥ २ ॥
कम्पमानाङ्गलतिका ननाम भुवनेश्वरी ।
उदीक्षन्ती सहासं मां प्रेमाम्बुच्छन्नलोचना ॥ ३ ॥
नताऽस्ति [2]मे देव देव प्रसीद पुरुषोत्तम ।
ततः सोऽहं कृपासिन्धुर्मोहनस्यापि मोहनः ॥ ४ ॥
गृहीत्वा मुरलीं वामे वंशीं पाणौ च दक्षिणे ।
प्रकृतिं स्वयमात्मानं चिन्तयामास विश्वकृत् ॥ ५ ॥
तस्या विमोहनायैव तत्क्षणं स्त्रीत्वमागतः ।
बाणोऽभवच्छुभा वंशी मुरली चाभवद्धनुः ॥ ६ ॥
ऊर्ध्वहस्तद्वये पाशमङ्कुशं करयोरधः ।
बिभ्रतं मामपश्यत्सा देवदेवं शुचिस्मितम् ॥ ७ ॥
इन्दीवरेक्षणयुगं संवीतं पीतवाससा ।
स्त्रीवेषधारिणं शुद्धमनन्तमजमव्ययम् ॥ ८ ॥
यथाहं भगवान् कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
स्वयं प्रकृतितां यातस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ९ ॥
[3]अथोऽहमद्भुतो दिव्यः सर्वभूतमनोहरः ।
त्रिभङ्गस्थानतो [4]राम ममैव परमात्मनः ॥ १० ॥
उदतिष्ठद् महांस्तेजोराशिरर्कसमद्युतिः ।
तेनैव व्याप्तं सकलं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ ११ ॥
तेजोभिस्तैरहं नारी सर्वलोकैकमोहिनी ।
त्रैलोक्यविजया नित्या नित्यानन्दस्वरूपिणी ॥ १२ ॥

---

१. इतः पूर्वं 'च'–ख. । २. 'मे' नास्ति–ख. । ३. अथो महाद्भुतो–ङ. ।
४. वाम–ङ. ।

त्रिभङ्गपुरतो यस्मान्ममैव परमात्मनः ।
जातेयं सुन्दरी साक्षाच्छ्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ॥ १३ ॥
भ्रूमध्यान्मम देवस्य [1]ऐंकारः समजायत ।
क्लींकारो हृदयाच्चैव सौःकारो योनिमध्यतः ॥ १४ ॥
स्थानत्रयसमुद्भूतमेतद्बीजत्रयं महत् ।
पुरत्रयं यतस्तस्मात् त्रिपुरेति निरुच्यते ॥ १५ ॥
आदौ वर्णमयी नित्या विद्यायोनिः सरस्वती ।
मध्ये सर्वजग[2]ज्जेता कामः सर्वहृदि स्थितः ॥ १६ ॥
सर्वशक्तिमयी शक्तिरेकीभूय स्थिता यतः ।
त्रिपुरा त्रिजगन्माता सर्वभूतनमस्कृता ॥ १७ ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्रयाणां या पुरातनी ।
त्रिपुरा प्रथिता तेन सर्वसिद्धैर्नमस्कृता ॥ १८ ॥
अहं सर्वेश्वरो राधा सर्वशक्तिनिषेविता ।
भुवनेश्वरी महामाया [3]त्रितयं पूर्वजं यतः ॥ १९ ॥
तेनैव प्रथिता लोके श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ।
बालार्ककोटि[4]किरणा सुकुञ्चितशिरोरुहा ॥ २० ॥
पूर्णेन्दुकोटिसङ्काशविकाशिमुखपङ्कजा ।
मणिमाणिक्यरचितस्फुरन्मकरकुण्डला ॥ २१ ॥
जितकामधनुः सुभ्रू रक्तपद्मदलेक्षणा ।
जपाकुसुम[5]सङ्काशा सिन्दूरमण्डितानना ॥ २२ ॥
सुचारुनयन[6]प्रान्तकटाक्षेषु प्रवर्षिणी ।
सुदती सुन्दरग्रीवा कुञ्चिताधरपल्लवा ॥ २३ ॥
तिलपुष्प[7]समाकारसुनसापुटसुन्दरी ।
अनेकमणिमाणिक्यविलसत्कण्ठभूषणा ॥ २४ ॥
मुक्ताहार[8]लतोपेतपीनस्तनयुगोज्ज्वला ।
आजानुलम्बितवनमालया[9]ऽतिविराजिता ॥ २५ ॥

---

१. ऐंकारः–क. । २. त्तेजा का–क. ख. । ३. इतः पूर्वं 'या'–ख. । ४. किरण-सुकु–ख. । ५. सङ्काशसिन्दू–ख. । ६. प्रीतकटाक्षेषु–क. ख. । ७. समाकारा सुनासा पुरसुन्दरी–क. ख. । ८. लतो येन–क.; लता येन–ख. । ९. 'ऽति' इत्यस्य स्थाने 'च'–क. ख. ।

कौस्तुभोद्भासि[1]तोरस्का दिव्यचन्दनर्चचिता ।
हस्तैश्चतुर्भिर्ललितैः पाशाङ्कुश[2]धनुःशरान् ॥ २६ ॥
बिभ्रती वेशलीलाभिर्मोहयन्ती जगत्त्रयम् ।
त्रिवलीवलयाकारमध्यदेशसुशोभिता ॥ २७ ॥
लावण्यसरिदावर्तचारुनाभिसरोरुहा ।
रक्तवस्त्रपरीधाना रक्ताभरणभूषिता ॥ २८ ॥
सुवर्णरत्नरचितचरणाम्भोजनूपुरा ।
ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजराजच्चरणपल्लवा ॥ २९ ॥
सम्मुखस्था ममैवाभून्मोहयन्तीव [3]तद्वनम् ।
तनुप्रभाभिरत्यन्तरक्ताभिररुणीकृतम् ॥ ३० ॥
अपि मे सा तनुमिमां नीलपाथो[4]जसन्निभाम् ।
समन्ताद् विदधे सम्यगरुणिम्नाऽरुणारुणाम् ॥ ३१ ॥
एतद् विलोक्य सपदि [5]मुमोह भुवनेश्वरी ।
किमिदं किमिदं दिव्यं किमिदं किमिदं परम् ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे श्रीकृष्णाभेदशक्ति-

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीप्रकाशरहस्यं नाम

[6]षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥



१. ताऽव्यक्ता दिव्य–ङ. । २. धरःशरान्–क.; धरैः शरान्–ख. । ३. मत्वलम्–क., तत्वलम्–ख. । ४. हसन्नि–क. ख. । ५. मोहेन भु–क. ख. । ६. 'षोडशोऽध्यायः' नास्ति–ङ. ।

सप्तदशोऽध्यायः

विष्णुप्रियोवाच

किमन्यद् बलरामेण पृष्टः [1]प्रभुपदद्वये ।
स एव वा किमुवाच दयामृतरसार्णवः ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच

एवं श्रुत्वा [2]रोहिणेयः कथां श्रुतिरसायनाम् ।
अतृप्तिमुपयातोऽसौ पुनः पप्रच्छ तं हरिम् ॥ २ ॥

श्रीबलराम उवाच

आविरास सदा देवी श्रीमत्त्रिपुर[3]सुन्दरी ।
भुवनेशी मोहिता तच्छ्रुतं श्याम मनोहर ।
ततः [4]किमभवत्पश्चात् तन्मे नाथ निगद्यताम् ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

ततोऽहमपि तां दृष्ट्वा राधाविरहकातरः ।
मनसाऽचिन्त[5]य(दि ? मि)दं सर्वं सर्वजनेश्वरः ॥ ४ ॥
एकाकिनी कथमियं तामानेतुं क्षमा भवेत् ।
दुःसाध्यां सर्वदा [6]राधामाधास्यन्तीं विमोहनम् ॥ ५ ॥
इत्थं विचिन्त्यमानस्य सेङ्गितज्ञानमीशितुः ।
एकाऽनेकस्वरूपाऽभूत [7]सर्वयोगेश्वरेश्वरी ॥ ६ ॥
तस्या [8]अङ्गात् समुत्पन्ना [9]नानाकारा महाबलाः ।
चतुषष्टिकोटिमिता योगिन्यस्ताश्चतुर्भुजाः ॥ ७ ॥
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा रक्तांशुकावृताः ।
आच्छाद्य मां जगन्नाथं गोविन्दं [10]निजतेजसा ॥ ८ ॥
विचरन्ति वनं सर्वं राधान्वेषणविह्वलाः ।
ततः [11]सा त्रिजगद्धात्री श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ॥ ९ ॥

---

१. प्रश्नपद–ङ. । २. परं रामः कथां–ङ. । ३. भैरवी–ङ. । ४. किमभवद्रूपं–ङ. । ५. यदित्थं सर्वं–क. ख. । ६. धारां या धास्यति–क. ख. । ७. सर्वयोगीश्व–क. ख. । ८. अङ्गात्–ङ. । ९. नानाकारमहा–ङ. । १०. निजचेतसा–क. ख. । ११. 'सा' नास्ति–क. ख. ।

प्राह प्रहसितमुखी किं करिष्यामि किङ्करी ।
अथाहं तामुवाचेदं प्रणयाविष्टमानसः ॥ १० ॥
ईश्वरीं सर्वशक्तीनां राधां मे वशमानय ।
ममेदं वाक्यमाकर्ण्य सर्वाः स्वीयाङ्गसम्भवाः ॥ ११ ॥
आहूय [1]योगिनीर्नित्या श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ।
प्रणयाविष्टहृदया दिक्षु दिक्षु न्ययोजयत् ।
प्रत्येकदिशि प्रत्येकां प्रेषयामास योगिनीम् ॥ १२ ॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

अनङ्गकुसुमे प्राचीं दिशं त्वं याहि सत्वरम् ।
अन्वेषमाणा गोविन्दमहिषीं चारुहासिनीम् ॥ १३ ॥
कृष्णाभिन्ना च सा देवी राधिका कृष्णवल्लभा ।
सान्त्वयित्वा च तां देवीं प्रेम्णा मधुरया गिरा ॥ १४ ॥
सम्पूज्य विविधैर्भावैरानीयास्मै निवेदय ।
यस्या मे दृष्टिमात्रेण [2]मोहितं सकलं जगत्[3] ॥ १५ ॥
तस्या महत्वं किं वक्तुं शक्यते शृणु सुन्दरि ।
त्वरितं [4]गच्छ सुभगे नात्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥
अनङ्गमेखले गच्छ [5]दक्षिणां दिशमुत्तमे ।
निवेदय श्रीकृष्णाय राधिकां सकलाधिकाम् ॥ १७ ॥
अनङ्गमदने त्वं [6]च पश्चिमां गच्छ मा चिरम् ।
उदीचीं च दिशं [7]गत्वा कार्यार्थं [8]मदनातुरे ॥ १८ ॥
मदनातुरां च तां कृत्वा कृष्णायास्मै निवेदय ।
[9]अनङ्गरेखे चाग्नेयीं विदिशं गच्छ सत्वरम् ॥ १९ ॥
नैर्ऋतीं विदिशं गच्छ जवेनानङ्ग[10]वेगिनी ।
अनङ्गवेगात् सा देवी यथा कृष्णं समाश्रयेत् ॥ २० ॥

---

१. योगिनी नित्याः—क. ख. । २. व्यामोहितं सकलं—ख., व्यामोहि सकलं-ङ. । ३. इतः परं 'तस्यामपि तिष्ठन्त्या यदासक्तो भवेद् विभुः' इति 'क'-संज्ञकमातृकायाम्, तथा च 'तस्यामपि तिष्ठन्त्या यदासक्तोऽभवद् विभुः' इति 'ख'संज्ञकमातृकायाम् । उभौ पाठौ अनावश्यकौ च । ४. गच्छतु भद्रे ना—ख. । ५. दक्षिणं दिशि ह्युत्तमे—क., दक्षिणां दिशमुत्तमाम्—ख. । ६. 'च' नास्ति—क. ख. । ७. गच्छ का—क. ख. । ८. मदनोत्तरे—ङ. । ९. अनङ्गरेखा—क. ख. । १०. प्रेषिणी—क. ख. ।

कामाङ्कुशे गच्छ वायोर्विदिशं [1]रभसा द्रुतम् ।
कामाङ्कुशेन तस्यास्त्वमा[2]कर्षय [3]मनोद्विपम् ॥ २१ ॥
अनङ्गमालिनि त्वं मे साहाय्यं स्वामिनः कुरु ।
ऐशानीं विदिशं याहि राधिकां शीघ्रमानय ॥ २२ ॥
[4]ततस्ताः शक्तयः सर्वा देवीवाक्यं तथास्त्विति ।
अनुमन्यमानाः सपदि विपिनं त्वरया गताः ॥ २३ ॥
अन्वेषमाणा नियतं न स्म पश्यन्ति राधिकाम् ।
ततोऽरुणारुणदृशः क्रोधं चक्रुरनुत्तमाः ॥ २४ ॥
अद्यैव तस्या [5]वश्यार्थमवश्यमुद्यता वयम् ।
विधास्याम[ो] विधानं [6]तद् राधा साधारणाश्रयेत् ॥२५॥
संभूय सर्वास्ताश्चक्रुरुपायं तद्विमोहने ।
[7]लोकेऽस्मिन्निखिले यस्मादुपायो विक्रमाद् वरः ॥ २६ ॥
शरासनं पुष्पमयं माद्यद् [8]भृङ्गगुणं परम् ।
आकृष्योन्माद[9]कृतपञ्चशरवर्षमवाऽ[10]सृजन् ॥ २७ ॥
ततस्तासां बाणवर्षादम्बुवर्षादिवानिशम् ।
सद्यो वृन्दावनं सर्वं पञ्चबाणमयं बभौ ॥ २८ ॥
वृन्दावनतरूणां च [11]पुष्पे पुष्पे दले दले ।
अनङ्गकुसुमा देवी प्राविशद्विश्वमोहिनी ॥ २९ ॥
इत्येवं [12]चिन्तयन्ती सा परमाह्लादमानसा ।
यदा कुसुमसौरभ्यं [13]तस्या देहे [14]प्रवर्षते ॥ ३० ॥
तदैव सा महादेवी वश्याऽवश्यं भविष्यति ।
प्रविष्टायां [15]पुष्पचयैस्तस्यां भृङ्गाश्च कोकिलाः ॥ ३१ ॥
वृन्दावनचराः सर्वे मयूराद्याश्च पक्षिणः ।
हरिण्यो हरिणाश्चैव बभूवुः काममोहिताः ॥ ३२ ॥

---

१. सत्वरद्रुतम्—क. ख. । २. कर्षण म—ख. । ३. मनोधिपम्—क., मनोधियम्—ख. । ४. तस्याः शक्तयः—ख. । ५. दृश्या—क. ख. । ‘तद्’नास्ति—क. । ७. नैकोऽस्मि—ङ. । ८. भृद्धगुणं—ङ. । ९. ‘कृत’नास्ति—ङ. । १०. सृजत्—क. ख. । ११. लतापुष्पदले—क., लतां पुष्पे दले—ख. । १२. चिन्त्यती नित्यं सा पराह्लाद—क. ख. । १३. तस्यां—क. । १४. प्रवेश्यते—ङ. । १५. पुष्पचये तस्यां—क. ख. ।

[1]ततोऽनङ्गमेखला सा तस्या वस्त्रे विवेश वै ।
[2]चिन्तयन्ती यदा वस्त्रं परिधास्यति राधिका ॥ ३३ ॥
तदैव वशगा देवी कृष्णस्यैव भविष्यति ।
अनङ्गमदना देवी व्यसृजन्मदनान् द्रुतम् ॥ ३४ ॥
शतकोटिपरिमितान् तैस्तैः [3]सम्मोहितं [4]वनम् ।
मदनातुरा च या देवी वनमध्ये विशेषतः ॥ ३५ ॥
पञ्चबाणेन सहिता चिक्रीड रसविह्वला ।
अनङ्गरेखा या देवी [5]बालाऽप्यति मनोरमा ॥ ३६ ॥
पलायमाना मदनं दृष्ट्वा[6]ऽधावत् पदे पदे ।
ततः कियद्दूरगतस्तां जग्राह भयातुराम् ॥ ३७ ॥
रुदन्तीं कम्पमानाङ्गलतिकामतिकातराम् ।
कामः करे गृहीत्वा तां चुम्बिता क्रोडसङ्गता ॥ ३८ ॥
नवसङ्गम[7]संत्रस्ता ना नेत्युक्त्वा पुनः पुनः ।
रुदन्ती सुदती भीता [8]शीतार्ता च व्यकम्पत ॥ ३९ ॥
[9]अनङ्गवेगिनी देवी वृन्दावनमहावने ।
वेगेन कामदेवं तं समालिङ्गति नृत्यति ॥ ४० ॥
आत्मनो योनिविवरे लिङ्गं कामस्य कामुकी ।
वेशयन्ती वेशदीप्ता [10]विवशा भृशविह्वला ॥ ४१ ॥
विजहार हारशोभिपीनोत्तुङ्गपयोधरा ।
ततः कामाङ्कुशा देवी देवीमा[11]कर्षितुं गता ॥ ४२ ॥
कामाङ्कुशं दर्शयन्ती [12]रिरंसामदविह्वला ।
कामबीजं जपन्ती च चिन्तयन्तीति सुस्मिता ॥ ४३ ॥
यदाङ्कुशं दर्शयामि तदा सा भविता वशे ।
ततोप्यङ्कुशमुद्रां च दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः ॥ ४४ ॥
कामदेवस्य वामांसे न्यस्तहस्ताग्रतः [13]स्थिता ।
कामदेवसहस्रेण विलसत्कण्ठमालिका ॥ ४५ ॥

---

१. ततो लब्धं मेखला—ङ. । २. चिन्तयति—ख. । ३. सम्मोहनं व—क. ख. । ४. वने—ख. । ५. रसाप्यति मनोहरा—कख. । ६. धावेत्—क. । ७. संतप्तो ना-ङ. । शीतार्तैरभ्यकम्पत—ङ. । ९. अनङ्गवशिनी—क. । १०. विषमाशुगविह्वला-ङ. । ११. कर्षितुमागता—क. । १२. विवासामद—क. ख. । १३. स्थितः—क. ।

भगमालालिङ्गमालासम्बद्धोरस्थलोज्ज्वला ।
समुन्नतस्तनद्वन्द्वा चारुभूषणभूषिता ॥ ४६ ॥
राधाया [1]गतराधाया मोहनार्थमुपस्थिता ।
नानाभावैर्विभावैश्च विलासैरपि सर्वदा ॥ ४७ ॥
एवं दिनानि निन्युस्ता बहूनि बहुलालसाः ।
नाऽशक्नुवन् महादेव्या देव्य आकर्षणे यदा ॥ ४८ ॥
शक्तिहीनाः शक्तयस्तु [2]गोविन्दं प्रति कातराः ।
विचेरुर्विपिनं सर्वं नाऽपश्यन् प्रेयसीं [3]विभोः ॥ ४९ ॥
अप्राप्य तां महादेवीं [4]निरस्तास्तत्र कर्मणि ।
वाग्विहीना वनं त्यक्त्वा लज्जयाऽधो[5]मुखा ययुः ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे दिव्यवृन्दावनोपाख्याने
राधाकृष्णरहस्येऽनङ्गकुसुमा[6]द्यष्टनायिकाप्रचारणं
नाम [7]सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

---

१. शतराधाया—ङ. । २. गोविन्दप्रीतिकातराः—ङ. । ३. प्रभोः—ख. । ४. निरस्तास्तस्य क—क. ख. । ५. मुखीयुः—ङ. । ६. ह्यनन्तनायिका—ङ. । ७. 'सप्तदशोऽध्यायः' नास्ति—ङ. ।

अष्टादशोऽध्यायः

बलराम उवाच

अनङ्गकुसुमाद्यासु शक्तिष्वष्टसु केशव ।
निरस्तासु समस्तासु [1]किमभूत् [2]तन्निगद्यताम् ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

ततः पुनर्महादेवी [3]गणशः कामरूपिणी ।
आहूया[4]कर्षिणीर्नित्याः प्रेषयामास सत्वरम् ॥ २ ॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

कामाकर्षणरूपे त्वं [5]कामेनाकर्षये[6]श्वरीम् ।
तस्या बुद्धिं समाकृष्य कृष्णदेहे निवेशय ॥ ३ ॥
कृष्णबुद्धिर्भवेद् यस्माद् बुद्ध्याकर्षणरूपिणी ।
अहङ्काराकर्षिणी त्वमहङ्कारमना [7]रतम् ॥ ४ ॥
आकर्षय महाभागे यथा [8]सा कृष्णसंश्रिता ।
शब्दाकर्षणरूपे तत्कर्णं [9]प्रविश सत्वरम् ॥ ५ ॥
कृष्णशब्दं विनाशब्दं यथा [10]नान्यं शृणोति सा ।
स्पर्शाकर्षणरूपे त्वं त्वचि तस्याः स्थिरा भव ॥ ६ ॥
कृष्णस्पर्शं [11]विना नान्यं यथा स्प्रष्टुं क्षमाभवेत् ।
रूपाकर्षणरूपे त्वं तस्या अक्ष्णोः प्रविश्यताम् ॥ ७ ॥
आकर्षय [12]महादेवी रूपाणि कमलानने ।
श्यामरूपं विना नान्यद् यथा सा द्रष्टुमिच्छति ॥ ८ ॥
रसाकर्षणरूपे त्वं रसरूपासि सर्वदा ।
रसस्वरूपिणी सापि [13]ताम्यतां मा विलम्ब्यताम् ॥ ९ ॥

---

१. किं वृत्तं तन्नि—ङ. । २. तन्निगद्यत—ख. । ३. शतशः—ङ. । ४. कर्षिणीं नित्यां—क., कर्षणी नित्या—ख. । ५. काममाकर्ष—ङ. । ६. श्वरम्—क. । ७. रतिम्—क. । ८. वा कृष्णसंस्थिता—ङ. । ९. प्रविश्य—क. ख. । १०. नान्यत्—ख. 'नान्यं'इत्यस्य स्थाने 'वाद्यं'—ङ. । ११. विना नान्यत् स्प्रष्टुं- ख. विनान्यं सा यथा स्प्रष्टुं—ङ. । १२. महादेवि—क. ङ. । १३. गम्यतां—ङ. ।

तस्या आकर्षणे त्वं हि शक्तासि [1]सर्ववन्दिता ।
आकर्षय तथा कृष्णरसमेव यथाश्रयेत् ॥ १० ॥
गन्धाकर्षणरूपे त्वं सर्वगन्धवहे शुभे ।
नासिकायां राधिकायाः प्रविशाशु वरानने ॥ ११ ॥
तथा कुरु महेशानि स्वशक्त्या शक्तिसप्तमे ।
गोविन्ददेहसौरभ्यं विना यत् सा न जीवति ॥ १२ ॥
चित्ताकर्षणरूपे त्वं मम शक्तिः सुदुर्लभा ।
सर्वचित्ते निवासस्ते सर्वभूतवशङ्करि ॥ १३ ॥
[2]तदैव राधिका देवी कृष्णवश्या भविष्यति ।
तथा कुरुष्व कल्याणि सर्वसन्धानकारिणी ॥ १४ ॥
यथा कृष्णादृतेऽन्यत्र चित्तं नैव [3]क्षणं चरेत् ।
धैर्याकर्षणरूपे त्वं धीराणां धैर्यहारिणी ॥ १५ ॥
[4]तदैव गतधैर्या सा कृष्णवश्या भविष्यति ।
तथाऽऽचरचराणां च स्थावराणां च पालिनि ॥ १६ ॥
धैर्यमालम्ब्य धीरा सा यथा कृष्णरतिर्भवेत् ।
स्मृत्याकर्षणरूपे त्वं भूतानां हृदये स्थिता ॥ १७ ॥
[5]स्थित्वा चित्ते महादेव्याः [6]कृष्णस्मृतिकरी भव ।
तथा विधेहि सविधे तस्या एव वरानने ॥ १८ ॥
श्रीकृष्णाद[7]न्यत्स्मरणे कृ(तृ)ष्णा नापि च जायते ।
नामाकर्षणरूपे त्वं गच्छ [8]देवीं ममाज्ञया ॥ १९ ॥
कामबीजेन पुटितं नाम तस्या वरानने ।
[9]कृष्णा कामार्दिता तेन तदाकर्षय सत्वरम् ॥ २० ॥
तथैव तन्यतां धीरे यथा [10]श्रुतियुगेन सा ।
प्रतिक्षणं [11]कृष्णनाम शृणोति नान्यदीहते ॥ २१ ॥
बीजाकर्षणरूपे त्वं तस्या जीवं समाहर ।
[12]बीजभूता हि सा देवी सर्वजीवस्वरूपिणी ॥ २२ ॥

---

१. सर्ववन्दिते—ङ. । २. त्वदेव (त्वयैव)—क. ख. । ३. त्वणे—क. ख. । ४. 'त्वदेव' इति पाठान्तरम् । ५. स्थिरा—ङ. । ६. कृष्णचित्तकरी—क. । ७. न्यस्मरणे—ङ. । ८. देवि—ङ. । ९. कृत्वा आकर्षितं तेन—ङ. । १०. प्रकृतियुगेन—क. । ११. नाम श्रृणोति श्रुत्वा च नान्यदीहते—ङ. । १२. जीवभूता—क. ख. ।

सर्वात्मरञ्जनी नित्या सर्वभूतेषु संस्थिता ।
राधा सा परमा शक्तिः सूक्ष्मस्थूलातिसुन्दरी ॥ २३ ॥
आत्म[1]मायाऽतिसन्धानादात्माकर्षणरूपिणी ।
आत्मन्याकर्षिते सुष्ठु तस्या आकर्षणं भवेत् ॥ २४ ॥
आकर्षय महाभागे प्राणशक्त्या ममाज्ञया ।
अमृतानाममूर्तीनां मुक्तानाममलात्मनाम् ॥ २५ ॥
आकर्षण[2]करी त्वं किं नो राधाकर्षणे [3]क्षमा ।
अमृता[4]कर्षिणी त्वं तामानीयास्मै निवेदय ॥ २६ ॥
सर्वेषामेव भूतानां वाह्याभ्यन्तरसंस्थिता ।
आकर्षयसि सर्वत्र शरीराणि पुनः पुनः ॥ २७ ॥
वपुरा[5]कर्षिणी [6]त्वं मे वचने देहि मानसम् ।
अत्र स्थित्वा राधिकाया [7]वपुराकृष्य यत्नतः ।
स्वामिने मम कृष्णाय सतृष्णाय निवेदय ॥ २८ ॥
इत्याज्ञास्रजमाकलय्य शिरसा देव्या निषेव्या[:] सुरैः
सर्वास्ताः परशक्तयो धृतहृदः श्रीराधिकाकर्षणे ।
तूर्णं पूर्णसुधांशुचारुवदनाः सर्वार्थसिद्धिप्रदा
उद्यद्भानुसहस्रकोटितुलितद्योता बहिर्निर्ययुः ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये

षोडशाकर्षणशक्तिप्रचारः [नाम]

[8]अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

१. मायानुसन्धा—ङ. । २. करि त्वं—क. ख. । ३. क्षमम्—क. । ४. कर्षिणि—ङ. । ५. कर्षिणि—ङ. । ६. त्वमेव वने दीर्घमानसम्—क. ख. । ७. 'वपुराकृष्य' इत्यस्य स्थाने 'पुराऽऽकृष्य'—क. ख. । ८. 'अष्टादशोऽध्यायः' नास्ति—ङ. ।

एकोनविंशोऽध्यायः

बलराम उवाच

ततः किमभवत् तत्र तन्मे कथय सुव्रत।
यदि स्यात् करुणासिन्धो करुणा पुरुषोत्तम ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

आज्ञप्ता युगपत् सर्वाः काममपि प्राणवल्लभाम्।
अन्वेषमाणा विपिने विचेरु रतिविह्वलाः ॥ २ ॥
यथोक्तं त्रिपुरेश्वर्या कर्म चक्रुः समुत्सुकाः।
दिनानि गमयामासुस्तस्मिन् वृन्दावने वने ॥ ३ ॥
बभ्रमुर्भ्रमकर्माणः सदा विभ्रमसंयुताः।
[1]नाशकन् वशमानेतुं राधां त्रैलोक्यमोहनीम् ॥ ४ ॥
नापश्यंश्चक्षुषा तस्या [2]रूपमप्यद्भुतं परम्।
दृष्ट्वा राधिकां सर्वा निरुत्साहा निरर्थकाः ॥ ५ ॥
निरस्ता विमुखा याता विमनस्का धृतव्यथाः।
निरस्तासु ततस्तासु शक्तिष्वा[3]कर्षणीष्वथ ॥ ६ ॥
पुनरन्या महाशक्तीः ससर्ज त्रिपुरेश्वरी।
सर्वसंक्षोभिणी शक्तिर्देव्यामूर्ध्नः समुद्गता ॥ ७ ॥
सर्वविद्राविणी शक्तिर्भ्रुवोर्मध्याद् वरानना।
सर्वाकर्षणशक्ति[4]श्च [5]सर्वाह्लादनकारिणी ॥ ८ ॥
कर्णाभ्यां त्रिपुरेश्वर्या अजनिष्टां विमोहने।
मुखात् प्रादुर्बभूवाशु सर्वस्तम्भनकारिणी ॥ ९ ॥
सर्वजृम्भणशक्तिश्च [6]नेत्राभ्यां सुमनोहरे।
हृदयान्निर्गता शक्तिः सर्वतोवशकारिणी ॥ १० ॥
सर्वरञ्जनशक्तिश्च सर्वोन्मादस्वरूपिणी।
बाहुभ्यां परमेश्वर्या [7]उभे जाते जगन्मये ॥ ११ ॥

---

१. नाशक्नुवन् समानेतु—ङ. । २. रूपमद्भुतं—क. ख. । ३. कर्षिणी—ङ. । ४. 'च' नास्ति—क. ख. । ५. सर्वाल्हादकारिणी—क. ख. । ६. 'नेत्राभ्यां.... सर्वरञ्जनशक्तिश्च' नास्ति—क. ख. । ७. भुजे जाते—क. ख. ।

सर्वार्थसाधनी शक्तिः सर्वसम्पत्तिपूरणी ।
स्तनद्वयान्महादेव्याः समुद्भूते वरानने ॥ १२ ॥
सर्वमन्त्रमयी शक्तिर्योनिमध्यात् समुद्गता ।
[1]रक्तपादतलाज्जाता सर्वद्वन्द्व[2]क्षयङ्करी ॥ १३ ॥
तस्या देव्याः समुत्पन्नाः सर्वाश्चारुचतुर्भुजाः ।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा रक्ताम्बुजेक्षणाः ॥ १४ ॥
संवीतपीतवसनाः सर्वालङ्कारभूषिताः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वा [3]देव्या अग्रे स्थिताः शुभाः ॥ १५ ॥
आज्ञापय महादेवि किं करिष्यामहे वयम् ।
अस्माभिः शक्यते कर्त्तुं यत्तदाज्ञप्तुमर्हसि ॥ १६ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तासां [4]प्रसन्ना त्रिपुरेश्वरी ।
मेघगम्भीरया वाचा जगाद मदिरेक्षणा ॥ १७ ॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

[5]संसिद्धा या परा देवी सर्वसिद्धैर्नमस्कृता ।
त्रैलोक्यविजया राधा परब्रह्मस्वरूपिणी ॥ १८ ॥
तामानीय रसमयीं प्रीत्या कृष्णाय वेधसे ।
[6]समर्पय तदेवेश्यो मत्सुखं यदि [7]वेच्छथ ॥ १९ ॥
ततस्ताः शक्तयः सर्वा ययुर्वृन्दावनान्तरम् ।
चक्रुराकर्षणार्थं च प्रयोगं प्राणशक्तितः ॥ २० ॥
काश्चित्सम्मोहनं मन्त्रं काश्चिदाकर्षणं तथा ।
काश्चित्संक्षोभणं मन्त्रं द्रावणं मारणं पुनः ॥ २१ ॥
काश्चिच्चक्रुः स्तम्भनञ्च काश्चिदुच्चाटनं [8]तथा ।
एवं हि नानोपायैस्ताः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ २२ ॥
अशक्ता मोहने तस्या राधाया बलराम भोः ।
अवाङ्मुखास्त्रपावत्यो देव्यो देवीं प्रतुष्टुवुः ॥ २३ ॥

१. रत्नपाद–क. ख. । २. द्वयङ्करी–क. ख. । ३. देव्यग्रस्थिताः–क., देव्यग्रसंस्थिताः–ख. । ४. सर्वासां त्रिपुरेश्वरी–ङ. । ५. संसिद्धायाः परा–ख. । ६. समर्पयत देवेशो–क. ख. । ७. चेच्छथ–ङ. । ८. ततः–क. ङ. ।

नमो देवि राधे हरौ प्राप्तराधे
कटाक्षस्य मोक्षं कुरु क्लेशमोक्षम् ।
[1]मुनेर्मोहनेनापि रूपेण नित्यं
त्वमेव त्वमर्या जगन्नायकेन ॥ २४ ॥
प्रसीद देवि सर्वेशे राधिके सकलाधिके ।
दर्शनं नः प्रपन्नानां देहि मातर्नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥
प्रसीद देवि राधिके समस्तकार्यसाधिके ।
प्रदीप्ततेजसाधिके [2]विद्विष्ट(विद्वेष्टृ)लोकबाधिके ॥ २६ ॥
एवं स्तुता महादेवी ममैव महिषी शुभा ।
वृन्दावनलतानां च पुष्पे पुष्पे दले दले ॥ २७ ॥
फले फले निजां मूर्तिं दर्शयामास ताः प्रति ।
सा सर्वव्यापिनी देवी सर्वभूतमयी परा ।
समाह्वयति वाग्भिस्ता मधुराभिरितस्ततः ॥ २८ ॥

श्रीराधोवाच

पश्यन्तु मां महादेव्यो दिदृक्षा महती यदि ।
युष्माकं विल्कवं दृष्ट्वा मन्मनः प्रणयान्वितम् ॥ २९ ॥
ततस्तस्या विलोक्यैव रूपं सर्वमनोहरम् ।
विमुग्धचेतसः सर्वा व्यामुह्यन् प्रेमकातराः ॥ ३० ॥
पुनः पश्यन्ति विष्वक् तां मया सह विहारिणीम् ।
वृन्दावनलतास्वेव वृन्दावनतरुष्वपि ॥ ३१ ॥
पुष्पे राधां फले राधां दले राधामुपर्यधः ।
जले राधां स्थले राधां [3]सर्वा राधा विवर्जिताम् ॥ ३२ ॥
[4]आधाय हृदये राधां राधां तत्युजुरूर्जिताम् ।
तद्रूपदृष्टिमात्रेण शक्तयो मुग्धदृष्टयः ॥ ३३ ॥
तन्मायामोहिताः सर्वाश्चित्रपुत्तलिका इव ।
आसन्नासन्नमनसस्तस्मिन् वृन्दावनान्तरे ॥ ३४ ॥

---

१. पुनर्मोहनं येन रूपेण चिन्त्ये–क. ख. । २. 'विद्विष्टलोकबाधिते' नास्ति–क. ख. । ३. सर्वं राधा–ङ.; अत्र 'सर्वाबाधाविवर्जिताम्' इति शोभनः पाठः । ४. आदाय–क. ख. ।

विस्मृतात्मक्रियात्मानः किञ्चिन्नोचुः स्थिताः स्थिताः ।
पुनरुन्मील्य नयने सहाय चकितेक्षणाः ॥ ३५ ॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं जगदुर्मधुराक्षरैः ।
स्मितेन [1]द्योतयन्त्यस्तद्विपिनं राधिकावशाः ॥ ३६ ॥
पश्यन्तु महदाश्चर्यं क्षोभणं क्षोभिणीगणे ।
द्रावणं द्राविणीनां च स्तम्भनं स्तम्भिनीगणे ॥ ३७ ॥
किमाश्चर्यं किमाश्चर्यं वयं परमशक्तयः ।
आकर्षिण्यः क्षणादेव [2]स्वयमाकर्षिता इह ॥ ३८ ॥
शृणुत शृणुत लोकाः पश्यतास्मांश्चिराय
प्रतिपदमनुयामो रधिकां [3]साधिकाराम् ।
वयमिह विहरामः शुल्कदास्यस्तदीयाः
क्षणमपि कलयामो नान्यमन्या कदापि ॥ ३९ ॥
इत्येवं विदधुस्तत्र नानाचेष्टाविमोहिताः ।
किं पुनः कथयिष्यामि राधिकां सकलाधिकाम् ॥ ४० ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये सर्वसंक्षोभिण्यादिप्रचारणं [4]नामैकोविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥



१. द्योतयन्तीस्तद्वि—क. ख. । २. सुषमाकर्षिता—ङ. । ३. साधिकारिणी—क. ख. । ४. 'नाम'इत्यस्य परं 'एकोनविंशोऽध्यायः'नास्ति—ङ. ।

विंशोऽध्यायः

बलराम उवाच

ततः किमभवत्तासु मोहितासु च राधया।
तन्मे कथय देवेश तृप्तिर्मे नास्ति [1]शृण्वतः॥ १॥

श्रीकृष्ण उवाच

एवं [2]ता मोहिता ज्ञात्वा देवी त्रिपुरसुन्दरी।
चिरेणापि न [3]वायाताः स्वकार्यशिथिलादराः॥ २॥
असृजत् [4]पुनरन्यास्तु शक्तीरद्भुतरूपिणीः।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां जननी ब्रह्मरूपिणी॥ ३॥
सर्वसिद्धिप्रदा देवी देव्या दक्षिणतः करात्।
सर्वसम्पत्प्रदा देवी वामतोऽजनि सुव्रता॥ ४॥
सर्वप्रियङ्करी देवी हृदयात् समजायत।
तस्या हास्यात् प्रकाश्याऽभूत् [5]सर्वमङ्गलकारिणी॥ ५॥
सर्वकामप्रदा देवी मनसोऽसि व्यजायत।
तद्वामनयनप्रान्तात् सर्वदुःखविमोहिनी॥ ६॥
तस्या वाचः समुत्पन्ना सर्वविघ्नविनाशिनी।
सर्वमृत्युप्रशमनी [6]मणिबन्धाद् विनिर्गता॥ ७॥
सर्वाङ्गसुन्दरी देव्या योनिमध्याद् व्यजायत।
नाभ्याः प्रादुरभूद्देव्यः सर्वसौभाग्यदायिनी॥ ८॥
एता देव्यो विनिर्गत्या देव्या [7]देहात् तडित्प्रभाः।
पुरतस्त्रिपुरेश्वर्याः प्रोचुः प्राञ्जलयः स्थिताः॥ ९॥
किं करिष्याम किं कार्यं क्व यास्याम वरानने।
निदेशय महेशानि न [8]कुरुष्व बिलम्बनम्॥ १०॥

---

१. श्रृणुतः—ख.। २. तां मोहितां—ङ.। ३. चायाता—ङ.। ४. पुनरन्याश्च—क. ख.। ५. सर्वमङ्गलरूपिणी—ङ.। ६. मणिरन्ध्राद्—ङ.। ७. 'देहात्'नास्ति—क. ख.। ८. कुरुथ—क.।

ततः आह महेशानी प्रेमगद्गदया गिरा ।
[1]प्रहसद् वदनाम्भोज[2]मण्डला चलकुण्डला ॥ ११ ॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

अहं प्रीतास्मि युष्मभ्यं वरं दास्यामि साम्प्रतम् ।
कल्याण्यः कुरुताह्लादं मा भयं मा भयं हि वः ॥ १२ ॥
अचिरादेव सारूप्यं यूयं [3]लभत मे द्रुतम् ।
इत्युक्तवत्यां श्रीमत्यां तत्क्षणादज[4]निष्टताः ॥ १३ ॥
चतुर्भुजा रक्तवर्णा रक्तपद्मदलेक्षणाः ।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा रक्तांशुकावृताः ।
ततः सारूप्य[5]मापन्ना वीक्ष्योवाच महेश्वरी ॥ १४ ॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

गच्छत स्वाज्ञया मह्यं राधिकान्वेषणं परम् ।
कुरुध्वं शक्तयः सर्वाः सर्वशक्त्युपबृंहिताः ॥ १५ ॥
आज्ञप्तास्ता महादेव्यो वृन्दावनसमीपगाः ।
[6]अपश्यन् मोहिता अन्यास्तद्रूपा[7]कृष्टदृष्टयः ॥ १६ ॥
वदन्त्यन्योन्य[8]मुद्भ्रान्तचेतसा भीतिभीरवः ।
अहो रूपमिदं देव्यास्त्रैलोक्यातिशयं परम् ॥ १७ ॥
मुग्धवत्यो वयं सख्यो न जानीमोऽन्यदद्भुतम् ।
किं करिष्यति [9]सा देवी न यास्यामस्तदन्तिकम् ॥ १८ ॥
स्थास्यामोऽत्रैव राधायाः समीपे परिचारिकाः ।
एवमुक्त्वा तु तास्तत्र तस्थुः स्थाणुवरा यथा ॥ १९ ॥
तासां [10]विडम्बनां श्रुत्वा दृष्ट्वा चैव विडम्बनाम् ।
ततोऽपरा महाशक्तीरुत्पाद्य त्रिपुरेश्वरी ॥ २० ॥
राधिकान्वेषणं कर्त्तुं [11]प्रेषयामास लीलया ।
सर्वज्ञाद्या महाशक्तीः शक्तानामपि सेविता ॥ २१ ॥

---

१. प्रहसन्–क. ख. । २. सर्वरूपस्य मण्डला–क. ख. । ३. लभतामद्भुतम्–क. ख. । ४. नियुताः–ङ. । ५. मागत्य वी–ङ. । ६. अपत्रपन्–क. ख. । ७. हृष्ट–क. ख. । ८. मुद्रास्तु चेतसो–ङ. । ९. वो दे–ङ. । १०. विडम्बनं वाचा श्रुत्वा चैव–क. ख. । ११. प्रेरयामास–क. ख. ।

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

सर्वज्ञे त्वं हि जानासि त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
[1]ज्ञात्वा तामात्मगुरवे कृष्णायाऽद्य निवेदय ॥ २२ ॥
सर्वशक्तीः स्वशक्त्या त्वं गृहीत्वा गच्छतामिह ।
देहि त्वं राधिकैश्वर्यमस्मै सर्वेश्वराय च ॥ २३ ॥
सर्वेषां सुखसन्धात्री सर्वैश्वर्य[2]फलप्रदे ।
सर्वज्ञानमयी त्वं च भद्रे [3]बोधय राधिकाम् ॥ २४ ॥
समस्तसुखदे कृष्णे न मानं कर्तुमर्हसि ।
त्वं मोहिनी [4]मोहनः स रत्नं रत्नेन [5]युज्यताम् ॥ २५ ॥
निःशङ्कां कुरुतां राधां सर्वव्याधिविनाशिनि ।
[6]सर्वाधारस्वरूपे त्वं सह वृन्दावनेन वै ॥ २६ ॥
तामानय वरारोहां राधिकां मन्दगामिनीम् ।
[7]सर्वपापहरे देवि [8]सर्वपापं समाहर ॥ २७ ॥
सर्वानन्दमयी त्वं वै तस्या आनन्दमन्दिरम् ।
प्रविश्य सहसा देवीं वशमानय सत्वरम् ॥ २८ ॥
कृष्णेऽतिविरहाक्रान्तो राधा [9]बाधाप्रपीडितः ।
तस्यैव जीवनं रक्ष सर्वरक्षास्वरूपिणि ॥ २९ ॥
सर्वेषां वाञ्छिताभीष्टं ददासि नियतं शुभम् ।
कृष्णाय राधिकां देहि सर्वेप्सितफलप्रदे ॥ ३० ॥
न किञ्चिद् विद्यते तस्य दुर्लभं [10]राधिकाधिकम् ।
श्रुत्वा वाक्यमिदं देव्यो निर्जग्मुस्ता वनं द्रुतम् ॥ ३१ ॥
निर्गत्य रभसा चक्रुस्तत्कर्माद्भुत[11]तेजसः ।
तत्रैव विपिने [12]देव्यो देव्या मोहनकाम्यया ॥ ३२ ॥

---

१. 'ज्ञात्वा''''सर्वेश्वराय च'इति पङ्क्तित्रयं नास्ति—क. ख. । २. फला फले—क. ख. । ३. रोधय—ङ. । ४. मोहने—क. ख. । ५. योज्यताम्—क. ख. । ६. सर्वाधाररूपे—ख. । ७. सर्वपापहरा—ख. । ८. 'सर्वपातां'इति पाठान्तरम् । ९. राधा—ङ. । १०. राधिकाधिकाम्—ख. । ११. तेजसा—क. ख. । १२. 'देव्यो'नास्ति—क., 'देव्या देव्यो मो'—ख. ।

[1]चेष्टाश्चक्रुर्बहुविधा बभ्रमुर्भ्रमकातराः ।
[2]अशक्ता मोहने तस्या दृष्ट्वा तद्रुचिराननम् ॥ ३३ ॥
स्वयं विमुग्धहृदयास्तस्थुः क्लिन्नधियः शुभाः ।
पश्यन्ति स्म [3]च तद्रूपं पुरुषाकारमद्भुतम् ॥ ३४ ॥
कोटिकन्दर्पदर्पघ्नं श्यामलं कमलेक्षणम् ।
सुचारु[4]दशनं श्रीमत्पूर्णेन्दुसदृशाननम् ॥ ३५ ॥
सुभ्रुवं सुनसं भ्राजत्सुकुञ्चितशिरोरुहम् ।
त्रिभङ्गं ललितं चारु [5]वेणुनादविनोदिनम् ॥ ३६ ॥
पीताम्बरधरं चारु वनमाला[6]सुशोभितम् ।
रत्ननूपुरसंशोभिचरणाम्भोरुहद्वयम् ॥ ३७ ॥
गोपालैरपि गोपीभिर्वेष्टितं परमाद्भुतम् ।
एवं विमोहिताः [7]सर्वा निरस्तास्ताः कुमारिकाः ॥ ३८ ॥
विभ्रान्तमनसस्तत्र ददृशुस्त्रिपुरेश्वरीम् ।
भैरवैर्भैरवीश्च मिलितां योगिनीगणैः ॥ ३९ ॥
सापि ता आह अद्यापि यूयमत्र स्थिताः कथम् ।
राधिकान्वेषणं त्यक्त्वा किमर्थं मत्पुरःस्थिताः ॥ ४० ॥
श्रुत्वैतन्मोहितात्मानस्तस्मात् स्थानाद्विनिर्गताः ।
ममैव सन्निधिं प्राप्तास्त्रिपुरानिकटं गताः ॥ ४१ ॥
ददृशुस्तत्र ताः कृष्णं मां राधा तुलिताकृतिम् ।
तामेव देवीं त्रिपुरां राधाप्रियसखीमिव ॥ ४२ ॥
तास्ततो निकटे स्थित्वा राधारूपधरं च माम् ।
प्राहुः प्रेमरसोन्मिश्रं मधुरालापमुत्तमम् ॥ ४३ ॥
हे राधे सुभगे कृष्ण[8]मनोहारिणि हारिणि ।
इतो गच्छ समीपे त्वं कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ४४ ॥
राधां सखि ज्ञापयस्व कृष्णं वृन्दावनेश्वरम् ।
तं [9]विहायापि [10]तिष्ठन्त्याः किं सुखं देवि कथ्यताम् ॥ ४५ ॥

---

१. चेष्टां चक्रुर्बहुविधां—क. ङ. । २. आसक्ता मोहनं—क. । ३. 'च'नास्ति-क. ख. । ४. दर्शनं—क. ख. । ५. वेणुवाद—ङ. । ६. विशोभितम्—क. ङ. । ७. 'सर्वा'इत्यारभ्य 'श्रुत्वैतन्मोहिता'इति पर्यन्तं पाठो नास्ति—ख. । ८. मनोहारि विहारिणि—ङ. । ९. विहायात्र—ङ. । १०. तिष्ठन्त्यः—ङ. ।

इत्थं प्रजल्पितं तासां श्रुत्वालोच्य च ता मुहुः ।
परिक्लिन्नधियः सर्वा जहासाहं शनैः शनैः ।
तथैव त्रिपुरेशानी प्रहसन्ती जगाद माम् ॥ ४६ ॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

किमाभिरुक्तं नौ नाथ स्त्रीत्वपुंस्त्वविपर्ययम् ।
तया हि मोहिता एता उन्मत्ता इति मे मतिः ॥ ४७ ॥
आज्ञापय महादेव गोपान् स्वाङ्गसमुद्भवान् ।
बद्ध्वैतास्तत्र रक्षन्तु श्रीदामसुबलादयः ॥ ४८ ॥
ततोऽहं प्रसहद्वक्त्रो लीलया सर्वमोहनः ।
गोपानाज्ञापयामास बन्धयैता भ्रमाकुलाः ॥ ४९ ॥
ततो मद्वचनात् सर्वे गोपालास्ताः कुमारिकाः ।
बद्ध्वा श्रीमन्दिरे देवीः स्थापयामासुरुन्मदाः ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये
सर्वसंक्षोभिण्यादिशक्तिसर्वज्ञादिदेवोमोहनं
नाम [१]विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥



१. 'विंशोऽध्यायः' नास्ति—क. ।

एकविंशोऽध्यायः

श्रीबलराम उवाच

बद्धासु तासु मुग्धासु कथ्यतां किमभूत् ततः।
कौतूहलमिदं श्रुत्वा हृदये मम वर्द्धते ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

सर्वसंक्षोभिणीशक्तिसर्वज्ञाद्यासु तास्वथ।
विमुग्धासु निबद्धासु यदभूत् तन्निशामय ॥ २ ॥
ततोऽन्याः [१]शक्तयस्तस्याः कण्ठमूलाद्विनिर्गताः।
प्रथमा वशिनी चैव विमला मोदिनी परा ॥ ३ ॥
कामेश्वरी कौलिनी च [२]अरुणा जयिनी तथा।
सर्वेश्वरी च सर्वेषां भुक्तिमुक्तिप्रदा इमाः ॥ ४ ॥
ताः पुरस्तान्महादेव्या बद्धाञ्जलिपुटा मुहुः।
[३]निरीक्षन्त्यो मुखाम्भोजमथोचु[४]र्धीरया गिरा ॥ ५ ॥

वशिन्यादिका ऊचुः

किं करिष्याम हे देवि समाज्ञापय साम्प्रतम्।
[५]किङ्कर्यस्तव नान्यस्या वयं देवि [६]प्रसीद नः ॥ ६ ॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

वशिन्याद्याः शृणुध्वं मे वचनं सर्वमोहनाः।
याः प्रेषिता मया पूर्वं [७]किञ्चि[त्] कर्त्तुं तु नाशकन् ॥७॥
ताभ्यो गुणाधिका यूयमत एव ममाग्रहः।
इदानीं प्रेषयिष्यामि भवतीः प्रियवादिनीः ॥ ८ ॥
कृष्णः सतृष्णः सततं राधायामधिकं चिरम्।
तामन्वेषयताद्यैव चतुराः सर्वतोगमाः ॥ ९ ॥

---

१. शतशस्तस्याः—क. ख.। २. ब्रह्मणां जयिनी तथा—क. ख.। ३. निरीक्षन्तो—क. ख.। ४. घोरया—ङ.। ५. किं कार्यं तव—रु. ख.। ६. प्रसीदत—ख.। ७. किं च कर्त्तुं—क. ख.।

प्रयात [१]विपिनं घोरं यत्नं कुरुत सत्तमाः ।
यत्ने कृते न सिद्धिश्चेन्नरो(न्न वो) दोषो(षा) न चागुणाः ॥१०॥
ततस्ताः शक्तयः सर्वा गत्वा वृन्दावनान्तरम् ।
तुष्टुवुर्मधुराभिश्च [२]वाग्भिस्तामीश्वरेश्वरीम् ॥ ११ ॥

वशिन्याद्या ऊचुः

जय जय राधे [३]कृतनतराधे जगदभि[४]वन्द्ये सुरवरवन्द्ये ।
धृतबहुरूपे [५]स्मरमत्ररूपे सरसिजवक्त्रे सुमदिरनेत्रे ॥ १२ ॥
जय धृतहारे त्रिभुवनसारे विगतविकारे मधुर[६]विचारे ।
विकलितसाम्येऽखिलजनकाम्ये रसमयि सौम्ये प्रतिहतवान्ये(म्ये)
॥ १३ ॥

जय जय कान्ते जगति सुशान्ते सुखमयि दान्ते करहिलतान्ते ।
सहृदयमान्ये गुणगणधान्ये युवजनगण्ये धृतलावण्ये ।
कुशलवदान्ये कृतरसवन्ये वृन्दारण्येश्वरि सुरकन्ये ॥ १४ ॥

जय जय सकल सकलसीमन्तिनि सीमन्त[७]प्रान्तसमुद्योतमानमणि-दिन[८]मणिद्युतिदीपितचरणसरसीरुह[९]विलुठत् सुरासुरनरोरगदानव-गन्धर्वाप्सरोयक्षरक्षोलक्षकोटि[१०]कोटिहाटकस्फुटमुकुटकोटिपरिसङ्घ-ट्टनकोलाहलकलकलीविकलीकृतो(त)कुण्डप्रचण्डब्रह्माण्डव्यूहचमत्का-रचकितलोकशोकसङ्घातघातनदक्षे ॥ १५ ॥

जय जय शम्बरवारण[११]कलाकलापसमलङ्कृतवरकलेवरकान्ति-विनिन्दितविद्योतमानबहुमानविद्युतिद्युतिसन्ततिसन्ततसन्तप्तकाञ्च-नसञ्चितविमलविशालकमलमालाप्राघुणकीकृतसमुन्मदमत्तमतङ्ग(ज ?)राजो(ज)[१२]जृम्भमानकुम्भ[१३]समारम्भोत्तुङ्गपीनपयोधरधराधर-तटनिकटप्रकटितमुक्तामुक्तहारजह्नुदुहितृसख्ये ॥ १६ ॥

---

१. विपिने घोरे—क. ख. । २. वाग्भिरीश्वरेश्वरीम्—क., वाग्भिश्चेश्वरेश्वरीम्—ख. । ३. कृतेनतवाद्ये—क. ख. । ४. नन्द्ये—ङ. । ५. स्मरमथयूपे—ङ. । ६. विकारे—क. ख. । ७. 'प्रान्त' इत्यस्य स्थाने 'द्योत'—क. । ८. मानद्युति—ङ. । ९. विलसत्—ङ. । १०. 'कोटि' नास्ति—क. ङ. । ११. कलकलाय सम—क. ख. । १२. च भृङ्गमणिकुम्भ—ङ. । १३. समानो कुम्भपीन—क. ।

जय जय चिकुर निकुरम्बसम्वलमालनवमालिका मालिकाधिरोह[1]माणरोलम्बगण[2]झङ्कार[3]सञ्चारितपूर्णशशधर[4]निरुद्धप्रवुद्धसैंहिकेय[5]संशोभाप्रभावे ॥ १७ ॥

जय जय जननि[6]जननिकरवरप्रदानकरणसमयसमयिता[7]लीलान्दोलविलोलप्रकटकटाक्षमोक्षा॑नुसन्धानविधानदक्षस्मेरसुधासारासारस्नापितकातर[8]नरसतृष्ण[10]तृष्णस्मारित[11]स्मर[12]विभवे ॥ १८ ॥

जय जय नभोमण्डलमण्डनाय मानप्रचण्डचण्ड[13]किरणकिरणावधीरण[14]धीरसीमन्तसिन्दूर[15]पूरण[16]पाटलच्छटापटलपरिपाटी[17]पाटितसूचीसूच्यमानसंसार[18] सागरप्रचुरसन्तप्तसविदूरीकारकारितपदार्थ[19]सञ्चार[20]विजनचातुरीकचराचरलोकसमस्ते ॥ १९ ॥

जय जय प्रणतिसन्ततिसन्तताभुज्यमानभुजाग्रावलम्बारम्भसंवलमानप्रकटजटापटलीसमालीढमूर्धाभि[21]रुद्धेद्धिरनिबद्धकर[22]पुटाञ्जलिभिः सुचतुरचतुराननचतुराननी प्रणीयमानवेदनिर्वेदवचनरचनोपायने नर्यमिभिरपि शमितषडमित्रचरित्रैश्चिर[23]कमिते नमिते नमितेऽस्तु नमस्ते ॥ २० ॥

जय जय [24]दामिनि मायिनि मातः परमपि वरमिह यामो नातः ।
[25]कलय दृगन्तं सकलकलाढ्ये जीवतु कृष्णो विगलितजाड्ये ॥ २१ ॥
जय जय जय जय [26]रसमयि राधे प्रणतजनानां प्रतिहतबाधे ।
यदि कुरुषे करुणामरुणाक्षि कलयति जीवं जीवनसाक्षि ॥ २२ ।

---

१. मणिरो—क. ख. । २. हुंकार—क, टंकार—ख. । ३, इतः पूर्वं 'सञ्चारण'-क. ख. । ४. निबद्ध—क. ख. । ५. 'सं'नास्ति—क. ङ. । ६. 'जननि' नास्ति—ङ. । ७. लीलानू लोलविलोल—क. ख. । ८. क्षस—ङ. । ९. नरसंतृप्त-तृष्ण—ख., तरतरसतृष्ण—ङ. । १०. 'तृष्ण'नास्ति—क., कृष्ण—ङ. । ११. स्मार—क. ख. । १२. विभावे—ङ. । १३. 'किरण'नास्ति—ङ. । १४. धार—क. ख. । १५. 'पूरण'इत्यस्य स्थाने 'पूर'—ङ. । १६. पटल—क. ख. । १७. इतः पूर्वं 'र'—ख., 'पाटर'—ङ. । १८. सार—ङ. । १९. संवार—ख. । २०. विवेचन—ङ. । २१. रुध्वोर्ध्वर—ङ. । २२. पुटाङ्गुलिभिः—ङ. । २३. क्रमिते—क. ख. । २४. दायिनि—ङ. । २५. कलपदगतं—क. ख. । २६. 'रसमयि'इत्यस्य स्थाने 'गुण'—क. ख. ।

या कन्दर्पकलाकलापकुशला लोकत्रयी मोहनी
यां नित्याममरा वराय नितरां सम्प्रार्थयन्ते चिरम् ।
मुह्यन्ति स्म मुनीश्वरा अपि यया यस्यै नमस्कुर्वते
यस्या [1]साधुहृदो विदन्ति चरितं यस्या न वेदाः कदा ॥ २३ ॥
यस्यां भक्तिधृतो मनोऽपि न मनाक् कुर्वन्ति नाकेषु नः
मोक्षे शक्रपदे पदे हिमतनोः कौवेरके सौरके ।
ब्राह्मे वर्त्मनि सर्वभौम[2]मुखजे वाष्टासु सिद्धिष्वसौ
शश्वद् विश्वजनीन [3]कर्मणि पुनः राधा प्रसन्नास्तु सा ॥ २४ ॥
एवं स्तुता महादेवी ता आहानन्दरूपिणी ।
अपाङ्गरङ्गभङ्गया [तु] रिङ्गयन्य[न्त्य]वर्जितम् ॥ २५ ॥

श्रीराधा उवाच

शृणुध्वं शक्तयः सर्वास्तथ्यं पथ्यं हितं वचः ।
न मत्तोऽप्यधिका काचित् प्रकृतिः पुरुषोऽपि कः ॥ २६ ॥
अहमेव परंब्रह्म पुरुषः श्यामविग्रहः ।
अहं सा परमा शक्तिः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ॥ २७ ॥
अहं [4]तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं ज्योतिर्निरञ्जनम् ।
अहमानन्दरूपाऽस्मि कृष्णोऽसौ रसविग्रहः ॥ २८ ॥
प्रेमस्वरूपा सा देवी महात्रिपुरसुन्दरी ।
विना प्रेमरसो नास्ति न चानन्दो रसं विना ॥ २९ ॥
प्रेमानन्दो रसश्चैव एक [5]एव न संशयः ।
[6]तस्माद् यन्त्रविधाते(ने)न नौषधैर्मणिभिर्न माम् ॥ ३० ॥
अपि कृष्णो [7]वशयितुं न शक्तः [8]किमुतापरे ।
शक्तिहीनस्य नानन्दो न प्रेमरस एव वा ॥ ३१ ॥
अहं तु परमा शक्तिः श्रीकृष्णहृदयस्थिता ।
सख्यो नाहं पराधीना स्वतन्त्रा सर्वदाऽस्म्यहम् ॥ ३२ ॥

---

१. सबुद्बुदो—क. ख. । २. सुखतो वा—क. ख. । ३. कर्मनिपुणा रा—क. ख. । ४. तव परमं ब्रह्म सूच्मज्योति—क. । ५. एक न—क. ख. । ६. तस्मान्नानुविधानैश्च नौषधै—ङ. । ७. वश्ययितुं—क. ख. । ८. किमुतापरः—क. ख. ।

श्रीकृष्णाकर्षिणीशक्तिर्न [1]मां कर्षितुमर्हथ ।
सदा प्रधानरूपेण परंब्रह्माऽहम[2]व्ययम् ॥ ३३ ॥
वृन्दावनेऽस्मिन् तिष्ठामि नित्यानन्दस्वरूपिणी ।
कृष्णोऽपि शक्तिरहितः कर्त्तुं शक्नोति(क्तो न) किञ्चन ॥३४॥
तस्यापि शक्तिरूपाहं राधिका सर्वतोऽधिका ।
यदि मत्तोऽधिकः कृष्णो भवतीभिर्हि मन्यते ॥ ३५ ॥
तदा किं मां वशीकर्तुमेष एव महान् [3]श्रमः ।
यावत् प्रेमरसैः शुद्धः स हि कृष्णो भविष्यति ॥ ३६ ॥
तावन्ममानन्दयोग्यो न चोपायशतैरपि ।
कृष्णदूत्यः किमर्थं मां कदर्थयत दुर्धियः ॥ ३७ ॥
पुनर्गच्छत तत्रैव यत्र ते प्रकृतिः परा ।
श्रुत्वैतद्वचनं तस्या निरस्तास्ताः किशोरिकाः ॥ ३८ ॥
त्रिपुराद्यां समासाद्य [4]सर्वमुक्तं न्यवेद[5]यन् ।
निवेदितं समाकर्ण्य तासां योगेश्वरेश्वरी ॥ ३९ ॥
असृजत् पुनरन्याश्च सर्वाधारस्वरूपिणी ।
[6]नितम्बदेशात् सुन्दर्यो [7]निर्गताः स्म मनोहराः ॥ ४० ॥
कामेश्वरी कामरूपा तथा वज्रेश्वरी परा ।
भगमालिनी महादेवी [8]संमुखीना [9]वराननाः ।
तस्याः सारूप्यमापन्नाः प्रोचुर्वाचातिघोरया ॥ ४१ ॥

कामेश्वर्यादय ऊचुः

किं करिष्याम कल्याणि कल्याणं नो विधीयताम् ।
निदेशं कुरु [10]किङ्कर्यो वयं स्वामिनि सुन्दरि ॥ ४२ ॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

चपलं चपला यूयं गच्छत स्वच्छमानसाः ।
राधिकामतिसंशुद्धामानीयास्मै निवेदय ॥ ४३ ॥

---

१. मार्कर्पितु–ङ. । २. व्यया–ङ. । ३. क्रमः–क. ख. । ४. सर्वमसुं–क., सर्वासुं–ख. । ५. यत–क. ख. । ६. नितम्बवरप्रदेशात–क. ख. । ७. निर्गता-स्या मनो–ङ. । ८. सुमु–क. ख. । ९. वरानना–ङ. । १०. किं कार्यो–क. ख. ।

इत्येवं प्रेषितास्तास्तु पुनरूचुर्गुरुस्वराः ।
[1]उत्पन्नाः शक्तयः सर्वाः पुरो देव्याः [2]समुद्भूटाः ॥ ४४ ॥

कामेश्वर्यादय ऊचुः

प्रेम्णा तां वशयिष्यामः क्व यास्यत्यद्य राधिका ।
अस्माभिर्यन्न शक्यं स्यात्तन्न शक्यं हि भूतले ॥ ४५ ॥
आनयि[3]ष्यामोऽद्य राधामिति सत्यं सुनिश्चितम् ।
पथि विघ्नाः [4]पलायन्तां [5]दीयन्तां पदरेणवः ॥ ४६ ॥
इति श्रीत्रिपुरेश्वर्याश्चरणाम्भोरुहान्तिके ।
विश्राम्य मूर्धभ्रमरान्निर्ययुः फुल्लमानसाः ॥ ४७ ॥
ततोऽध्वनिसलीलास्ता विजह्रुः कामचेष्टितम् ।
मोहिता राधया देव्या जानन्ति स्म न किञ्चन ॥ ४८ ॥
शनैः शनैः चलन्तीसु तासु कौतुकभाषणैः ।
लम्पटासु कामकेलौ चलद्रक्तपटास्वथ ॥ ४९ ॥
आन्दोलितभुजद्वन्द्वहेलितोद्धूतमूर्धसु ।
सर्वान्तर्यामिनी देवी विमुखी राधिकाऽभवत् ॥ ५० ॥
इत्थं विचिन्तयन्ती [6]च कामिनी [7]कामनीतितः ।
एता माया प्रेमयोगान्मां वशीकृत्य सादरम् ॥ ५१ ॥
कृष्णप्रिया भविष्यन्ति [8]लप्स्यन्ते मानमाननाम् ।
अहं नाहङ्कारिजने प्रीतास्मि गतदूषणा ॥ ५२ ॥
अहङ्कारात्परं पापं तापकृन्नास्ति [9]कोऽपि यत् ।
अहङ्का[10]रान्धकारस्य [11]भावैरन्धीकृते[12]क्षणाः ॥ ५३ ॥
आत्मानमपि नेक्षन्ते किं जनान् [13]तु परान् पुनः ।
अहङ्कारावृतानां च जनानां सुकृतं नहि ॥ ५४ ॥
मातापित्रोर्वधे येषां चेतो [14]नो गणयेद् व्यथाम् ।
अहङ्कारोऽपि येषां स्यात् तेषां गुणशतेन किम् ॥ ५५ ॥

---

१. सशर्वाः—क. ख. । २. समुद्भुताः—ङ. । ३. ष्यास्यद्य—क. ख. । ४. पलायन्तो—क., पलायन्तु—ख. । ५. दीयतां—ख. । ६. 'च'इत्यस्य स्थाने 'व'—क. ख. । ७. कमिनीप्सितः—ङ. । ८. लब्ध्वान्ते सानमानिनाम्—ङ. । ९. कोपि चित्—ख. । १०. राधिकार—क. ख. । ११. तानेवं धीकृते—क. ख. । १२. चणः—ख. । १३. 'तु'नास्ति—ङ. । १४. न—क. ख. ।

धूलिधूसरदेहस्य शुद्धिः स्नानैर्गजस्य [1]च।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधौ तासां पश्यन्तीनां [2]प्रियव्रता ॥ ५६ ॥
ततस्ताः विस्मयाविष्टाः [3]सर्वा मम भयातुराः।
[4]विचेरुर्विपिनं सर्वं राधान्वेषणकातराः ॥ ५७ ॥
[5]वाराधन्ते(?) च नियतं राधे राधे क्व गच्छसि।
[6]क्वासि राधे क्वासि राधे दृष्टिं नो देहि साम्प्रतम् ॥५८॥
ततोऽलब्ध्वा वरारोहा निरस्ता विमुखा गताः।
देव्यै निकटमासाद्य सर्वमेतन्न्यवेद[7]यन् ॥ ५९ ॥

कामेश्वर्यादय ऊचुः

[8]आश्चर्यरूपं तद्दृष्टं श्रुतं तन्मुखनिर्गतम्।
आश्चर्यवचनं साधु मुनीनामपि मोहनम् ॥ ६० ॥
मातर्मातः क्षमस्वाद्य नास्ति नो दोषलेशकः।
किञ्चित् कर्त्तुं न शक्ताः स्मो [9]यद्युक्तं तद्विधीयताम् ॥ ६१ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये वशिन्यादिवाग्देवीकामेश्वर्यादिमोहने राधानिजतत्त्वप्रकाशनं नामै[10]कविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥



१. वा—ङ.। २. प्रियतां गता—क. ख.। ३. सर्वाश्चैव भ—ङ.। ४. विचेरुर्भवनं—क. ख.। ५. वाण्न्ते—क. ख.। ६. क्वासि क्वासि गता राधे—क. ख.। ७. यन—क. ख.। ८. आश्चर्यसम्पन्नं दृष्टं—ख.। ९. यदुक्तं—ङ.। १०. 'एकविंशोऽध्यायः' नास्ति—ङ.।

द्वाविंशोऽध्यायः

श्रीबलराम उवाच

[1]अप्येतासु निरस्तासु विलोक्य किं चकार तत् ।
कथ्यतां परमेशान श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

निरस्तास्वथ सर्वासु शक्तिष्वेतासु सर्वतः ।
षोडशाभरणस्थानात् जनिता अपरास्तया ॥ २ ॥
दूत्यस्ताः कामरूपिण्यो राधान्वेषण[2]संयताः ।
कामेश्वरी नित्यक्लिन्ना भेरुण्डा भगमालिनी ॥ ३ ॥
महा[3]विद्येश्वरी दूती त्वरिता वह्निवासिनी ।
कुलसुन्दरी च विजया तथा ज्वालांशुमालिनी ॥ ४ ॥
श्रीसर्वमङ्गला देवी विचित्रा बहुरूपिणी ।
आनन्दरूपिणी चैव आशिरोमणितः शुभाः ॥ ५ ॥
आपादकटकस्थानं विनिर्गत्य पुरः स्थिताः ।
आज्ञप्तासु महादेव्या सर्वभूतमनोहराः ॥ ६ ॥
मोहनाय राधिकायाः प्रतिजग्मुः समन्ततः ।
[4]प्रीतिसुस्निग्धवाग्बाणाः स्वनामसदृशक्रियाः ॥ ७ ॥
स्वनामसदृशाकारा [5]उपतस्थुर्हरिप्रियाम् ।
विलोक्य राधां ता देव्य ऊचुः प्राञ्जल[6]योऽग्रतः ॥ ८ ॥

कामेश्वर्यादिका ऊचुः

देवि किं ते व्यवसितं न जानीमो वयं शुभे ।
[7]योग्यकार्ये विरक्ताऽसि किमकार्ये कृताग्रहा ॥ ९ ॥
योग्या त्वं देवि कृष्णस्य कृष्णो [8]योग्यस्तवैव हि ।
महामरकतेनैव [9]समागच्छतु काञ्चनम् ॥ १० ॥

---

१. अध्येताः सुनिरस्ताः सा विलो–ङ. । २. संयुताः–क. ख. । ३. विश्वेश्वरी–क. ख. । ४. प्रीतिस्तु सुस्नि–क. ख. । ५. उपतस्थुर्हरि–ङ. । ६. योगतः–क. ख. । ७. योगकार्ये–क. ख. । ८. योग्यस्तथैव–ख., योग्यस्तु वैव–ङ. । ९. समाकाङ्क्षतु–क. ख. ।

त्वमेव योग्या तस्यैव स योग्यस्तव कामिनी ।
[1]योग्याया योग्यसम्बन्धो जायते शुभकारणम् ॥ ११ ॥
त्वदर्थं प्रेषिता देव्या श्रीकृष्णप्रार्थ्यमानया ।
अत्यन्तं कौतुकाविष्टा देवि त्वन्निकटस्थिताः ॥ १२ ॥
तथा त्वन्मनसः साध्वि त्वामानेतुं समागताः ।
वयं राधे रसमयी गम्यतां निजकाम्यया ॥ १३ ॥
श्रीकृष्णे यत् तव प्रीतिः कोटिकन्दर्पमोहने ।
तस्मादस्माद् वनाद् गच्छ स्वेच्छाकृष्णस्य सन्निधिम् ॥ १४ ॥
श्रुत्वैतद्‌वचनं राधाऽसाधारणरसाऽवशा ।
उवाच मधुरां वाणीं समानीय स्मितामृतम् ॥ १५ ॥

श्रीराधिका उवाच

कस्याधीनास्मि सुभगा भविष्यामि समीपगा ।
स्वेच्छयाऽ[2]त्र [3]तमिच्छामि यदि योग्यो भवेन्मम ॥ १६ ॥
यदि योग्यो भवेत् कान्तः कान्तः सर्वगुणान्वितः ।
तथापि न स्वयं नार्या गम्यते परमः पुमान् ॥ १७ ॥
न मेऽर्थस्तत्र गमने शक्तिरस्ति नयन्तु माम् ।
भवत्योऽप्यथवा देवी कृष्णो वा कृष्णबान्धवाः ॥ १८ ॥
इत्थं सगर्ववचनं श्रुत्वा [4]रोषपरिप्लुताः ।
देव्यै निवेदयामासु(सू) रतिमानमदोद्धता ॥ १९ ॥

कामेश्वर्यादय ऊचुः

देवि राधा वरारोहाऽखर्वगर्वाऽतिमानिनी ।
तिरस्करोति गोविन्दमपि त्वां च वयं च काः ॥ २० ॥
न शक्यते तु तत् सोढुमवमानवचस्त्वयि ।
भवत्या यदि शक्तिः स्यात् तदा तामानय द्रुतम् ॥ २१ ॥
सत्यमुक्तं महेशानि [5]कार्यः [6]परिकरो दृढ़ ।
वयं न शक्ता जगतां जननी त्रिपुरेश्वरि ॥ २२ ॥

---

१. 'योग्ययोर्योग्य' इति पाठः संशोध्यात्र मूले स्थापितः । २. 'त्र' नास्ति-क. ङ. । ३. एतदिच्छामि—ङ. । ४. रोषोपत्रिप्लु ाः—ख. रोष परिस्फुटाः—ङ. । ५. कार्यं—क. ख. । ६. परिकरोति दृढः—ङ. ।

एवमालोच्य यद्युक्तं भगवत्या विधीयताम् ।
ततः श्रीबलरामासौ त्रिपुरा सा पुरातनी ॥ २३ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामकरोत् क्रोधमुद्भटम् ।
ततः क्रुद्धा जगन्माता [1]रोषताम्रमुखाम्बुजा ॥ २४ ॥
अरुणा[2]रुणिमोद्दामलोचनी शोकमोचनी ।
देहादुत्पादयामास योगिनीडाकिनीगणान् ॥ २५ ॥
राधादेव्याः [3]सर्वसेव्या समाकर्षण[4]कर्मणे ।
आधारादुद्गतास्तस्या डाकिनी देहनाशिनी ॥ २६ ॥
योनिरन्ध्राद् डा(रा)किनी [5]च लाकिनी नाभिदेशतः ।
काकिनी हृदयाज्जाता शाकिनी [6]कण्ठदेशतः ॥ २७ ॥
भ्रुवोर्मध्यान्महेशान्या हाकिनी हंसरूपिणी ।
विकृतास्या दुराधर्षा रक्तमांसा[7]श(स)वप्रिया ॥ २८ ॥
[8]नाशाय राधिकायास्ता जग्मुर्वृन्दावनं वनम् ।
काचिद् [9]वृन्दां वनचरीं राधिकासहचारिणीम् ॥ २९ ॥
जग्राह पाणिना काचिद् जघान प्रमदोत्तमाम् ।
दंष्ट्राकराल[10]वदना भक्षयामास [11]चापराम् ॥ ३० ॥
[12]कोमलाङ्ग्या भीषणाङ्गी शिरश्चिच्छेद पाणिना ।
धृत्वा पादद्वये [13]काश्चिद् भ्रामयामास भूतले ॥ ३१ ॥
शिलायां पातयामास काचिद् भीम[14]घनस्वना ।
[15]एतद्दृष्ट्वा महादेवी राधाऽसाधारणक्रिया ॥ ३२ ॥
जहासाधर[16]बिम्बान्त[17]र्लसत्कुसुमदाडिमा ।
ततः स्वदृष्टिसुधया जीवयामास ताः क्षणात् ॥ ३३ ॥
राधा भगवती देवी देवीनामवने स्थिता ।
उत्तस्थुर्जीवितास्तत्र [18]गतस्वप्ना इव क्षणात् ॥ ३४ ॥

---

१. ताम्रताम्र–ङ. । २. रुणिमो–ङ. । ३. 'सर्वसेव्या' नास्ति–क. ख. । ४. कर्मणाः–ङ. । ५. 'च' इत्यस्य स्थाने 'व' इति–ख. । ६. नालदेशतः–क. ख. । ७. रसप्रियाः–क. ख. । ८. नाशये–क. । ९. वृन्दावनचरीं–ङ. । १०. वचना–क. ख. । ११. चापरा–ख. ङ. । १२. कोमलाङ्गा–ङ. । १३. काचिद्–क. ख. । १४. घनाम्बुना–ङ. । १५. एतच्छ्रुत्वा–ङ । १६. बिम्बा तर्हिनल्ल-सत्कुसु–क. ख. । १७. नीलदशनदाडिमा–ङ. । १८. गतसुप्ता–ङ. ।

ता आह्वानाहसा देवी किमिदं किमिदं क्षणात् ।
युष्मादृशां दृशा दृष्टमद्यैव विपिने मया ॥ ३५ ॥
इत्येवमासीत सा धारा रोषानलसमाकुला ।
प्रोत्फुल्लरोमस्तोमा च ताम्रताम्रास्यमण्डला ॥ ३६ ॥
ततः [1]क्रुद्धा जगन्माता राधा त्रिभुवनेश्वरी ।
देहादुत्पादयामास सा शक्तीर्विवृताननाः ॥ ३७ ॥
[2]महोग्रा भीमननदा भीमा मरकतप्रभाः ।
ताः क्षणाद् [3]उद्गता [4]देव्यो जवालोहितलोचनाः ॥ ३८ ॥
या सा घोरस्वरेणैव कोटिब्रह्माण्डखण्डनम् ।
डाकिनीभिर्योगिनीभिर्युयुधुर्युधि दुर्मदाः ॥ ३९ ॥
हस्तपादप्रहारैश्च शूलपट्टिशमुद्गरैः ।
परिघैस्तोमरैः खड्गैर्बाणैः कोटिसहस्रशः ॥ ४० ॥
शक्तिभिस्तरु[5]सङ्घातैः शिला[6]जालस्य वृष्टिभिः ।
[7]ऋष्टिभिर्मुष्टिघातैश्च दण्डादण्डि रदारदि ॥ ४१ ॥
ऐन्द्रैरस्त्रैस्तथाऽऽग्नेयैर्याम्यैर्नैऋतकैस्तथा ।
वारुणैर्वायवै [8]राम कौबेरैः शाम्भवैरपि ॥ ४२ ॥
हलाहलैः कालकूटै[9]रारकूटस्य कूटकैः ।
लोष्ठैश्च लोहलगुडैः पार्जन्यैर्गदया तथा ॥ ४३ ॥
मुसलेन हलेनापि चक्रचक्रेण [10]पाशकैः ।
बाहुयुद्धैः [11]पार्श्वयुद्धैः केशाकेशि नखानखि ॥ ४४ ॥
अभूद् युद्धं सुतुमुलं सर्वेषां लोमहर्षणम् ।
अकालप्रलयं लोकाः [12]शोकाकुलितमानसाः ॥ ४५ ॥
मेनिरे धरणी देवी चकम्पे सर्वतोभयात् ।
ततस्ताभिः प्रकृतिभिर्डाकिन्याद्याः पराजिताः ॥ ४६ ॥
[13]पलायनपराः सर्वास्त्रिपुराशरणं ययुः ।
ततो विरक्तास्ताः सर्वा याश्च पूर्वं समागताः ॥ ४७ ॥

---

१. क्रमाज्जगन्माता–ङ. । २. महोग्रभीम–ङ. । ३. उद्धता–क. ख. । ४. देव्या–ख. । ५. सम्पातैः–ङ. । ६. जलस्य–ङ. । ७. रिष्टि–ङ. । ८. वाम–ङ. । ९. वीरकूट–ङ. । १०. केशकैः–क. ख. । ११. पाशयुद्धैः–क. ख. । १२. शोकाद्गलित–क. ख. । १३. 'पलायन''''गन्तुमुद्यता' इति श्लोकद्वयं नास्ति–ङ. ।

शक्तीनां क्रन्दनं दृष्ट्वा समुद्विग्नहृदाकुला।
क्रोधादारक्तनयनाश्चञ्चला गन्तुमुद्यता ॥ ४८ ॥
ता आलक्ष्य महादेवी राधा त्रैलोक्यसुन्दरी।
[1]मोहयामास रूपेण वल्गुवाक्येन [2]सुन्दरी ॥ ४९ ॥
ततः क्षणान्तरे तस्या गोप्यो लक्षसहस्रशः।
वामाङ्गतः समुत्पन्नाः कोटिकन्दर्पमोहनाः ॥ ५० ॥
त्रैलोक्यमोहनेनैव रूपेणात्यद्भुतेन च।
स्तम्भयन्त्यश्च ताः शक्तीः त्रिपुरादेहसम्भवाः ॥ ५१ ॥
[3]ह्लींकारपुटितं कृत्वा यस्या नाम जजाप सा।
सा तस्या वशमापन्ना चरणं शरण गता ॥ ५२ ॥
एकैका गोपी तासां वै सर्वासामपि मोहिनी।
ततस्तस्या महादेव्या दक्षिणाङ्गान्मनोहरात् ॥ ५३ ॥
आविर्भूताः [4]कोटिकोटिकन्दर्पदर्पसंयुताः।
चारुप्रसन्नवदना उन्मत्ता दिव्यरूपिणः ॥ ५४ ॥
दिव्यपुष्पधनुर्बाणधरा मरकतप्रभाः।
दिव्य[5]माल्याम्बरधरा दिव्यालङ्करणोज्ज्वलाः ॥ ५५ ॥
मोहयन्तो वनं सर्वं विचेरुः [6]कामरूपिणः।
तान् दृष्ट्वा त्रिपुरादेहसम्भवाः प्रमदोत्तमाः ॥ ५६ ॥
मुमुहु रूपलावण्यस्मितसम्भाषणैर्गुणैः।
ततो राधा महादेवी दूतीभूय जगन्मयी ॥ ५७ ॥
तासां [7]सामीप्यमागत्य विस्मयोत्फुल्ललोचना।
वाग्भिस्ता मोहयामास कामरूपमहोदयाः ॥ ५८ ॥

श्रीराधिका उवाच

हे देव्यः किं वृथा चारु यौवनं कुरुथ प्रियाः।
लतानां किं प्रसूनैस्तैर्यदि नो भृङ्गसङ्गमः ॥ ५९ ॥
मनःप्रीतिकरं सुष्ठु [8]यौवतानां च यौवनम्।
विना पुरुषसङ्गत्या लोके केवलभर्त्सनम् ॥ ६० ॥

---

१. मोदया—क. ख. । २. सुन्दरीः—ङ. । ३. शृङ्गारपुटितं—ङ. । ४. कोटिकन्दर्पदर्पहरणसंयुताः—क. ख. । ५. मालाम्बर—क. ख. । ६. कर्मरूपिणः—ख. । ७. समीपमागत्य—ङ. । ८. यौवनानां—क. ख. ।

यौवनं दुर्लभं स्त्रीणां दुर्लभः सत्समागमः ।
तच्छृणुध्वं [1]मम [2]वचो हृदयं [3]कुरुत स्थिरम् ॥ ६१ ॥
[4]पश्यतैतान् सुपुरुषान् नानारूपगुणान्वितान् ।
कामिन्यः कामरूपिण्यः कामयध्वं यथासुखम् ॥ ६२ ॥
यूयमेभिर्विहरत [5]यदि वः सुखमिच्छथ ।
कामिनीनां वृथा प्राणास्तारुण्यं रूपसञ्चयः ॥ ६३ ॥
यदि पुंसङ्गमो नास्ति सत्यं सत्यं न संशयः ।
[6]एवमुक्त्वा महादेवी कामार्ता लज्जयान्विताः ॥ ६४ ॥
अधोमुखीर्हसद्वक्त्रा आनन्दोत्फुल्ललोचनाः ।
पुरुषैर्योजयामास निजदेहसमुद्भवैः ॥ ६५ ॥
[7]ततस्तस्याः समुद्भूताः [8]देहाद् गन्धर्वकिन्नराः ।
[9]विहारानन्दसानन्दा विमुग्धहृदया मुहुः ॥ ६६ ॥
वृन्दावनचराः सर्वे नृत्यगीतपरायणाः ।
तत्र दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ ६७ ॥
ततस्तैः पुरुषैर्नित्यं रममाणा मुहुर्मुहुः ।
[10]वृन्दावनचराः सर्वे नृत्यगीतपरायणाः ॥ ६८ ॥
राधिकावशमापन्नास्तस्थुर्वृन्दावने चिरम् ।
एवं तासु प्रकृतिषु चिरं वश्यासु सर्वतः ॥ ६९ ॥
विस्मितात्मान आसंस्ते ये वृन्दावनवासिनः ।
अहो किं वा वर्णयामो राधादेव्या विमोहनम् ।
स्तम्भनं परनारीणां [11]परैः संयोजनं जनैः ॥ ७० ॥

---

१. 'मम'इत्यस्य स्थाने 'मद'इति–ख. । २. वचनं–क. ख. । ३. कुरु संस्थिरम्–क. । ४. पश्यैतान्–क. ख. । ५. यदि कौतुकमिच्छया–क. ख. । ६. एवमुक्त्वा–ख. ङ. । ७. ततस्तस्यां–ङ. । ८. सुष्ठु गन्धर्वं–क. ख. । ९. विवाहानन्दसानन्द–क. ख. । १०. 'वृन्दा''''यणाः'इति पङ्क्तिरियं नास्ति-ङ. । ११. परगैः–क. ख. ।

विश्वेषां जननी विमोहजननी संस्तम्भिनी सर्वदा
लीलालोलकटाक्षमोक्षकुटिला सर्वैः सुपर्वोत्तमैः ।
[1]संसेव्या कनकावदातविदिता वृन्दावन[2]स्वामिनी
[3]धीरा जङ्गमदेवता रतिगुरो राधा समाराध्यताम् ॥ ७१ ॥
इत्येवं निगदन्तस्ते मुमुहुश्च [4]मुहुर्मुहुः ।
वृन्दावनजनाः सर्वे दारुयन्त्रा इव स्थिताः ॥ ७२ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये
कामेश्वर्यादिभङ्गः सर्वसंक्षोभिण्यादिसम्मोहनं
नाम [5]द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥



१. संरोप्या कनका—क. । २. कामिनी—क. ख. । ३. धारा—क. ख. ।
४. इतः पूर्वं 'ते' इति—ख. । ५. 'द्वाविंशोऽध्यायः' नास्ति—ङ. ।

त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीबलराम उवाच

एतास्वेवं निरस्तासु वश्यमानासु कासु च।
किं कृतं त्रिपुरेश्वर्या तन्मे नाथ निगद्यताम् ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

ततो भगवती देवी विललापातिदुःखिता।
उवाच च महेशानी लज्जयाऽधोमुखाऽम्बुजा ॥ २ ॥

श्रीमत्त्रिपुरोवाच

न कृतं कृष्णसाहाय्यं न कृता राधिका वशे।
स्वयं किं तत्र यास्यामि यत्र राधा सनातनी ॥ ३ ॥
ममैव शक्तयः [1]सर्वान् किञ्चित्करणे क्षमाः।
ममैव गमनं तत्र [2]सहसा न [3]युनक्ति च ॥ ४ ॥
हठात्कारेण चलनं प्रभूणां नहि नीतितः।
अत्र स्थित्वैव कर्तव्यं [4]तत् यत्नं कर्मणे मया ॥ ५ ॥
यथा सा [5]विह्वलमतिः समागच्छति राधिका।
तथैवाद्य विधेयं [6]मे बद्धः परिकरो दृढः ॥ ६ ॥
ततो भगवतीत्युक्त्वा श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी।
मन्त्ररूपा स्वयं भूत्वा जजापाकर्षणं मनुम् ॥ ७ ॥
मुद्राभी रचिताभिश्च सर्वभूतवशङ्करी।
राधामाकर्षितुं यत्नं स्वयं चक्रे महेश्वरी ॥ ८ ॥
वसन्तसुन्दरीनाम मन्त्रमाकर्षणं परम्।
सर्वसंक्षोभिणीं [7]मुद्रां विरचय्य करद्वये ॥ ९ ॥
जजाप परमं जापं येनाकृष्टं जगत्त्रयम्।
कामं[8]मिन्द्रं तुरीयं च नादबिन्दुविभूपितम् ॥ १० ॥

---

१. तत्र किञ्चि—क. ख.। २. सहसैव न—क. ख.। ३. युक्ति च—क. ख.। ४. स्वयं तत्कार्मणं मया—ङ.। ५. विकलामतिः—क., विह्वलामतिः—ख.। ६. 'मे' इत्यस्य स्थाने 'मम' इति—क. ख.। ७. 'मुद्रां' इत्यस्य स्थाने 'तत्र'—क. ख.। ८. मन्त्रं तुरीयं—क. ख.।

भुवनेशीबीजयुक्तं द्वादशस्वरबिन्दुकम् ।
ततः परं नीलसुभगे हिलि हिलि ततः परम् ॥ ११ ॥
विच्चे स्वाहापदयुता विद्येयं सर्वमोहिनी ।
वसन्तसुन्दरीनाम्नी सर्वसंक्षोभकारिणी ॥ १२ ॥
ततो मुद्रां समुद्रां सा रचयामास सुव्रता ।
क्षोभिण्यां रचितायां च क्षोभिता साऽभवत् क्षणात् ॥ १३ ॥
[1]विना मां च वनं सर्वं शून्यं जातं तया बल ।
ततो विद्राविणी मुद्रा रचिता [2]त्रिपुराम्बया ॥ १४ ॥
[3]तथैव सा महादेवी द्राविता चाऽभवत्क्षणात् ।
प्राद्रवच्च ततः स्थानान्मम दर्शनलालसा ॥ १५ ॥
मामेव मनसा नित्यं चिन्तयन्ती विरोदिति ।
पुनश्चाकर्षिणीं मुद्रां विरचय्य महेश्वरी ॥ १६ ॥
जजाप परमां विद्यां दिगम्बरीमनुत्तमाम् ।
मनसा [4]चिन्तयन् यश्च जपेद्विद्यामिमां शुभाम् ॥ १७ ॥
यदर्थं [5]वा जपति सा त्यक्त्वा वासांसि दूरतः ।
हठाद् दिगम्बरीभूय धावत्युन्मत्तवद् वधूः ॥ १८ ॥
तां विद्यां कथयिष्यामि शृणुष्वैक[6]मनाः प्रिय ।
[7]यां जप्त्वा परया देव्या राधिकाप्युन्मदा[8]कृता ॥ १९ ॥
आदौ चिन्तामणिबीजं मध्ये च भुवनेश्वरी ।
अन्ते वाग्वादिनीबीजं त्रिभिर्बीजैरुपस्कृताम् ॥ २० ॥
अमुकीं दिगम्बरीं कृत्वा समानय [9]हरिप्रियाम् ।
वह्निजायावधिर्विद्या सर्व[10]मोहनकारिणी ॥ २१ ॥
अस्याः स्मरणमात्रेण आकृष्टा राधिकाऽभवत् ।
लज्जयाऽधोमुखी देवी [11]कामरोगेण पीडिता ॥ २२ ॥

---

१. 'विना''''क्षणात्' इति पङ्क्तित्रयं नास्ति—ख. । २. त्रिपुरा मया—क. । ३. तथैव—ङ. । ४. चिन्तयतश्च—क. ख. । ५. 'वातं प्रति सा' इति पाठान्तरम् । ६. मना प्रियाम्—ङ. । ७. यां यां जप्त्वा—क., प्रियायां या जप्त्वा—ख. । ८. 'कृता' नास्ति—क. ख. । ९. हरिप्रिया—ङ. । १०. सम्मोहन—ख., सम्मोह· ङ. । ११. कामबाणेन—ङ. ।

किं करोमि क्व तिष्ठामि क्व यामि शरणं च कम् ।
इति चिन्ताकुला राधा पुनरायाति याति च ॥ २३ ॥
दोलेव चञ्चला देवी ममान्वेषणकातरा ।
ततः सा त्रिपुरा[१]सिद्धा सर्वसिद्धैर्नमस्कृता ॥ २४ ॥
[२]वश्यामुद्रामनु महामनुमेकं जजाप च ।
ततः सा राधिका शीघ्रं [३]विह्वला समजायत ।
गमनाय मतिं चक्रे यत्राहं [४]रसवारिधिः ॥ २५ ॥

ब्राह्मण उवाच

इत्येवं श्रुत्वा रामोऽसौ रामणीयकमन्दिरम् ।
[५]मौनीश्रीभावनम्रास्यो विललास जहास च ॥ २६ ॥
[६]ततः [७]श्रीकृष्णदेवोऽपि लज्जया कथने जडः ।
अभवन् मौनशीलोऽसौ सुशीलो लीलया परम् ।
[८]परेङ्गितज्ञः सर्वेषामन्तर्यामी स्वयं प्रभुः ॥ २७ ॥

ब्राह्मणी उवाच

भवद्भिः कथितं कान्त कान्तस्य [९]काण्डमद्भुतम् ।
बलरामेण चरितं रामेण बलिना श्रुतम् ॥ २८ ॥
ततः [१०]परं किमभवद् [११]भवता तत्तु कथ्यताम् ।
[१२]शृण्वन्त्या मम नो तृप्तिः परं कौतूहलं पुनः ॥ २९ ॥

नारद उवाच

ततः पृष्टश्चाटुकारैर्ब्राह्मण्या ब्राह्मणोत्तमः ।
अवदद् वदतां श्रेष्ठो विहारचरितं हरेः ॥ ३० ॥

ब्राह्मण उवाच

कथयिष्यामि ते कान्ते कान्तकृष्णेन यत्कृतम् ।
श्रीराधया वा विदितं वृन्दावनचरीमुखात् ॥ ३१ ॥

---

१. 'सिद्धा' इत्यस्य स्थाने 'देवी'—क. ख. । २. यस्या मुद्राममु महा—क. ख. । ३. विकला—ख. । ४. रसवन्निधिः—ङ. । ५. मौनीह्रीभारतस्यो—क. ख., 'सौमित्रीभावनम्रास्य' इति पाठान्तरम्—ङ. । ६. 'ततः' नास्ति-क. । ७. श्रीकृष्णो-ख. । ८. परां गतज्ञः—क. । ९. कान्तम—क. ख. । १०. किमभवत्तत्र भवता-क. ख. । ११. भवन्तः—ख. । १२. शृण्वतो न मनो—क., शृण्वत्यो मम नो—ख. ।

एतत् सुगुह्यं चरितं गोपनीयं परं भवेत् ।
तथापि कथ्यते कान्ते यत्कान्तप्रेममन्दिरम् ॥ ३२ ॥
इदं हि गोप्यं यत्नेन कस्मैचन [1]न कथ्यताम् ।
हितं यदीष्यते देवि स्वयोनिरिव सर्वदा ॥ ३३ ॥
ततो मदद्विरद[2]गतिं [3]चलत्पदां
नितम्बिनीं सुविपुलकेलिलालसाम् ।
[4]रसेश्वरीं सकल[5]कलाकलापिनी-
[6]मुवाच कापि किल हरेः [7]पदुद्भवा ॥ ३४ ॥
राधां वृन्दा वनेशानीं गच्छन्तीं स्वच्छया धिया ।
[8]पथि वृन्दाऽब्रवीत् कृष्णचरणाम्भोज[9]निःसृता ॥ ३५ ॥

वृन्दा उवाच

क्व यासि त्वं वरारोहे काऽसि कस्याऽसि भामिनी ।
न त्वया सदृशी रूपवती कापि विलोक्यते: ॥ ३६ ॥
अहो रूपमहो रूपमहो रूपमहो [10]वयः ।
अहो लावण्यवन्द्याहो तनुकाञ्चनमञ्जरी ॥ ३७ ॥
नयनेन्दीवरमिदमहो खञ्जनगञ्जनम् ।
अहो वदनशोभेयं राकेन्दुसहचारिणी ॥ ३८ ॥
अहो मध्योऽतिलीनोऽयं सदसत्संशयाशयः ।
अवधीरयति सिंहस्य कङ्कालमपि हेलया ॥ ३९ ॥
अहो [11]बिम्बविडम्बोऽयमधरो[12]ऽरुणतोऽरुणः ।
आश्चर्यं गमनं [13]तस्या मदद्विरद[14]मन्थरम् ॥ ४० ॥
मुनेर्मनो मोहयति किमुतान्यस्य कामिनः ।
कुलाबलापि विजने विपिनेऽपि च नेहसे ॥ ४१ ॥
लज्जितं मज्जितं सर्वं कुलीनानां कुलं परम् ।
अहो दुरत्ययः कालो यददृष्टं प्रदर्शयेत् ॥ ४२ ॥

---

१. 'न'इत्यस्य स्थाने 'तु'—क. ख. । २. गतिश्च-ङ. । ३. च तत्पदा-क. ख. । ४. विश्वेश्वरीं—क. ख. । ५. 'कला'नास्ति—क. ख. । ६. मुद्रा च—क. । ७. यदुद्भवा—क. ख. । ८. पणवृन्दा—ङ. । ९. निस्पृहा—ङ. । १०. वचः—क., वयम्—ङ. । ११. 'बिम्ब'नास्ति—क. ख. । १२. अतिवारुणतो—क. ख. । १३. 'तस्या'इत्यस्य स्थाने 'मन्दं'—क. ख. । १४. मन्तरम्—क. ख. ।

यदश्रुतं श्रावयति कथमेकाकिनी वने ।
शृणु कल्याणि सुभगे तथ्यं पथ्यं वचो मम ॥ ४३ ॥
किमर्थमुन्मनीभूत्वा भ्रमसि त्वं वने वने ।
एकस्मिन्नेव सङ्गम्य उपसान्त्वय मानसम् ॥ ४४ ॥
त्रैलोक्यमोहनं रूपं यादृशं त्वयि विद्यते ।
तादृशै रूपलावण्यैः कोऽपि मानव[1]वेशभाक् ॥ ४५ ॥
विपिनेऽस्ति कृष्णनामा श्यामसुन्दरविग्रहः ।
स एव तव योग्योऽस्ति योग्या [2]तस्यासि निश्चितम् ॥४६॥
विहरस्व तेन समं जन्मैव सफलीकुरु ।
युवतीनां [3]यौवनैः किं न चेत् सन्नायकागमः ॥ ४७ ॥
लतानां मधुभिः किं [4]स्यान्न चेन्मिलति षट्पदः ।
स [5]नु त्वयि क्रीडितायामनु[6]रागं विधास्यति ॥ ४८ ॥
राधाविरहदूनोऽसौ स्त्रीकामः पुरुषो यतः ।
त्वय्येव दृष्टमात्रायां व्याकुलः स भविष्यति ॥ ४९ ॥
[7]गम्यतां साधुचरिते सत्यं सत्यं न संशयः ।
राधाविरहजं तापं त्वत्सङ्गामृतवारिणा ॥ ५० ॥
शमयिष्यति यस्मात् स तस्मात् प्रेष्ठा [8]भविष्यसि ।
ईश्वरः परमः कृष्णो [9]वनस्यास्य शुचिस्मिते ॥ ५१ ॥
स्वयं कर्ता स्वयं भर्ता स्वयं हर्ता च रक्षिता ।
इन्द्रनीलमणिश्यामः कोटीन्दुललिताननः ॥ ५२ ॥
साक्षात् कन्दर्पदर्पघ्नो रूपेण हिमशीतलः ।
सर्वलीलाविलासादिसदनं मदनातुरः ॥ ५३ ॥
यस्य दर्शनमात्रेण कामिनी [10]गतचेतना ।
यस्य वंशोनिनादेन [11]मोहितं सकलं वनम् ॥ ५४ ॥
कुटिलालकालिरामालिरमणीयास्यवारिभूः ।
जितकामधनुश्चारुभ्रूयुगारुणलोचनः ॥ ५५ ॥

---

१. शोकभाक्—क. ख. । २. तस्यास्ति—क. ख. । ३. इतः पूर्वं'च'—क. ख. । ४. स्यात चेन्न मिलति—ख. । ५. तु—क. ख. । ६. रागी—क. ख. । ७. 'गम्यतां''''भविष्यसि'इति पङ्क्तित्रयं नास्ति—क. । ८. भविष्यति—ख. । ९. वल्लभास्य—ङ. । १०. गणचेतना—ङ. । ११. मोदितं—क. ख. ।

सिंहग्रीवो [1]महोरस्को महाबाहुर्महाबलः ।
महोत्साहो महावीर्यो गजेन्द्रसमविक्रमः ॥ ५६ ॥
[2]पीतवासाः सुन्दराङ्गो वलिमत्पल्वलोदरः ।
सर्ववेदार्चितपदः [3]सर्वदेवशिखामणिः ॥ ५७ ॥
[4]सर्वसहो महोदारो गाम्भीर्येणो[5]दधिर्महान् ।
एतादृशगुणोपेतः कृष्णः प्रियतरस्तव ।
अद्यैव गच्छ निकटं तस्य त्वं यदि रोचते ॥ ५८ ॥

ब्राह्मण उवाच

एतस्मिन्नेव समये त्रिपुरा सिद्धयोगिनी ।
उन्मदां कलयामास मुद्रामुन्मादकारिणीम् ॥ ५९ ॥
तत्क्षणादेव सा बाला [6]लुलिताङ्ग्यपतद्भुवि ।
उन्माद्यन्ती परं राधा रक्ष कृष्णेति वादिनी ॥ ६० ॥
लतागुल्मादिकं सर्वं पप्रच्छ [7]मधुरस्वरैः ।
प्रणयाविष्टहृदया [8]हृदयानङ्गसङ्गता ॥ ६१ ॥

श्रीराधा उवाच

भोः [9]श्रीकदम्बनव[10]चूतपलाश[11]विल्व-
[12]लोलच्छदासनवियुग्मदलप्रियालाः ।
न्यग्रोधजम्बुपनसार्कतमाल[13]शालाः
श्रीकृष्णदेवपदवीं कथयन्तु मह्यम् ॥ ६२ ॥
भो वासन्तिलताधिपे तुलसिके हे जाति हे यूथिके
[14]हे वल्लीमयि नन्दिके सकलिके हे मालिके रङ्गिणि ।
शश्वद्रङ्गलवङ्ग भो विदिशतोद्देशं रमण्याः सदा
[15]राधायाः सपदि प्रचञ्चलहृदः कृष्णाऽभिसारे [16]मम ॥६३॥

---

१. महोरस्था–क. ख. । २. पीतवासा–क. ख. । ३. सर्ववेदशिखा–क. ख. । ४. सर्वमहो–क. । ५. दधेर्महान्–क. ङ. । ६. ललितान्यपतद्भुवि–ङ. । ७. मधुसस्वरैः–क., मधुरास्वरैः–ङ. । ८. परमानन्दसङ्गता–क. ख. । ९. श्रीकृष्णदेवनव–क. । १०. च्छुभतां पलाश–ङ. । ११. 'विल्व'नास्ति–क. ख. । १२. विलोलच्छदा–ख., नेनिच्छदा–ङ. । १३. मालाः–ङ. । १४. 'हे'नास्ति–क. ख. । १५. राधिकायाः–क. ख. । १६. 'मम'....राधिकाया (श्लो० ६४) नास्ति–क. ख. ।

हे कृष्णसारशशवर्य्यमृगाधिराज
हे द्वीपिनो द्विपवरा गवयाश्चमूरो ।
श्रीकृष्णतुष्टमनसो मम राधिकाया
वर्त्मोपदेशमधुना कुरुतानुरागात् ॥ ६४ ॥
[1]हेमन्तकोकिलमधुव्रतसारिकाद्याः
सारङ्गरङ्गशुककेलिचकोरहंसाः ।
हे कालकण्ठकमयूरगरुत्मदाद्याः
शंसन्तु मे सपदि तां पदवीं तदीयाम् ॥ ६५ ॥
वृन्दे वृन्दावनचरे [2]वृन्दारकमनोरमे ।
कृष्णवृन्दप्रिये वन्द्ये वन्दे त्वां वरवन्दिते ॥ ६६ ॥
[3]उपायः कथ्यतां भद्रे यातु मे मदनज्वरः ।
किं करिष्यामि यास्यामि क्व भरिष्यामि किं प्रिये ॥६७॥
ब्राह्मण उवाच
ततः सा सान्त्वया वाचा सान्त्वयामास राधिकाम् ।
कन्दर्पदर्प[4]वशगां [5]विलुण्ठतीं महीतले ॥ ६८ ॥
वृन्दा उवाच
भद्रे त्वं हि वृषस्यन्ती [6]ज्ञातं मे तन्न संशयः ।
भविष्यति तव प्रीतिर्देवि नोत्कण्ठिता भव ॥ ६९ ॥
एकं निगूढबीजं ते कथयिष्यामि सुव्रते ।
नीतिशास्त्रविदां कामतन्त्रे च यत्तु सम्मतम् ॥ ७० ॥
स्वयं [7]या विह्वला याति कामिनी पुरुषार्थिनी ।
[8]सद्गुणैरन्वितां तां च नावजानाति कः पुमान् ॥ ७१ ॥
अत्रैव तिष्ठ भो [9]तस्मान्नातस्त्वं गन्तुमर्हसि ।
एकाकिनी क्षणादेव शान्तिस्तव भविष्यति ॥ ७२ ॥
सहसा नैव [10]कुर्वीरन् कार्यं कार्यार्थ[11]कोविदाः ।
यदि कुर्वन्ति ते सत्यं कोविदा [12]अप्यकोविदाः ॥ ७३ ॥

---

१. हे मत्तकोकिल—क. ख. । २. वृन्दावनमनो—क. ख. । ३. उपायं—ख. । ४. वश्यां—क. ख. । ५. विलपन्तीं—ङ. । ६. ज्ञातमेतन्न—ख. ङ. । ७. वा—ख. ङ. । ८. शतगुणै—क. ख. । ९. मातर्मातस्त्वं—ङ. । १०. कुर्वीत—ङ. । ११. वेदिकाः—क. ख. । १२. अद्यकोविदाः—ङ. ।

विमृश्य कार्यकर्त्ता यः [1]पूर्णः पण्डिताधिकः ।
अविमृश्य कार्यकर्त्ता पण्डितः पण्डितो यदि ॥ ७४ ॥
तदा कथं भगवती [2]भवती मोहकातरा ।
शश्वत् त्रिभुवनोद्योतयशः पीयूषविद्युतिः ॥ ७५ ॥

ब्राह्मण उवाच

इत्थं सुसान्त्विता देवी वृन्दया [3]वल्गुवाक्यया ।
क्षणं स्वस्थमनाः शान्ता पारिजाततलेऽवसत् ॥ ७६ ॥
एतस्मिन्नेव समये श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ।
महाङ्कुशांनाम मुद्रां रचयामास सोत्सुका ॥ ७७ ॥
अङ्कुशेन महाहस्ती यथैवाकृष्यते क्षणात् ।
तथैव [4]भामिनीचेतो नित्यमाकृष्यतेऽनया ॥ ७८ ॥
रचितायां च मुद्रायां जल्पिते च [5]महामनौ ।
पुनराकर्षिता देवी राधा कृष्णमनोरमा ॥ ७९ ॥
चिरं निमील्य नयने लीलयाऽतिष्ठदुद्धुरा ।
ततः पुनर्महेशानी रचयामास मुद्रिकाम् ॥ ८० ॥
त्रिखण्डाख्यां ततो देवी निर्लज्जा चाऽभवत् क्षणात् ।
लज्जाभयं कुलभयं सर्वधर्मभयं तथा ॥ ८१ ॥
खण्ड[6]यत्यचिरात् स्त्रीणां तत्त्रिखण्डेति कीर्त्यते ।
रचितायां च मुद्रायां वृन्दया विनिवारिता ।
अशक्तागमने राधा [7]चञ्चला चाभवत् क्षणात् ॥ ८२ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधादेवीप्रोन्मादनं नाम [8]त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

---

१. मूर्खः—क. ख. । २. 'भवती'नास्ति—क. ख. । ३. वस्तुवाक्यया—ङ. । ४. मानिनी—ख. ङ. । ५. महामुनौ—क. । ६. यत्सा चिरात्—ख. । ७. चञ्चकाऽभवत्—क. ख. । ८. 'त्रयोविंशोऽध्यायः'नास्ति—ङ. ।

चतुर्विंशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच

[1]ततः सा त्वरया वृन्दा [2]दासी कृष्णस्य योगिनी ।
सम्मुखस्था महादेव्या गृहीत्वा करपङ्कजम् ।
अपृच्छद् मधुरालापा तन्नाम चरितानि च ॥ १ ॥

वृन्दा उवाच

किं ते नाम महादेवि तन्मे कथय सुव्रते ।
मया त्वं [3]कृत्ययाविष्टा लक्ष्यसे मन्दगामिनी ॥ २ ॥
श्रुतमस्ति मया किञ्चित्तदाकर्णय सुव्रते ।
परब्रह्मस्वरूपस्य कृष्णस्याऽद्भुतरूपिणः ॥ ३ ॥
देहाद्विनिर्गता पूर्वं [4]राधिका सकलाधिका ।
तां दृष्ट्वा रूपिणीं देवीं स्वयं कृष्णो मुमोह सः ॥ ४ ॥
ततस्तुष्टाव विकलो राधा राधेति जल्पकः ।
तामेव नीलराजीवलोचनीं शोकमोचनीम् ॥ ५ ॥
ततः सा च महादेवी [5]भुवनेश्याऽवरोधिता ।
कृष्णदेहोद्भवाऽप्यद्य रतिभीताऽद्रवत् क्षणात् ॥ ६ ॥
हस्तप्राप्तां च तां देवीं न स जग्राह केशवः ।
[6]प्रेमभङ्गभयात् साऽपि ततश्चान्तर्दधे क्षणात् ॥ ७ ॥
अन्तर्हितायां राधायां तत्कामासक्तचेतनः ।
चिन्तयामास विश्वात्मा कथं मद्वशगा भवेत् ॥ ८ ॥
अपूर्वरूपसम्पन्ना नवयौवनगर्विणी ।
तत्र चिन्तयतस्तस्य कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ९ ॥
देहादाविर्बभूवाऽसौ परब्रह्मस्वरूपिणी ।
समस्तलोकजननी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ॥ १० ॥

---

१. ततस्तु त्वर—क. ख. । २. श्रीकृष्णानुयोगिनी—क. ख. । ३. कृपया—क. ख. । ४. राधिकासु कला—क. ख. । ५. भुवनेश्वर्या विवोधिता—क. ख. । ६. प्रेमभोगभयात्—क. ख. ।

[1]यथा कृष्णे न भेदोऽस्ति परमानन्द[2]रूपिणी ।
बहुरूपा च सा देवी ततो जाताः सहस्रशः ॥ ११ ॥
अनङ्गकुसुमाद्याश्च नित्यलीला महाबलाः ।
नानारूपधराः सर्वा नानाशक्तिसमन्विताः ॥ १२ ॥
अन्वेषणाय राधायाः प्रेषिता विश्वरूपया ।
राधया चापि ताः सर्वा निर्जिता निजमायया ॥ १३ ॥
तच्छ्रुत्वा त्रिपुरादेवी योगिनी त्रिपुरातनी ।
चकार [3]कर्म तद्दिव्यं मन्त्रमुद्रासमन्वितम् ॥ १४ ॥
संक्षोभणं द्रावणं च वश्याकर्षणमादनम् ।
त्रिखण्डाद्या मुद्रिकाश्च [4]वश्यकर्मकुतूहलाः ॥ १५ ॥
याभिर्विरचिताभिश्च का स्त्री न स्याद् वशंगता ।
मायया मोहिता याश्च उन्माद्यन्त्यो मनस्विनि ॥ १६ ॥
न जाने [5]कीदृशी तासां गतिर्भवति शोभने ।
त्रिपुरा त्रिजगद्धात्री साक्षाद् या भगवत्तनुः ॥ १७ ॥
तया विरचिता माया न कस्या वा हरेन्मनः ।
न जाने कासि देवी त्वं किं ते नाम प्रकाश्यताम् ॥ १८ ॥
नवलावण्य[6]वश्याभिः समाप्लावितविग्रहाः ।
न क्वापि [7]कापि मे दृष्टा सृष्टाविह विहारिणी ॥ १९ ॥

ब्राह्मण उवाच

[8]इत्युक्ता सा महादेवी कृष्णदेवस्य वल्लभा ।
वाणीं सुमधुरां कान्तामकरोदतिथिंमुखे ॥ २० ॥

श्रीराधिका उवाच

न जानामि कुतो जाता कस्मादत्र समागता ।
किं मे नाम न जानामि स्वभावचपलाऽस्म्यहम् ॥ २१ ॥

---

१. यथा कृष्णो–ङ. । २. रूपिणे–ख. । ३. कर्मणं दिव्यं–ख. ङ. । ४. पश्य–क. ख. । ५. का दशा तस्या गति–क. ख. । ६. वन्याभिः–क. ख. । ७. क्वापि–क. ख. । ८. इत्युक्त्वा–ङ. ।

[1]एकं स्मरामि पुरुषं श्यामलं [2]पुरुषाकृतिम् ।
तत्कटाक्ष[3]बाणभिन्नहृदया हृदयाम्बुजे ॥ २२ ॥
रिरंसुरपि तं दूरे भयात् प्रथम[4]सङ्गमे ।
दैवादहं गता दूरे नीपमूलादिति स्मरे ॥ २३ ॥

ब्राह्मण उवाच

ततो वृन्दा भगवती भूयः प्रोवाच कामिनी ।
तामेव राधिकां देवीं प्रणयाविष्टमानसा ॥ २४ ॥

वृन्दा उवाच

[5]कथयस्व महेशानि नाम किं ते सुखावहे ।
रूपं दृष्ट्वा मोहितायै मह्यं शुश्रूषवे परम् ॥ २५ ॥
रूपमीदृग् नाम कीदृक् सुधासहचरं भवेत् ।
इति व्याकुलिताया मे सत्यमान्दोलितं मनः ॥ २६ ॥
करुणाकरुणापूर्णमरुणायतलोचने ।
यद्यस्ति कुरु चेतस्त्वं मम शोकविमोचने ॥ २७ ॥

श्रीराधिका उवाच

शृणु ते कथयिष्यामि वृन्दे वृन्दारवन्दिते ।
अष्टादशशतीं नाम्नां वेदागमसुगोपिताम् ॥ २८ ॥
पवित्रां परमां पुण्यां पापसंहारकारिणीम् ।
श्रीकृष्णविरहाक्रान्तमनसो यदि नो सुखम् ॥ २९ ॥
तथापि तव सौभाग्यान्मुखे वाणीं युनज्म्यहम् ।
यत्ते प्रवर्त्तयिष्यामि प्रवर्त्त्यं न कदाचन ।
केभ्योऽपि प्राणतुल्येभ्यो भक्तेभ्यो[6]ऽपि विशेषतः ॥ ३० ॥

[अस्याऽष्टादशशतीनामस्तोत्रस्य][7]नारदऋषिरनुष्टुपछन्दः श्रीकृष्णाऽभिन्ना राधारसमयीशक्तिर्देवता पुरुषस्य पुरुषार्थचतुष्टय-साधने श्रीराधानाम्नामष्टादशशतीपाठे विनियोगः ।

---

१. एवं—क. ख. । २. मधुराकृतिम्—क. ख. । ३. वाणीभिन्न—क. ख. । ४. समागमे—क. । ५. 'कथयस्व.....भवेत्' इति पङ्क्तित्रयं नास्ति—ङ. । ६. ऽतिविशेषतः—क. ख. । ७. नारदर्षिरनु—ख. ।

ॐ राधा परमा शक्तिः श्रीकृष्णप्राणवल्लभा ।
नित्या रसमयी शुद्धा प्रबुद्धा बुद्धरूपिणी ॥ ३१ ॥
कमला कमलास्या च कमलासनवन्दिता ।
कमलासना कामिनी च कान्ता कान्तमनोहरा ॥ ३२ ॥
कान्तिमत्यनुरागाढ्या कामकेलिविलासिनी ।
वृन्दारण्येश्वरी वृन्दा वृन्दारकमनोरमा ॥ ३३ ॥
विश्वेषां जननी विश्वा विश्वपालनकारिणी ।
विश्वाधारा विश्वरूपा विश्वसृष्टिविकासिनी ॥ ३४ ॥
विश्वेश्वरी विश्वमाया विश्वसंहारचारिणी ।
अमृता मोक्षदा मोक्षा मोक्षलक्ष्मीः सुलक्षणा ॥ ३५ ॥
नित्यं विलासरसिका नित्यं कौतुकलम्पटा ।
गोपी राज्ञी शशिमुखी खञ्जनाक्षी च खञ्जना ॥ ३६ ॥
क्रीडानिकुञ्जनिलया कदम्बतरुवासिनी ।
अभक्तोत्सारणकरी सदा प्रणतवत्सला ॥ ३७ ॥
जगन्मोहा मोहरूपा गजेन्द्रमृदुगामिनी ।
नितम्बिनी कामदेवजयजङ्गमदेवता ॥ ३८ ॥
शिवदा विपदुद्धारकारिणी विजयप्रदा ।
विजया भामिनी देवी श्रीमती रतिलालसा ॥ ३९ ॥
मदोन्मत्ता मादिनी च दीप्ता त्रैलोक्यसुन्दरी ।
वृषभानुसुता दुर्गा दुर्गोत्तारणकारिणी ॥ ४० ॥
श्रीवृन्दावनचन्द्राक्षि चकोरवरचन्द्रिका ।
[1]लावण्यवश्या स्नाताङ्गी पूर्णामृतरसोदया ॥ ४१ ॥
अनन्ता[2]नन्तचरिताऽनन्तविक्रमचातुरी ।
अरूपा अधिकाकारा अमिता अहिता हिता ॥ ४२ ॥
अलीकहीना [3]अध्यास्या अरिष्टगणभञ्जनी ।
अरिक्ता अधृताशक्ता अत्युज्ज्वलसमुज्ज्वला ॥ ४३ ॥
अत्यद्भुता अविकृतिरविचारविवर्जिता ।
अवचोगोचरा व्यक्तिरमनो वर्त्मगामिनी ॥ ४४ ॥

---

१. लावण्यरण्या—क. ख. । २. 'नन्त' नास्ति—ङ. । ३. भाधास्या-क. ख. ।

अनुच्छ्वसन्मानसा च अतिकान्तिकलापिनी ।
अजन्मा कर्मसुकृता अमला अतिसुन्दरी ॥ ४५ ॥
अभिरामाऽभिचलिताप्यभिसारविहारिणी ।
अतीवरति[1]सञ्चारिमानसा चातिकामुकी ॥ ४६ ॥
अनङ्गरङ्गचतुरा चाङ्गसङ्गतचन्दना ।
अपाङ्गभङ्गसञ्चारा अतिथिप्रिय[2]सेविनी ॥ ४७ ॥
अमराधिताङ्घ्र्यब्जा अलिका कलिकाकुला ।
अचिन्त्यरूपचरिता अधिकानन्दशालिनी ॥ ४८ ॥
अमन्दरससम्पन्ना अकला चाकुला तथा ।
अकाला चाकृतिरताऽप्यचला [3]चलसन्निभा ॥ ४९ ॥
अमन्दा अरुणाक्षी च अरुणारुणिमाधरा ।
अपराधभञ्जिनी च अखला [4]चावला तथा ॥ ५० ॥
अगलन्ती छलाढ्या च अम्बुदागमहर्षिता ।
अम्बरावीतसर्वाङ्गी अम्बुराशिनिवासिनी ॥ ५१ ॥
अतलाधातिनी चापि [5]अनिलानलरूपिणी ।
अफलाढ्याप्यभीता च अमूलाप्ययमादरा ॥ ५२ ॥
अरविन्देक्षणाऽलास्याऽप्यबोधा चाहृदर्पिता ।
अक्षमालाधरा चाक्षकुन्तकाप्यक्षणेक्षणा ॥ ५३ ॥
अकामाऽकालमिलिता अकान्ताऽगामिनी तथा ।
अचारिका जालगता अतानो(ना)ऽतान्तरूपिणी ॥ ५४ ॥
अदान्ताऽधारिणी चैव [6]अलास्याऽपालिता तथा ।
[7]अवारिताप्यभाव्या च [8]अमाल्या मार्द्दवाऽपरा ॥ ५५ ॥
आकल्पाकलिता कल्या चाक्वणन्मणिनूपुरा ।
आकम्रा कमिता [9]कम्प्रा चाकुञ्चितशिरोरुहा ॥ ५६ ॥
आखेलमाना खेला च [10]आखेटकविहारिणी ।
[11]आलस्येन विहिना च आलया (तु ?) लास्यकारिणी ॥५७॥

---

१. सञ्चार मा—ङ. । २. सेविता—ङ. । ३. चपलसन्निभा—क. ख. । ४. वावला—क. ख. । ५. अग्निना वनरूपिणी—ङ. । ६. अनाम्यापालिना—क. ख. । ७. अचारिनाप्य—क. ख. । ८. अमान्या—क. ख. । ९. कम्प्या—क. ख. । १०. आखेटकस्य हारिणी—क. ख. । ११. 'आलस्ये''''कारिणी' इति पङ्क्तिरेषा नास्ति—ङ. ।

आगमोक्ता[1]ऽप्यगणिता आगमे [2]गोपिता गता ।
[3]आघृणा [4]चञ्चलाऽभ्यर्च्या आज्ज्वलज्वलनोज्ज्वला ॥५८॥
आतन्वती रतिकथामादरोदारभाविता ।
आनतानतिसुप्रीता चापन्नैरापदि स्मृता ॥ ५९ ॥
आफलितावृता वीता भासयन्त्यभया तथा ।
आमूलरससंस्निग्धहृदयाऽऽमयवर्जिता ॥ ६० ॥
[5]आयता रतिशीला च [6]आलीढा हसितानना ।
[[7]आलस्येन विहीना च आलया लास्यकारिणी ।]
आवृद्धाप्याश्रिताऽखिन्ना हाररूपा च जीविनाम् ॥ ६१ ॥
आक्षोदा क्षीणमध्या च आक्षालनकरी तथा ।
इन्दीवरवरामोदा इन्दुकोटिसुशीतला ॥ ६२ ॥
इच्छामयीष्टा शिष्टानामिन्दिवरवनप्रिया ।
इनसेवनसन्तुष्टा इकास्येभा [8]मदागमा ॥ ६३ ॥
ईश्वरी ईशवशगा चेक्षणाह्लादकारिणी ।
ईहमाना [9]ईतिहीना ईडिता सर्वदैवतैः ॥ ६४ ॥
उमा उचितकर्त्री च उक्तिप्रत्युक्तिकारिणी ।
उन्मदाऽप्युषितोल्लासा चोच्चैस्तेजोभिरुज्ज्वला ॥ ६५ ॥
उग्रा चोग्रप्रभा [10]उल्काप्युक्षवाहनसेविता ।
उच्चस्वराऽप्यूदीर्णा च उन्नीतोन्वयशालिनी ॥ ६६ ॥
उच्चार्यमाणचरिता चोद्धतोद्धारकारिणी ।
उपपन्नाऽप्युन्मनाश्च उपपातकपातिनी ॥ ६७ ॥
उदाराऽप्युन्नसोपायाऽप्यूरीकृतजगत्त्रया ।
[11]उल्ललन्ती तथोल्लोलाऽप्युच्छ्रितोच्छ्रायकारिणी ॥६८॥
उच्छ्वासाऽप्युच्छ्वसद्वक्त्रा उच्छ्वासनविवर्जिता ।
उषा उषःकालगता उषसिप्रतिचिन्तिता ॥ ६९ ॥

---

१. ऽप्यागणीना—क. ख. । २. गोपिना—क. ख. । ३. आवृता—क. ख. । ४. 'चञ्चलाऽभ्यर्च्या' इत्यस्य स्थाने 'चञ्चलाढ्या'—ङ. । ५. आपाना—क. ख. । ६. आलाटा—क. ख. । ७. 'आलस्ये····कारिणी' नास्ति—क. ख. । ८. मदागदा—क. ख. । ९. गतिहीना—क. ख. । १०. उल्का उष्ट्रवाहन—ङ. । ११. उल्लसन्ती तथान्दोला—ङ. ।

उत्साहवर्धनकरी उत्सहन्ती परांव्यथाम् ।
उत्सेधोत्सेककलिता उत्सारित[1]विद्रूषणा ॥ ७० ॥
ऊर्ध्वोर्ध्वगमनी ऋक्षा ऋक्षवृन्दनिषेविता ।
[2]ऋक्षव्यूहाभयङ्कारी ऋभुक्षा ऋक्षरूपिणी ॥ ७१ ॥
एकाकिनी [3]त्वेधमाना एणाक्षी एकसेविता ।
[4]ऐङ्काररूपिणी ऐक्यशालिनी ऐच्छिकी तथा ॥ ७२ ॥
ऐश्वर्येण विनाचर्या च ऐन्द्रिया चैन्द्रदायिनी ।
ओकःस्वरूपिणी [5]ओघा ओघतारणकारिणी ॥ ७३ ॥
ओजस्विनी [6]औचिती च औदरिक्यौर्द्धिकी तथा ।
कालिका कलिका कीला कीलालाकुलनिग्रहा ॥ ७४ ॥
कुलीना कुलधर्माढ्या [7]कुचकुट्टलकुट्टिता ।
कृता कृतमयी कृत्या हीनाकृतिनिषेविता ॥ ७५ ॥
केलिलोला केलिरूपा कौलिकी कौलरूपिणी ।
कौलाचारपरा कौलैःसेविता कौलधर्मिभिः ॥ ७६ ॥
काञ्चनाङ्गी [8]कण्टकिनी कण्टकेनविवर्जिता ।
कुत्साविहीना कन्दर्पदर्पसंहारकारिणी ॥ ७७ ॥
कलिन्दकन्या कूलस्था [9]कालिन्दी कलनिस्वना ।
काकी [10]कङ्कतिका कङ्करूपिणी चैव किङ्करी ॥ ७८ ॥
काचा काचमयी चैव कच्छपी कज्जलोज्ज्वला ।
कटकर्त्री [11]कटिपटी कटन्दीनिरता कटा ॥ ७९ ॥
कठोरा कठिन[12]व्यक्ता कठिना कठिनस्तनी ।
कडारा काण्ड[13]सम्पूर्णा कण्डूः कण्डूतिकारिणी ॥ ८० ॥
कुण्डा कुण्डलिनी कुण्डरूपिणी कुण्डसंस्थिता ।
कुण्डिना कुण्डिनस्था च [14]कण्डोलस्थितिकारिणी ॥ ८१ ॥

---

१. विभूषणा—क. ख. । २. ऋक्षव्यूहभयङ्करी—ङ. । ३. एधमाना—ङ. । ४. एकार—क. ख. । ५. सत्या ओग्या ओघतारिणी—क. ख. । ६. औचित्री—क. ख. । ७. कुच्कुम्भेन कुहिता—ङ. । ८. काङ्क्तिनी च कण्ट—क. ख. । ९. कानिनी कणनिस्वना—ङ. । १०. कङ्करनका काकङ्क—क. ख. । ११. कटीपाटी कादीनिरता—क. ख. । १२. त्यक्ता—क., तत्त्वा—ङ. । १३. सम्पूर्त्ता—क. ख. । १४. कङ्कोल—क. ख. ।

कातरा क्वथिता क्वाथा कनकाचलवासिनी ।
काननी काननमयी काननेन स्तुता कदा ॥ ८२ ॥
काधारा कृपणा कूपा कूपशोषणकारिणी ।
कफप्रहारिणी चैव कैवल्यमोक्षदायिनी ॥ ८३ ॥
कामाकुला कूलहीना कर्मकार्मणकारिणी ।
[1]कामदीप्ता[2]कार(म)रूपा कलाढ्या काशिकामयी ॥ ८४ ॥
काशीश्वरप्रकाशा च कौशिकी कोशरूपिणी ।
कशा कशाताडिनी च केशिनी केशिसूदनी ॥ ८५ ॥
[[3]काष्ठा काष्ठिनी कुष्ठनाशिनी कुस(श)जनकरी (?)] ।
कुशेशया कृशाङ्गी च कीशकेश्वरसेविता ॥ ८६ ॥
कुशला कुशलाढ्या च कुशला [4]कलिका तथा ।
काषायवसना काष्वा(ष्ठा) काष्ठिनी कुष्ठनाशिनी ॥८७॥
कूर्मजलकरी कंसध्वंसिनी कसृतिक्षमा ।
काहारकारिणी कक्षा कक्षाकोटिविहारिणी ॥ ८८ ॥
कक्षरूपा कक्षमयी कौक्षेय [5]ककरी तथा ।
कुक्षिसंस्थापिता चैव कुक्षतिः कुक्षमाकरी ॥ ८९ ॥
चक्रपाणिश्च चकिता चक्राढ्या चक्रवर्तिनी ।
[6]चामीकराकारगौरी चमूरुरमणीक्षणा ॥ ९० ॥
चञ्चला चिञ्चिनाथेष्टा चञ्चदङ्गी च चिञ्चिका ।
चटका चटकप्रीता चण्डिका चण्डविक्रमा ॥ ९१ ॥
चित्तेशा चातकी चन्द्रा चन्द्रिका चन्द्ररूपिणी ।
चीनाचारपरा चैव चीनदेशभवा तथा ॥ ९२ ॥
चपला चम्पकामोदा चम्पकाङ्गी तथैव च ।
[7]चयरूपा चयाकारा चारुरूपा चराचरा ॥ ९३ ॥
चरित्रचारिणी चर्य्यमानासुरनराधिपा ।
[8]चतुश्चीरधरा चीरा चिरचारणचारिता ॥ ९४ ॥

---

१. कायदीप्ता–ङ. । २. कातुरूपा–क. ख. । ३. 'काष्ठा····जनकरी' इति पङ्क्तिरेषा नास्ति–क. ङ. । ४. कलिता तथा–क. ख. । ५. कमनी तथा–ङ. । ६. यामी–क. ख. । ७. चकोरी चन्द्ररूपा निचयाकारा–क. ख. । ८. चरुश्चीर· ङ. ।

चलाचलप्रिया चैव चलद्विन्दिमनोहरा ।
चाश(ष)रूपा चूष्यरसा चषकास्य[1]तपायिनी ॥ ९५ ॥
चक्षुर्लक्षणयुक्ता [2]च [3]चरमाऽचरमाऽचला ।
टीका टङ्कारिणी चैव [4]टलण्टलकरी तथा ॥ ९६ ॥
तिक्ता चैव तथा तङ्का तङ्किनी तङ्कवर्जिता ।
तिग्मा तकारसन्तुष्टा तिग्म[5]वह्निप्रिया तथा ॥ ९७ ॥
[6]तङ्कनी तङ्कमहिमा तच्छ्रीस्ताच्छील्यशालिनी ।
तुच्छहीना [7]तेजिता च तज्जिता तज्जयात्मिका ॥ ९८ ॥
तटिनी तटरूपा च [8]तडित्ताडनकारिणी ।
तडागनिलया ताडचा [9]तडित्वत्प्रीतिदायिनी ॥ ९९ ॥
ताण्डवा ताण्डवप्रीता तण्डा [10]ताण्डवितानना ।
तूणीरा तूणकुशला तुण्डिनी तुण्डभूषणा ॥ १०० ॥
ततात[11]तिकरी [12]तानप्रिया [13]तित्तिरिनिस्वना ।
तोत्रा तोत्र[14]करा चैव तत्सत्तत्सन्निवेशिता ॥ १०१ ॥
ततिनी [15]तडिनी चैव तथास्त्वितिवरप्रदा ।
तथागतागताभिज्ञा तथ्यवाणी तथैव च ॥ १०२ ॥
तथ्यातथ्यव्रता चैव तिथिस्तिथिपतिप्रिया ।
तदाराध्यतनुस्तन्वी तनुरूपा तनीयसी ॥ १०३ ॥
[16]तानिनी तानरसिका तपस्या तपसारता ।
तपस्विनी तापहीना तापिनी तापसप्रिया ॥ १०४ ॥
[17]तृप्ता तेमनसुप्रीता तेमना ताम्यतीतमा ।
तापिनी तारिणी तारा त्रिनेत्रा त्रिशरीरिणी ॥ १०५ ॥
त्रयी त्राणकरी त्रेता त्रेतायुग[18]समुत्थिता ।
[19]तरिस्तरणिसन्तुष्टा तरुणी तरुरूपिणी ॥ १०६ ॥

---

१. तत्पायिनी—क. ख. । २. 'च' नास्ति—क. ख. । ३. चरमाचरैला-गोत्रिया—क. ख. । ४. लट्टलट्टकरी—क. ख. । ५. रश्मिप्रिया—क. ख. । ६. तङ्गनी तुङ्गमहिमा—क. ख. । ७. 'ते' नास्ति—क. ख. । ८. तडितु हेतुकारिगी-क. ख. । ९. तडित्तत्प्रीति—क. ख. । १०. तडान्तांरितानता—क. ख. । ११. तिंकरी—ख. । १२. तातप्रिया—ङ. । १३. तित्तितिरि—क. ख. । १४. कारा—ङ. । १५. तन्त्रिनी—क. ख. । १६. तातिनी—क. ख. । १७. तृप्तानने मनःप्रीता—क. ख. । १८. समुज्झिता-ङ.; अत्र 'समुम्भिता' इति पाठान्तरम् । १९. तारि-क. ख. ।

तरुणानन्दिनी तीररसिका तीरसंस्थिता ।
तला तल्लयमा[१]पन्ना तानोत्सवपरायणा ॥ १०७ ॥
तालाङ्कुरसिका तालप्रिया तिलकिनी तिला ।
तिलोत्तमा तुलाहीना तुलिता [२]तृणकारिणी ॥ १०८ ॥
तुषिनी तुषहीना च तुष्टिस्तुष्टमनास्तथा ।
[३]तृष्णा तृष्णा[४]वर्जिता [५]च तोषिणी तोषकारिणी ॥ १०९ ॥
तक्षिणी तक्षरूपा च तक्षकादिनिषेविता ।
तीक्ष्णा तीक्ष्णप्रभा पाका पाकसम्पादिनी तथा ॥ ११० ॥
पिकस्वरा [६]पक्षिरता पक्षिराजनिषेविता ।
पक्षव्रतपरा चैव पक्षिणी पक्षरूपिणी ॥ १११ ॥
पूग पूगरता पङ्का पङ्काकुलसुदुर्लभा ।
पचिनी पाचिनी पृच्छा पृच्छाकुशलकारिणी ॥ ११२ ॥
पूज्या पूजनशक्ता च पञ्चाननिषेविता ।
पञ्चवक्त्रा पञ्चबाणमोहिनी पञ्च[७]सेविता ॥ ११३ ॥
पञ्चत्वहा पञ्चपापनाशिनी च तथैव च ।
पञ्चमस्वरसन्तुष्टा पञ्चास्यक्षीणमध्यमा ॥ ११४ ॥
पाञ्चालिका पाञ्चजन्यनिनदा पिञ्जशालिनी ।
पञ्जरा पञ्जरस्था च पुञ्जिनी पुञ्जरूपिणी ॥ ११५ ॥
पटी[८]सिन्दूरतिलका पट[९]शाटीसमावृता ।
पाटला पुटिनी चैव पेटीपोटा तथैव च ॥ ११६ ॥
[१०]पठनासक्तहृदया [११]पाठिनी पीडितासुरा ।
[१२]पणकर्त्री पाणिपद्मशोभिता पण्डिता तथा ॥ ११७ ॥
पाण्डित्यदायिनी चैव पिण्डदा पिण्डतोषिता ।
पतितोद्धारकर्त्री च पातिताऽमित्रसंहतिः ॥ ११८ ॥
पितृभक्तिरता चैव पुत्रिणी पुत्रदायिनी ।
पूतना पूतनाशत्रुः पृतना पृतनावती ॥ ११९ ॥

---

१. पन्नतानो—ङ. । २. तूलकारिणी—क. ख. । ३. 'तृष्णा'नास्ति—क. ख. । ४. विवर्जिता—क. ख. । ५. 'च'इत्यस्य स्थाने 'यत'—क. ख. । ६. पक्षिनिरता-क. ख. । ७. संज्ञिता—ङ.; अत्रैव 'सञ्चिता' इति नामान्तरम् । ८. 'सिन्दू' नास्ति—क. ख. । ९. शालीसमा—क. ख. । १०. पवना—क. ख. । ११. पाश्वनी—क. ख. । १२. पद्मकर्त्री क. ख. ।

पोताधानाधानकर्त्री पोतनिस्तारकारिणी ।
पथिपूज्या पथिप्रज्ञा पथिकोच्छ्वासकारिणी ॥ १२० ॥
पाथोरुहनिवासा च पृथिवी पृथिवीश्वरी ।
पदा पादपतद्भक्ता पिदधाना पिधायिनी ॥ १२१ ॥
[1]पानीयजसमुच्चेताः पीनस्तनकटिद्वया ।
पुनःपुनारसावेशा पौनःपुन्यविधायिनी ॥ १२२ ॥
[2]पन्थाः पान्थस्वरूपा च पान्थदुःखविनाशिनी ।
पाप[3]नाशी पुष्परता पवनोत्सुकमानसा ॥ १२३ ॥
पावको[4]ज्ज्वलतेजाश्च पिबपिबेतिवादिनी ।
पीवरा पामरा प्राप्या पम्पापदविलासिनी ॥ १२४ ॥
पयस्विनी पयोजाढ्या पायसप्रीतमानसा ।
प्रियालकुसुमासक्ता परोन्मूलनकारिणी ॥ १२५ ॥
पारप्रदा पुराणा[5]र्चर्या पूर्वोत्था पूर्वसेविता ।
पौर्वापर्यकरी चैव पलायनविवर्जिता ॥ १२६ ॥
पालनी पुलकाङ्गी च पाशहस्ता तथैव च ।
पृश्निगर्भावतारा च [6]पिण्डघोरसुदुर्धरा ॥ १२७ ॥
पुष्टदेहा [7]पुष्टरूपा पोष्यपोषणकारिणी ।
पौषमासनिदाघा च [8]पाक्षिकी पक्षिनिस्वना ॥ १२८ ॥
पक्ष[9]द्वयविधात्री च पक्षान्तार्हणतोषिता ।
[10]खकृता [11]खगतिश्चैव [12]खगतिर्लघुपायिनी ॥ १२९ ॥
[13]खगे खगी खगरुती खगनागस्वरूपिणी ।
[14]खञ्जा खञ्जप्रिया चैव [15]खञ्जनाक्षी च [16]खञ्जनी ॥१३०॥

---

१. 'पानीय'.....कटिद्वया'इति पङ्क्तिरेषा नास्ति—ङ. । २. पथाः पथस्वरूपा—क. ख. । ३. नाशा पूपरता—क. ख. । ४. जल—क. ख. । ५. 'चर्या'इत्यस्य स्थाने 'व'—क. ख. । ६. पिष्टपिष्टसुदुर्धरा—क. ख. । ७. पुरुषरूपा—क. ख. । ८. पाक्षिणी पक्षनिस्वना—क. ख. । ९. द्वयं—क. ख. । १०. भहृता—ङ. । ११. भग—ङ. । १२. भगतन्मधुपायिनी—ङ. । १३. भगेश्वरी भगरुता भगनाथस्व—ङ. । १४. भञ्जा भाञ्जप्रिया—ङ. । १५- भञ्जलाक्षी—ङ. । १६. भञ्जनी—ङ. ।

[1]खट्वारता च [2]खड्वाङ्गधारिणी [3]खेटकप्रिया ।
[4]खण्डा [5]खाण्डवदाहा च [6]खण्डिता सुरयूथपा ॥ १३१ ॥
[7]खादन्ती खाद्यमाना च [8]खण्डहीना च [9]खेदनी ।
[10]खनित्री [11]खननासक्ता [12]खनिरूपा [13]खनीलिभा ॥ १३२ ॥
[14]खिन्ना खरतरा चैव [15]खरांशुमालिनी तथा ।
[16]खलखली का(खा)रकरी [17]खलीनकुरुकाश्रया ॥ १३३ ॥
[18]खलीना [19]खिलहीना च [20]खिलाखिलनिषेविता ।
गौर्गोभिःकमिता चैव गोखुरार्चनसंरता ॥ १३४ ॥
गगना गगनाधारा गोगता गोगणार्चिता ।
गोग्रहा गोग्रहाह्लादकारिणी च तथैव च ॥ १३५ ॥
गोधनाह्लादसन्तुष्टा गोघटा घटिता तथा ।
गङ्गा च गाङ्गता चैव गञ्जनी [21]गञ्जनोज्झिता ॥ १३६ ॥
गुञ्जन्मधुव्रतरुता गुञ्जामाला[22]विभूषणा ।
गणेश्वरी गणरता गणेश्वरनिषेविता ॥ १३७ ॥
[23]गुणिता गुणपूर्णा च गौणा गुणविवर्जिता ।
गण्डा गण्डवती चैव गण्ड[24]कुण्डलमण्डिता ॥ १३८ ॥
गण्डकी चैव गाण्डीवधारिणी [25]गेन्दुकप्रिया ।
गता गतिमती चैव गीता गीताप्रचारिता ॥ १३९ ॥
गोतनुर्गोतता गाथा गाथागानपरायणा ।
गदिता गदसंहन्त्री गोदानव्रतचारिणी ॥ १४० ॥
गोधा गोधाङ्गुलित्रा च गोधान्यधनवर्द्धिनी ।
गानासक्तमना गन्त्री गन्धा गन्धवहा तथा ॥ १४१ ॥

---

१. भट्वा–ङ. । २. भट्वाङ्ग–ङ. । ३. भट–ङ. । ४. भण्डा–ङ. । ५. भाण्डेव–ङ. । ६. भण्डिता–ङ. । ७. भादण्डी भाद्य–ङ. । ८. भेदहीना–ङ. । ९. भेदनी–ङ. । १०. भणित्री–ङ. । ११. भणनाऽशक्ता–ङ. । १२. भणिरूपा–ङ. । १३. भणीलिमा–ङ. । १४. भिल्ला भरतरा–ङ. । १५. भरांशु–ङ. । १६. भनभनी–ङ. । १७. भनीनकुतुकाश्रया–ङ. । १८. भलीना–ङ. । १९. भिल–ङ. । २०. भिलाभिल–ङ. । २१. गञ्जमोचिता–क. ख. । २२. विभूषिता–क. ख. । २३. गुणिना–क. ख. । २४. कुण्डसमन्विता–ङ. । २५. गण्डुकप्रिया–क. ख. ।

गोपी [1]गोपालसक्ता च गोपालबालपालिता ।
गोपगोपा[2]र्चिता चैव गोपतिप्रणयान्विता ॥ १४२ ॥
गोफला गोफलकरी गोवर्धनधरी तथा ।
गोबला गोबलीवर्द[3]नर्दनीत्सवमानसा ॥ १४३ ॥
गोबालकलिताभूषा गोविन्दप्रेमलालसा ।
गोवाहनमनोज्ञा च गोवृता गोवनस्थिता ॥ १४४ ॥
गोभारभरणासक्ता गोभूता गोऽमृतप्रिया ।
गमिता गमने मन्दा गामिनी गोमती तथा ॥ १४५ ॥
गम्भीरी चैव गम्भीरा गयासुरनिषूदनी ।
गया गयावासिनि च गायत्री चैव गायनी ॥ १४६ ॥
गेया गोयानरसिका गरला गरलाकुला ।
[4]गानोन्मत्तमणिश्रीका गिरन्ती च गिरामयी ॥ १४७ ॥
गीर्यमाणा गोरसाढ्या गोरसक्रयकारिणी ।
गौरी गोश्वसितामोदा गृष्टिरूपा तथैव च ॥ १४८ ॥
[5]गोसारणकरी चैव गोसुलक्षणलक्षिता ।
गोसर्जनकरी चैव गहना गहनप्रिया ॥ १४९ ॥
गाहा गुहनिषेव्या च गुह्या च गृहदेवता ।
गेहिनी गोक्षमाधीरा [6]घूका घूकारुतोत्सवा ॥ १५० ॥
घाटिता घटिता चैव [7]घाटावत्यपि घाटिका ।
[8]घोटकाकारकलिता घण्टा [9]घण्टाविमोदिनी ॥ १५१ ॥
घण्टाकर्णनिषेव्या च घाणामौक्तिकराजिता ।
घृणावती घातकरी घृतामोदविधायिनी ॥ १५२ ॥
घनानन्दा घनमयी घनाघननिषेविता ।
घनागम[10]कृतरतिर्घर्मागमसुशीतला ॥ १५३ ॥
घर्षणा [11]घृष्टरूपा च घृष्टिर्घासाभिलाषिणी ।
छेकाछेक[12]खेलमाना [13]छगली छागवाहिनी ॥ १५४ ॥

---

१. गोपनसक्ता–क. ख. । २. यिता–ङ. । ३. वर्द्धनो–ङ. । ४. गारुत्मत–ङ. । ५. गोत्तोरण–क. ख. । ६. मधुराकारुतो–क. ख. । ७. घटोवद्यापि घोटिका–ङ. । ८. घटिकाकारकविता–क. ख. । ९. घण्टविनोदिनी–क. ख. । १०. धृतवति–ङ. । ११. वृष्टिरूपा–क. ख. । १२. चैल–क. ख. । १३. श्वगली–क. ख. ।

छागवाहनसेव्या च छटात्रैलोक्यमोहिनी ।
छत्राछत्रमयी छत्रछादिता छात्ररूपिणी ॥ १५५ ॥
छदाकर्णा छादिनी च छेदिनी छेदवर्जिता ।
छदरूपा [1]छन्नरूपा [2]छन्ननाम्नी तथैव च ॥ १५६ ॥
छिन्नमस्ता [3]छन्नमूर्तिश्छन्नप्रच्छन्नकारिणी ।
छन्दा छन्दमयो चैव छन्दोगा छन्दसांप्रभुः ॥ १५७ ॥
छायामयी छायिनी च छायाकर्त्री छलप्रिया ।
छलाछलकरी छल्या जगन्नाथप्रियापि च ॥ १५८ ॥
जगतामुपकर्त्री च तथा जागरणक्षमा ।
जङ्गमा जङ्गमेशानी तथा [4]जङ्गमचारिणी ॥ १५९ ॥
जटा[5]जूटधारिणी च जडाजडनिपातिनी ।
जितामित्रा च जेत्री च जैत्रकर्मविधायिनी ॥ १६० ॥
जननी जननीतिज्ञा जिनाचारपरायणा ।
जपा जप्या जपकरी जापिनी जीवधारिणी ॥ १६१ ॥
जीवापि जीवजीवातुर्जैवात्रिकमनोरमा ।
[6]जडिनी जडसुप्रीता जमलार्जुनभञ्जिनी ॥ १६२ ॥
जेमना जेमनकरी जैमिनिस्तवनप्रिया ।
जम्बूलमालिकारक्ता जम्बूप्रीता च [7]जाम्बवी ॥ १६३ ॥
जाम्ववत्यपि जम्वाला जम्बालकलिताऽपि च ।
जम्बुवत्सेविता चैव जम्बूनदविभूषणा ॥ १६४ ॥
जम्बीरविपिनासक्ता जम्वुकाननवासिनी ।
जृम्भापि जृम्भमानास्या [8]जम्भसूदनवन्दिता ॥ १६५ ॥
[9]जम्भप्रवैरिणी चैव जया [10]च जयिनी तथा ।
जाया जेयविजेत्री च जरामरणवर्जिता ॥ १६६ ॥
जला जलमयी चैव जलेश्वरनिषेविता ।
जलवासा जालहीना जालक्षेपणकारिणी ॥ १६७ ॥

---

१. छत्ररूपा—क. ख. । २. छत्रनाम्नी—क. ख. । ३. छत्रमूर्तिश्चिच्छन्न—क. ख. । ४. जगत्चारिणी—क. ख. । ५. कूट—क. ख. । ६. जृम्भिनी जृम्भसुशीला जम—क. ख. । ७. जाम्बुजम्—क. ख. । ८. जृम्भ—क. ख. । ९. जृम्भ—क. ख. । १०. 'च'इत्यस्य स्थाने 'वि'—क. ख. ।

जक्षिणी [1]जक्षसेव्या च जक्षिणी[2]गणसेविता ।
जक्षराडभिलाष्या च झङ्कारा झङ्कृतिप्रिया ॥ १६८ ॥
[3]झञ्झारूपा झटा चैव झिण्टीकुसुमपूजिता ।
[4]झररूपा झषाकारा झषराशिनिषेविता ॥ १६९ ॥
[5]ठं ठं ठनितिशब्दाढ्या ठद्वया ठठरूपिणी ।
डमड्डमरुहस्ता च [6]ढक्कावाद्यविनोदिनी ॥ १७० ॥
दण्डा दण्डधरा चैव दण्डपाणिनिषेविता ।
दात्री दूती दूत्यसक्ता [7]दूतिसञ्चारकारिणी ॥ १७१ ॥
[8]दानसञ्चारसन्तुष्टा [9]दानद्विरदगामिनी ।
[10]दण्डिनी [11]दण्डधवला दान्ता द्वन्द्वविनाशिनी ॥ १७२ ॥
दन्दशूकसमाकारा [12]दवाग्निवीर्यसम्भृता ।
[13]दावस्थिता दविष्ठा च देवतागणसेविता ॥ १७३ ॥
देवी [14]देववसुस्निग्धा देवकी देवकप्रिया ।
तथा दैवविधानज्ञा दैवत्रिद्धिर्निषेविता ॥ १७४ ॥
दमरूपा दामिनी च दम्भा दम्भोलिविक्रमा ।
दम्भा दम्भवती चैव दया चापि दयामयी ॥ १७५ ॥
दायाढ्या दायरूपा च दूयमाना सुराधिपा ।
देय[15]प्राप्या दराढ्या च दरहीना दरावहा ॥ १७६ ॥
दारिणी दूरलभ्या च दलपूर्णा दलप्रिया ।
दोलायमानसर्वाङ्गी दिव्यतेजःप्रकाशिनी ॥ १७७ ॥
दिव्या दिविविहारा च दिवारात्रिकरी तथा ।
दशदिग्[16]ज्योतिनी चैव दशाफलविधायिनी ॥ १७८ ॥
[17]दशादशकलादेशकालोचितपराक्रमा ।
[18]दिशन्ती दाशरूपा च दोषलेशविवर्जिता ॥ १७९ ॥

---

१. जलसेव्या—क. ख. । २. गणनिषेविता—क. ख. । ३. झञ्झरूपा—क. ख. । ४. झलरूपा—क. ख. । ५. टटंटनिति—ङ. । ६. वक्त्राद्य—क. ख. । ७. द्वति—क. ख. । ८. दीनसन्तुष्टा दाने च दान—क. ख. । ९. दात्री द्विर—क. ख. । १०. दन्तिनी—क. ख. । ११. दन्तधवला—क. ख. । १२. दयाग्नि—ङ. । १३. दारस्थिता—ङ. । १४. देवर सुस्मिज्ञा—क. ख. । १५. प्राप्या—ङ. । १६. व्यापिनी—ङ. । १७. दशदिशकला —ङ. । १८. दिशति दशा—ङ. ।

दोषक्षयकरी दुष्टदूषणोद्धारकारिणी ।
दासीप्रिया दास्यकरी दासीगण[1]विराजिता ॥ १८० ॥
दहना दहनेशा च दाहनिर्मूलकारिणी ।
दहनी दीहमाना च दिहन्नितम्बशालिनी ॥ १८१ ॥
देहधात्री दौहिकी च दोहिनी दोहरूपिणी ।
दक्षा दक्षिणदिग्जाता दक्षिणा दक्षिणप्रिया ॥ १८२ ॥
दाक्षिण्यनिरता दीक्षा दीक्षाकृतिपरायणा ।
दीक्षितप्रणयाविष्टा दीक्षितार्ति[2]वशस्थिता ॥ १८३ ॥
धिक्कारिणी च धटिनी [3]धेटीकटिसुशोभिता ।
धेटिनी धेटरूपा च [4]धृतश्रीधर्तौविग्रहा ॥ १८४ ॥
धन्या धनदसन्तुष्टा धन्वानोदनकारिणी ।
धूपिनी धूप[5]सम्मोदा धवलाङ्गी च धाविनी ॥ १८५ ॥
धमिनी धामिनी धूम्रा धूमकेतुविनाशिनी ।
धूमयोनिकृतप्रीतिर्धूम्रलोचनमर्दिनी ॥ १८६ ॥
धूमा [6]धौम्या धौम्यरता ध्मायमानाऽम्बुजापि च ।
धिया प्राप्या धूयमाना ध्येया ध्यानविगोचरा ॥ १८७ ॥
धरणी धरणीशानी धरणीधरधारिणी ।
धाराधारमयी धाराधारिणी धीरपूजिता ॥ १८८ ॥
धुरन्धरा धोरणी च धौरीणव्रतचारिणी ।
धूलिधूसरगात्रा च धूसरा धूसरेक्षणा ॥ १८९ ॥
धिषणावत्सेविता च धिषणा धिषणावती ।
धूक्षन्ती नाकनिलया नाकनायकनायिका ॥ १९० ॥
निकटस्था च नौका च नौकासन्तारकारिणी ।
नृकपालमालकण्ठा निकारान्तविधायिनी ॥ १९१ ॥
नखरा नखचन्द्रा च नखरेखाविभूषणा ।
नगगानगजा चैव नगराजनिवासिनी ॥ १९२ ॥
नागवाहनसन्तुष्टा नागिनी [7]नागसेविता ।
नवला नाचला चैव नृचातुर्यकरी तथा ॥ १९३ ॥

---

१. विवर्जिता—क. ख. । २. रसस्थिता—ङ. । ३. 'धेटी'इत्यस्य स्थाने 'घटनी'—क. ख. । ४. धूतश्री—क. ख. । ५. संस्मोदा—क. ख. । ६. 'धौम्या' नास्ति—क. ख. । ७ नमानसेविता—क. ख. ।

निचोलाञ्चलसंवीता नैचिकीगणपूजिता ।
नौचला नोच्छलकरी नृच्छादनकरी तथा ॥ १९४ ॥
निजलोकशोकहरा नेजनी नौजन[1]स्तुता ।
नृजनार्चनसन्तुष्टा [2]नृसंहारकरी तथा ॥ १९५ ॥
नटिनी नटरूपा च नटनाटनकारिणी ।
नाट्यलीलाविनोदा [3]च नाटिताखिलसंसृतिः ॥ १९६ ॥
नीजजारुतकर्त्री च नीजजाधिपवाहना ।
नतचेतोऽम्बुजस्था च निन्दानन्दमयी तथा ॥ १९७ ॥
नूतनातिनूतना च नेत्रत्रयविभूषिता ।
नेत्री नेत्रशोभिताङ्गी नास्वरूपा नदन्मुखी ॥ १९८ ॥
नादरूपा निदधती नौधराधरनिश्चला ।
[4]नदस्वरा चैव तथा नानागुणसमन्विता ॥ १९९ ॥
नृणामप्रीतिहृदया नौनाशितभयावहा ।
नन्दिनी नन्दिता चैव नन्दनन्दनजीवनी ॥ २०० ॥
निन्दाहीना तथा नन्दा नीपमूलविनाशिनी ।
नृपतित्वप्रदा चैव नौपतिप्रतिसेविता ॥ २०१ ॥
नृफलैकप्रदात्री च नवनीतसुकोमला ।
नावनीतरसस्निग्धा निविडाश्लेषकारिणी ॥ २०२ ॥
नीविबन्धानुबन्धा च नभोगमनलालसा ।
नाभिहृदगभीरा च निभासद्भास्करोज्ज्वला ॥ २०३ ॥
अपि नौभवनस्था च नमस्या नाममोहिनी ।
निम्ननाभिसुशोभा च नृमण्डलविभूषणा ॥ २०४ ॥
नेमिर्नेमिवती चैव नैमिषारण्यवासिनी ।
[5]नित्यरूपा [6]नित्यरसा नयनानन्दवर्धिनी ॥ २०५ ॥
नयधीरा नायिका च नियता नियतिप्रदा ।
नृ(नि)यमाचारसञ्चारा नरे[7]न्द्रपरिसेविता ॥ २०६ ॥

---

१. संस्तुता—क. ख. । २. नृसङ्कार—ङ. । ३. 'च' इत्यस्य स्थाने 'सा'—क. ख. । ४. न नश्वरं नटे तथा—क. ख. । ५. निम्वरूपा—क. ख. । ६. निम्वरसा-क. ख. । ७. न्द्रैःपरि—ङ. ।

नरान्तर्यामिनी चैव निरयान्तककारिणी ।
नारायणी नीरवासा नैरन्तर्या च नौरता ॥ २०७ ॥
नलसेव्या च नानाढ्या तथा नीलसरस्वती ।
[१]नृलम्बनकरी चैव नौलम्बनकरी तथा ॥ २०८ ॥
नाशनी नाशरहिता नृशीलपरि[२]शीलना ।
नौशान्धकारदलनी नोषरस्था च नोषिता ॥ २०९ ॥
नासा[३]वेषितमुक्ता च नृसज्जनसुतोषिता ।
नीहारालयपुत्री च निहर्तिर्निहर्तिक्रिया ॥ २१० ॥
नीहारांशुसमाकारा तथा नौहरणोद्यता ।
नृक्षयकरी तथा चैव नौक्षालनकरी तथा ॥ २११ ॥
फटावती फणिपतिप्रथिता फणदीपिता ।
फेनशुभ्रा च फूत्कारा फेत्कारिण्यपि फेरुता ॥ २१२ ॥
फलदात्री फुल्लरूपा [४]फुल्लस्तबकशोभिता ।
फल्गुरूपा फल्गुवाक्या फल्गूत्सवपरायणा ॥ २१३ ॥
[५]बकलीला बाकला च वृकव्यूह[६]विनाशिनी ।
[७]वृकोदराऽग्निरूपा च [८]बाता [९]वाग्वागुपासिता ॥ २१४ ॥
विगता वेगिनी चैव विधात(तृ)भयनाशिनी ।
वचना[१०]रचनादक्षा वाचिकप्राणमोहिनी ॥ २१५ ॥
विचारचतुरा वीचिर्वीचिहन्त्री तथैव च ।
वज्रभूषा वज्रपाणिर्वज्रवैरोचनी तथा ॥ २१६ ॥
वजिपृष्ठसमारूढा विजरा बीजरूपिणी ।
वश्चकारुतसन्धात्री वश्चकव्यूहवेष्टिता ॥ २१७ ॥
वटमूलनिवासा च [११]वटाधिष्ठानकारिणी ।
[१२]विटजल्पितसुप्रीता [१३]विट्ठलेश्वरपूजिता ॥ २१८ ॥

---

१. नृलङ्घनकरी—ङ. । २. शीलिता—ङ. । ३. वौ शतमुक्ता—ङ. । ४. फुल्लस्नवकशोभिता—क. ख. । ५. बकनीला—ङ. । ६. विलासिनी—क. ख. । ७. वृगोदाग्निरूपा—क. ख. । ८. गता—क. ख. । ९. 'वाग्'नास्ति—क. ख. । १०. वचना—ङ. । ११. वायविष्टानकारिणी—क. ख. । १२. अत्र 'छ'मातृका आरभ्यते । १३. विट्वनेश्वर—ङ., विट्वलेश्वर—छ. ।

विट्पूजिता च वडवा वाडवाग्निसमप्रभा ।
वीणावादनसुप्रीता [1]वीणा वीणावती तथा ॥ २१९ ॥
वन्दनासक्तहृदया वसन्तोत्सवकातरा ।
वातपुत्री च [2]वितनुध्वजिनी वीतविद्रवा ॥ २२० ॥
वृतकन्दर्प[3]मित्रा च वेत्रपाणिस्थैव च ।
वदावदप्रिया चैव वादिनी विदरा तथा ॥ २२१ ॥
वेदरूपा वेदवती [4]वैदर्भीवधकारिणी ।
बाधा बाधानाशिनी च [5]विधन्वा विधुरूपिणी ॥ २२२ ॥
विधिशीला बुधा बोध्या वेधः[6]पूज्या च वैधसी ।
बोधिता बोधशीला च बौद्धा बौद्धक्रियाप्रिया ॥ २२३ ॥
वनस्थिता वानप्रस्था विनेत्री वृन्तरूपिणी ।
वन्दनप्रीतचित्ता च [7]वन्दिता वन्दितप्रिया ॥ २२४ ॥
वृन्दारवृन्दवीता च वृन्दावनविलासिनी ।
बन्धना[8]पन्नाशिनी च बन्धुजीवारुणाधरा ॥ २२५ ॥
वन्ध्यापत्यप्रदा चैव बान्ध[9]वाप्रीतमानसा ।
[10]वपनोत्सव[11]संसर्पा वनिता [12]विपणिस्थिता ॥ २२६ ॥
वरवरस्रवद्रक्ता विवरान्तरचारिणी ।
विभीर्वैभवसम्पूर्णा वमितासुरपुङ्गवा ॥ २२७ ॥
वामा च वामदेवार्च्या विभनोहृदयस्थिता ।
बिम्बाधरा व्ययाढ्या च वैयासकिनिषेविता ॥ २२८ ॥
वरारोहा वारिणी च विरहानलकीलिता ।
वीरा वीर्ययुता चैव वीरणप्रीतिमानसा ॥ २२९ ॥
वैरिनिष्कम्पिनी चैव [13]वलसूदनदुर्लभा ।
बलरामाभिरामा च बलविक्रमकारिणी ॥ २३० ॥
बाला [14]बिलप्रविष्टा च विलम्बकरणक्षमा ।
वशंवदा विशाखेशा वेशचारुविलासिनी ॥ २३१ ॥

---

१. 'वीणा' नास्ति—ख. । २. वितवध्व—छ. । ३. मन्त्रा च—ङ. । ४. वेद-गर्भा वध—ङ. । ५. विषण्वा—छ. । ६. पूत्ता—छ. । ७. वन्दि वन्दित वन्दिता-ङ. छ. । ८. पन्नशाला च—छ. । ९. व्यप्री—छ. । १०. वसनो—छ. । ११. सहमर्या—ङ. । १२. विपणोस्थता—छ. । १३. वरुणसुदः दुर्लभा—छ. । १४. बाणप्रवि—छ. ।

वैशम्पायनपूज्या च [1]वषड् विषविनाशिनी ।
वृषासुरनिहन्त्री च वृषरक्षणकारिणी ॥ २३२ ॥
वौषट्वसनशून्या [2]च [3]वास्तुयागसुतोषिता ।
विसिनीदलवासा च वाहिनी वाहिनीस्थिरा ॥ २३३ ॥
विहारकारिणी चैव बृहती वैहायसी तथा ।
वक्षोरुहयुगोत्तुङ्गा [4]विक्षालनकरी तथा ॥ २३४ ॥
वृक्षश्रेष्ठाग्रनिलया भेक[5]प्लुतिविनाशिनी ।
[6]भगभालालङ्कृता च भगवत्यपि भागिनी ॥ २३५ ॥
भाग्यवत्या(ती) तथा चैव भृगुसेवनतोषिता ।
भोगिनी भोगदा भोग्या भङ्गभीतिविनाशिनी ॥ २३६ ॥
भृङ्गरङ्गसङ्गमा च भजनस्निग्धमानसा ।
भाजनश्रीवृद्धिकरी भुजान्दोल[7]विलासिनी ॥ २३७ ॥
भोज्यभोजनसन्तुष्टा भञ्जनी भटदुर्घटा ।
[8]भुवनासक्तवदना भण्ड[9]मण्डनकारिणी ॥ २३८ ॥
[10]भाण्डवत्यपि भाण्डाङ्गी भीता भूत[11]निषेविता ।
[12]भृता भृत्यप्रिया चैव भौतचेष्टाविधायिनी ॥ २३९ ॥
भिदाकर्त्री भेदहीना भूपगोष्ठीसमर्चिता ।
भौपपदप्रदात्री च भवेन परिभाविता ॥ २४० ॥
भाविनी भुवनप्रीता तथा भामा च [13]भामिनी ।
भीमवीर्यपोषणी च भूमिर्भूमगुणावृता ॥ २४१ ॥
भौमस्थानप्रदात्री च भौमग्रहसुपूजिता ।
भयहीना [14]भवोद्भ्रान्ता [15]भारोत्तोलनकारिणी ॥ २४२ ॥
भीरुर्भूरिगुणोपेत सेविता भेरिनिःस्वना ।
भेरुण्डा भैरवी चापि भूलम्बनकरी तथा ॥ २४३ ॥

---

१. षडविषिवि—क. ख., वषडिप—छ. । २. तु—क. ख. । ३. वनमाला विराजिता—छ. । ४. विक्षानन—छ. । ५. श्रुतिविलासिनी—छ. । ६. 'भगभाला'''' विनाशिनी' इति पङ्क्तित्रयं नास्ति—क. ख. । ७. विनाशिनी—ङ. । ८. भणना—क., भगना—छ. । ९. भण्ड—ङ. छ. । १०. 'भाण्ड''''ण्डाङ्गी' नास्ति-ख. । ११. निवेशिता—छ. । १२. 'भृता' इत्यस्य स्थाने 'भृत्या'—छ. । १३. भासिनी—ङ. । १४. भरोष्ट्रान्ता—क. ख. । १५. भावोत्तो—ङ. ।

भृशदुरित(नि ?)हन्त्री च [1]भाषिणी [2]भिषगर्चिता ।
भीषणा च भुशुण्डचस्त्रा भूषणेन विभूषिता ॥ २४४ ॥
भेषजाशननीरोगा भैषज्यपददायिनी ।
भक्षिणी चैव भिक्षुश्च भिक्षाकर्मकलापिनी ॥ २४५ ॥
भूक्षयकलालोला च तथा भैक्ष्यविधायिनी ।
भैक्षाचारसुसन्तुष्टा मकराकृतिकुण्डला ॥ २४६ ॥
मुक्ता मुक्तनिषेव्या च मुक्ताहारविहारिणी ।
मृकण्डुतनयार्च्या च मृकण्डपरिखण्डिनी ॥ २४७ ॥
मौक्तिका[3]भासुररदा मखकर्म[4]समहिता ।
मेखला कटिबन्धा च मौखर्यपरिवर्जिता ॥ २४८ ॥
मृगशिरसि जाता च मृगचर्मोपवेशिता ।
मृगपत्नीलोचनी च मुग्धा मुग्धनिषेविता ॥ २४९ ॥
मघवद्विक्रमकरी मोघीकृतरिपुव्रजा ।
मेघकेशी मङ्गली च तथा मङ्गलदायिनी ॥ २५० ॥
मज्जावती मृजाशीला [5]मञ्चस्था मञ्जु[6]वागपि ।
मोटिनी मठमध्यस्था मृडानी [7]मेढ्रचक्रगा ॥ २५१ ॥
मणिमण्डपमध्यस्था मणिराजिविराजिता ।
मणिपत्रस्थिता चैव तथा माणवकाकृतिः ॥ २५२ ॥
मृणालाभ[8]भुजायुग्मा मृणालशयनोत्सुका ।
मण्डलान्तरसंस्था च मुण्डमालासमाकुला ॥ २५३ ॥
मताभिज्ञा मातलीष्टा मित्रसंसर्गतोषिता ।
मृतसत्कारकर्त्री च मैत्रवर्त्मप्रकाशिनी ॥ २५४ ॥
मथनी मदपूर्णा च मादिनी मुदिता तथा ।
मृदिता मेदुरा चैव मोदिनी मौदिरप्रदा[9] ॥ २५५ ॥
मधुमाध्वीकमत्ता च माधवीपुष्पसौरभा ।
[10]मृधनिर्जयिनी चैव मनोविषयजृम्भिता ॥ २५६ ॥

---

१. भाषिणां—क. ख. । २. प्रतिवन्दिता—क. ख., भिषगर्भिता—छ. । ३. भास्वर—क. ख. छ. । ४. समाहिता—क. ख. । ५. मञ्जुस्था—छ. । ६. रागपि-छ. । ७. मेरुचक्रगामिनी—क. ख. । ८. सक्तियुग्मा—क. ख. । ९. इतः परन् (१३००)—छ. । १०. मधुनि—क. ख. ।

मानिनी मीननेत्रा च मुनिराजनिषेविता ।
मौनिनी च तथा चैव मन्थानदण्डधारिणी ॥ २५७ ॥
मन्दारकुसुमा[1]र्च्या च मान्द्यवर्जनकारिणी ।
मयदानवसंसेव्या मायाहीना च मायिनी ॥ २५८ ॥
मयूरनिनदाप्रीता मयूररुतकारिणी ।
मरण[2]त्रासहन्त्री च मारोद्दीपनकारिणी ॥ २५९ ॥
[3]मुरागन्धप्रिया चैव मललेशविनाशिनी ।
मालाशोभितसर्वाङ्गा मिलन्ती मीलयन्त्यपि ॥ २६० ॥
मूलरूपा मौलिका च मेधामैश्वर्यदायिका ।
मिषन्ती मूषिकाकारा मूषिकांशु[4]वरप्रदा ॥ २६१ ॥
मेषादिनी मोषहीना मासव्रतपरायणा ।
मोहिनी मक्षिकारूपा मेक्षणी मोक्षदायिनी ॥ २६२ ॥
यागप्रिया युगकरी योगिनीकोटिवल्लभा ।
यौगिकी याचमाना च यच्छन्ती यजनक्रिया ॥ २६३ ॥
याजयन्ती तथा चैव योजनायाम[5]विस्तृता ।
योटनी यतमाना च यातनाक्षयकारिणी ॥ २६४ ॥
यदु[6]वंशक्षयकरी [7]यानमङ्गलचारिणी ।
योनिरूपा यौवनाढ्या युवलोकविलोकिता ॥ २६५ ॥
यमभीतिक्षयकरी यामिनी यमुना तथा ।
यावद्गुणसुसम्पन्ना यशस्या च यशस्विनी ॥ २६६ ॥
यशोदामोहिनी चैव योषाकुलशिरोमणिः ।
रुक्मिणी रागरसिका रुगपेता च [8]रोगहृत् ॥ २६७ ॥
राघवी राघवप्रीता [9]रङ्कानुग्रहकारिणी ।
[10]रङ्गदा रिङ्गणकरी रोचिःसञ्चारकारिणी ॥ २६८ ॥
रुचिरा रौचिकी चैव राजलक्षणलक्षिता ।
रुजासञ्चारकर्त्री च रञ्जना रटनोत्सवा ॥ २६९ ॥

---

१. र्का च–छ. । २. ग्रास–ङ. । ३. सुरा–क. ख. । ४. वसंवदा–छ. । ५. 'विकृता' इति पाठान्तरम् । ६. वंशात्तय–छ. । ७. यादवी यानचारिणी–ङ. । ८. रोगकृत्–ङ. । ९. रङ्गानु–क. ख. । १०. रङ्करिङ्कणकरी–ङ. ।

रणदुर्मदमत्ता च रतकाल[4]विलासिनी ।
रीतिज्ञा [2]रुतघोरा च[3] रथलक्षपुरोगता ॥ २७० ॥
रदद्वयस्मेरयुता राधिता रोधकारिणी ।
रोधो[1]विनाशिनी चैव रन्धनाकुलविग्रहा ॥ २७१ ॥
रूप्यभाण्डा रूपवती रोपणो रवकौतुका ।
राविणी रेवती रेवा तथा रैवतकस्थिता ॥ २७२ ॥
रमा च रमणी चैव रामणीयकसंयुता ।
रोमराजीराजिता च रम्भा रम्भावनस्थिता ॥ २७३ ॥
रयकर्त्री रोषकरी रुष्टा रसितकौतुका ।
रासावेश[5]विलासा च रोहिणी रक्षिणी तथा ॥ २७४ ॥
राक्षसेश्वरसेव्या च रूक्षा लकुचवेष्टिता ।
लगिता लग्नसञ्चारा चापि लग्नमयी तथा ॥ २७५ ॥
लघुबुद्धिप्रदा चैव लङ्कापुरनिवासिनी ।
लिङ्ग[6]वर्त्मप्रकाशा च लिङ्गरूपा च लिङ्गिनी ॥ २७६ ॥
लङ्घनी च तथा लज्जा लज्जाभरधरा तथा ।
लाजविक्षेपणी चैव [7]लाङ्गुली लाङ्गुलान्विता ॥ २७७ ॥
लाता लोडनकर्त्री च लूतातन्तुप्रसारिणो ।
[8]लूनामित्रा च लपनी लापसंलापकारिणी ॥ २७८ ॥
लोपामुद्रा लाभकर्त्री लोभहीना च लोभनी ।
लोमशाराध्यचरणा लम्बनी लम्भनी तथा ॥ २७९ ॥
लयहीना लयगता लयनान्तरशायिनी ।
लालामयी ललज्जिह्वा लास्यकर्त्री च लासिका ॥ २८० ॥
लक्षसेव्या च लाक्षाभा लाक्षारागानुरागिणी ।
बुद्धिप्रदा बुद्धिरता बुद्धिरूपा तथैव च ॥ २८१ ॥
शक्तिः शाकम्भरी चैव शिक्यनिर्माणकारिणी ।
[9]शुकपोषणकर्त्री च शुकदेववरप्रदा ॥ २८२ ॥

---

१. विनाशिनी—ङ. । २. रत—छ. । ३. अत्र 'छ'मातृका खण्डिता । ४. विलासिनी—क.ख. । ५. विनाशा च—ङ. । ६. वर्णप्रकाशा—ङ. । ७. लाङ्घनी लाङ्घनान्विता—क. ख. । ८. 'लूना''''लोभनो' इति पङ्क्तिद्वयं नास्ति—ख. । ९. पुक—ङ. ।

शूकराकृतिकर्त्री च शूकधान्यसुतोषिता ।
शोकापनोदिनी चैव शाखिनी शिखिसत्प्रभा ॥ २८३ ॥
शाङ्करी शङ्करा चैव शङ्खिनी शृङ्गधारिणी ।
शाटीपटसमुद्दीप्ता शठलोकबिभर्त्सनी ॥ २८४ ॥
शाठ्यहीना तथा चैव शणसूत्रशिरोरुहा ।
शूलपाणिः शोणनेत्रा शातकुम्भस्तनद्वयी ॥ २८५ ॥
[1]शितबाणा शीतमूर्तिः शोथघ्नी शुद्धरूपिणी ।
शान्ता शान्तिमती चैव शिञ्जिता सज्जनप्रिया ॥ २८६ ॥
शपथा [2]शान्तहृदया शापमोचनकारिणी ।
शफरीनयनी चैव शिफारूढा [3]शवासना ॥ २८७ ॥
शावपोष्ट्री [4]शिवोपास्या शिवा च शैवधिस्तथा ।
शिविका शिविकारूढा शैववर्त्मप्रदायिनी ॥ २८८ ॥
शोभाकरी शमवती शामिन्यपि च शेमुषी ।
शम्पामध्या शम्बरारिवारिणी शाम्बरी तथा ॥ २८९ ॥
शम्भुरूपा शाम्भवी च शम्भुमूर्ध्निस्थितापि च ।
शयनोच्छ्वसिता चैव शायिता शरवारिणी ॥ २९० ॥
श्रीः श्रीमन्निषेव्या च श्रीफलाधःस्थिता तथा ।
शारिणी [5]शिवमूर्द्धा च शिवहस्ता तथैव च ॥ २९१ ॥
शूरसेव्या शैवहस्तप्रददा शौरकर्मिणी ।
शलभोद्धारिणी चैव शालानिर्माणकारिणी ॥ २९२ ॥
शिलावृष्टिकरी शीलशालिनी शूलिनी तथा ।
शैलतुल्या श्वरीना च श्वापदव्यूहवेष्टिता ॥ २९३ ॥
श्वेतासना श्वैत्यवती श्वाती श्वसनकारिणी ।
श्वासानिलसुगन्धा च [6]शशचर्मनिवासिनी ॥ २९४ ॥
शेशवाढ्या शेषहीना शोषणी शासिनी तथा ।
शिक्षाकरी सुकण्ठी च सेककर्त्री सुकोमला ॥ २९५ ॥
सुखप्रदा सौख्यरूपा सगरान्वयतारिणी ।
सागरास्था च सुगदध्वंसिनी सङ्करप्रिया ॥ २९६ ॥

---

१. शितवाणशीतमूर्तिः—क. ख. । २. क्रान्त—ङ. । ३. शरासना—ङ. ४. शिरोपास्या शिरसि शेव—ङ. । ५. शिर ऊर्ध्वा च शिरहस्ता—ङ. । ६. शवचर्म—क. ख. ।

साङ्गोपाङ्गक्रियाध्यक्षा सङ्गसञ्चारकारिणी ।
सज्जनाह्लादजननी सुजनी [1]सञ्जयार्चिता ॥ २६७ ॥
सितपद्मदलप्रीता सुतनुः सूत्ररूपिणी ।
सृता च सदरा चैव सादरा सीददुद्व्यथा ॥ २६८ ॥
सुदया सुदरा चैव सोदरप्रीतिकारिणी ।
सधवा च तथा साध्वी सिद्धा [2]सीधुनिपायिनी ॥ २६९ ॥
सुधन्वा च तथा सेनाकोलाहलविधायिनी ।
सैन्य[3]मूर्द्धासन्दलनी सन्देशहारिणी तथा ॥ ३०० ॥
सान्द्रानन्दा च सिन्दूरमण्डिता[4]लिकमण्डला ।
सुन्दोपसुन्दहन्त्री च सौन्दर्यसर्वमोहिनी ॥ ३०१ ॥
सन्धिविग्रहकार्या च सन्धात्री सन्ध्ययार्[5]चिता ।
सन्ध्या सिन्धुस्वरूपा च सिन्धुमज्जनकारिणी ॥ ३०२ ॥
सैन्धवी सैन्धवश्रीका सुपदा सूपकारिणी ।
सौपद्यदायिनी चैव सवृत्तिः सावरा तथा ॥ ३०३ ॥
[6]सुवर्णालङ्कार[7]धात्री सौवर्णप्रभयोज्ज्वला ।
सभासभ्यधिकर्त्री च साभा च सुभगा तथा ॥ ३०४ ॥
समा साम्यविहीना च सीमन्तोत्सवकारिणी ।
सृमरा [8]सोमभावा च सोमवर्त्मप्रसारिणी ॥ ३०५ ॥
सम्पना च तथा सम्पत् [9]सम्पद्दात्री तथैव च ।
[10]संवृता च तथा सम्भाषणकौशलकारिणी ॥ ३०६ ॥
शुम्भनिशुम्भहन्त्री च सम्पन्ना सायतिस्तथा ।
[11]सरःस्था सारसी चैव सुरसा सुरसाधिता ॥ ३०७ ॥
सौरस्यदायिनी चैव सनया सानया तथा ।
सुनीला स्वच्छबुद्धिश्च तथा स्वाच्छन्द्यकारिणी ॥ ३०८ ॥
रचनामृतवर्षिणी च स्विन्ना [12]स्वप्नावती तथा ।
स्वयम्भूपूजिता चैव स्वयम्भूः स्वात्मदीपनी ॥ ३०९ ॥

---

१. सञ्चयार्जिता—ङ. । २. साधुनिपा—क. ख. । ३. मूर्च्छासन्द—ङ. । ४. नीकमण्डला—ङ. । ५. च्चिति—ङ. । ६. सुवर्त्ताल—क. ख. । ७. धर्त्री—ङ. । ८. सोममाला च—क. ख. । ९. सम्पद्धात्री—ङ. । १०. संसृता च तथा नाग-संभाषणकौलकारिणी—क. ख. । ११. सवःस्था—क. ख. । १२. स्वल्पावती—ङ. ।

स्वरसप्तकसङ्गीतरङ्गिणी स्वात्मभाविनी ।
स्वाहा स्वधा स्वाक्षरा च तथापि स्वामिवल्लभा ॥ ३१० ॥
सक्षता [1]साक्षिणी चैव सुक्षोदा सूक्षिता तथा ।
[2]हुङ्कारिणी तथा [3]हूट्टवासिनी हठकारिणी ॥ ३११ ॥
हतिहन्त्री हुतप्रीता [4]हुतासुरमहाहना ।
[5]हूतपापा हेतिहस्ता होतृरूपा तथैव च ॥ ३१२ ॥
[6]हौतासनप्रभाकर्त्री हृद[7]म्बुजनिवासिनी ।
[8]हननारिष्टहृदया हीनदोषा तथैव च ॥ ३१३ ॥
हम्भारवाकालनोत्था हृदयानन्दशालिनी ।
हयवाहनसुप्रीता हायनज्ञानदायिनी ॥ ३१४ ॥
हूयमाना हरिप्रीता हारिणी हीरकोज्ज्वला ।
हलिदर्शन[9]क्रींभारा हलाहलनिपायिनी ॥ ३१५ ॥
हिलिहिलीतिकर्त्री च तथा हुलहुलिप्रिया ।
हेलाकरी ह्वलन्ती च ह्वालयन्ती तथैव च ॥ ३१६ ॥
हेषार[10]वसमोदा [11]सा हसन्ती हासविह्वला ।
हाहा हाहाकरी चैव हूहू गन्धर्ववेष्टिता ॥ ३१७ ॥
हैहयार्चिततेजाश्च क्षतिकर्त्री क्षितिस्थिता ।
[12]क्षुतकर्त्री क्षेत्ररूपा क्षेत्र[13]पालनिषेविता ॥ ३१८ ॥
क्षौतदोषप्रशमनी क्षुद्रा च क्षोदिनी तथा ।
क्षौद्रकप्रीतहृदया क्षिपन्ती क्षोभवर्जिता ॥ ३१९ ॥
क्षमावती तथा क्षामाक्षरोल्लापविलासिनी ।
क्षेमङ्करी क्षौमवस्त्रा तथा क्षयविवर्जिता ॥ ३२० ॥
क्षरहीना भक्तजना क्षारहीना तथैव च ।
क्षारप्रीताक्षरप्राप्या क्षालनी क्षालनप्रिया ॥ ३२१ ॥
अघमर्दन्यङ्कजा च अङ्गप्रत्यङ्गकोमला ।
अच्छीकरणदक्षा च अजमाया तथैव च ॥ ३२२ ॥

---

१. स्वाक्षिणी—ङ. । २. हूङ्का—क. ख. । ३. हट्टवासिनी—ङ. । ४. हूता—क. ख. । ५. हतपापा—ङ. । ६. होतासन—क. ख. । ७. म्बुप्रनिवा—क. ख. । ८. हतनरिष्ट—क. ख. । ९. ह्रींभारा—क. ख. । १०. रसमोदा—ङ. । ११. 'सा'इत्यस्य स्थाने 'च'—ङ. । १२. च्तत—क. ख. । १३. पापनि—ङ. ।

अञ्चलीचञ्चला चैव अञ्जनाऽञ्जनी तथा ।
अटवी[1]रटनप्रीता अतलाधःस्थिता तथा ॥ ३२३ ॥
अवनी अमराराતિकोटिकोटिनिपातिनी ।
अयस्थिता अरालभ्रुरशक्ताऽशकला तथा ॥ ३२४ ॥
अशया [2]अशरा चैव [3]अशलाकाशकोज्ज्वला ।
[4]अस्वप्ना असहा चैव अहन्त्री अक्षवृत्तिगा ॥ ३२५ ॥
आकाशवासिनी चैव आगतापि तथैव च ।
आधारसुस्थिता चैव अचलदलकाह्वला ॥ ३२६ ॥
आचाररचिताचार्या आजिमध्यप्रवेशिनी ।
आयसा आरकूटस्था आलस्यक्षयकारिणी ॥ ३२७ ॥
आशंसाकर्मशुभदा [5]आषाढधारिणी तथा ।
आशावर्धनकर्त्री च आशाज्योतिर्विधायिनी ॥ ३२८ ॥
आषाढमासि पूज्या च आशंसा[6]स्वान्तमास्थिता ।
आसारसुखिता चैव आहोस्विदिति तर्किता ॥ ३२९ ॥
इडा [7]इडतापत्रया ईषद्धास्यमिलन्मुखी ।
उड्डियानपीठगता उष्ट्रपुङ्गववाहिनी ॥ ३३० ॥
[8]उक्ता उतथ्या[9]ध्वजधृक् [10]उद्धवप्रीतिकारिणी ।
[11]उम्भिता उदित चैव उन्नता उपरिस्थिता ॥ ३३१ ॥
इक्षुहस्ता [12]तथाऽप्यूढा ऋतुकाल[13]सुखप्रदा ।
ऋतप्रिया तथा चैव ऋक्षमोक्षणकारिणी ॥ ३३२ ॥
ऋषिभिः सेविता चैव ऋष्यशृङ्गसमर्चिता ।
[14]ओड्रपुष्पपूजिता च आधारचक्रवासिनी ॥ ३३३ ॥
मणिपुरवासिनी च स्वाधिष्ठान[15]निवासिनी ।
अनाहतानाहता च विशुद्धचक्रवासिनी ।
आज्ञाचक्रवासिनी च सहस्रदलवासिनी ॥ ३३४ ॥

---

१. वचनप्रीता—क. ख. । २. अगरा—ङ. । ३. आचलदलकोज्ज्वला—ङ. । ४. 'अस्वप्ना''''काह्वला' इति पङ्क्तित्रयं नास्ति—ङ. । ५. आशाटधारिणी—क. ख. । ६. रतमास्थिता—क. ख. । ७. इनताप—क. ख. । ८. भक्त्या उत—क. ख. । ९. तमजधृक्—क. ख. । १०. उच्चारप्रीति—क. ख. । ११. उत्थिता—क. ख. । १२. तथा धूटा ऋतु—क. ख. । १३. शुभप्रदा—ङ. । १४. ओड्डुपुष्प—क. ख. । १५. 'नि' नास्ति—क. ख. ।

इतीमां नाम्नामष्टादशशतीं यः पठति शृणोति पाठयति श्रावयति वा [1]स सर्वपापविमुक्तः, स धनी धनद इव, स कविः कविरिव, स पण्डितो गुरुरिव, स रूपवान् जगन्मोहनो मन्मथ इव, स राज्याधिकारी सुरराज इव, स तेजस्वी वह्निरिव, स [2]शासकः पितृपतिरिव, स सर्वतोगतिः [3]पवमान इव, स शौर्ययुक्तः सूर्य इव, स शीतलः शीतमरीचिरिव भवेत् ॥ ३३५ ॥

यः पठेत् प्रयतो विद्वान् पद्यार्धं पद्यमेव वा ।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुक्त एव न संशयः ॥ ३३६ ॥
इमं [4]स्तवं पठन् व्यासः कवीन्द्रत्वमुपागतः ।
वाल्मीकिरपि विप्रत्वं विश्वामित्रो जगाम सः ॥ ३३७ ॥

यद्यपि कुष्ठी कुनखी [5]बधिरोऽन्धः पुनरति दुर्गतो नानादुरवस्थाजडीकृतकलेवरो जपति [6]जापयति वा [7]सोऽपि [8]पापं सर्वं संदह्य प्रेमलक्षणां भक्तिमधिष्ठाय सर्वोपरि भ्राजते ॥ ३३८ ॥

सर्वबाधाप्रशमनं धनधान्यविवर्धनम् ।
एतस्याध्ययनेनैव सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ३३९ ॥
धर्मलिप्सुर्[9]लभेद्धर्ममर्थेप्स्वर्थमवाप्नुयात् ।
कामं कामी [10]लभेदाशु मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात् ॥ ३४० ॥
सङ्कटे समनुप्राप्ते इदं स्वस्त्ययनं परम् ।
रणे वा राजसदने [11]द्यूते च विजयप्रदम् ॥ ३४१ ॥

यस्तु नित्यं समाहितः सम्यगालपति पुनरालापयति शृणुते श्रावयति वा तद्दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभा भवन्ति, दूरादेव तेजःपुञ्जप्रतिहतचक्षुषो योगिनी–डाकिनी–यक्ष–रक्ष–कूष्माण्ड-भूत–प्रेत–पिशाच–हिंस्रजन्तवः पलायन्ते ॥ ३४२ ॥

---

१. 'स' नास्ति–ङ. । २. शासको नृपतिरिव–क. ख. । ३. परमाणु इव-क. ख. । ४. शृण्वन्–क. ख. । ५. बधिरो यः पुन–क. ख. । ६. इतः पूर्वं 'वा सोऽपि'–क. ख. । ७. 'सोऽपि' नास्ति–क. ख. । ८. पापसर्वं–क. ख. । ९. लभते धर्ममर्थं र्थोऽर्थमवाप्नुयात्–क. ख. । १०. लभेदतिमुमुक्षु–ङ. । ११. धृते–क. ख. ।

तस्य वने वा गहने पोते वाताद्घूर्णिते वा न किञ्चिद्भयम्। न विद्युतो भयं न च दस्युतो भयं न राजतो भयं [1]नाऽनलतो भयं न केभ्योऽपि भयम् ॥ ३४३ ॥

स सर्वधर्मसम्पूर्णो नित्यानन्दमयस्तथा।
इह लोके सुखं भुक्त्वा परत्र मयि लीयते ॥ ३४४ ॥
नापमृत्युर्न च [2]ज्वरो नाऽशुभा बुद्धिरुन्मदा।
[3]न मात्सर्यं न लोभ[4]श्च तस्य पुंसोऽपि दुर्मतेः ॥ ३४५ ॥
इमां स्तुतिं पठति यः परां [5]पुमान्
[6]भवेत् स हि [7]प्रथितकीर्ति[8]रुत्तमाः(मः)।
विधूय [9]तत्सकलकल्मषं व्रजेद्
व्रजेश्वरी चरणपद्म[10]भृङ्गताम् ॥ ३४६ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे श्रीमद्राधादेव्या नाम्ना-
मष्टादशशतीसमाप्ता (समाप्तश्च)
[11]चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

---

१. 'नाऽनलतो भयं'नास्ति—ङ.। २. 'ज्वरो'इत्यस्य स्थाने 'जरा'—क. ख.। ३. अत्र 'छ'मातृका पुनरारभ्यते। ४. 'च'नास्ति—ङ.। ५. 'पुमान्' इत्यस्य स्थाने 'प्राप्नुयाद्'—छ.। ६. 'भवेत्'नास्ति—क. ख.। ७. प्राप्यत—छ.। ८. मुत्तमाम्—क. ख.। ९. यत्सकल—छ.। १०. भृङ्गताम्—क. ख. छ.। ११. 'चतुर्विंशोऽध्यायः'नास्ति—ङ.; अस्य स्थाने 'द्वाविंशतितमोऽध्यायः'—छ.।

पञ्चविंशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच

इत्थं वृन्दा महादेवी राधया प्रीणिता सती।
नित्यं जजाप सा नाम्नामष्टादशशतीं पराम्॥ १॥
एतस्मिन्नन्तरे देवी त्रिपुरा [1]कृष्णमानसा।
उच्चैरुवाच वाचं तां करुणाकान्तशालिनीम्॥ २॥
वंशीवदनं कृष्णस्य चिन्तयित्वा पुनः पुनः।
त्रैलोक्यमोहनं रूपं मोहितास्मि पदे पदे॥ ३॥
न जाने किमपि भ्राम्यन्मूर्ध्ना भूमौ [2]लुठाम्यहम्।
यास्यामि क्व च कं गाढं शरणं मरणं स्थितम्॥ ४॥
इत्येवमादि विललाप [3]चिराय राधा
साधारणं नयनवार्धिरभून्नदी च।
वृन्दावने विहगवृक्षलतामृगाश्च
चक्रन्दुरम्बहमनुक्षणमेव पश्चात्॥ ५॥
ततो वृन्दा वराङ्गी च वृन्दावनपुरन्दरीम्।
तामाह सान्त्वयन्ती च प्रेम्णा[4]तिशान्तया गिरा॥ ६॥

वृन्दा उवाच

जाने त्वां देवदेवेशि राधिकां जगदीश्वरीम्।
[5]वृन्दावने श्रितादेवस्तवैव गुणगायकः॥ ७॥
त्वदृतेे नान्नमश्नाति न स्नाति पुरुषोत्तमः।
न शेते रमते नैव न तिष्ठति न गच्छति॥ ८॥
चिन्तयंस्त्वां वरारोहे गलद्बाष्पजलेक्षणः।
राधेति प्राणनाथेति [6]राधिकेति मुहुर्मुहुः॥ ९॥
ब्रुवन्नेवं महाभागे मुमोह मुधुराकृतिः।
अधोमुखो रोदमानः पुनः स चकितेक्षणः॥ १०॥

---

१. हृष्टमानसा—ङ.। २. न चास्य—ङ., मृतास्य—छ.। ३. 'चिराय' नास्ति—ख.। ४. भिशान्तया—छ.। ५. वृन्दारण्ये श्रिता—छ.। ६. राधेति च मुहु—छ.।

पुनराह प्रिये कान्ते किमर्थं मामुपेक्षसे।
तवैव चरणाम्भोजे कोऽपराधः कृतो मया ॥ ११ ॥
येनाऽदृश्यो[१]ऽहममिते तव पङ्कजलोचने।
इत्थं वै ब्रुवता देवि त्वया हीनं वनं महत् ॥ १२ ॥
शून्यवद् दृश्यते सर्वमपि सर्वगुणैर्युतम्।
कदाचिन्मूर्च्छयन् वेणुं गायत्युच्चैर्यशस्तव ॥ १३ ॥
क्वचिद् ध्यायति ते वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम्।
पतत्युत्तिष्ठति क्वापि क्षणमायाति याति च ॥ १४ ॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
त्वां विना रत्नभवनं शून्यं मन्यत ईश्वरः ॥ १५ ॥
कम्पमानः क्वचिद् भूमावुपविष्टः श्वसित्यसौ।
पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साङ्गोपनिषदुक्तिभिः ॥ १६ ॥
स्तवं तव करोत्येव प्रेमविह्वलमानसः।
[२]शीर्णे पर्णे पतति वै वृन्दावनमहीरुहाम् ॥ १७ ॥
यत्र तत्र [३]चञ्चलाक्षः संभ्रमाक्रान्तमानसः।
पुनः पुनरु[४]दीक्षंस्त्वामार्तः कामविमोहितः ॥ १८ ॥
मां दृष्ट्वा [५]प्रेयसीं [६]दासीं [७]कृष्णः कमललोचनः।
उवाच वृन्दे कुत्रास्ति मम प्राणेश्वरी प्रिया ॥ १९ ॥
[८]दृष्टा त्वया राधिका किं तन्मे कथय सुव्रते।
[९]प्रहृष्टवदने तस्मिन् पृच्छति स्वायतेक्षणे ॥ २० ॥
ना नेत्युक्ते मया पश्चादनुतापो महान् भवेत्।
श्रीकृष्णाकर्षिणि शुभे वृन्दावनपुर[१०]न्दरी ॥ २१ ॥

---

१. पगमिते—ङ.। २. 'शीर्णे····रुहाम्'इत्यस्य स्थाने 'शीर्णं पतति वै पत्रं वृन्दावनमहीरुहात'—क. ख.। ३. चञ्चाक्षसः—छ.। ४. दीक्षस्त्वां अमार्तः काममोहितः—छ.। ५. प्रेषया दासीं—छ.। ६. 'दासीं'नास्ति—क. ख.। ७. 'कृष्ण'इत्यस्य स्थाने 'हृष्टः'—छ.। ८. कृष्णा त्वया—छ.। ९. प्रकृष्ट—क. ख.। १०. न्दरि—क. ख. ङ.।

भाग्यात् पथि मया [1]दृष्टा सुस्थान्तःकरणा भव ।
आत्मानं स्मर राधे त्वं परब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥ २२ ॥
[2]कृष्णे ब्रह्मणि [3]राधायामीषद्भेदो न विद्यते ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्मेत्युच्यते ब्रह्म[4]वादिभिः ॥ २३ ॥
कृष्णस्त्वं परमेशानि त्वमेव त्रिपुरेश्वरी ।
त्वदङ्गसम्भवा देवी क्व याता भुवनेश्वरी ॥ २४ ॥
स्मरतां परमे [5]नित्यं समागच्छतु [6]सा द्रुतम् ।
श्रुतमस्ति देहतस्ते [7]जाता गोप्यः सहस्रशः ॥ २५ ॥
कुत्र तिष्ठन्ति [8]ताः सर्वाः स्मर पद्मायतेक्षणे ।
त्वत्तो वै पुरुषा जाताः कामदेवमनोरमाः ॥ २६ ॥
सखायस्ते महादेवि समागच्छन्तु तान् स्मर ।
सर्वेषामेव भूतानां पिता माताऽसि सुन्दरि ॥ २७ ॥
शृणु मद्वचनं भद्रे गोविन्दमहिषी भव ।
गोविन्दस्य हि तद्रूपं तव योग्यं वरानने ॥ २८ ॥
तवैव मोहनं रूपमेतत् कृष्णमनोहरम् ।
युवयो[9]रधिकं किञ्चिद् वनेऽस्मिन्नैव विद्यते ॥ २९ ॥
दासी तवाहं देव्यद्य गोविन्दप्रियकारिणी ।
दूतीभूयाऽपि यास्यामि वर्णितुं ते विचेष्टितम् ॥ ३० ॥
रहस्यं कथयिष्यामि वाक्यमेकं शृणुष्व मे ।
उन्मत्ततां परित्यज्य सुस्थान्तःकरणा भव ॥ ३१ ॥
उन्मनस्त्वे कारणं ते यतस्तदवधारय ।
त्रिजगन्मोहना[10]यालं भवत्या निग्रहाय च ॥ ३२ ॥
प्रादुर्बभूव तद्देहात् परब्रह्मस्वरूपिणी ।
त्रिपुरा तत्प्रतिकृतिस्तयाविष्टाऽसि कृत्यया ॥ ३३ ॥

---

१. दृष्ट्वा—छ. । २. 'कृष्णे'इत्यस्य स्थाने 'द्रष्टे'—छ. । ३. राधायां त्वयि भेदो—छ. । ४. वेदिभिः—ङ. । ५. नित्ये समा—ङ. । ६. सुव्रते—छ. । ७. 'जाता'इत्यस्य स्थाने 'नाना'—क. ख. । ८. 'ताः'नास्ति—क. ख. । ९. रसिकं-छ. । १०. यानं भवत्या—छ. ।

श्रीकृष्णः स्तुति[1]पाठी तेन स दृष्टः कटाक्षतः ।
इदानीं कृत्ययाविष्टा तद्वशं गन्तुमिच्छसि ॥ ३४ ॥
नैषा युक्तिर्मम शुभे रोचने(ते) रोचनारुणे ।
सहसा नैव गन्तव्यं क्षणमत्र स्थिरा भव ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे वृन्दादेवीमन्त्रणं
नाम [2]पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥



१. पाठान्तेन स—छ. । २. 'पञ्चविंशोऽध्यायः' नास्ति—ङ.; त्रयविंशतितमोऽध्यायः—छ. ।

षड्विंशोऽध्यायः

ब्राह्मणी उवाच

ततः किमभवत् पश्चाद् देवगन्धर्व कथ्यताम् ।
पुनीहि मे श्रुतिपुटौ नानादोषकुलाकुलौ ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच

ततः [1]पूर्वस्मृतिं प्राप्य वृन्दया प्रतिबोधिता ।
परमानन्दहृदया प्रसन्नवदनेक्षणा ॥ २ ॥
आत्मानं चिन्तयामास [2]परब्रह्मस्वरूपिणी ।
ततस्तस्याः स्मृतिर्जाता यथा जाता स्वदेहतः ॥ ३ ॥
योगमाया महादेवी प्रकृतिर्भुवनेश्वरी ।
चिन्तयन्ती च तां देवीं समाह्वयदमन्दधीः ॥ ४ ॥

श्रीराधिकोवाच

हे देव्यत्र समागच्छ मदङ्ग[3]प्रभवा ह्यसि ।
साहाय्यं कुरु देवेशि त्वर्यतां मा [4]विलम्ब्यताम् ॥ ५ ॥

ब्राह्मण उवाच

इत्थं सा चिन्तिता देवी महामाया महेश्वरी ।
त्वरिता कृपयाविष्टा राधिकादर्शनं गता ।
[5]सम्भ्रमाक्रान्तहृदया तुष्टाव हृदयेश्वरी ॥ ६ ॥

भुवनेश्वरी उवाच

त्रिभुवन[6]जयलक्ष्मीं त्वां नमस्ये वराङ्गे
विमलकमलनेत्रे देहि दृष्टिं [7]शुभां मे ।
यदखिलकृतसेवः श्रीयुतः कृष्णदेव-
स्त्वयि धृतरतिरास्ते किं [8]पुनर्वर्णनीयम् ॥ ७ ॥

---

१. पूर्वस्मृतिः प्राप्ता वृ—ङ. । २. परं ब्रह्म—छ. । ३. प्रभावाम्भसि—छ. । ४. विलद्ध्यताम्—छ. । ५. संयमाक्रान्त—क. ख. । ६. जयतलक्ष्मीं—क. ख. । ७. शुभाङ्गे—क. ख. । ८. पुनर्वन्दनीयम्—क. ख., पुनर्वर्तनीयम्— छ. ।

उद्यद्भास्करकोटिकान्तिमरुणक्षौमाञ्चलत्कुण्डलां
नानालङ्करणोज्ज्वलामपि शरद्राकासुधांशुत्विड्मुखीम् ।
[1]दृष्ट्वा त्वां मदिरालसामलमसौ कृष्णः स्वयं मोहितो
मुग्धाऽहं कमलेक्षणे किमपरे ब्रह्मेशशक्रादयः ॥ ८ ॥
देवि त्वच्चरणारविन्दयुगलं ध्यायन्ति [2]ये के जना-
स्तेषामम्बुजपत्रलोचनि भवेत्तापत्रयोन्मूलनम् ।
ईशेयं त्वमपीक्षसेऽमृतदशा स स्यात् सदाराधितः
सर्वेषां तदुदा[3]हृतिर्विजयते विष्णुर्महांस्त्वत्कला ॥ ९ ॥
कान्त्या [4]चम्पककम्पकारिवपुषः [5]पुष्णन्ति तृप्तिं परां
रूपेणापि निरूपिते [6]प्रियतमप्रेष्ठे[7]ऽत्र रूपे तव[8] ।
ये तेभ्यस्त्वमतीव चारुचरिते श्रीराजराजेश्वरी
सारूप्यं दिशसि प्रकाशितदिशे नित्यं भवत्यै नमः ॥ १० ॥
अन्तः सन्तमसप्रकाशनकरी सन्तापसंहारिणी
यैस्ते श्रीनख[9]चन्द्रिका चरणयोर्राधे समाराध्यते ।
तन्निस्यन्ददमन्दसान्द्रकसुधासारेण सारेण तैः
संस्नातैः परितापिता अपि परे सन्तर्पिताः सन्ततम् ॥ ११ ॥
राधे त्वन्महिमानमानमगमत् कस्ते समस्तेश्वरि
स्तव्यं नव्यमवातनोतु सुतनो तनुंस्तनिष्टां तनुम् ।
यद् वेधाश्चतुराननोऽपि गिरिशः पञ्चाननो वह्निभूः
षडवक्त्रः फणिराट् सहस्रवदनोऽजस्रं परिश्राम्यति ॥ १२ ॥
रूपं किं तव वर्णयाम जगतां शोभाप्रभावोद्भवे
यस्याः श्रीमुखचन्द्रिकासु नियतं कृष्णश्चकोरायते ।
यस्याः पादपयोरुहं सुर[10]शिरोरत्नालिभिः सङ्गमं
सम्प्राप्याधिकमादृतं घनघनं सूते मधूनां श्रियम् ॥ १३ ॥

---

१. दृष्टा त्वां—ङ. । २. तु ये जना—क. ख. । ३. कृति—क. ख. । ४. कम्पक—क. ख. । ५. पुष्णन्ति—ङ. । ६. प्रियतमे[7]प्रेष्ठेऽनुरूपे—ङ. । ७. स्वरूपे-छ. । ८. अत्र 'छ' मातृका खण्डिता । ९. चण्डिका—क. ख. । १०. गिरो—ङ. ।

न जाने महेशानि देवस्वरूपे
जगन्मोह[1]मोहस्फुर[2]च्चारुरूपे ।
चरित्रं पवित्रं यतः सूरयोऽपि
[3]व्यमूह्यन्त सन्तो मयि त्वं प्रसीद ॥ १४ ॥
तवैव प्रभावं हरिर्वा विरिञ्चिः
शिवो नाशकन् वक्तुमिष्टस्वरूपे ।
परे के वराका वराङ्गि प्रसीद
प्रसीदाद्य [4]मातः परं [5]तुष्टिमातः ॥ १५ ॥
श्रीकृष्णस्य रसामृताब्धिलहरीनिर्माणलक्ष्मीर्विधे-
[6]र्वैदग्ध्यस्य विरामभूः रतिपतेरुच्चैः पताका रणे ।
भूषा श्रीर्जगतां गतिर्गतिमतां शश्वन्मता सत्तमै-
र्गौरीकाञ्चनकाञ्चिकारुतकरी राधा समाराध्यते ॥ १६ ॥
अपि त्वत्पदाम्भोजयुग्मं सुशीतं
[7]स भेजेऽरुणस्नापितेऽस्मि[8]न्नभेन ।
विधुः किं विधुद्वेषि[9]दण्डक्षताङ्गो
द्विपश्चाकृतिः शम्भुदृग्दाहभीत्या ॥ १७ ॥
तवास्यश्रियं लिप्सु पाथोजमप्सु
प्रकामं तपत्यर्यमा सेवनेन ।
सुधांशुः समुद्रे निमज्योऽन्निमज्य
कृशोऽद्यापि [10]पक्षव्रते शून्यवासी ॥ १८ ॥
त्वमम्बासि सञ्चारिणी शम्बरारेः
स्वरूपेण लावण्यवश्याभिषिक्ता ।
प्रसीदस्यये चेत् किमस्त्यप्यलभ्यं
त्रिलोकीषु लोकस्य शोकापनोदे ॥ १९ ॥
ब्राह्मण उवाच
[11]स्तुत्वेत्थं परमेशानीं प्रणिपातपुरस्सरम् ।
उवाच भुवनेशानी मृदुस्वल्पाक्षरं बहु ॥ २० ॥

---

१. 'मोह'नास्ति—क. ख. । २. द्दारु—ङ. । ३. व्यमुह्यन्ति सन्तो—ङ. । ४. माता परं—क. ख. । ५. त्वस्ति जातः—क. ख. । ६. वैंदन्यस्य—ङ. । ७. 'स' नास्ति—ङ. । ८. न्मतेन—ङ. । ९. दन्तक्षता—क. ख. । १०. पक्षच्युते—ङ. । ११. श्रुत्वाल्पं परमे—क. ख. ।

भुवनेश्वरी उवाच

आज्ञापय महादेवि किं करिष्यामि सुव्रते ।
त्वदङ्गप्रभवा मातः किङ्करी साम्प्रतं त्वहम् ॥ २१ ॥

राधिका उवाच

रचय त्वं महादेवि सर्वरत्नमयीं पुरीम् ।
सौवर्णै [1]राजतैर्हर्म्यैं रम्यां सर्वविमोहिनीं ॥ २२ ॥
दिव्योपवनसंयुक्तां दिव्याट्टालकगोपुराम् ।
रत्नभित्तिसमावीतां परिखाभिः समावृताम् ।
नानोपहारै रत्नैश्च रसद्रव्यैः [2]प्रपूरिताम् ॥ २३ ॥

ब्राह्मण उवाच

इत्युक्ता सा [3]तदा देवी चकारातिमनोरमाम् ।
पूरयामास रत्नौघै रसद्रव्यैः शुभां पुरीम् ॥ २४ ॥
प्रतिकल्पद्रुम[4]तले वेदिकां रत्ननिर्मिताम् ।
नानापुष्पैर्लताभिश्च पुष्पिताभिः समन्ततः ॥ २५ ॥
शोभितां [5]पक्षिभृङ्गैश्च नादितां सुमनोहराम् ।
सुवर्णमणिवज्रादिरचितैर्भवनोत्तमैः ॥ २६ ॥
राजते स्म पुरी देव्या रचिता विपिनान्तरे ।
अथ पुर्यां निर्मितायां राधादेव्यङ्गसम्भवाः ॥ २७ ॥
स्मृतमात्राः समायाता मनोभवमनोरमाः ।
नरा नार्यो दिव्यरूपा[6]श्चारुभूषणभूषणाः ॥ २८ ॥
[7]ततस्तैः पुरुषैस्ताभिः शक्तिभिर्दिव्यरूपिणी ।
रराज राधिका देवी परमानन्द[8]देवता ॥ २९ ॥
तत आज्ञापयामास निजशक्तिर्महेश्वरी ।
तथैव पुरुषांस्तांश्च निज[9]रूपसमुद्भवान् ॥ ३० ॥

१. राजतैरिष्टैः रम्यां—ङ. । २. प्रपूरिताः—क. ख. । ३. महादेवी—ङ. ।
४. तलैर्वेदिकां—ङ. । ५. पक्षिमृगैश्च—क. ख. । ६. श्चानुभूषण—क. ख. ।
७. ततस्थैः—ङ. । ८. नन्दिता—ङ. । ९. शक्तिसमु—ङ. ।

श्रीराधिका उवाच

शृणुध्वं शक्तयः सर्वा आज्ञां मम दुरासदाः ।
गोलोकमवधिं कृत्वा यावद् [1]वृन्दावनं [2]वनम् ॥ ३१ ॥
तं कदम्बतरुश्रेष्ठं कृत्वान्तः पुरमध्यगम् ।
पुरुषाः परिखारम्याः प्राकाराश्च सुशोभनाः ।
कर्तव्या निर्भयैः सर्वैः मम [3]शक्त्युपबृंहितैः ॥ ३२ ॥

ब्राह्मण उवाच

ततस्ते [4]सायुधाः सर्वे कन्दर्पाधिकरूपिणः ।
गोलोकवासिनः सर्वान् विद्राव्य च स्वशक्तितः ॥ ३३ ॥
रत्नैरपरिमेयैश्च नानाधातुसमन्वितैः ।
दिव्या भित्ति(त्ती)र्विरचिता[:] कोटिसूर्यसमप्रभाः ॥ ३४ ॥
[5]वज्रप्रवालमणिभिः [6]पुरद्वारैः परिष्कृताः ।
शोभोपशोभासंयुक्ता मुक्तादिभिरलङ्कृताः ॥ ३५ ॥
ततो गोपगणाः सर्वे कृष्णदेहसमुद्भवाः ।
गोलोकान्निर्ययुः सर्वे दण्डपाशोद्यतायुधाः ॥ ३६ ॥
जगर्जुश्च महासत्त्वा गर्जन् मेघशतस्वनाः ।
तथा राधाङ्गजन्मानः पञ्चबाणधनुर्धराः ॥ ३७ ॥
सिंहनादं विनद्योच्चै रोषाविष्टा बहिर्गताः ।
दृष्ट्वा तान् सूर्यसंकाशान् कन्दर्पाधिकसुन्दरान् ।
श्रीदामाद्या महात्मानः प्राहुरद्भुतदर्शनान् ॥ ३८ ॥

श्रीदामाद्या ऊचुः

के यूयं भो महात्मानः किमर्थं परमात्मनः ।
कृष्णस्य बलमेतद्वै बलाद्धरथ लीलया ।
कस्याज्ञया वा कर्मेदं क्रियते तन्निगद्यताम् ॥ ३९ ॥

---

१. वृन्दारणं वनम्—ङ. । २. सदा—क., तथा—ख, । ३. शक्तेरुप—क. ख. ।
४. स्वायुधाः—ङ. । ५. व्रजप्रवाळ—ङ. । ६. द्वाराः सर्वाः परिष्कृताः—क. ख. ।

ब्राह्मण उवाच

[1]श्रुत्वैतद् गोपवचनं प्रत्याहुस्ते महाबलाः।
घोरघर्घरनिःश्वानाः क्रोधादारक्तलोचनाः ॥ ४० ॥

श्रीराधिकाङ्ग[2]प्रभवा ऊचुः

शृणुध्वं भो! महात्मानो राधिकानुचरा वयम्।
कः कृष्ण[3]स्तं न जानीमः स्वेश्वर्या प्रेषितैरिदम् ॥ ४१ ॥
कृतं सुदुष्करं कर्म [4]बलं चापहृतं बलात्।
भवतामस्ति शक्तिश्चेद् निर्जित्यास्मानिदं [5]बलम्।
निजेश्वरं वशं कृत्वा दर्शयध्वं स्वकं बलम् ॥ ४२ ॥

ब्राह्मण उवाच

श्रुत्वैतत् कुपिताः सर्वे श्रीदामाद्या महौजसः।
दण्डपाशादिभिः सर्वांस्ताडयामासुरुद्धता ॥ ४३ ॥
ततस्ते कुपिता बाणैः पञ्चभिः पञ्चरूपिभिः।
बिभिदुर्गोपतनयान् सनया युद्धदुर्मदाः ॥ ४४ ॥
ततस्ते गोपशिशवो विद्धाः संमुमुहुर्भृशम्।
जृम्भन्तो मोहमापन्नाः सुशुष्कवदनातुराः ॥ ४५ ॥
स्तब्धा आसन् वनान्तस्थाः काष्ठपुत्तलिका यथा।
स्तब्धान्निर्भर्त्स्य तान् सर्वान् राधाशक्त्युपबृंहिताः ॥ ४६ ॥
मोचयित्वा [6]स्तम्भनं च द्रावयामासुरुन्मदाः।
धावन्तो द्रवतो गोपान् सम्भ्रमाक्रान्तमानसान् ॥ ४७ ॥
त्रासयामासुरुत्त्रासा राधादेव्याः प्रसादतः।
तेषां मध्ये रूपवन्तमेकं ते जगृहुर्बलात् ॥ ४८ ॥
सुबलं नामतः साध्वि! कन्दर्पाधिकसुन्दरम्।
तं समानीय बद्ध्वा वै राधिकायै महाबलाः ॥ ४९ ॥
दर्शयन्तो जगुर्मातर्गोपा [येऽ]स्मत्पराजिताः।
[7]पराययुर्वनं त्यक्त्वा तेषामेष बलाधिकः ॥ ५० ॥

---

१. श्रुत्वेदं गोप–क. ख.। २. प्रभवै ऊचुः–ख.। ३. स्तु न–ङ.। ४. वनं चाप–क. ख.। ५. वनम्–क. ख.। ६. स्तम्भनश्च–ङ.। ७. परं ययु–क. ख.।

अस्माभिर्निगृहीतोऽपि विद्यारूपगुणाधिकः ।
भवत्या दर्शनाकाङ्क्षी किं विधेयं विधीयताम् ॥ ५१ ॥
लाघवं गौरवं वापि स्वेच्छया कुरु लीलया ।
ततः सा राधिका देवी दृष्ट्वा कृष्णाङ्गसम्भवम् ॥ ५२ ॥
सुकुञ्चितकचं कृत्यं तप्तकाञ्चनसन्निभम् ।
प्रसन्नवदनं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ ५३ ॥
विचित्रवसनं चारुरत्नालङ्करणोज्ज्वलम् ।
भ्रातृत्वे कल्पयित्वा तं प्रेम्णा किञ्चिदुवाच ह ॥ ५४ ॥
भ्रातरुत्तिष्ठ मा खेदं कुरु मेऽन्तःपुरे [1]वस ।
तयेत्युक्तः स सुबलस्तां प्रणम्य कृताञ्जलिः ॥ ५५ ॥
प्राह मातः करिष्यामि [2]भवत्याभिमतं हि यत् ।
ततस्तैः पुरुषैर्देव्या इङ्गितज्ञैः कटाक्षतः ॥ ५६ ॥
अभिषिक्त[3]श्च सुबलो वस्त्रालङ्करणादिभिः ।
पूजितः [4]परया भक्त्या प्रेमगद्गदया गिरा ॥ ५७ ॥
संस्तुतो दिव्यभवने स्थापितः कृष्णबान्धवः ।
ततस्तेऽमृतमानीय भोजयामासुरुत्सुकाः ॥ ५८ ॥
दिव्ये सिंहासने तं वै स्वापयित्वा निजालयम् ।
ययुः सर्वे राधिकानुचरास्ते दिव्यरूपिणः ॥ ५९ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये

वृन्दावन[5]रचनं गोपानां पराजयः [नाम]

[6]षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥



१. च सः—क. ख. । २. भवत्यभिमतं—ङ. । ३. 'च'नास्ति—क. ख. । ४. इतः पूर्वम् 'स'—क. ख. । ५. वचनं—ङ. । ६. 'षड्विंशोऽध्यायः' नास्ति—ङ. ।

सप्तविंशोऽध्यायः

ब्राह्मणी उवाच

विनिर्जितेषु गोपेषु श्रीकृष्णेनैव किं कृतम् ।
किं वा च राधिका देव्या प्राणेश्वर ! तदुच्यताम् ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच

ततः [1]सा राधिका देवी पुरस्कृत्य महेश्वरीम् ।
भुवनेशीं निजगणैर्मन्त्रयामास वै रहः ॥ २ ॥
हे मातर्भुवनेश्वरि ! स्मरमनोहारिण्य [2]एणीदृशः
कन्दर्पाधिकसुन्दराः सुपुरुषाः सर्वे शृणुध्वं वचः ।
[3]चित्तं तस्य हृतं मया प्रकृतयः संमोहिता निर्जिता
गोपाला(नां) श्च(च) [4]बलं हृतं किमपरं कार्यं झटित्युच्यताम् ॥३॥

भुवनेश्वरी उवाच

इदानीं यत्तु कर्तव्यं त्वया तच्छृणु राधिके ।
मोहयित्वा लीलया तं तन्मुखान्मुरलीं हर ॥ ४ ॥
सहजमदनमत्तं [5]त्वं द्रुमे(ते)नातिमुग्धं
नवगुणगणवित्तं वेणुवाद्यानुरक्तम् ।
कमलनयनमीषल्लीलया मोहयन्ती
हर वरमुरलीं तां यद्रवेणासि मुग्धा ॥ ५ ॥

ब्राह्मण उवाच

श्रुत्वैतद्वचनं तस्या राधा सा सकलेश्वरी ।
त्रैपुरं रूपमास्थाय [6]लीलया गजगामिनी ॥ ६ ॥
जगाम यत्र गोविन्दस्तदगुणाकृष्ट[7]चेतनः ।
गायत्युच्चै राधिकेति तन्नाम मधुराक्षरम् ॥ ७ ॥
मोहिता सापि प्रेम्णा तल्लीलयाकृष्टचेतना ।
प्रसहद्वदना देवी तमुवाच मनोहरा ॥ ८ ॥

---

१. 'सा'नास्ति—क. ख. । २. मृगीदृशः—क. ख. । ३. वित्तं—क. ख. । ४. वनं हृतं—क. ख. । ५. त्वत्र सेनातिमुग्धं—ङ., अत्र 'त्वद्वशेनातिमुग्धं' इति शोभनः पाठः । ६. वीणया—ङ. । ७. चेतना—ख. ।

अहहाद्य भवान् काममुग्धः खिन्नोऽ[1]स्ति केशव।
दहत्येव मनस्ते किं राधाविरहजो ज्वरः ॥ ९ ॥
नायाति राधा यदि चेत्त्वया गन्तुं न शक्यते।
तयेत्युक्तेन तेनैव दत्तं प्रत्युत्तरं न वै ॥ १० ॥
ज्ञात्वा [2]मदातुरं देवं राधा चकितलोचना।
रसनानूपुरालोलरत्नकङ्कणनिस्वनम् ॥ ११ ॥
निवार्य तन्मुखाम्भोजादाच्छिद्य मुरलीं हठात्।
हसन्ती स्वगणैः सार्धं प्रविष्टा तद्वनं महत् ॥ १२ ॥
ततः क्षणान्तरे कृष्णोऽप्यदृष्ट्वा मुरलीं करे।
ना(आ)कर्ण्य राधिकानाम क्षणमुत्कण्ठितोऽभवत् ॥ १३ ॥
किमाश्चर्यं किमाश्चर्यं क्व गता मुरली मम।
कुतः केन समागत्य हृता प्राणाधिकाऽधिका ॥ १४ ॥
राधाविरहदावाग्निसन्तप्तहृदयं हि माम्।
सुखयत्येव सा नित्यं पीयूषासारवर्षिणी ॥ १५ ॥
हृत्वेमां मुरलीं केन दुःखं दत्तं सुदारुणम्।
स्मरेऽहं स्वप्नवद्दृष्टं [3]हृतावक्त्राम्बुजान्मम ॥ १६ ॥
स्वयं श्री[4]त्रिपुरेश्वर्या किमर्थं तन्न वेद्म्यहम्।
एतस्मिन्नेव समये देवी तत्र समागता ॥ १७ ॥
तां दृष्ट्वा रोषताम्राक्षः प्राह किं ते विचेष्टितम्।
[5]हृत्वा मदीयां मुरलीं किं साध्यं तव कथ्यताम् ॥ १८ ॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

[6]न जाने नाथ मुरली [7]हृता केनाधुना तव।
सुस्थो भवात्र भविता कारणं तद्वदामि ते ॥ १९ ॥

ब्राह्मण उवाच

कृष्णः [8]प्राह महादेवि भवत्या मुरली हृता।
साक्षाद्दृष्टं तथापि त्वं मृषा जल्पसि मेऽग्रतः ॥ २० ॥

---

१. ऽसि केशव—ङ.। २. मदान्तरं—ङ.। ३. कृत्वा वक्त्रा—क. ख.। ४. 'त्रि'नास्ति—ङ.। ५. कृत्वा—क. ख.। ६. ना नाथ जाने मुरली—ङ.। ७. कृता—क. ख.। ८. 'प्राह'नास्ति—ङ.।

राधाविरह[1]दुःखार्ते पुनर्दुःखं न दीयते ।
अग्निना दह्यमानेऽङ्गे वज्र[2]पातः किमद्भुतम् ॥ २१ ॥
इत्थं वाक्कलहासक्तं कृष्णमाह शुचिस्मिता ।
त्रिपुरात् त्रिपुरा जाता जगन्मोहनरूपिणी ॥ २२ ॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

दैवादेवाद्य मिथ्याभिशासनं विहितं मम ।
दुरदृष्टवशान्नष्टं चन्द्रदर्शन[3]जं फलम् ॥ २३ ॥
भाद्रे चतुर्थ्यां [4]तु दृष्टः पक्षयोर्नष्टचन्द्रमाः ।
तद्धेतोरेव भगवान् मयि मिथ्याभिशासकः ॥ २४ ॥
न [5]मयाऽपहृता [6]देव मुरली मधुरस्वना ।
मन्ये तया राधिकया भुवनेश्यभियुक्तया ॥ २५ ॥
मायामद्रूपधारिण्या मोहितोऽसि तथा विभो ।
यथा मुखसरोजान्ताद् वंशी हंसी [7]कृता क्षणात् ॥ २६ ॥
मन्मतं शृणु गोविन्द कर्तव्या नावहेलना ।
तद्वशी[8]करणाद् यस्मान्मुरलीप्रापणं भवेत् ॥ २७ ॥
मोहितापि स्वयं नारी पुरुषं नानुगच्छति ।
यथा लता कुसुमिता भ्रमरं कलकूजितम् ॥ २८ ॥
उद्योगिनः श्रियं स्त्रीं च केशेनाकृष्य भुञ्जते ।
यदि नैवं विनश्यन्ति चापल्यात् [9]चपलाः स्त्रियः ॥ २९ ॥
गोपालैर्नटवेशैश्च नर्तकीभिः स्वशक्तिभिः ।
भवान् [10]महान् नटस्तत्र नानायन्त्रकलार्थवित् ॥ ३० ॥
सङ्गीतविद्भिरुत्कृष्टगुण[11]रूपादिशालिभिः ।
यदि याति वशं याति राधा त्वच्चित्तमोहिनी ॥ ३१ ॥
तत्रैवाहं गमिष्यामि दूती भूत्वाद्य केशव ।
वृन्दया सह संमन्त्र्य वशं नेष्यामि राधिकाम् ॥ ३२ ॥

---

१. दुःखार्तो पुनर्दीयते सा क्षणे—क. ख. । २. पाताः किम—क. ख. । ३. 'जं' नास्ति—क. ख. । ४. 'तु'इत्यस्य स्थाने 'यद्'—ङ. । ५. मयाप्यपहृता—क. ख. । ६. 'देव'नास्ति—क. ख. । ७. हृता—ङ. । ८. करणं यस्मा—क. ख. । ९. चपलास्तयोः—ङ. । १०. महानट—ङ. । ११. 'रूपादि'नास्ति—क. ख. ।

राधिकारक्षकाः सर्वे कन्दर्पाः कामरूपिणः ।
केचित्तत्रैव तरुणा[1]दुर्धर्षायुद्धदुर्मदाः ॥ ३३ ॥
बालरूपधराः केचिद् वृद्धरूपास्तथा परे ।
गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च मोहयित्वा च तान् जनान् ॥ ३४ ॥
वञ्चयित्वा परं सर्वान् प्रविश्यान्तःपुरं महत् ।
भूत्वा त्वं षट्पदाकारः क्षणं स्थित्वा तदन्तिके ।
बुद्ध्वा [2]वाचरितं तस्या [3]रंस्यसेऽद्य तथा ध्रुवम् ॥ ३५ ॥

ब्राह्मण उवाच

इत्युक्तस्त्रिपुरेश्वर्या प्राहो[4]ऽहमथमच्युतः ।
त्रिपुरा च ततः स्थानान्निर्जगाम शुचिस्मिता ।
प्राह वृन्दावनचरांल्लोकानुच्चैर्हितस्थिता ॥ ३६ ॥

[5]श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

शृणुत परमशक्त्या दीयते हस्तताली
यदि निजहितवाञ्छा वर्तते साम्प्रतं वः ।
असितसितचतुर्थ्यामुद्गतो भाद्रमासे
[6]हरि [7]हरि न कदाचिन्नष्ट[8]चन्द्रः सुदृश्यः ॥ ३७ ॥
इत्यालपन्त्यां जगतो जनन्यां
कोऽप्याह वृन्दावनचारिलोकः ।
[9]यदि प्रमादादवलोक्यते तदा-
त्र को वास्त्युपायः कथयाद्य अद्य ॥ ३८ ॥
ततः सा कथयामास मन्त्रावेतौ शुचिस्मिता ।
मृषाभि[10]शस्ता कृष्णेन देवी त्रिपुरसुन्दरी ॥ ३९ ॥
वंशी हृता राधिकया नष्टचन्द्रः प्रसीदतु ।
नमो नमोऽस्तु चन्द्राय प्रकाशितदिशे नमः ॥ ४० ॥

---

१. त्वद्दर्पायुधदुर्मदाः—क. ख. । २. च चरितं—ङ. । ३. वंश्यासाद्य तथा ध्रुवम्—क. ख. । ४. ऽयमथ—क. । ५. 'श्रीमत्'नास्ति—क. ख. । ६. 'हरि'नास्ति—क. ख. । ७. हरिर्न कदा—क. ख. । ८. चन्दस्तु दृश्यः—ङ. । ९. 'यदि····शुचिस्मिता'इति पङ्क्तिद्वयं नास्ति—क. ख. । १०. शक्त्या कृष्णेन-क. ख. ।

शमय त्वं मृषावादं क्षीरनीरधिसम्भव ! ।
इति मन्त्रौ जलं वीक्ष्य प्रोक्ष्यास्त्रमनुना तथा ॥ ४१ ॥
प्रजपेच्च त्रिवारं तत् पिबेद् वार्यभिमन्त्रितम् ।
न तस्य जायते कश्चिन्मृषावादो महीतले ॥ ४२ ॥
इत्युक्त्वा त्रिपुरा देवी श्रीकृष्णकार्यलालसा ।
[1]उपायांश्चिन्तयन्ती सा पूर्वोक्तं कर्त्तुमुद्यता ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये श्रीकृष्ण-
वंशीहरणं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रणं नाम
[2]सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥



१. उपायं चिन्त—क. ख. । २. 'सप्तविंशोऽध्यायः' नास्ति—ङ. ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच

श्रुत्वा तद्वचनं देव्याः कृष्णः कमललोचनः ।
गोपानाहूय सकलान् गीतवाद्यविशारदान् ॥ १ ॥
तथा शक्तीर्महादेव्याः [1]सर्वाकर्षणरूपिणीः ।
वाद्यभाण्डादिकं सर्वं यन्त्राणि विविधानि च ॥ २ ॥
[2]ततो(तं) वीणादिकं साध्वि आनद्धं मुरजादिकम् ।
वंश्यादिकं च सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम्[1] ॥ ३ ॥
प्रेषयामास गोविन्दो देवीनिकटमुन्मनाः ।
कृष्णेङ्गितज्ञा सा देवी सर्वभूतमनोहरा ॥ ४ ॥
गोपालान् नायकान् कृत्वा शक्तीः सर्वाश्च नायिकाः ।
राधाकृष्णविनोदाख्यं नाटकं सुमनोहरम् ॥ ५ ॥
शिक्षयामास सा देवी नानारसविशारदा ।
देहादुत्पादयामास कोटिचन्द्र[3]निभाननाम् ॥ ६ ॥
चन्द्रावलीं गौरदेहां ददौ कृष्णाय नायिकाम् ।
ननर्त स तया सार्धं देव्यग्रे[4]ऽतिमनोहरम् ॥ ७ ॥
[5]तथा तथा यथायोग्या नायिका नायकैः शुभैः ।
योजयामास सुभगे प्रहृष्टवदनाम्बुजा ॥ ८ ॥
ताभिस्तेषां [6]नृत्यतां वै दृष्ट्वा तत् [7]ताण्डवं महत् ।
परमं हर्षमापन्ना जय कृष्णेत्यथाऽब्रवीत् ॥ ९ ॥
अवश्यं सापि वशगा भवितेति व्यचिन्तयत् ।
ततः सा परमा देवी सर्वशक्तिनमस्कृता ॥ १० ॥
इच्छाज्ञानक्रियादीनां मूलभूता सनातनी ।
तुरीयां तां ज्ञानशक्तिमादिभूतां सरस्वतीम् ॥ ११ ॥

---

१. अन्तःकर्षण—क. ख. । २. तन्त्रं वीणा—क. ख. । ३. निभाननम्—क. ख. । ४. सुमनो—क. ख. । ५. 'तथा'नास्ति—क. ख. । ६. तु नृत्यं वै—क. ख. । ७. तान्तरं महत्—ङ. ।

---

1. ततादिकं चतुर्विधं वाद्यं अमरकोशे (१/१०/५) अपि दृश्यते ।

मुरलीरूपमापन्नां श्रीकृष्णाधर[1]संश्रिता[म्]।
समाहूयाऽब्रवीद् वाक्यं सर्ववाक्यविदांवरा ॥ १२ ॥

श्री[2]मत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

हे देवि परमेशोऽयं [3]श्रीकृष्णः काममोहितः।
राधाविरहसन्तप्तस्त्वयाप्यकरुणात्मना ॥ १३ ॥
शप्तः साध्वि साम्प्रतं तत्साहाय्यं कर्त्तुमर्हसि।
यथा तद्वशगा नित्या राधाऽद्यै[4]व भवेच्छुभे ॥ १४ ॥

ब्राह्मण उवाच

श्रुत्वैतद्वचनं देव्या गृहीत्वाज्ञां शिरस्यथ।
गत्वा राधान्तिकं देवी मुरलीरूपमास्थिता ॥ १५ ॥
जगौ कलं यशस्तस्य कृष्णस्य परमात्मनः।
राधे तस्य महाबाहो रूपं त्रैलोक्यमोहनम् ॥ १६ ॥
गुणा अगण्या अनद्या गाम्भीर्यञ्च ततोऽद्भुतम्।
वीर्यमत्यद्भुतं शौर्यं [5]सुधामधुरभाषितम् ॥ १७ ॥
न तस्य त्रिषु लोकेषु सदृशः कोऽपि विद्यते।
सत्यं ब्रवीम्यहं सुभ्रू योग्यश्चासौ पतिस्तव ॥ १८ ॥
स आदिदेवः [6]पुरुषः पुराणः
सनातनं ब्रह्म परस्वरूपः।
राधे परा शक्तिरसौ स एव
त्वं चाप्यहं वा न तदन्यरूपा ॥ १९ ॥
तस्माद्वचो मे शृणु पङ्कजाक्षि
सत्यं हितं सारतरं ब्रवीमि।
भजस्व कृष्णं रसलालसं [7]वै
वशंवदं (महा ?)योगिमनोदुरापम् ॥ २० ॥

---

१. सन्नि ाम्–ङ.। २. 'मत्'नास्ति–क. ख.। ३. कृष्णः कामसमाहितः-क. ख.। ४. वाभवत शुभे–क. ख.। ५. 'सुधा····आदिदेवः'नास्ति–ङ.। ६. 'पुरुषः'इत्यस्य स्थाने 'वृषः'–ङ.। ७. 'वै'नास्ति–क. ङ.।

इति श्रुत्वा महादेवी मुरल्या मधुरध्वनिम् ।
तत्कामा विस्मयं प्राप्ता [1]हा हा हाहेत्यथाऽब्रवीत् ॥ २१ ॥
निवेश्य वंशीं हृत्पद्मे याता वृन्दावनान्तरम् ।
चिन्तयामास केनैव तं प्राप्स्यामि जगद्गुरुम् ॥ २२ ॥
एतस्मिन्नेव समये देवी त्रिपुरसुन्दरी ।
हंसरूपा महामाया हंसीभिः परिवारिता ॥ २३ ॥
तत्समीपं समासाद्य जगौ कृष्णयशः परम् ।
मुरलीरूपिणी देवी जगौ वाग्वादिनी तथा ॥ २४ ॥
शक्तिभिर्हंसरूपाभिर्गीतं तस्य यशो विभोः ।
श्रुत्वा तन्मदनासक्तचित्ता तामब्रवीत् स्वयम् ॥ २५ ॥

श्रीराधिका उवाच

मुरली त्वं मुखे तस्य सदा [2]तिष्ठसि निश्चला ।
जानासि [3]तत्त्वं कृष्णस्य सत्यं कथय सुस्वरे ॥ २६ ॥
स एव कस्य वशगः केनोपायेन वा शुभे ।
ममैव वशतां याति तमुपायं वद द्रुतम् ।
श्रुत्वा [4]तस्या वचो देवी प्रहसन्तीदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

सरस्वत्युवाच

स्थावरात्माऽस्म्यहं साध्वि नैव जानामि किञ्चन ।
स्मरे स एव भगवान् वशगस्तव भामिनि ॥ २८ ॥
सदा राधेति [5]ते नाम मयि गायति मोहितः ।
अवशं तं वशं नेतुमुपायं यदि वेच्छसि ॥ २९ ॥
हंसीमेतां वरारोहे ह्युपायज्ञां मनोहराम् ।
[6]पृच्छस्व स्वाशयं देवि ! यदि तत्र स्पृहाऽस्ति ते ॥ ३० ॥

ब्राह्मण उवाच

श्रुत्वेदं मुरलीवाक्यं हंसो निकटमाययौ ।
शनैः शनै[7]श्चलत्पादा क्वणत्काञ्चननूपुरा ॥ ३१ ॥

---

१. 'हा'नास्ति—क. ख. । २. तिष्ठति नि—क. । ३. इतः पूर्वं 'न'—क. । ४. तस्य वचो—क. ख. । ५. 'ते'नास्ति—क. ख. । ६. पृच्छ स्वेच्छाशये देवि-ङ. । ७. श्चलति पादा—ङ. ।

त्रैलोक्यमोहिनी हंसी दृष्ट्वा तां प्रमदोत्तमाम्।
कृत्वा कलरवं दूरं जगाम सहसा ततः ॥ ३२ ॥
धावमानाऽतिवेगेन दिधीर्षुर्दूरतो गता।
राधाऽसाधारण[1]क्लेशात् केशवेषविवर्जिता।
[2]नाप्राप सा यदा तां तु प्रोवाच मधुरं वचः ॥ ३३ ॥

श्रीराधिका उवाच

हे हंसी! [3]कार्यमस्त्येव मम किञ्चिदिहाव्रज।
प्रष्टुमिच्छाम्यहं त्वां वै प्रसन्ना भव सुन्दरि ॥ ३४ ॥
चपले चपलाकारे चपलं वचसा मम।
अत्रागच्छ स्वच्छरूपे [4]श्रोतुमिच्छामि ते रुतम् ॥ ३५ ॥
एवं बहुविधैरुक्ता न सा निकटमागता।
पुनः पप्रच्छ सा राधा ततः प्रेमातिविह्वला ॥ ३६ ॥
वक्षःस्थलस्थां मुरलीं किं कर्तव्यं निरुच्यताम्।
मुरली प्राह सुश्रोणि वशीकरणमुत्तमम् ॥ ३७ ॥
मन्त्रं जानाति येनैषा [5]तव वश्या भविष्यति।
[6]इत्युक्त्वा मुरलीरूपधरा [7]देवी सरस्वती ॥ ३८ ॥
कामराजं महाबीजं ददौ त्रैलोक्यमोहनम्।
उवाच च परां देवीं गीर्देवी क्षेमकारिणी ॥ ३९ ॥
राधे देवि परेशानि जगन्मोहमहौषधि।
जपस्व परया भक्त्या आत्मनोऽभीष्टसिद्धये ॥ ४० ॥
जप्त्वा बीजमिदं भद्रे यद्यत् [8]प्रार्थयसे हृदा।
तत्तत् [9]सर्वं क्षणादेव सफलं ते भविष्यति ॥ ४१ ॥
तद्वाक्यान्मुग्धचित्ता सा जजाप [10]च मुहुर्मुहुः।
ध्यात्वा हंसीं परब्रह्मरूपिणीं जगदम्बिकाम् ॥ ४२ ॥
ततः सा वशमापन्ना राधिका सम्मुखं गता।
हंसरूपापि सा देवी चतुरास्योच्चतुर्भुजा ॥ ४३ ॥

---

१. 'क्लेशात्'इत्यस्य स्थाने 'क्लेश'—ङ.। २. न प्रापयामास तां—क. ख.। ३. कार्यमस्त्यस्व मम—ङ.। ४. इतः पूर्वम् 'तु'—क.। ५. ते वश्या-ङ.। ६. इत्युक्ता—ङ.। ७. 'देवी'नास्ति—क. ख.। ८. प्रार्थयते हृदा—ङ.। ९. पूर्वं—क. ख.। १०. 'च'नास्ति—ख.।

पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीदमब्रवीत् ।
वरं वृणीष्व सुभगे यस्ते मनसि वर्तते ॥ ४४ ॥
सर्वं दास्यामि ते सुभ्रु ! सुचित्ता भव शोभने ।
ततः सा मुरली प्राह वरं प्रार्थय सुव्रते ॥ ४५ ॥
लज्जया कार्यहानिः स्याद् एतां त्वं वै परित्यज ।
गाम्भीर्यादधिका लज्जा [1]लज्जातो न निवेदनम् ॥ ४६ ॥
अनिवेदात् कार्यहानिरकार्याद् [2]वार्यते गतिः ।
एषा देवी परा सूक्ष्मा मूलभूता सनातनी ॥ ४७ ॥
कृष्णं च [3]कृष्णभक्तिं च भुक्तिं मुक्तिं च भामिनि ।
दातुं शक्नोति नान्यो हि कल्पकोटिशतैरपि ॥ ४८ ॥
श्रुत्वैतद् वचन तस्याः प्रहसद्वदनाम्बुजा ।
प्रलोभिता मोहिता च वागीश्वर्या वराङ्गना ।
राधिका प्रार्थयामास वरं कमललोचना ॥ ४९ ॥

श्रीराधिका उवाच

देहि भद्रे वरं भद्रं कृष्णो भवतु मद्वशः ।
पाणिं रथाङ्गपाणिः स [4]गृहणातु चैव सुव्रते ॥ ५० ॥

परमहंसी उवाच

[5]अद्यैव कृष्णो भविता [6]पतिस्तव वरानने ।
इति सत्यं पुनः सत्यं वचनं मे न [7]वान्यथा ॥ ५१ ॥
प्रदोषे दोषरहिते तव तेन समागमः ।
भविष्यति च तूर्णं सम्पूर्ण एव मनोरथः ॥ ५२ ॥
[8]सत्यमुक्तं मया देवि हरिरेष जगत्पतिः ।
नित्यं तवैव वशगो भविता नात्र संशयः ॥ ५३ ॥
त्वमेवास्य प्रिया देवि तवैवासौ प्रियो ध्रुवः ।
न या(जा)तु विरहो भावी विना श्रीदामशापतः ॥ ५४ ॥

---

१. तज्जातो—ङ. । २. वाप्यति गतिः—क. ख. । ३. कृष्णभक्तिस्तु भुक्ति क. ख. । ४. गृहाण्वद्वैव सुव्रते—क. ख. । ५. अत्र 'ज'मातृका आरभ्यते । तत्रारम्भे 'ॐ नमः । श्रीकृष्णाय नमः' इति लिखितम् । ६. पतिस्ते वरवर्णिनी—ङ. । ७. चान्यथा—ङ. । ८. 'सत्यमुक्तं' इत्यारभ्य ७३संख्यकश्लोकपर्यन्तं पाठो नास्ति—क. ख. ।

[1]विषया [च] हरेरेव गन्धर्वतपसापि च।
भौमे वृन्दावने देवि हरिणा सह यास्यति ॥ ५५ ॥
शतवर्षं [2]वियोगास्ते हरिणा तदनन्तरम्।
भविता तत्र गोविन्दं सततं चिन्तयिष्यसि ॥ ५६ ॥
श्रीकृष्णप्रणयोन्मता सदा तत्र भविष्यसि।
[3]क्वचित् स्खलत्पदा क्षित्यां निपतिष्यसि मूर्छिता ॥ ५७ ॥
क्वचिदुच्चस्वरेणैव [4]रूदन्ती रोदयन्त्यपि।
एवं दशदशा[5]क्रान्ते(न्त)हृदया रसपुष्टये ॥ ५८ ॥
[6]भविताऽसि मुकुन्दस्य प्रेमास्वादनतत्परा।
ततः कृष्णोऽपि सर्वज्ञस्तव तत्प्रेममाधुरीम् ॥ ५९ ॥
वीक्ष्य त्वद्भावमाश्रित्य स्वयमास्वादयिष्यति।
कृष्णभक्तिविहीनानां पाप्मना ग्रसितात्मनाम् ॥ ६० ॥
कलौ नष्ट[7]दृशां नैव जनानां कुत्रचिद् गतिः।
इति मत्वा कृपासिन्धुरंशेन कृपया हरिः ॥ ६१ ॥
प्रच्छन्नो भक्तरूपेण कलाववतरिष्यति।
[8]भुवं प्राप्ते तु गोविन्दश्चैतन्याख्यो भविष्यति ॥ ६२ ॥
तस्य कर्माणि मनुजाः कीर्तयिष्यन्ति केचन।
बहिर्मुखा नमस्यन्ते [9]प्रच्छन्नं परमेश्वरम् ॥ ६३ ॥
गौराङ्गो नादगम्भीरः स्वनामामृतलालसः।
दयालुः कीर्तनग्राही भविष्यति सचीसुतः ॥ ६४ ॥
मत्वा त्वन्मयमात्मानं पठन् द्व्यक्षरमुच्चकैः।
गतत्रपो मदोन्मत्तो गजवद् विचरिष्यति ॥ ६५ ॥
भुवं प्राप्ते(प्य) तु गोविन्दश्चैतन्याख्यो भविष्यति।
अंशेन भुवि यास्यन्ति तत्र तत्पूर्वपार्षदाः ॥ ६६ ॥
पृथक् पृथग् नामधेयाः प्रायः पुरुषमूर्तयः।
सर्वे प्रच्छन्नरूपास्ते स्वेच्छयाच्छन्न[10]शक्तयः ॥ ६७ ॥

---

१. विवष(श)या हरे–ज. । २. वियोगान्ते–ज. । ३. अत्र 'छ'संज्ञकमातृका पुनरारभ्यते । ४. वदन्ती वोदयन्त्यपि–छ. । ५. क्रान्ता हृ–ज. । ६. भविष्यसि-ज. । ७. दशामेव–ङ. । ८. 'भुवं.....भविष्यति' इति पङ्क्तिरेषा नास्ति–छ. । ९. प्रहसं पर–छ. । १०. मूर्तयः–ज. ।

कृष्णःममदोन्मत्ता भविष्यन्ति परं सदा।
एतत्ते कथितं सर्वं यद्यद् देवि भविष्यति ॥ ६८ ॥
सत्यं त्वत्सदृशी नान्या प्रिया कृष्णस्य वर्तते।
यतस्तद्भावसारं स स्वयमङ्गीकरिष्यति ॥ ६९ ॥
त्वां प्राप्य पूर्णकामः स्यादद्य कृष्णो न संशयः।
त्वामृते नान्यवस्तुभ्यः सुखीभवति कर्हिचित् ॥ ७० ॥
एवमुक्ता लब्धकामा राधिका कृष्णसाधिका।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा भूयः प्रोवाच सादरम् ॥ ७१ ॥

श्रीराधिका उवाच

अपि गोविन्दविरहे दुःखं भवतु मे शुभे।
किन्तु मद्विरहाद् दुःखात् कृष्णस्य माऽस्तु वेदना ॥ ७२ ॥
किञ्च दुःखे सुखे वापि कृष्णान्यद् माऽस्तु [1]मानसे।
इति देवि वरं याचे त्वामहं वरदेश्वरीम् ॥ ७३ ॥
इत्युक्त्वा सा भगवती हसन्ती हंसरूपिणी।
उवाच तां ततः प्रीत्या गोविन्दप्रणयोत्सुकाम् ॥ ७४ ॥

परमहंसी उवाच

त्वं हि कृष्णस्वरूपासि कृष्ण[2]प्रेमा यदीदृशीः(शः)।
यद्यत् [3]प्रार्थयते सुभ्रु तत्सर्वं सिद्धमेव ते ॥ ७५ ॥
[4]इत्युक्त्वा सा [5]परब्रह्मस्वरूपा हंसरूपिणी।
अन्तर्दधे [6]तु हंसीभिस्तत्पुर[7]स्त्रिपुरेश्वरी[8] ॥ ७६ ॥
ततो गोलोकमागत्य प्रविष्टा रत्नमन्दिरम्।
राधाविरहविक्षिप्तचित्तो यत्र स्वयं प्रभुः ॥ ७७ ॥
दृष्ट्वा तां हृष्टवदनां प्रहृष्टवदनाम्बुजः।
पप्रच्छ कुशलं तस्याः किं वा तत्र प्रयोजनम् ॥ ७८ ॥

---

१. मानसम्—ज.। २. प्रेमास्पदा भृशम्—ज.। ३. प्रार्थयसे सुभ्रु—छ. ज.। ४. इत्युक्ता—ङ.। ५. परंब्रह्म—ज.। ६. ते—ङ.। ७. स्त्रिदशेश्वरी—ङ.। ८. इतः परम् 'इति [श्री]कृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णराधाप्रीतिवृन्दावनरहस्ये श्रीराधाकृष्णविहारनाम षड्विंशतितमस्याध्यायस्य मध्ये एतत्। ॐ राधाकृष्णाभ्यां नमः। ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ।' इति पाठो वर्तते—ज.।

गमने तव सञ्जातं कथ्यतां यत्सुखावहम् ।
सा चाह गम्यतां तत्र साधितं सकलं मया ॥ ७९ ॥
किन्तु तद्देहजैः सर्वैः पुरुषैः कामरूपिभिः ।
रुद्धाऽऽस्ते सा वञ्चयितुं [1]तानुपायं वदाम्यहम् ॥ ८० ॥
तच्छृणुष्व महाभाग यथा [2]प्राप्स्यसि तां शुभाम् ।
नटवेषधरैः सर्वैर्गोपालैर्मम शक्तिभिः ॥ ८१ ॥
वृन्दावनान्तरे दिव्या रचिता नगरी विभोः ।
तत्रैव नृत्यं गीतं च वाद्यं चातिमनोहरम् ॥ ८२ ॥
कृत्वा राधामनोहारि तावद् भगवता त्वया ।
स्थातव्यं लीलया तत्र यावदागमनं मम ॥ ८३ ॥
तस्मिन् काले च मन्दारपारिजातादिनिर्मिताः ।
माला आनीय वृन्दापि युष्मभ्यं च प्रदास्यति ॥ ८४ ॥
राधिकार्थं च यां मालां गृहीत्वान्तःपुरं व्रजेत् ।
तस्यां त्वं भ्रमरो भूत्वा तत्समीपं गमिष्यसि ॥ ८५ ॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे महाप्रभुः ।
गोपालैः शक्तिभिः सार्धं वृन्दावनपुरीं ययौ ॥ ८६ ॥
ततो महार्हरत्नाढ्यो दिव्यस्रगनुलेपनाः ।
दिव्याम्बरधरा [3]गोप्यु:(प्यः) सर्वा देव्यो मनोहराः ॥८७॥
नानायन्त्रकलाभिज्ञाः रसज्ञाः स्वरसम्पदः ।
मूर्च्छनाभिरपूर्वाभिर्मूर्च्छयित्वा पृथक् पृथक् ॥ ८८ ॥
वीणादिकानि यन्त्राणि वादयामासुरुत्सुकाः ।
ततस्ते देवगान्धारं छालिक्यं श्रवणामृतम् ॥ ८९ ॥
कलकण्ठयो जगुस्तैश्च वृन्दावनमधुव्रताः ।
आगत्य मोहिताः साकं जगुरुच्चैर्जगत्पतेः ॥ ९० ॥
श्रीकृष्णस्य यशो रम्यं धन्यं त्रैलोक्यपावनम् ।
राधाकृष्णविनोदाख्यं नाटकं जनमोहनम् ॥ ९१ ॥
विस्तारयामासुरुच्चैस्तेन सम्मुमुहुर्जनाः ।
देव्यो विमुग्धहृदया या या राधाङ्गसम्भवाः ॥ ९२ ॥
ददुर्वासांसि रत्नानि स्वालङ्कारांश्च सर्वतः ।
तत्सर्वमोहनं नृत्यं गीतं वाद्यं निरीक्ष्य सा ॥ ९३ ॥

---

१. तमुपायं—ख. । २. प्राप्स्यसि तां—क. ख. । ३. गोपाः—क. ख. ङ. ।

श्रुत्वा च मुग्धहृदया तत्समीपमुपागता ।
हठाद् राधाऽप्यन्यरूपा [1]नानालङ्करणानि च ॥ ९४ ॥
मणिमुक्ताप्रवालानि पद्मरागादिकानि च ।
मुरलीं च ददौ भ्रान्त्या [2]तत्क्षणान्नष्टचेतना ॥ ९५ ॥
ततः सा कामवशगा राधा त्रैलोक्यसुन्दरी ।
प्रविष्टान्तःपुरं तस्थौ [3]मदाघूर्णितलोचना ॥ ९६ ॥
ततस्तत्रागता हंसरूपा त्रिभुवनेश्वरी ।
ददर्श मोहितं तेन राधा वृन्दावनं च यत् ॥ ९७ ॥
अहो रूपमहो धैर्यमहो शौर्यमहो गुणाः ।
एषा[4]मित्याहुरुन्मना उत्थायोत्थाय सर्वतः ॥ ९८ ॥
दृष्ट्वैतद् हर्षिता देवि श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ।
[5]ददर्श मोहितं तेन राधावृन्दावनं च यत् ।
प्रहसन्ती कटाक्षेण तमुवाच शुचिस्मिता ॥ ९९ ॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी उवाच

जानीह मां महाबाहो देवीमत्रागतामिति ।
मया यदुक्तं तत्सर्वं स्मारं स्मारं विधीयताम् ॥ १०० ॥
आगतेयं महाभाग वृन्दा वृन्दावनेश्वर ।
सर्वज्ञेश्वर युष्माभिर्यद्युक्तं तद्विधीयताम् ॥ १०१ ॥

ब्राह्मण उवाच

तदागमनसंहृष्टा वहन्ती पुष्पमालिकाः ।
समायाता ततो वृन्दा वृन्दारकनिषेविता ॥ १०२ ॥
स्वयं विरचिताभिश्च स्रग्भिस्तं परमेश्वरम् ।
नटवेषधरं कृष्णं पूजयामास शोभना ॥ १०३ ॥
ततो नटांश्चारुरूपान् नर्तकीश्च विशेषतः ।
मालाभिरवशिष्टाभिर्वृन्दावनसमागतान् ॥ १०४ ॥
भूषयन्ती गृहीत्वैकां मालां त्रैलोक्यमोहिनीम् ।
कृष्णनामा[6]ङ्कितां भद्रां नानापुष्पोपशोभिताम् ॥ १०५ ॥

---

१. मालाल—ङ. । २. तद्रूपाकृष्टचेतना—ङ., तद्रूपाहृष्टचेतना—छ. । ३. मदाच्चूर्णित—क. ख. । ४. नित्या—ङ. छ. । ५. 'ददर्श.....यत्' इति पङ्क्ति-रेषा नास्ति—क. ख. ङ. । ६. ङ्कितभद्रां—ङ. छ. ।

अन्तःपुरं गन्तुकामा जयकृष्णेत्यथाब्रवीत् ।
कृष्णस्तदिङ्गितं बुद्ध्वा मधुव्रतशताकुले ॥ १०६ ॥
पुष्पदा[1]मणिमालाया भूत्वा मधुकरः स्वयम् ।
प्रविष्टो वृन्दया सार्धं भगवानादिपूरुषः ॥ १०७ ॥
जगाम राधानिकटं कोटिकन्दर्पमोहनः ।
तद् बुद्ध्वा त्रिपुरादेवी प्रविष्टा तत्पुरं महत् ॥ १०८ ॥
जगाद् राधे धन्याऽसि तवाद्य प्रियसङ्गमः ।
तच्छ्रुत्वा राधिकां तां तु प्रहसन्तीदमब्रवीत् ॥ १०९ ॥

श्रीराधिका उवाच

प्रलोभिता त्वयाहं तु कामार्तास्मि किमुच्यते ।
यदि नायाति कृष्णोऽद्य प्राणा यास्यन्ति मे ध्रुवम् ॥ ११० ॥
विरहानल[2]संदग्धा पश्चात् [3]तु स्वरेण किम् ।
श्रुत्वैतत् प्रेयसीवाक्यं कृष्णः कमललोचनः ॥ १११ ॥
अन्यरूपी रङ्गमध्ये वेणुं कलरवं जगौ ।
तद्वेणुगीतमाकर्ण्य सा राधातिविमोहिता ॥ ११२ ॥
प्राह तामीश्वरीं भद्र स कुत्रानीयतां वरः ।
प्राणनाथो मम प्राणा यावत्तिष्ठन्ति सुव्रते ॥ ११३ ॥
तावत्तं तु समानीय संजीवय विजीविताम् ।
स पुष्पदामान्तरङ्गः श्रुत्वा प्रेमसुभाषितम् ॥ ११४ ॥
अत्यन्तहर्षमापन्नो [4]जहास पुरुषोत्तमः ।
[5]तत्सुहासप्रकाशेन प्रकाशितदिगन्तरम् ॥ ११५ ॥
वृन्दावनं बभौ भद्रे विद्युतेव नभस्तलम् ।
ततो वृन्दावनेश्वर्यै वृन्दा वृन्दावनोद्भवैः ॥ ११६ ॥
मन्दारकुसुमैर्दिव्यां रचितां मालिकां ददौ ।
तत्पुष्पमालासंस्पर्शात् काम[6]बाणार्दिता मुहुः ॥ ११७ ॥

---

१. मानिमालाया—क. ख. ङ. । २. संदिग्धा—ख. । ३. तव चरणेन किम्-ख. । ४. जातः स पुरु—क. ख. । ५. तत्तद् हास—ङ. । ६. वर्गादिता—क. ख. ।

कृष्ण कृष्णेत्यथोवाच प्रेम्णा गद्गद्भाषिणी ।
[१]अथ तत्प्रेमवशगः कृष्णः कमललोचनः ॥ ११८ ॥
आत्मानं दर्शयामास [२]ससूत्रं मणिसन्निभम् ।
[३]कोटिकन्दर्पलावण्यं योषितां हृदयङ्गमः(मम्) ॥ ११९ ॥
[४]मायूरदलसंशोभिसुकुञ्चितशिरोरुहम् ।
मधुमत्तालिसंघृष्ट[५]दिवस्रगुपशोभितम् ॥ १२० ॥
निष्कलङ्कचन्द्रकोटिसदृशाननपङ्कजम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ १२१ ॥
उपालकावलिलसत्तिलकं दधतं सितम् ।
यथाविधुन्तुदक्रोडलुठत्कुमुदबान्धवम् ॥ १२२ ॥
कन्दर्पधनुराकारभ्रूलतं सुमनोहरम् ।
तिलप्रसूनविलसत्सुनसं पाटलाधरम् ॥ १२३ ॥
अरुणाम्बुजपत्राभं [६]कर्तजाहविलोचनम् ।
समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ १२४ ॥
माणिक्य[७]मुकुराकारगण्डमण्डलमण्डितम् ।
कुन्दप्रसूनदशनमरुणौष्ठमनुत्तमम् ॥ १२५ ॥
सुचारुचिबुकं चारुस्मेरं त्रैलोक्यमोहनम् ।
मनोहरं गुणग्रीवं नानालङ्करणोज्ज्वलम् ॥ १२६ ॥
आजानुलम्बितभुजं वनमालाविराजितम् ।
श्रीवत्सलोमावल्या च कौस्तुभेन विराजितम् ॥ १२७ ॥
विराजितं महोरस्कं वलि[८]मत्पल्वलोदरम् ।
योषिन्मनोहरलसन्निम्ननाभिसरोरुहम् ॥ १२८ ॥
घनश्यामवपुर्विद्युद्वाससं सर्वसुन्दरम् ।
सुजानुजङ्घायुगलं गूढगुल्फपदद्वयम् ॥ १२९ ॥
रत्ननूपुरसंशोभिश्रीमत्पादलतारुणम् ।
शरद्राकेशसंकाशनखराजिविराजितम् ॥ १३० ॥

---

१. 'अथ....ङ्गमम्' इति पङ्क्तित्रयं नास्ति—छ. । २. सुभ्राभमणिशोभितम्-ङ. । ३. 'कोटि....शोभितम्' इति पङ्क्तित्रयं नास्ति—ङ. । ४. तमायूर—छ. । ५. दिव्यस्रगु—छ. । ६. कन्दुजाः—ङ., कर्णजाह—छ. । ७. मुद्गदाकार—क., मद्गदाकार—ख. । ८. वत्प—क. ख. ।

दृष्ट्वा तं पुरुषं श्रेष्ठं राधा त्रैलोक्यसुन्दरी ।
मुमोह कामवशगा संप्रहृष्टतनूरुहा ॥ १३१ ॥
अनिमेषदृशा कृष्णं निरीक्षन्त्यरुणेक्षणा ।
रत्नमय्यां च शय्यायां मृद्वास्तरणसम्पदि ॥ १३२ ॥
सुस्वापापाङ्गमार्गेण वर्षन्ती काम[1]माकुलम् ।
[2]कृष्णस्तदिङ्गितं बुद्ध्वा प्रेमानन्दरसाप्लुतः ॥ १३३ ॥
स्वयं वेदविधानेन सम्पूज्यात्मानमात्मना ।
सर्वदेव[3]मयैर्द्रव्यैर्नानारसमयैर्विभुः ॥ १३४ ॥
देहान्तस्थानलं होमैः सन्तर्प्य पुरुषोत्तमः ।
गान्धर्वेण विवाहेन उपयेमे स राधिकाम् ॥ १३५ ॥
ऊरुपत्रे समारोप्य काममुद्दीप[4]यञ्छनैः ।
करेणाधःप्रदेशे तां संस्पृश्य च पुनः पुनः ।
लीलाभी रसकृद्द्वेत्र आत्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ १३६ ॥
अथेन्दुरम्भोजविमुद्रणक्षमः
प्रबोधयन् कैरवकोरकाकरम् ।
सुराङ्गनाकुङ्कुम[5]राशिसन्निभः
प्रकाशयामास दिशं बलद्विषः ॥ १३७ ॥
कन्दर्पनीराजनरौप्यपात्रं
प्राच्या दिशो वेषविलासदर्पणः ।
तमातमः सन्दलयन् करोत्करैः
सुशीतलः शीतमरीचि[6]रुद्ययौ ॥ १३८ ॥
चुकूज भृङ्गो नवकोकिलाकल-
ध्वनिं समाकर्ण्य मनोरमं [7]परम् ।
जगज्जये वाद्यमभू[8]न्मनोभुवः
प्रकाण्डमुच्चैः पथिकप्रमर्दनम् ॥ १३९ ॥

१. मारुणम्—क. ख., दा कुलम्—छ. । २. द्रष्टस्तदि—छ. । ३. मयं द्रव्यैर्दिव्यैर्वा रसमयैर्वतु—छ. । ४. यन्चुलैः—छ. । ५. वासिस—छ. । ६. रुस्वयौ—ङ., रुस्वजौ—छ. । ७. घनम्—क. ख. । ८. 'न्मनो''''सुधीरः समी (श्लो० १४०)' नास्ति—क. ख. ।

दिशो वभुर्विमलाः सुधीरः स-
मीरणः सौरभशीतलो ववौ ।
कपोतपारावत[१]केलि(कि)[२]पक्षिणां
रुतेन [३]चित्तं विपिनं जहार [४]तत् ॥ १४० ॥
[५]आश्लेषयामास पयोदविद्युति
सविद्युदाभां रमणीं रसात्मिकाम् ।
सूत्राभरत्नं रुचिरं चिरत्नं
सुवर्णवल्या मिलितं बभूव ॥ १४१ ॥
चुचुम्ब वक्त्रं [६]रसलालसोमुदा
[७]श्रवन्मधूकं नवनीरदद्युतिः ।
विधुन्तुदोऽसौ [८]कवलीचकार
यथा विधुं पूर्णतिथौ [९]नभस्तले ॥ १४२ ॥
चुचुम्ब तत्पाटलिताधरं प्रभु-
स्तमालमालाप्रभनीलविग्रहः ।
अदंशयत् सूर्यमिषादनूरुकं
चिरेण किं बाहुरसौ रुषाकुलः ॥ १४३ ॥
कृष्णः [१०]सतृष्णः स्मरसिन्धुखेलने
दधौ तदीया वुरसि स्तनौ घटौ ।
कस्तूरिकाबिन्दुकशैवलाञ्छितौ
तुङ्गौ सुपीनौ घनसारपङ्क्तितौ ॥ १४४ ॥
दधौ कराभ्यां निविडां कुच[११]द्वयीं
पीनांशुतुङ्गामुरसि प्रकाशिताम् ।
नूनं चिनोति स्म मनोजकूजने
सरोवरे काञ्चनपङ्कजे हरिः ॥ १४५ ॥

---

१. केली—छ. । २. पक्षिणं—क. ख. । ३. वित्तं—क. ख. । ४. 'तत्' नास्ति-क. ख. । ५. आक्लेशया—ङ. । ६. वशनालसो—छ. । ७. स्मरन्मधूकं—छ. । ८. करणीचकार—ङ. । ९. नभस्थले—क. ख. । १०. सकृष्णः—ङ., सदृष्णः—छ. । ११. द्वयं—क. ख. ।

उरोजयोस्तुङ्गसुवृत्तपीनयोः
समन्ततो मौक्तिकचित्र[1]लेखयोः ।
स्मरोत्सवे मङ्गलकुम्भयोर्मुखे
न्यधादसौ पाणिरसालपल्लवम् ॥ १४६ ॥

नखैर्हरिः पीनपयोधरौ वरौ
ददार कर्बूरधराधराधरौ ।
यथा [2]हरिर्मत्तमतङ्गजस्य
[3]कुम्भौ सतुङ्गौ धृतदान[4]पूरकौ ॥ १४७ ॥

[5]तनौ नखाघातजरक्तधारा-
मुत्पाटनीकारितदन्तिमौक्तिकौ ।
कुचौ दधाते नवधातुरक्तयो-
श्चिराय सौमेरवशृङ्गयोः [6]श्रियम् ॥ १४८ ॥

सिन्दूरधातुनवकुङ्कुमराग[7]भाजौ
स्नातस्य कुम्भितरुणस्य कृताभि[8]षेकौ ।
कुम्भौ [9]व्रजेन्द्ररमणीकुचशातकुम्भ-
कुम्भौ नखक्षतगलद्रूधिरौ [10]बभातुः ॥ १४९ ॥

अखर्वनेत्राग्निशिखाभयेन
[11]शर्वस्य सर्वेश्वर[12]कृष्णवध्वाः ।
[13]हारप्रवाहौ कुचकाञ्चनाचलौ
चन्द्रः सिषेवे नखलेखकैतवात् ॥ १५० ॥

एकः कालाग्निरुद्रः प्रदहति जगतीं तत्र हालाहलस्य
ज्वाला तत्रापि वह्नेः स्मरदलनललजिह्वया जिह्वलस्य ।
तत्र स्थानं हिमांशो[14]र्मम बत विहितं [15]वेधसा चेतसेति
स्मारं स्मारं [16]विवर्णः समजनि [17]रजनीनायको राधिकाङ्गे
॥ १५१ ॥

---

१. लेखया—क. ख. । २. हरेर्मूर्तिमतङ्ग यस्य—छ. । ३. कुन्तौ स—ङ. । ४. पूर्वा—छ. । ५. ततो नखा—ङ. । ६. त्रियः—क. ख., धियः—छ. । ७. राजौ—छ. । ८. रेकौ—छ. । ९. व्रतेन्द्र—क. ख. । १०. स्म भातः—ङ. । ११. सर्वस्य—ङ. । १२. रक्तवध्वाः—ङ. । १३. हरे प्र—छ. । १४. मघ बत—छ. । १५. वेधसां—छ. । १६. निवर्तः स यजति रजनी—क. ख. । १७. 'रजनी' नास्ति—छ. ।

[1]तयोर्द्वयोर्हेमतमालभासो
हृदि प्रकामं प्रबभूव कामः ।
प्रत्येकसंसारजयोत्सवे [2]लसो
ब्रह्माण्डकोटिप्रकटोदरान्तयोः ॥ १५२ ॥

कण्ठा[3]श्लिष्टभुजायुगं परिग[4]लदुद्भिन्नमालादिकं
[5]दन्तप्रान्तविदंशिताधरयुगं [6]संलुप्तसिन्दूरकम् ।
दृग्द्वन्द्वाञ्जन[7]सञ्जनासितमुखं संघृष्टपीनस्तनं
श्रीकृष्णस्य रतं ततान [8]मुदितं [9]राधामसाधारणाम् ॥१५३॥

[10]अगण्यलावण्यतरङ्ग[11]भाजो
रङ्गे [12]घनङ्गस्य हि रङ्ग[13]सङ्गः ।
श्रीराधिकागोपकुमारयोरभूत्
समस्तवृन्दावन[14]लोकशोकहाः ॥ १५४ ॥

जिता न राधा हरिणा जितेन
समस्तपञ्चा[15]शुगतन्त्रधीमता ।
प्रायः स्त्रियः कामनिकामकेतवः
सम्मोहयन्त्यो मदयन्ति पूरुषम् ॥ १५५ ॥

जिगाय राधा स्मरसङ्करे प्रियं
समस्तसम्मोहनतन्त्रकोविदा ।
चिक्षेप तस्यो[16]रसि निर्भरं मुदा
कदम्बपुष्पाणि हसन्मुखाम्बुजा ॥ १५६ ॥

स्वेदाम्बु(म्बू)ञ्झितचन्दनं श्रुतियुगश्रीकुण्डलान्दोलनं
वध्वा मूर्धशिरोरुहं कटितटे गाढं क्वणत्काञ्चिकम् ।
पादाशिञ्जितनूपुरं करपरिस्फूर्जच्चलत्कङ्कणं
राधा या विपरीतमारतमभूत् कृष्णे प्रमोदप्रदम् ॥ १५७ ॥

---

१. तत्र द्वयो–ख., तयोर्ध्वयो–ङ. । २. ऽलं सा ब्रह्माण्ड–ङ. । ३. शक्त-भुजा–ङ. । ४. लत्तस्मिन्नुमाला–ङ. । ५. हस्तप्रान्तरिकंसिता–ङ. । ६. सन्तप्त–छ. । ७. 'सञ्जना'नास्ति–ङ. । ८. मुदितां–क. ख. ङ. । ९. राधा-समाधवोरणाम्–छ. । १०. आग्रण्य–क. ख. । ११. भाजौ–छ. । १२. स्वमङ्ग-ङ., स्वनङ्ग–छ. । १३. लङ्गुरः–ङ., सङ्गवः–छ. । १४. 'लोक'नास्ति–क. ख. । १५. गुणतन्त्रधीमताम्–छ. । १६. रसनिर्भरं–छ. ।

[1]ततोऽनुगोत्रस्खलनं तयोरभूत्
परस्परं प्रेम[2]पयोधिमग्नयोः ।
रसान्धयोः कौतुककेलि[3]लोलयो-
र्यथा नितान्तं रतिकामदेवयोः ॥ १५८ ॥
कस्त्वं [4]रे मधुसूदनोऽस्मि सुभगे कस्मात्प्रसूनाद्बहि-
र्मुग्धेऽहं हरिरस्मि पत्रहरिणेनात्रास्ति [5]का वा क्रिया ।
चक्र्यस्मि [6]स्मितसालसे पुनरितः सर्पः कथं सर्पति
प्रायो वाक्छलकारिणी व्रजवधूः कृष्णं व्यधाल्लज्जितम् ॥१५९॥
काऽसि त्वमहं व्रजेन्द्ररमणी संसेव्यतां स्वः पति-
र्मुग्धाऽहं व्रजचारिणी कथमितो गोष्ठं विना स्थीयते ।
साऽहं गोपसुताऽस्मि [7]ग्रासकरणं त्यक्त्वा किमत्रास्ति ते
राधा वाक्छललालसेन हरिणा[8]ऽकारित्रयाधोमुखी ॥ १६० ॥
एवं बहुविधैर्भावैर्रमिता रमणी वरा ।
राधाऽसाधारणरसा वर्धयामास लालसाम् ॥ १६१ ॥
असौ [9]सुपुरुषो नाथः कोटिकन्दर्पदर्पहा ।
तदा पश्याम्यस्य रूपं यदि चक्षुःशतं भवेत् ॥ १६२ ॥
बहुमूर्तिकया [10]कान्तो [11]रंस्यते यस्त्वसौ मया ।
तीर्णः कन्दर्पजलधिः पूर्ण एव मनोरथः ॥ १६३ ॥
एवं सञ्चिन्त्य सा राधा तत्क्षणाद् बहुमूर्तिका ।
अभवत् कृष्णवशगा सर्वसम्मोहकारिणी ॥ १६४ ॥
कृष्णोऽपि राधिकादेव्या इङ्गितज्ञो वनान्तरे ।
आत्मानं बहुधाऽकार्षीत् प्रत्येकरतिलम्पटः ॥ १६५ ॥
रासमण्डलिकामध्ये क्रीडयन् गोपबालिकाः ।
व्रजराजसुतो रेजे राजीवराजिराजितः ॥ १६६ ॥
मलयोद्भवलिप्ताङ्गः शीतलो भासयन् दिशः ।
ताभिर्नक्षत्रमालाभिरुडुराज [12]इवाबभौ ॥ १६७ ॥

---

१. ततो तु गोत्र—क. ख. । २. पत्रोधि—छ. । ३. लोकयो—क. ख. । ४. 'रे' इत्यस्य स्थाने 'मे'—छ. । ५. काराञ्छिघा—छ. । ६. नसालसे—क. ख. । ७. घामकवलं त्यं—क. ख. । ८. कानि त्रया—क. ख. । ९. सत्पुरुषो नाथ—ङ. । १०. कान्ता—छ. । ११. रम्यते यद्यसौ—क. ख., वंश्यते यत्तसौ—छ. । १२. इवो इयां—क. ख. छ. ।

कङ्कणानां किङ्किणीनां [1]मञ्जीराणां सकामिनाम् ।
कामिनीनां रासमध्ये कलः कोलाहलो[2]ऽभवत् ॥ १६८ ॥
ताभिर्व्रजस्त्रीभिरुदारचेष्टित-
श्चकार केलिं कलकूजकूजितः ।
यथा नवश्यामतमाम्बुवाहः
प्रकाशि[3]बिम्बविकरैर्नभस्तले ॥ १६९ ॥
तत्रातिदीप्तवान् [4]देवो भगवान् नन्दनन्दनः ।
अन्तरे हेम[5]रत्नानामिन्द्रनीलमणिर्यथा ॥ १७० ॥
आचञ्चलाञ्चलमनुत्कटनीविबन्ध-
मान्दोलमानभुजकण्टकरत्नहारम् ।
ईषत्स्मितं मृदुनिमीलितनेत्रयुग्मं
गोपीगणस्य गजराजगतं मुदेऽभूत् ॥ १७१ ॥
काचिद् [6]दर्शयति [7]प्रकामसुभगा मूलं भुजायाः परा
भ्रूभङ्ग्या कलयत्यनङ्गसमरं काचित् कचान् पश्यति ।
काचित् साचिमुखाम्बुजा मृदुगतिः सञ्चालयन्ती पदं
काचिद् दन्तविदंशिताधरपुटा शोणाक्षिकोणाऽभवत् ॥ १७२ ॥
काचित् करेणुरिव गच्छति मन्दमन्दं
काचित् करोति कलरवावरवं चिराय ।
[8]कापि क्वणत्कनककाञ्चिकमूर्ध्वहस्तं
नृत्यत्यहो सुमधुरं परया सुगीतम् ॥ १७३ ॥
वेणुं वादयतेऽपरा सुमधुरं काचित् प्रशंसाकरी
काचित् ध्यायति कृष्णचन्द्रवदनं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम् ।
काचित् कङ्कण[9]किङ्किणीक्वणपरा[10]द्राक् श्रीमुखं चुम्बति
कापि श्लिष्यति कामिनीमलयजैः काप्यङ्गमालिङ्गति ॥ १७४ ॥
गौर्योरन्तरगः कृष्णो गौर्येका कृष्णयोस्तथा ।
एवं प्रकल्पिते रासे नन्दनन्दननन्दनः ॥ १७५ ॥

---

१. मञ्जरीणां—क. ख. । २. भवेत—क. ख. । ३. बिम्बं—छ. । ४. देवौ-छ. । ५. रत्नानि इन्द्र—ङ. । ६. दर्शयती—ङ. । ७. प्राकाम—छ. । ८. क्वापि-क. ख. । ९. क्रिङ्किणींकणपरा—छ. । १०. प्राक्—छ. ।

गोपिकां गोपिकामन्तरा श्यामलः
श्यामलं श्यामलं चान्तरा गोपिका।
एवमुद्भाविते मण्डले गीतवान्
वेणुना सुस्वरं राधिका जीवनम् ॥ १७६ ॥
सा राधा बहुधाकारा नानारसविलासिनी।
रसैर्नानाप्रकारैश्च रमयामास केशवम् ॥ १७७ ॥
एकोऽपि बहुधाकारस्तया सह तथैव [1]च।
रेमे च भगवांस्ताभिः कामकोटिमनोहरः ॥ १७८ ॥
स एवमेकरूपेण क्रीडते राधया सह।
अन्यरूपो नृत्यमानो नर्तकैः सह [2]मोदते ॥ १७९ ॥
नाना[3]रसकलाभिज्ञो वेणुवाद्यविशारदः।
मोहयन् काननं सर्वं गृहीत्वा तां वराङ्गनाम्।
विजहार हारवक्षा आत्मारामोऽपि केशवः ॥ १८० ॥
प्रसृमररुचिविद्युन्मेघपुञ्जावभासौ
प्रकटितकटिंचश्चत्क्षौमपीतांशुकान्तौ ।
अलकपिहितवक्त्रौ कामकेलि विलोलौ
स्मर हृदि हृदयेशौ राधिकाकृष्णचन्द्रौ ॥१८१॥
उद्यद्विद्युदुदारवारिदरुचौ रोचिज्जगद्योतिनौ
सुस्निग्धौ रतिकामसम्मिततनू स्मेरस्मरस्मारिणौ।
वृन्दारण्यविहारिणौ मलयजालिप्तौ मनोहारिणौ
चेतः संस्मर सर्वदा प्रियतमौ श्रीराधिका[4]केशवौ ॥ १८२ ॥

---

१. 'च'इत्यस्य स्थाने 'सः'–ङ.। २. मोहते–क, ख.। ३. वेशकला–ङ.।
४. नूपुरौ–क. ख.।

राधा तप्तसुवर्णचारुलतिका [1]शश्वन्मुनेर्मोहिनी
माद्यत्कुञ्जरसारकुम्भकुचयुग्भारावनम्रान्तरा ।
[2]पूर्णाङ्को(ङ्का)ऽङ्कितचन्द्रतुल्यवदनाम्भोजा क्वणत्काञ्चिका
श्रीकृष्णस्य विलासिनी मम पुरस्ता[3]दस्तु [4]शान्तिप्रदा ॥१८३॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे राधाकृष्णरहस्ये श्रीराधाकृष्ण[5]विहारो नाम [6]अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥[7]

॥ समाप्तं च कृष्णयामलम् ॥

---

१. शश्वन्मनोर्मोहिनी—ङ. छ.। २. पूर्णाङ्कौज्झित—ङ., पूर्णाक्तोज्झित—छ.। ३. दस्ति—छ.। ४. शक्तिः परा—क. ख. छ.। ५. 'विहारो''''ऽध्यायः'इत्यस्य स्थाने 'विहारान्वये षष्ठाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥'—छ.। ६. 'अष्टाविंशोऽध्यायः'नास्ति—ङ.। ७. इतः परं 'ॐ नमो कालिकायै'—ङ.। मातृकासमाप्त्यनन्तरं 'संवत १७२६ वर्षे पौषमासे कृष्णपक्षे चतुर्दशी १४ तिथौ रविवासरे श्रीविक्रममहानगरे महाराजाधिराज महाराजा श्री श्री श्री श्री श्री अनूपसिंहजी चिरञ्जीवि लिख्यावतुं मथेन जोसी लिख्यतु। शुभं भवतु। श्रीरस्तु।' इति 'क'संज्ञकमातृकायाम्; 'संवत् १६९५ वर्षे आषाढमासे कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रीमथुराक्षेत्रे इदं पुस्तकं वैष्णवगिरिधरदासपठनार्थं वा परोपकारार्थम्। लि. मथुरादासात्मजकिशोर वैश्य। कारं मध्ये कला संवत १६९५ भाद्रपदसुदि १५ श्री मथुराक्षेत्रे गिरिधरदासवैष्णवपठनार्थम्। लि. मथुरादासात्मज किसोर वैश्य। तथा प्रति ॥' इति 'ख'संज्ञकमातृकायाम्; 'इति श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रसमाप्तश्चायं शकाब्दा १६८५ शके काशीस्थले पुस्तकं लिखत' इति 'छ'संज्ञकमातृकायां दृश्यते।

परिशिष्टम्-9

नवममातृकाविशेषपाठः

....कथां शुभाम् ।
यस्याः श्रवणमात्रेण कृष्णप्रियतरो भवेत् ॥ १ ॥
भौमं वृन्दावनं देवि द्विविधं परिचक्ष्यते ।
एकं तु माथुरे देशे तथान्यत् पुरुषोत्तमे ॥ २ ॥
यत्तु वै मथुरामध्ये तत्र श्रीपुरुषोत्तमः ।
वृन्दावनेन सहितो राधया चरणेन च ॥ ३ ॥
गोभिर्वत्सैर्वृषैश्चैव गोपगोपीगणावृतः ।
साङ्गोपाङ्गो हि गोविन्दः क्रीडार्थं स्वयमागतः ॥ ४ ॥
यद्वत् कलेवरं त्वन्यत् प्रार्थितं परमेष्ठिना ।
इन्द्रद्युम्नोपरोधेन ब्रह्म दारुमयो विभुः ॥ ५ ॥
हितार्थं सर्वभूतानां तत्रानीतो जगत्प्रभुः ।
यत्रैव भगवान् कृष्णस्तत्र वृन्दावनं वनम् ॥ ६ ॥
तत्रैव राधिका नित्या भद्रा देवीव तत्र वै ।
तत्र वै बलरामस्तु गोपा गोप्यो गवां गणाः ।
भूमौ तु विदितं भद्रे एवं वृन्दावनं द्वयम् ॥ ७ ॥

ब्राह्मण्युवाच

कस्मिन् वै भगवान् कृष्णो मथुरायां समागतः ।
वृन्दावनेन रामेण राधया गोगणावृतः ।
गोपीभिर्गोपबालैश्च तन्मे कथय सुव्रत ॥ ८ ॥

ब्राह्मण्युवाच (ब्राह्मण उवाच)

दिव्ये युगसहस्रे द्वे ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
भवन्ति मनवस्तत्र महाभागे चतुर्दश ॥ ९ ॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ।
युगत्रयाधिकं तत्तु दशसप्तचतुर्युगम् ॥ १० ॥

ब्रह्माण्डेऽपि महाभागे ब्रह्मण: परमेष्ठिन: ।
चतुर्युगाब्दसंख्यातं शृणुष्वैकमना: शुभे ॥ ११ ॥
सहस्राणां विंशतियुक् त्रिचत्वारिंशल्लक्षकम्[१] ।
वर्षं तस्य दशांसे(शे)न चतुरंशं कृतं युगम् ॥ १२ ॥
त्र्यंशं त्रेतायुगं अंशं द्वापरं कथ्यते बुधैः ।
[सत्य: १७२८००० । त्रेता १२९६००० । द्वापर ८६४००० ।]
तदेकांशं कलियुगं युगरूपं निशामय[२] ॥ १३ ॥
श्वेतवर्णं कृतयुगं रक्तं त्रेतायुगं प्रिये ।
पीतवर्णं द्वापरस्तु कृष्णवर्ण: कलि: शुभे ॥ १४ ॥
कृते धर्मश्चतुष्पादस्त्रेतायां त्रिपदस्तथा ।
द्वापरे द्विपदो धर्मं एकपाद: कलौ युगे ॥ १५ ॥
वर्षं द्वादशिभिर्मासैः पक्षाभ्यां मास उच्यते ।
पक्षस्तु पञ्चदशभिर्दिवसैः सुभगे दिनम् ॥ १६ ॥
षष्टिदण्डा(धमा ?)त्मकं षष्टिपलैर्दण्ड उदाहृत: ।
कालस्वरूपो भगवानेतत्तस्याङ्गपञ्चकम् ॥ १७ ॥
मानुषेण तु मानेन कथितं सावमानत: ।
मानुषेण तु मासेन पैत्रो दिवस उच्यते ॥ १८ ॥
दिनैर्द्वादशभि: पैत्रैर्दि(र्दै)वो दिवस उत्तमे ।
दैवे युगसहस्रे द्वे ब्रह्मणो दिवसो भवेत् ॥ १९ ॥
तावत् कालवती रात्रि: पुंप्रकृत्यात्मकाविमौ ।
उभयो: सन्धयो: सन्ध्या कालविद्भिरुदीर्यते ॥ २० ॥
प्रतिब्रह्माण्डभाण्डे तु सृष्टि: स्याद् ब्रह्मणो दिने ।
विनाशस्तस्य रात्रौ तु ब्राह्मे नैमित्तिके लये ॥ २१ ॥
ब्रह्मा सृजसि(ति) भूतानि क्षयं नयति शङ्कर: ।
विष्णुस्त्ववति तान्येव काले काले युगे युगे ॥ २२ ॥
वाराहेण स्वरूपेण उद्दधार वसुन्धराम् ।
दंष्ट्रया वज्रकल्पेन स्थितयेव कृते युगे ॥ २३ ॥
स्थिरीकर्त्तुं स्थिरां देवीं सोऽनन्तशिरोऽभवत् ।
तस्यैव धारणार्थं तु कूर्मोऽनन्ततनुर्विभु: ॥ २४ ॥

---

१. इत: परम्—४३२०००० । २. इत: परम्—३२००० ।

कृष्णस्यांशाधारशक्ति सह ब्रह्मशिलां परम्।
समारुह्य धारयेद्वै लोकधात्रीं वरानने ॥ २५ ॥
ततस्तु भगवान्नारसिंहो लोकहिताय वै।
हिरण्यकशिपुं दैत्यं सर्वदैवतकण्टकम् ॥ २६ ॥
हरिर्वामनरूपेण बलिर्वैरोचनोऽसुरः।
नीतः पातालभवनं पुरंव(रन्द)रहितेच्छया ॥ २७ ॥
स वै चतुस्तनूर्भूत्वा ज्ञानयोगः प्रकाशितः।
तथा नारदरूपेण भक्तियोग उदाहृतः ॥ २८ ॥
मत्स्यरूपेण ते नैव वेदाश्चत्वार उद्धृताः।
कूर्मरूपी स भगवान् धृतो मन्दरपर्वतः ॥ २९ ॥
अजितो भगवान् देवान् सुधां सर्वानपाययत्।
निर्मथ्य क्षीरजलधिं सर्वरत्नमयं शुभम् ॥ ३० ॥
तत्रैव मोहिनी नारी भूत्वा विष्णुः सनातनः।
असुरान् मोहयामास रुद्रचित्तविमोहिनी ॥ ३१ ॥
पृश्निगर्भः स भगवान् ध्रुवायौत्तानपादये।
ददौ ध्रुवगतिं भद्रे सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ ३२ ॥
ऋषभो भगवान् श्वेतो वैराग्यं वै प्रकाशितः।
स पृथुर्भगवान् राजा दुदोह च वसुन्धराम् ॥ ३३ ॥
लोकानां जीवनार्थाय सर्वभूतहिते रतः।
नरनारायणो भूत्वा विष्णुः सर्वगुहाशयः ॥ ३४ ॥
सर्वलोकहितं देवि चकार दुस्तरं तपः।
धन्वन्तरिः स भगवान् सर्वभूतहितेच्छया ॥ ३५ ॥
समुद्रमथनाज्जातो गृहीतामृतभाजनः।
हयग्रीवस्तु भगवान् स्वयं विष्णुः सनातनः ॥ ३६ ॥
श्वसतो यस्य नासाग्राद् वेदः प्रादुरभूत् शुभे।
अत्रेरपत्यमभवदनसूयोदरोद्भवः ॥ ३७ ॥
स दत्त इति विख्यातः सर्वतत्त्वविदांवरः।
आहूत्यां तु रुचेर्यज्ञो भूत्वा दक्षिणया सह ॥ ३८ ॥
असाध्यं कर्मदेवानां साधितो भगवान् हरिः।
त्रेतायां कपिलो नाम महासिद्धेश्वरेश्वरः ॥ ३९ ॥
प्रोवाचासुरये सांख्यं योगिनां हृदयङ्गमम्।
तत्रैव परशुरामस्तु रेणुकागर्भसम्भवः ॥ ४० ॥

जामदग्न्योऽभ[व]द्विष्णुः सर्वक्षत्रकुलान्तकः ।
ततस्तु सवितुर्वंशधरो दशरथात्मजः ॥ ४१ ॥
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्न इति संज्ञया ।
एको विष्णुश्चतुर्धाऽभून्महावैकुण्ठनायकः ॥ ४२ ॥
वधार्थं राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
तस्यैवं चरितं तुभ्यं कथयिष्यामि सुन्दरि ॥ ४३ ॥
ततोऽपि भगवान् विष्णुर्व्यासः सत्यवतीसुतः ।
भूत्वा पराशरः कृष्णो द्वैपायन इति श्रुतः ॥ ४४ ॥
वेदमेकं चतुर्धा स चकार निजलीलया ।
प्रतिमन्वन्तरस्यात्र द्वाविंशतितमे युगे ॥ ४५ ॥
द्वापरे तु तथा कृष्णः समायातः स्वशक्तिभिः ।
स्वकीयाङ्गभवैर्गोपैर्गोपीभिर्गोगणैस्तथा ॥ ४६ ॥
वृन्दावनेन रामेण स्वयमेवेश्वरेश्वरः ।
तत् शृणुष्व महाभागे ह्यत्र कौतुहलं महत् ।
गोलोकाद् गोपगोपीभिर्गोगणैर्वृषभैः सह ॥ ४७ ॥
अवतरति मुकुन्दः शश्वदानन्दभोक्ता
सकलभुवनभर्तुर्मस्तकन्यस्तपादः ।
स्वयमिह मथुरायां राधया गोपवृन्दैः
सपदि समुपयातो दिव्यवृन्दावनेशः ॥ ४८ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे श्रीकृष्णाविर्भावनिर्णयो

[नाम प्रथमोऽध्यायः] ॥ १ ॥



ब्राह्मणी उवाच

कस्मिन् किं हेतुना तस्मात् कृष्णो भूर्लोकमागतः ।

ब्राह्मण उवाच

एकदा सकला गोप्यो दिव्ये वृन्दावनोत्तमे ॥ १ ॥
साहङ्काराद् बलात् कृष्णं त्यक्त्वा कुञ्जान्तरं गताः ।
ततः स भगवान् कृष्णो मायया घोररूपिणा ॥ २ ॥
व्याघ्रान् सिंहान् वराहांश्च शरभानतिभीषणान् ।
ससर्ज घोररावांश्च सहसा क्रूरकर्मिणः ॥ ३ ॥
मातृका डाकिनीर्वत्सरूपान् पक्षिवपुर्धरान् ।
वायुरूपांस्तथा कांश्चित् कांश्चित् च क्रूरकर्मिणः ॥ ४ ॥
हयरूपधरांश्चान्यान् वृक्षाकारान् तथापरान् ।
सर्पान् सदर्पान् सुवहून् मर्कटान् ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा तान् हृदये तासां भयानकरसोत्तमः ।
प्रविष्टस्तेनागता गोप्यो गोविन्दं शरणं ययुः ॥ ६ ॥
ततस्तु कृष्णवपुषो घना गम्भीरनादिनः ।
आविरासन् भयार्तास्ता ली(भी)षयन्तो भयानकाः ॥ ७ ॥
विद्युन्माला शोभनाङ्गा महावातेरिता मुहुः ।
तानालक्ष्य भूति(भीत)भीता वृन्दावनपुरन्दरम् ॥ ८ ॥
सकामास्तं समालिङ्ग्य रक्ष रक्षेति चाब्रुवन् ।
काश्चिल्लज्जापरा गोप्यो गोविन्दपृष्ठदेशतः ॥ ९ ॥
स्थिताश्चक्रुः केशपाशसंस्कारपरया मुदा ।
काश्चित्तु दक्षिणे पार्श्वे स्थिताः कमललोचनाः ॥ १० ॥
परीहासं प्रकुर्वन्त्यो लीलया मदविह्वलाः ।
काश्चिद् वामांशतस्तस्य कृष्णस्य परमात्मनः ॥ ११ ॥
सरसैश्चन्दनैरङ्गमनुलिम्पन्त्य उज्जगुः ।
तद्यशोहृष्टवदनाः सर्वभूतमनोहराः ॥ १२ ॥
सम्मुखीनास्तस्य काश्चित् स्मरन्त्यः पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्त्योऽत्र स्मरन्त्यश्च काश्चिद् ध्यानपरायणाः ॥ १३ ॥
कृष्णस्ता वशगा दृष्ट्वा गोपीः शतसहस्रशः ।
एकोऽप्यनेकधा भूत्वा रराम रसविग्रहः ॥ १४ ॥

ननर्त ताभिर्विश्वात्मा प्रीतात्मा प्रभुरव्ययः ।
स्वैरं रमति गोविन्दे कृष्णे गोलोकनागरे ।
रसाविष्टे तु तं प्राहुर्गो[प्यो] गोविन्दमानसाः ॥ १५ ॥

गोप्य ऊचुः

न वयं वर्णकामास्त्वां भयविक्लवचेतसः ।
अपि क्रीडारता वर्णं न शक्ता हृदयेश्वरः ॥ १६ ॥
इमान् क्रूरात्मनः सर्वान् जहि सर्वभयप्रदान् ।
वृकरूपधरास्तेऽपि कृष्णदेहसमुद्भवाः ॥ १७ ॥
हयरूपास्तथा केचिद् वृषरूपास्तथापरे ।
पक्षिरूपास्तथा केचिद् व्यालरूपास्तथापरे ॥ १८ ॥
कुर्वन्तः कदनं नित्यं जनानां वनवासिनाम् ।
गावस्तु हिंसिता दिव्यास्तथैव व्रजबालकाः ॥ १९ ॥
भयङ्करान् महारौद्रान् जह्येतान् रसकण्टकान् ।
श्रुत्वेत्थं वचनं तासां भगवान् रसविग्रहः ॥ २० ॥
राधासहायस्तान् दुष्टान् हन्तुं समुपचक्रमे ।
ततस्तयोः समभवन् किराताः समुपस्थिताः ॥ २१ ॥
बद्ध्वाञ्जलिपुटाः प्रोचुरानीता विकृताननाः ।
अस्माभिरन्यत् कर्तव्यं किमित्यानतकन्धराः ॥ २२ ॥
ततस्तान् भगवानाह प्रणतान् भीमरूपिणः ।
गच्छध्वं मद्वनं त्यक्त्वा यदि जीवितुमिच्छथ ॥ २३ ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मत्तः प्राप्स्यथ वै वधम् ।
ततस्ते सहसा पृथ्वीमवतेरुर्दुरासदाम् ॥ २४ ॥
पृथिव्यां कदनं चक्रुर्देवलोके च नित्यशः ।
देवांश्च दानवांश्चैव मानुषान् पन्नगानपि ॥ २५ ॥
ममन्थुर्दुष्टहृदया देवपक्षान् दृढव्रतान् ।
चक्रवातस्वरूपेण तृणावर्तो रजःस्वनः ॥ २६ ॥
देवानां च नराणां च धनं पुत्रं हरत्यसौ ।
दिव्यरूपधरा देवी पूतना बालघातिनी ॥ २७ ॥
बालान् खादति सर्वेषां भ्रमन्ती धरणीतलम् ।
वत्सरूपोऽतिमायावी क्रूरात्मा चातिनिर्दयः ॥ २८ ॥

वत्सांश्चाबालांश्चैव सततं हन्ति लीलया ।
बकरूपधरः पृथ्वीं मायया देवकण्टकः ॥ २९ ॥
बालान् वृद्धान् वयस्थांश्च सर्वान् हन्ति सुदारुणः ।
तथा वृषासुरः पापः साधुद्वेषकरः परः ॥ ३० ॥
अघासुरोऽपि दुष्टात्मा सर्पः सर्पान्वितः खलः ।
ब्राह्मणानां वरानङ्गान् गोपान् खादति नित्यशः ॥ ३१ ॥
प्रलम्बो नाम पापात्मा तथा हिंसितवान्नरान् ।
धेनुकाख्येति दुर्धर्षः खराकारोऽतिगर्वितः ॥ ३२ ॥
अजेयः सर्वभूतानां हन्ति सर्वांस्तपस्विनः ।
अरिष्टाह्वोऽसुरश्रेष्ठो ब्राह्मणान् हन्ति लीलया ॥ ३३ ॥
केशीनाम्ना हयद्वेष्टा गजद्वेष्टा गजासुरः ।
इत्यादयो महादैत्या आगत्य धरणीतलम् ॥ ३४ ॥
मर्दयन्ति महाभागान् धर्मिष्ठान् धर्मकण्टकाः ।
एतस्मिन्नेव समये विष्णुना कालनेमिना ॥ ३५ ॥
अभवत्तुमुलं युद्धं सर्वभूतभयङ्करम् ।
पराजितः कालनेमिः सगणस्तेन नाशितः ॥ ३६ ॥
धरण्यामवतेरुस्ते कालनेमिश्च भामिनि ।
उग्रसेनसुतश्चाभूत् कंसो विबुधकम्पनः ॥ ३७ ॥
पुरा देव्या विनिहतावसुरौ देवकण्टकौ ।
शुम्भश्चैव निशुम्भश्च जातौ चाणूरमुष्टिकौ ॥ ३८ ॥
पुरा देवर्षिणा शप्तौ गुह्यकौ धनदात्मजौ ।
कामात्मानौ कुजौ भूत्वा पृथिव्यामवतारितौ ॥ ३९ ॥
पुरा वैकुण्ठभवनाच्चू(च्च्यु)तौ दौवारिकावुभौ ।
जयश्च विजयश्चैव सनन्दाद्यैर्निराकृतौ ॥ ४० ॥
तावेव नित्यं धरणावतीत्य जनद्वयम् ।
शिशुपालदन्तवक्त्रौ सर्वभूतविनाशनौ ॥ ४१ ॥
भूत्वा गन्तुं कृतवतीं पृथिवीं दुष्टचेतसौ ।
विष्णुदेहोद्भवश्चापि नरको धरणीसुतः ॥ ४२ ॥
स दैत्यत्वं गतो दैत्यैर्जननीद्वेषकृत् सदा ।
नमुच्याद्याः सैंहिकाद्या वलाभ्या(द्याः) दैत्यकृत् सदा ॥ ४३ ॥

नमुच्याद्यो जरासन्धपौण्ड्रकादि छलेन पृथ्वीं गताः ।
पुरा कपीन्द्रो द्विविदो लक्ष्मणेन तिरस्कृतः ॥ ४४ ॥
विष्णुद्वेषी चाभवत् स पृथिव्याममलाशये ।
कलिर्दुर्योधनाख्योऽसौ धृतराष्ट्रसुतो बली ॥ ४५ ॥
अधर्मः कालयवनः पृथिव्यामवतारितः ।
भूतानां च भविष्याणां भवतां च दुरात्मनाम् ।
भारमाशङ्क्यमानाऽभूश्चञ्चला वालवत् स्थिरा ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले महातन्त्रे श्रीकृष्णमाहात्म्ये भौम-
वृन्दावनोपाख्याने दैत्यकुलाविर्भावो
[नाम द्वितीयोऽध्यायः] ॥ २ ॥



ब्राह्मणी उवाच

अवतीर्णेषु दैत्येषु पृथिव्यां सुदुरात्मसु।
ततः किमभवत् पश्चात् तन्मे कथय हृत्पते ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच

एतैरुपद्रुताः पृथ्वी भाराक्रान्ता भयातुरा।
कम्पमानाङ्गलतिका ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ २ ॥
सत्यलोकेश्वरो ब्रह्मा सर्वेषां प्रपितामहः।
तां वीक्ष्य धरणीं देवीं विस्मयोत्फुल्ललोचनाम् ॥ ३ ॥
उवाच ब्रह्मा चार्वङ्गीं भूतधात्रीं जगत्प्रभुः।
किमर्थं त्वमिहायाता भयत्रस्तेव लक्ष्यसे।
कस्मादुपद्रुताऽसि त्वं तन्मे कथय काश्यपि ॥ ४ ॥

पृथिवी उवाच

चतुर्मुख जगद्धातः सर्वभूतहितेरत।
निवेदयामि ते सर्वं यदर्थमहमागता ॥ ५ ॥
दैत्यैरतिदुराधर्षैर्धर्षितास्मि जगत्पते।
भाराक्रान्ताऽस्मि देवेश दैत्यैरपि सुदुर्जयैः ॥ ६ ॥
अपि विष्णुर्महातेजाः शम्भुर्वापि चतुर्मुख।
तथापि दैत्यांस्तान् जेतुं न च शक्ता इति मन्यते ॥ ७ ॥
त ऐक्योपस्थिता देव सर्वभूतविनाशनाः।
तेषां वै भूरिभारेण गन्तुमिच्छे रसातलम् ॥ ८ ॥
उपायं कुरु देवेश यथा नश्यन्ति तेऽसुराः।
तावद् यावत् शक्तिहीना न च यामि रसातलम् ॥ ९ ॥

ब्राह्मण उवाच

श्रुत्वेत्थं धरणीवाक्यं ब्रह्मा देवगुरुर्गुरुम्।
हरिं जगाम शरणं सर्वेषां शरणप्रदम् ॥ १० ॥
ततः सर्वे देवगणाः सिद्धचारणकिन्नराः।
प्रमथैः सह रुद्रोऽपि देवेन्द्रः स्वगणैः सह ॥ ११ ॥
ऋषयो मुनयश्चैव अनुजग्मुः कुमारकाः।
क्षीरोदस्योत्तरं तीरं यत्र विष्णुः सनातनः ॥ १२ ॥

तत्र गत्वा जगन्नाथं सर्वत्रातारमीश्वरम् ।
तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिः पुराणपुरुषं हरिम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मा उवाच

योगीन्द्रवृन्दपरिवन्दितपादपद्म-
पद्मालयालयलये हृदि योगभाजः ।
पश्यन्ति सन्ततमनन्तमनादिरूप-
मानन्दकन्दकमलेक्षण सर्वतस्त्वाम् ॥ १४ ॥
त्वं भूर्जलं ज्वलनवायुवियत्समुद्र-
सूर्येन्दवो विबुधमानवदानवाद्याः ।
सर्वं विभो त्वमसि सर्वसुरेन्द्रवन्द्य
सृष्टस्त्वयाहमिह सर्वजगत् सृजामि ॥ १५ ॥
कंसारिष्टबकप्रलम्बभुजगाख्याद्यैव मर्त्येतरैः
ध्वस्तेयं धरणी धराद्यधरणी पातालमालम्बितुम् ।
गच्छन्तां विनिवर्त्यतेऽसुररिपो पादारविदान्तिकं
प्राप्ताः स्म परमेश्वराद्य भगवन् युक्तं च यत्तत्कुरु ॥ १६ ॥
ब्रह्मादिभिर्देवगणैः संस्तुतो भगवान् हरिः ।
उत्थाय शेषशयनान्मेघगम्भीरया गिरा ।
उवाच तान् देवसङ्घान् सर्वदेवेश्वरेश्वरः ॥ १७ ॥

श्रीविष्णुरुवाच

ब्रह्मरुद्रसुराधीशदेवाः सर्वे सहाग्नयः ।
ऋषयो मुनयश्चैव श्रृणुध्वं वचनं मम ॥ १८ ॥
येनैव दुःखिता भूमिर्येन वो भयमागतम् ।
तं चिन्तयामि हृदये क एते दानवर्षभाः ॥ १९ ॥
ये मया निहता दैत्याः पातालतलमाययुः ।
राक्षसाश्च दुरात्मानो नेमे ते मद्भयातुराः ॥ २० ॥
तेषां मध्यात् कालनेमिः पातालतलतः क्षितौ ।
भोजराजकुले जात उग्रसेनात्मजो बली ॥ २१ ॥
यः कंस इति विख्यातः पुरा नेमिर्हतोऽसुरः ।
स किमर्थं भयं त्यक्त्वा पुनरत्र समागतः ॥ २२ ॥

आज्ञातं शम्भुना तस्मै वरो दत्तः सुरेश्वराः।
नहि विष्णोर्महादैत्य मृत्युस्तव भविष्यति ॥ २३ ॥
एतेन कारणेनैव सोऽसुरः पुनरागतः।
मया हता नमुच्याद्या येऽसुराः पृथिवीं गताः ॥ २४ ॥
जरासन्धादयस्ते तान् हनिष्यामि न संशयः।
तृणावर्तादयो ये ये. पृथिवीभारहेतवः ॥ २५ ॥
के ते ह्यत्रागता ब्रह्मंस्तान्न जाने दुरासदान्।
येषां भारेण नम्रा भूः पातालं तु गमिष्यति ॥ २६ ॥
सार्द्धं ममैव गच्छध्वं यत्र कारुण्यवारिधिः।
सहस्रशीर्षा विश्वात्मा महाविष्णुः सुरेश्वरः ॥ २७ ॥
तत्रास्ते सर्वभूतेशस्तस्मै सर्वमिदं परम्।
ब्रह्मन्निवेदयिष्यामि स सर्वज्ञो महेश्वरः ॥ २८ ॥
कथयिष्यामि यत् सम्यक् तत्करिष्यामहे वयम्।
इत्युक्त्वा सकलान् देवान् गरुडं गरुडध्वजः।
समारुह्यामरैः सार्द्धं ययौ कारुण्यवारिधिम् ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले ज्ञानकाण्डे भौमवृन्दावनोपाख्याने
विष्णुसमागमो नाम [तृतीयोऽध्यायः] ॥ ३ ॥

ब्राह्मण उवाच

ततस्ते ददृशुर्देवं महाशेषोपरि स्थितम् ।
सहस्रशिरसं दिव्यमणिकोटीरकोटिभिः ॥ १ ॥
भ्राजमानं चारुरत्नं कुण्डलैर्गण्डलोलितैः ।
पूर्णेन्दुकोटिसदृशैर्वदनाम्भोजमण्डलैः ॥ २ ॥
विराजितं पद्मनेत्रसहस्रैररुणांशुभिः ।
अरुणौष्ठाधरं भास्वद्दन्तपङ्क्तिसहस्रकम् ॥ ३ ॥
सहस्रकुन्तलोद्बद्धजटाराजिविराजितम् ।
नानावर्णधरं नानालङ्कारोज्ज्वलविग्रहम् ॥ ४ ॥
बहुग्रीवं सहस्राण्डं चारुबाहुसहस्रकम् ।
अनेकरक्षसं श्रीमत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ५ ॥
बहूदरं महापार्श्वं सहस्रकटिसुन्दरम् ।
आजानलम्बिताशेषवनमालाविभूषितम् ॥ ६ ॥
पीताम्बरं सहस्रेण राजत्किङ्किणिदामभिः ।
शोभितं च महालक्ष्मीसहस्रेण विराजितम् ॥ ७ ॥
सहस्रजानुजङ्घं च सहस्रचरणाम्बुजम् ।
चन्द्रकोटिसमानांशुनखचन्द्रैर्नखोज्वलम् ॥ ८ ॥
तमेव पुरुषं शान्तं ध्यानस्तिमितलोचनम् ।
प्रणेमुः देवताः सर्वा विष्णुब्रह्मशिवादयः ॥ ९ ॥
स्तवैर्नानाप्रकारैश्च स्तुत्वा देवर्षभाः पुरः ।
निवेदितं ततस्तस्मै निजागमनकारणम् ॥ १० ॥

ब्रह्माद्या देवा ऊचुः

भगवन् सर्वभूतेश कारुण्यजलमन्दिर ।
ब्रह्माण्डकोटिकोटीश सहस्राक्ष सहस्रपात् ॥ ११ ॥
सहस्रश्रवणघ्राण भूतावास पुरातन ।
सर्वज्ञ ज्ञानविज्ञानप्रधानपुरुषेश्वर ॥ १२ ॥
अस्मन्निवेदनं नाथ श्रूयतां कथयामहे ।
भाराक्रान्ता धरित्रीयं ब्रह्माणं शरणं गता ॥ १३ ॥
अस्मै निवेदितं सर्वं पृथिव्या व्याकुलात्मना ।
दुरासदा दुराधर्षाः पापात्मानोऽघचेतसः ॥ १४ ॥

भारं कुर्वन्ति मेऽसह्यं तेन यामि रसातलम् ।
तस्या एतद्वचः श्रुत्वा कृपणं कृपया विभुः ॥ १५ ॥
अस्माभिः सहितस्त्वां(स्तां) वै गृहीत्वा समुपागताः ।
विष्णोः सकाशमस्माकमीश्वरस्य महेश्वर ॥ १६ ॥
सैवापि ब्रह्मणा सार्द्धं वैकुण्ठभवनाद्विभो ।
त्वामद्य शरणं प्राप्ताः पृथिव्याः स्वस्तिहेतवे ।
तद्वै सर्वजगन्नाथ यत्कर्तव्यं विधीयताम् ॥ १७ ॥

शिव उवाच

यत्किं भूतं न च भवद्भविष्य-
त्स्थूलसूक्ष्मसविकारमाद्य ।
सर्वं त्वमेवासि शुभाशुभं विभो
किमस्मदीयेन निवेदनेन ॥ १८ ॥

ब्रह्मा उवाच

विष्णुस्त्वमेव स्थितये जनानां
जनाभिजातोऽस्मि सहस्रमूर्ते ।
त्वयैव सृष्टामि जगन्ति नाथ
सृजामि सादित्यशवेतराणि ॥ १९ ॥
रजस्तमःसत्त्वमयास्त एव
जीवा असद्बुद्धिसुबुद्धिमिश्राः ।
हिते रताः केऽप्यहिते रता नृणां
तानैव जानामि रजःस्वभावत् ॥ २० ॥

श्रीविष्णुरुवाच

अहं तु त्वत्सत्त्वगुणप्रधानः
प्रधानविष्णुः स्थितये जनानाम् ।
ब्रह्माण्डभाण्डान्तरवर्तिनो जनान्
जनामि तान् वै सृजामि हन्मि ॥ २१ ॥
सुरान् पुरस्कृत्य निहन्मि दैत्यान्
दैत्यान् पुरस्कृत्य तिरस्करोमि ।
देवान् क्वचिन्मानवरक्षणाय
त्वया नियुक्तो नियतं त्र्यधीश ॥ २२ ॥

ये वै मया विनिहताः सुरनाथहेतो-
दैंत्या रसातलगताः क इमे न जाने ।
कुर्वन्ति भारमतुलं धरणेरनेका-
स्तान् वै विभो कथय मे किमिहास्ति हेतुः ॥ २३ ॥

ब्राह्मण उवाच

इत्थं विष्णुधीशेन्द्रप्रभृतीनां वचः प्रभुः ।
सहस्रवदनः श्रुत्वा गोविन्दं गोकुलेश्वरम् ॥ २४ ॥
सस्मार राधिकाकान्तं कान्तं कमललोचनम् ।
नवीननीरदस्निग्धश्यामलाङ्गं मनोहरम् ॥ २५ ॥
सुकुञ्चितकचैर्दिव्यैरुर्ध्वबद्धसुचूडकम् ।
पीतारुणासितैः पुष्पैः शोभितं तं लसत्स्रजा ॥ २६ ॥
अलकालिकुलैर्जुष्टं शरदम्भोरुहाननम् ।
चन्द्रबिम्बतिलकं श्रीमद्भालतलामलम् ॥ २७ ॥
सुनसं कोटिचन्द्राभवदनं पद्मलोचनम् ।
समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ २८ ॥
रक्तौष्ठं रक्तदशनं रक्तबिम्बाधरं शुभम् ।
रत्नालङ्कारसंयुक्ततिर्य्यग्ग्रीवातिसुन्दरम् ॥ २९ ॥
सुचारुबाहुयुगलं वेणुवादनतत्परम् ।
आजानुलम्बितश्रीमद्वनमालाविभूषितम् ॥ ३० ॥
श्रीवत्सलोमावलिभिः कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
सुचारुवक्षसंचारुबलिमत्पल्वलोदरम् ॥ ३१ ॥
सुकटिं च सुजानुं च सुजङ्घं शोभनाङ्घ्रिकम् ।
सर्वदेवशिरोरत्ननिघृष्टचरणाम्बुजम् ॥ ३२ ॥
ब्रह्मज्योतिर्मयनखं महालक्ष्मीगणावृतम् ।
राधाचन्द्रावलीभ्यां च सेवितं पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ३३ ॥
गोपीभिश्चारुरूपाभिः दिव्यं तं पुरुषोत्तमम् ।
एवंभूतं परं ब्रह्मस्वरूपं ध्यानमङ्गलम् ॥ ३४ ॥
ध्यायमानस्य हृदये स्मृतिर्जाता पुरातनी ।
तस्य तत्स्मरणादेव गद्गदाभूत् सरस्वती ॥ ३५ ॥
पुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गो गङ्गा इव सहस्रशः ।
अश्रुधाराश्च नेत्रेभ्यः स्रवन्त्यः करुणार्णवम् ॥ ३६ ॥

पूरयन्ति महाभागे समन्ताद् विह्वलात्मनः ।
सर्वाङ्गकम्पोऽभूत्तस्य तं दृष्ट्वा परमाद्भुतम् ॥ ३७ ॥
विष्णुब्रह्ममहेशाद्या मेनिरे तन्महालयम् ।
केचिन्निपेतुर्जलधौ लोमान्याश्रित्य केचन ॥ ३८ ॥
तिष्ठन्ति केचित्ततो भिन्ननयनाम्बुसरिद्भवैः ।
नीता दूरं सायुधाश्च सगणाश्च सवाहनाः ॥ ३९ ॥
तान् दृष्ट्वा कृपया कान्तो महाविष्णुः सनातनः ।
उद्दधार च हस्तैककरजेनैव लीलया ॥ ४० ॥
ततः प्रत्याहृतान् सर्वान् कोटिब्रह्माण्डविग्रहः ।
श्रृण्वतां सर्वभूतानां प्रश्नं परमशेषतः ॥ ४१ ॥

श्रीमहाविष्णुरुवाच

श्रूयतां देवताः सर्वास्तथ्यं पथ्यं हितं वचः ।
अस्ति कश्चित् प्रमाणाद्यः कृष्णाख्यः परमेश्वरः ॥ ४२ ॥
द्वे ब्रह्मणी तस्य रूपे व्यक्ताव्यक्ते सनातने ।
व्यक्तरूपोऽस्म्यहं ब्रह्मज्योतिरव्यक्तमुच्यते ॥ ४३ ॥
साकारं सगुणं ब्रह्म निराकारं तथाऽगुणम् ।
साकारस्य च या माया प्रकृतिः सैव कथ्यते ॥ ४४ ॥
सत्त्वादयो गुणास्तस्य यूयं वै गुणिनस्ततः ।
सदाशिवाख्या या शक्तिः सा निराकाररूपिणी ॥ ४५ ॥
पुंप्रकृत्यात्मिका सैव योनिलिङ्गस्वरूपिणी ।
यज्ज्योतिस्तत्तु कृष्णस्य वपुषो ज्योतिरूर्जितम् ॥ ४६ ॥
एतयोरुपरिस्थानं श्रीमद्वृन्दावनाभिधम् ।
तत्रास्ते भगवान् साक्षात् सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ४७ ॥
स निराकारसाकारः परः परतरात्मकः ।
रसस्वरूपो विश्वेशः सर्वदा मम वन्दितः ॥ ४८ ॥
तस्येच्छया महादेव ध्रियन्ते अण्डकोटयः ।
तस्य शक्ती राधिका च परमानन्दरूपिणी ॥ ४९ ॥
तया प्रसूतं सकलं तया व्याप्तं चराचरम् ।
तस्या अङ्गात् समुत्पन्ना नार्यः कोटिसहस्रशः ॥ ५० ॥

ताभिः स रमते नित्यं कृष्णो लीलारसाम्बुधिः ।
क्वचित् श्रृङ्गारलीलाभिः क्वचिद् वीररसेन वै ॥ ५१ ॥
क्वचित् करुणया हास्यरसै रौद्ररसैः क्वचित् ।
अद्भुतेन रसेनापि बीभत्सरसतः क्वचित् ॥ ५२ ॥
भयानकरसे ताभिः कृष्णः क्रीडितुमिच्छति ।
विरक्ताश्चाभवन्नार्यस्तं त्यक्त्वा पुरुषोत्तमम् ॥ ५३ ॥
कुञ्जान्तरं ययुः कान्ता मायया भ्रान्तचेतसः ।
ततस्ताभ्यो भयं दातुं सृष्टवान् निजदेहतः ॥ ५४ ॥
वृकान् क्रूरमृगांस्तद्वद् वक्रवातादिकान् यतः ।
ते कृष्णदेहादुत्पन्नाः सुरासुरभयङ्कराः ॥ ५५ ॥
न त्वया शम्भुना वापि ब्रह्मणा वा रमापते ।
न हन्तुं शक्यते क्वापि किमिन्द्रेणाल्पतेजसा ॥ ५६ ॥
तैरेव मर्दिता भूमिर्भाराक्रान्ता रसातलम् ।
गन्तुमिच्छति सत्यं तद्धितार्थं तद्वचः शृणु ॥ ५७ ॥
सर्वैरेव हि गन्तव्यं श्रीमद्वृन्दावनं वनम् ।
कृष्णस्य वध्यास्ते सर्वे हता यान्ति भुवं क्वचित् ॥ ५८ ॥
भुवमायान्ति वा क्वापि दिव्यं वृन्दावनं सुराः ।
यत्रास्ते राधिका तत्र सर्वयोगीश्वरेश्वरः ॥ ५९ ॥
अनेनैव पथा देवा गच्छध्वं मा विलम्ब्यताम् ।
क्रियतां मच्छिरोदेशे देवीलोकोऽस्ति तत्परम् ॥ ६० ॥
शिवलोकस्तदूर्ध्वे च तत्रास्ति विरजा नदी ।
तस्याः पारे परंब्रह्म ज्योतीरूपं परं पदम् ॥ ६१ ॥
तन्मध्ये तन्मयं स्थानं श्रीमद्वृन्दावनं वनम् ।
तद् गत्वा परमश्रेष्ठो युष्माभिः संस्तुतो विभुः ॥ ६२ ॥
आविर्भूय स भूतेशो भूमौ त्रिभुवनेश्वरः ।
भूमेर्भारनिरासार्थमवश्यं तान् हनिष्यति ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीकृष्णयामले ज्ञानकाण्डे विष्णुमहाविष्णुसम्वादे
श्रीमद्वृन्दावनोद्देशो [नाम चतुर्थोऽध्यायः] ॥ ४ ॥

ब्राह्मणी उवाच

ततः किं तैः कृतं देवैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः।
तन्मे कथय तत्त्वज्ञः श्रोतुं कौतूहलं मम ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच

शृणु तुभ्यं महाभागे कथयिष्यामि तत्त्वतः।
महाविष्णुवचः श्रुत्वा यच्चक्रुर्जगदीश्वराः ॥ २ ॥

ब्रह्माद्या ऊचुः

भगवन् सर्वभूतात्मन् कोटिब्रह्माण्डविग्रह।
त्वयोद्दिष्टो ह्ययं पन्था दुर्दर्शो दुर्गमो हि नः ॥ ३ ॥
पथिप्रज्ञो यदा कश्चिदग्रगामी भवेद्विभो।
तदा वा शक्यते गन्तुं श्रीमद्वृन्दावनं वनम् ॥ ४ ॥
चक्षुर्नस्तादृशं भूयाद्यथा द्रक्ष्याम तां पुरीम्।
इत्थं श्रुत्वा वचस्तेषां जहास पुरुषोत्तमः ॥ ५ ॥
हसतस्तस्य वदनोदको नीलघनच्छविः।
अष्टबाहुः पीतवासा नीलेन्दीवरलोचनः ॥ ६ ॥
वनमालाधरः कण्ठे कोटिकन्दर्पमोहनः।
विनिर्गत्य स तानाह ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ ७ ॥
गच्छध्वं भो मया सार्द्धं दर्शयिष्यामि तां पुरीम्।
महाविष्णोः प्रसादेन यूयं वै दिव्यचक्षुषः ॥ ८ ॥
भूत्वा द्रक्ष्यथ तद्राज्यं वृन्दावनवनं महत्।
अहं पुरःसरो भूत्वा यास्यामि तु सहायताम् ॥ ९ ॥
ततः सर्वे तेन साकं गच्छन्तस्त्रिदशेश्वराः।
दुर्गालोकं च ददृशुः सर्वभूतमनोहरम् ॥ १० ॥
तद्गत्वा भुवनं देव्याः कल्पवृक्षोपशोभितम्।
पारिजातवनामोदमधुमत्तमधुव्रतम् ॥ ११ ॥
नानामृगगणाकीर्णं सिंहशार्दूलगर्जितम्।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैरपरैः परिसेवितम् ॥ १२ ॥
तन्मध्ये रत्नरचितं दिव्यं सिंहासनोत्तमम्।
तस्य मध्ये महाचक्रं कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ १३ ॥

साष्टवक्त्रं सत्रिवृत्तं षोडशाष्टदलान्वितम् ।
शक्रकोणयुतं श्रीमद् द्विर्दशारसमन्वितम् ॥ १४ ॥
साष्टकोणं सत्रिकोणं बिन्दुयुक्तं मनोहरम् ।
स(श)र्वप्रभृतिसंयुक्तं भैरवीभैरवावृतम् ॥ १५ ॥
तन्मध्ये च महादेवीं कोटिसूर्यसमप्रभाम् ।
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च पञ्चबाणधनुर्धराम् ॥ १६ ॥
पाशाङ्कुशधरां देवीं रक्ताभरणभूषिताम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां पीनोन्नतपयोधराम् ॥ १७ ॥
नवयौवनसम्पन्नां परमानन्दरूपिणीम् ।
प्रणेमु दण्डवत् तां च श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥ १८ ॥
ततस्तान् प्रणतान् प्राह देवी त्रिभुवनेश्वरी ।
तत्सिध्यतु देवेन्द्रा यदर्थं गन्तुमिच्छथ ॥ १९ ॥
एवं देव्याशिषं देवा गृहीत्वा गन्तुमुद्यताः ।
ततस्तां त्रिजगद्धात्रीं नमस्कृत्य पुरःसरः ॥ २० ॥
प्रतिमूर्तिर्महाविष्णोराह तान् मेघनिस्वनः ।
आगच्छध्वं महाभागा नात्र कार्या विचारणा ॥ २१ ॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः ।
निर्गत्य देव्या पुरतः शिवलोकपथं गताः ॥ २२ ॥
तत्र ज्योतिर्मयं लिङ्गं ददर्श परमाद्भुतम् ।
सर्वव्यापि जगद्रूपं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ २३ ॥
महायोनियोगपीठमारूढं परमं पदम् ।
नानाकारं निर्विकारं निराकारं निरञ्जनम् ॥ २४ ॥
निश्चलं निर्मलं शान्तं नितान्तं तद् गुणागुणम् ।
ओङ्कारात्मकमाकारमशेषगुणरूपकम् ॥ २५ ॥
दृष्ट्वा तदद्भुतं ते च महाविष्णुतनुश्च सः ।
प्रणिपत्य महादेवं तुष्टुवुस्वं सदाशिवम् ॥ २६ ॥

ब्रह्माद्या ऊचुः

ॐ जय देव निरञ्जन निर्विकार जय तेजोमयतनु दुर्निवार।
जय लिङ्गरूप जय योनिरूप जय जय तिरस्कृतसर्वरूप ॥ २७ ॥
जय शङ्कर सर्वदशाग्रमते जय किङ्करवत्सल सिद्धिगते।
जय कान्तिविडम्बितचन्द्ररुचे रुचिरां वरप्रद सर्वशुभे ॥ २८ ॥
जय वेदागोचरचारुचरित्र भवसागरतारणवाहित्र।
ज्ञानानन्दपरमपदकारण नित्यानन्ददुःखनिवारज ॥ २९ ॥
जय शुद्धसत्त्वमयनिर्मलनिश्चल निर्गुणनित्यनिरामयनिष्कल।
जय ब्रह्मविष्णुशिवजुष्टपाद जय नामनिराकृतदेववाद ॥ ३० ॥
जय जय मङ्गलदायकनायक निजभक्तोत्कटतापविनाशक।
जय निर्जय जयद जगन्मय सदयहृदय दक्ष मखक्षय ॥ ३१ ॥
लोकातीतसकलरससागर गङ्गाधर जय रजनीनागर।
सर्वभूतहितकारणतारण जय परमेश निखिलजनपावन ॥ ३२ ॥
जय बहुरूप निरूप निरञ्जन शूलहस्त पशुपाशविनाशन।
जय जय परम परापरवन्दित वामदेव सकलजनरञ्जित ॥ ३३ ॥
उत्पत्तिस्थितिविनाशहेतो परमेशान परमवृषकेतो।
जय निष्काङ्क्ष निरामय निर्भय जय दुर्जय जय विजय जगत्त्रय ॥३४॥
जय चन्द्रचूड विमद विमत्सर गौरीवदनसरोरुहमधुकर।
सर्वदेवहृदयान्तनिवास भूतित्रिभूषणकृत्तिवास।
जय राधेश्वर सकलाराधित जय विश्वेश्वर विश्वविबोधित ॥ ३५ ॥

हे विश्वनाथ सकलेश्वर लिङ्गरूप
सर्वान्तरस्थ परमेश परावरेश।
भूताधिनाथ भुवनानि बिभर्षि पासि
त्वं कृपामयजनान् परिपाह्यनाथान् ॥ ३६ ॥
हे चन्द्रचूड पुरुषेश्वर शङ्कराद्य
गौरीपते सकलनिष्कलशूलपाणे।
वेदाद्यगोचरसुगोचरभक्तिभाजां
शन्नः कुरु श्रवणमङ्गलमङ्गलेश ॥ ३७ ॥
सर्वज्ञ सर्वभूतेश सर्वभूतेश्वरेश्वरः।
सर्वभूतात्मन् सर्वसिद्धीश विश्वेश्वर नमोऽस्तु ते ॥ ३८ ॥

त्वं ब्रह्म परमं सूक्ष्मं कृष्णस्त्वं पुरुषः परः।
प्रकृतिस्त्वं परा सूक्ष्मा प्रधानपुरुषेश्वराः ॥ ३९ ॥
महाविष्णुस्तु विष्णुस्त्वं ब्रह्मेशानपुरन्दराः।
देवाः सर्वे जगन्नाथ त्वमेव सर्वदृक् शिवः ॥ ४० ॥
त्वं भूमिस्त्वं जलं वह्निर्वायुराकाशमेव च।
त्वमेव सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ४१ ॥
भूतं भवद् भविष्यच्च त्वमेव परमेश्वरः।
प्रसीद देवदेवेश परात्पर नमोऽस्तु ते ॥ ४२ ॥

श्रीनारद उवाच

य इमं पठते स्त्रोत्रं ब्रह्मादिमुखनिर्गतम्।
आयुर्विद्या यशो लक्ष्मीर्मुक्तिस्तस्य करस्थिता ॥ ४३ ॥

॥ इति श्रीकृष्णजा(या)मले महाशिवदर्शनं सदाशिवस्तोत्रं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



एवं तैस्तं स्तुतो देवो लिङ्गरूपी सदाशिवः ।
प्रसन्नः परमेशानो लिङ्गमध्याद् विनिर्गतः ॥ १ ॥
अर्द्धनारीश्वरः श्रीमान् ऋक्षबाहुर्दिगम्बरः ।
ऊर्ध्वलिङ्गो विरूपाक्षो विश्वरूपो महाप्रभुः ।
प्राह तान् प्रणतान् महाविष्णुपुरःसरान् ॥ २ ॥

सदाशिव उवाच

वरं वृणुध्वं विश्वेशा यस्तु वो हृदि वर्तते ।
आज्ञातं बहुना किं वा कृष्णसन्दर्शनार्थिनः ॥ ३ ॥
यूयं कृष्णस्य तद्रूपं द्रक्ष्यथ स्वेन चक्षुषा ।
यस्त्वेतत् परमं स्तोत्रं पठिष्यति ममाग्रतः ॥ ४ ॥
अभ्यर्च्य मां ध्रुवं तस्य षण्मासात् कृष्णदर्शनम् ।
यस्य लिङ्गमहं देवा यस्य तेजः सनातनम् ॥ ५ ॥
यस्य दुर्गा तनुस्थायागच्छध्वं तत्परं पदम् ।
भयात्तेन न भेदोऽस्ति यो सावहमिति ध्रुवम् ॥ ६ ॥
इयं सा राधिका देवी मायया योनिरूपिणी ।
साकारोऽहं निराकारो ब्रह्मभूतो निरामयः ॥ ७ ॥
सर्वाधारो निराधारो निर्गुणः परमात्परः ।
अतः परं नास्ति किञ्चिद् गुणभूतं सुरोत्तमः ॥ ८ ॥
निष्कलं निर्मलं शान्तं ज्योतीरूपं परं पदम् ।
तस्य विश्वेश्वरेस(श)स्य सूक्ष्मरूपं सनातनम् ॥ ९ ॥
नात्र दिक्कालनियमो न चैवास्ति गमागमः ।
मद्दर्शनप्रसादेन गच्छध्वं निर्विशङ्कया ॥ १० ॥
कृत्वाऽग्रगामिनं देवं महाविष्णुतनूद्भवम् ।
मत्प्रसादादविघ्नेन कृष्णं द्रक्ष्यथ चक्षुषा ॥ ११ ॥

ब्रह्माद्या ऊचुः

यदनन्तमपारं च दुर्दर्शं चातिदुर्गमम् ।
ज्योतिर्मयं कथं यामः सत्यं सत्यं तदुच्यताम् ॥ १२ ॥

सदाशिव उवाच

मन्मुखान्निर्गतं मन्त्रं गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।
श्रुत्वा जप्त्वा च गच्छध्वं यदि तं द्रष्टुमिच्छथ ॥ १३ ॥

ततः शम्भुमुखादूर्ध्वात् क्लींकारः समुदीरितः ।
कृष्णायेति मुखात् पूर्वाद् गोविन्दायेति दक्षिणात् ॥ १४ ॥
गोपीजनवल्लभायेति पाश्चात्याद् वदनाद्विभोः ।
उत्तराद् बदनात् स्वाहा निर्गता वह्निवल्लभा ॥ १५ ॥
एवं पञ्चपदी विद्या श्रुत्वा ब्रह्मादिभिः सुरैः ।
नमस्कृत्य महादेवं पुरस्कृत्य महाहारी(हरि)म् ॥ १६ ॥
निर्गत्य तस्मात् पुरतो ददृक्षुर्विरजां नदीम् ।
ज्योतिर्मयीमपारान्तामनन्तगुणसंयुताम् ॥ १७ ॥
तस्यास्तटस्था देवेशाः ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
महाविष्णुश्च मधुरं शुश्रुवुः स्वनमद्भुतम् ॥ १८ ॥
वेणुवि(वी)णामृदङ्गानां घनानां चित्तहारिणम् ।
विपञ्चीनां किन्नरीणां किन्नराणां सहस्र[श]ः ॥ १९ ॥
वलयानां नूपुराणां किन्नरीणां च सुस्वरम् ।
गीतं च कलकण्ठीनां सर्वभूतमनोहरम् ॥ २० ॥
कृष्ण गोविन्द गोपीश गोपालेति पुनः पुनः ।
गायन्तीनां रवं श्रुत्वा विस्मयं परमं ययुः ॥ २१ ॥
ते विस्मिता ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः परस्परम् ।
ध्यायन्तः पुण्डरीकाक्षं सदाशिवमुखोद्गतम् ॥ २२ ॥
महामन्त्रं मुदा जेपुस्तं प्रहृष्टतनूरुहाः ।
तत उन्मूल्य नयने महाविष्णुतनूद्भवः ॥ २३ ॥
विष्णुर्ब्रह्मा शिवश्चैव ये के तत्र समागताः ।
ददृशुः सर्वतो व्याप्तं ज्योतिः सूर्यशतोपमम् ॥ २४ ॥
चन्द्रकोटिमयं क्वापि वह्निकोटिशतोज्ज्वलम् ।
तत्र ज्योतिर्घनीभूतं नानारत्नविनिर्मितम् ॥ २५ ॥
पुरमेकं च ददृशुर् विष्णुब्रह्ममहेश्वराः ।
नद्या मध्ये महाश्चर्यं सर्वतो नीपकाननम् ॥ २६ ॥
तस्मिन् कदम्बविपिने सर्वरत्नविनिर्मितम् ।
कल्पवृक्षं रत्नशाखं महामरकतच्छदम् ॥ २७ ॥
स्वर्णस्कन्धं पद्मरागफलं भिदुरपुष्पकम् ।
नानामणिगणाबद्धं मलं स्व(स)च्छायमद्भुतम् ॥ २८ ॥

तस्य मूले षण्णिषण्णं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ।
बर्हिबर्हकृतोत्तंशं नीलाम्बुदलसद्द्युति ॥ २९ ॥
स्थिरसौदामिनीतुल्यपीताम्बरयुगोज्ज्वलम् ।
वनमालाधरं शान्तं द्विभुजं वेणुवादिनम् ॥ ३० ॥
नानालङ्करणोपेतं मनोभवमनोहरम् ।
तस्योत्सङ्गे तप्तहेमविद्युद्दामसमप्रभाम् ॥ ३१ ॥
नानालङ्करणोपेतां रक्तवस्त्रोपशोभिताम् ।
अपूर्वां महिलामेकां सर्वभूतमनोहराम् ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वैतन्महदाश्चर्यमवगाह्य च तां नदीम् ।
तद् गन्तुमुद्यतामाह सुष्ठुबाहुर्महाहरिः ॥ ३३ ॥
मा साहसं कुरुध्वं भो तर्तुमेतां महानदीम् ।
निवर्तध्वं गुणानस्याः शृणुध्वं कथयाम्यहम् ॥ ३४ ॥
अवगाहनाद् भवेदस्याः पुमान् स्त्री महिला पुमान् ।
ऊर्ध्वं गच्छन्ति ये चास्यास्ते वै ज्योतिर्मयापरे ॥ ३५ ॥
निरञ्जने निराधारे निर्मले चापुनर्भवाः ।
शुद्धे सूक्ष्मे निमज्जन्ति कृष्णे ज्योतिर्मयापरे ॥ ३६ ॥
शृणुध्वं वचनं मह्यमनेनैव पथा सता ।
गच्छध्वं तत्पुरं दिव्यं वदामि नात्र संशयः ॥ ३७ ॥
ततः सुष्टभुजस्तेषामग्रगाम्यभवत्वराः ।
कति दूरं ततो गत्वा मणिनिर्मितसङ्कुला ॥ ३८ ॥
तैरेव सहसा दृष्टा बद्धा सेयं महानदी ।
ततः शङ्कुपरिगतास्तां दर्शदे(दृशुः) पुरीं पराम् ॥ ३९ ॥
रत्नध्वजपताकाभिः सर्वतः समलङ्कृताम् ।
ते रत्नशङ्कुपरितो गच्छन्तो विगतज्वराः ॥ ४० ॥
आत्मानमेकमभितो नानां नाकारमितस्ततः ।
पश्यन्ति परमाश्चर्यं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ४१ ॥
सुगन्धिमान्द्यसंसै(शै)त्यसुखसंस्पर्शवायुना ।
वैकुण्ठशुभसम्पत्ति विनिन्दन्ति परस्परम् ॥ ४२ ॥
रत्नशङ्को[ः] समुत्पत्य समुत्तीर्य महानदीम् ।
महावनं नाम वनं प्रविष्टाः सर्वतः सुखम् ॥ ४३ ॥

कति द(दू)रे वनात्तस्मात् सर्वरत्नमयं शुभम् ।
यमुनायास्तटे रम्ये वंशीवटमनौपमम् ॥ ४४ ॥
ददृशुः पुरतस्तस्य नादग्रामं ततो गताः ।
पूर्वेषां यत्र गोपाला ब्रह्मवादोऽभवत् पुरा ॥ ४५ ॥
राजग्रामं महाभागा जग्मुर्ब्रह्मादयः सुराः ।
गोपालैर्यत्र गोपीभिरभिषिक्तो महाप्रभुः ॥ ४६ ॥
विराजमानो गोवत्सैर्ब्राह्मणस्त्रीशतैर्वृतः ।
तत्रोपभोगात् तत्रार्थी प्रहसद्वदनाम्बुजः ॥ ४७ ॥
ततः सौदामिनीनाम पुरी परमशोभना ।
गत्वा तां दुरिता जग्मुर्भाण्डारकवटोत्तमम् ॥ ४८ ॥
ततो मद्वचनं यत्तु बलभद्रेण निर्मितम् ।
श्रीवनाख्यं वनं यत्तु श्रिया देव्या विनिर्मितम् ॥ ४९ ॥
ततो [वि]लो(मो)हनं दिव्यं ब्रह्मकुण्डं ततः परम् ।
वृन्दावनाभिषेकार्थं यत्र ब्रह्ममयं पयः ॥ ५० ॥
स्वयं कृष्णोऽभवत्तेन ब्रह्मकुण्डेति कथ्यते ।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ॥ ५१ ॥
बभूवुर्हृष्टमनसः ततस्तौ यमलार्जुनौ ।
नन्दालयं ततो गत्वा जग्मुस्ते पूतनाह्रदम् ॥ ५२ ॥
श(स)ङ्केतकवटं यत्र कृत्वा श(स)ङ्केतमुत्सुका ।
वृषभानुपुराद्याता क्रीडार्थं राधिका स्वयम् ॥ ५३ ॥
प[ा]रावारेति विख्यातं स्थानं तस्मात् समागताः ।
ज्ञानकुण्डं ततो यत्र मोहितो राधया विभुः ॥ ५४ ॥
स्नात्वा स्वज्ञानमापन्नो ज्ञानकुण्डेति कथ्यते ।
ततः कदम्बविपिनमपश्यन् विपुलं शुभम् ॥ ५५ ॥
खादिरं विपिनं य(प)श्चात्तरणीनगरं गताः ।
क्रीडानौचरि(रचि)ता यत्र कृष्णेन परमात्मना ॥ ५६ ॥
ततोऽपि वत्सहरणं स्थानं परमशोभनम् ।
ततोऽपि ददृशुः सर्वे मानसाख्यं सरोवरम् ॥ ५७ ॥
ततो गत्वा रामघट्टं यमुनातटमुत्तमम् ।
गोवर्द्धनगिरिं गत्वा ततः काम[व]नं ययुः ॥ ५८ ॥

सुगन्धिकशिलां गत्वा ततः पाण्डुशिलां ययुः ।
सेतुबन्धेति विख्यातं स्थानं यत्रैव बालकैः ॥ ५९ ॥
निजदेहसमुद्भूतैः क्रीडा कृष्णेन वै कृता ।
तत रक्तभोजनस्थानं बालकैर्यत्र भोजनम् ॥ ६० ॥
ततो वल्कलवनं श्रीमद् मधुमत्तालिकं कृतम् ।
राधाकुण्डं स्नानतो यत् पुरुषैः स्त्रीत्वमिष्यते ॥ ६१ ॥
श्यामकुण्डं स्नानतो यद् राधा कृष्णत्वमागता ।
ततः कुन्दवनं तस्मान्निकुञ्जवनमेव च ॥ ६२ ॥
महाकेलिकदम्बं च निकुञ्जं चैव सर्वतः ।
ततस्तालवनं चैव ततो मधुवनं परम् ॥ ६३ ॥
वृन्दादेवीगृहं दृष्ट्वा नाना विनिर्मितेष्टदम् ।
वृन्दावनपुरद्वारे स्थापयित्वा सुरोत्तमान् ॥ ६४ ॥
स च वदति किमेभ्यः श्रोतुकामो महात्मा
हरिहरविधिमधो(ध्ये) मायया छत्र(न्न)मूर्तिः ।
मम गतिरमरेषा(शा) नास्त्यतोऽहं व्रजामि
स्वभुवनमिति चोक्त्वा गोपमध्ये विवेश ॥ ६५ ॥
आमन्त्रा(न्त्र्या)न्तर्दधे सद्यः सोष्टवाङ्कुर्महाहरिः ।
अतः परं नाम(न मे) गन्तुं शक्तिरस्तीति चाब्रवीत् ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीकृष्णजा(या)मले कृष्णरहस्ये वृन्दावनप्रवेशो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



ब्राह्मणी उवाच

ततस्तैः किं कृतं द्वारि स्थितैर्ब्रह्मादिभिः सुरैः।
तन्मे कथय सर्वज्ञ श्रोतुं कौतूहलं ममे(म) ॥ १ ॥

ब्राह्मण उवाच

ततो दौवारिकं(कः) कृष्णप्रतिमूर्तिर्महाप्रभम्(भः)।
पप्रच्छ तान् महाभागान् के यूयं समुपस्थिताः।
कस्मादस्मिन् मया याताः किमत्रास्ति प्रयोजनम् ॥ २ ॥

ब्रह्माद्या ऊचुः

अयं विष्णुरयं ब्रह्मा रुद्रश्चासौ शतक्रतुः।
अयमग्निरिमे विप्रा बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ३ ॥
विज्ञापयास्मान् कृष्णाय द्वारदेशमुपस्थितान्।
ततो दौवारिको गत्वा कृष्णाय परमात्मने ॥ ४ ॥
सर्वं निवेदयामास यदुक्तं त्रिदशेश्वरैः।
श्यामसुन्दर सर्वज्ञ राधाकान्त महाप्रभो ॥ ५ ॥
गोलोकनाथ गोविन्द वृन्दारण्यपुरन्दर।
उपस्थिता भवद्द्वारि ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
तेभ्यः किं कथयिष्यामि तदाज्ञापय केशव ॥ ६ ॥
इत्थं मुहुर्वदति काकुवचः सुवादुं
दौवारिको मणिमयामलभित्तिलक्ष्म्या।
गोगोपगोपरमणीपरिसेव्यमानो
दौवारिकं प्रति जगाद गभीरनादः ॥ ७ ॥
वृन्दावनान्तरगतो रत्नप्रागारमध्यगः।
मणिबद्धनीपमूलमध्यस्थोऽखिलनायकः ॥ ८ ॥
गोपीभिरन्तरे बाह्ये गोपालैः परिसेवितः।
रत्नभिन्नौ(त्तौ) प्रतिकृतिस्तं जगाद घनध्वनिः।
दौवारिकं सम्मुखस्थं विनयावनतं विभुः ॥ ९ ॥

श्रीकृष्णप्रतिमूर्तिरुवाच

अरे ब्रह्माण्डनः(तः) कस्मात् समायाताः सुरेश्वराः।
कथ्यतां कतमो ब्रह्मा कतमो वा जनार्दनः ॥ १० ॥

रुद्रो वा कतमो द्वारि वागीशाद्या द्विजाश्च के।
तज्ज्ञात्वा पुनरागत्य किमर्थमिह तेऽनघाः ॥ ११ ॥
ततो द्वौवारिकः शीघ्रं ब्रह्मादीनां पुरः स्थितः।
प्राह तान् पुरुषव्याघ्राः कस्मादिह समागताः ॥ १२ ॥
ब्रह्माण्डात् कथयध्वं तत् के यूयं वा सुरेश्वराः।
अयं वा कतमो विष्णुरयं वा कतमो विधिः।
असौ वा कतमो रुद्रः क एते वा द्विजातयः ॥ १३ ॥

विष्णुब्रह्ममहेशा ऊचुः

अहं लक्ष्मीपतिर्नाम्ना विष्णुर्दैत्यविनाशनः।
स्रष्टा प्रजापतेर्धातुः क्षीराम्बुधिविशयो हरिः ॥ १४ ॥

ब्रह्मोवाच

यो विष्णोर्नाभिकमलाज्जातो वेदविदांवरः।
आगतः सनकादीनां जनकश्चतुराननः ॥ १५ ॥

रुद्र उवाच

अहं प्रजापतेरस्य भ्रूमध्यात् केन हेतुना।
जातो रुद्रेति विख्यातः त्रिनेत्रः पार्वतीपतिः।
दशबाहुः पञ्चवक्त्रः कार्तिकेयपिता हरः ॥ १६ ॥

वागीशाद्या ऊचुः

धर्मार्थकाममोक्षादिपुरुषार्थैकदर्शिनः ।
बृहस्पतिप्रभृतयो वयं देवपुरोहिताः ॥ १७ ॥
दिदृक्षवो जगद्योनिं तमादिपुरुषं विभुम्।
पृथिव्या समभीच्छन्तो हितामै(थै)षामुपस्थिताः।
सुमुखाख्याद्धि ब्रह्माण्डाद् वयमत्र समागताः ॥ १८ ॥

ब्राह्मण उवाच

स च दौवारिको भूयो गोपालैर्वेष्टितं विभुम्।
दृष्ट्वोवाच प्रभो श्रीमन् ब्रह्माण्डात् सुमुखाभिधात् ॥१९॥
ब्रह्मासौ सनकादीनां जनकश्चतुराननः।
विष्णुस्तस्यैव जनकः श्यामलाङ्गश्चतुर्भुजः ॥ २० ॥

यस्य पत्नी सती देवी वृषभो यस्य वाहनः ।
स रुद्रस्तनयौ यस्य गजाननषडाननौ ॥ २१ ॥
द्रष्टुं त्वां समुपायातस्तथा देवपुरोहिताः ।
किमाज्ञापय वा नेतुं युज्यते वा न युज्यते ॥ २२ ॥
ततस्तमाह गोविन्दस्तानत्रानय सत्वरम् ।
स तु दौवारिको भूय आगत्य शनकैः सुरान् ॥ २३ ॥
आगच्छन्तु महाभागाः कृष्णो वो द्रष्टुमिच्छति ।
इत्युक्त्वा दर्शयामास रत्नभि[र]ङ्कितं विभुम् ॥ २४ ॥
स च तान् प्रणतानाह विष्णुब्रह्मशिवादिकान् ।
स्वागतं चोपविश भो आत्मनो भद्रमस्तु वः ॥ २५ ॥
तत् श्रुत्वा वचनं ते च कृष्णस्य परमात्मनः ।
बद्धप्राञ्जलयः सर्वे मस्तकन्यस्तहस्तकाः ॥ २६ ॥
प्राहुस्तं प्रणताः प्रत्यग्रूपिणं परमेश्वरम् ।
हे नाथ राधिकाकान्त वाञ्छातीतफलप्रद ॥ २७ ॥
उपविशध्वमिति प्राह यत्त्वं कृपणवत्सल ।
ततस्तु कतमा एते ब्रह्माद्या इति मद्वचः ॥ २८ ॥
तत्र त्वं(त्वद्) ज्ञातुमिच्छामः किमन्ये सन्ति मादृशाः ।
तद् द्रष्टुं नो दिदृक्षास्ति तानस्मान्नपि दर्शय ॥ २९ ॥
ततः स प्रहसन्(द्)वक्त्रो वृन्दावनपुरन्दरः ।
आह वो दर्शयिष्यामि यावतो द्रष्टुमिच्छथ ॥ ३० ॥
ततः सस्मार भगवान् धिया ब्रह्माण्डनायकान् ।
ब्रह्मविष्णुमहेशादीन् नानारूपपरिच्छदान् ॥ ३१ ॥
ततस्तु स्मृतिमात्रेण ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
उपर्युपरि धावन्तो गलदश्रुमुखामुरुः(हुः) ॥ ३२ ॥
उत्तिष्ठन्तः पतन्तश्च प्रणिपातपुरःसराः ।
सर्वदा हृष्टरोमाणो नाथ कृष्णेति वादिनः ॥ ३३ ॥
अष्टवक्त्राः षोडशास्या द्वात्रिंशद्वदनास्तथा ।
चतुःष.. ॥ ३४ ॥

(अत्र मातृकासमाप्तिः)



परिशिष्टम्-२

श्रीकृष्णयामलश्लोकार्धानुक्रमणी



परिशिष्टम्-३

नवममातृकाश्लोकार्धानुक्रमणी



हमारे प्रमुख प्रकाशन

तन्त्र-मन्त्र सम्बन्धी

१. मन्त्रमहोदधि (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य २५०/-
२. हिन्दी मन्त्र महार्णव (मूल एवं हिन्दी अनुवाद)
देवी खण्ड २००/-, देवता खण्ड २००/-, मिश्र खण्ड १००/-
३. श्रीविद्यार्णवतन्त्रम् (मूलमात्र)
पूर्वार्धम् १५०/- उत्तरा०प्रथम १५०/- उत्तरा०द्वितीय १५०/-
४. कुलार्णव तन्त्र (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद) ७५.००
५. नारदपाञ्चरात्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : १००/-
६. धनदारतिप्रिया तन्त्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : ५/-
७. मातृकाभेद तन्त्र (मूल एवं संस्कृत टिप्पणी सहित) १५/-
८. त्रिपुरासार समुच्चय (नागभट्टकृत एवं गोविन्दाचार्य की संस्कृत टीका) ८/-
९. बृहत् तन्त्रसार (मूलमात्र) मूल्य : १००/-
१०. सप्तशतीसर्वस्वम् मूल्य : ६०/-
११. त्रिपुरातापिन्युपनिषद् एवं त्रिपुरोपनिषद् मूल्य ३/-
१२. हनुमद्वडवानल स्तोत्र, हनुमल्लाङ्गूलास्त्र स्तोत्र एवं हनुमान साठिका मूल्य : २/-
१३. शिवस्वरोदय (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित) २०/-
१४. शनिस्तोत्रावलि ४/-
१५. वामकेश्वरीमतम् (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित) १५/-
१६. कौलज्ञाननिर्णय (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद सहित) ५०/-
१७. डामर तन्त्र (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद) २५/-
१८. डामर तन्त्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) २०/-
१९. मन्त्र रामायण (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) १५/-
२०. कामरत्नतन्त्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य पेपर बैक ३०/- सजिल्द मूल्य ३५/-
२१. अद्भुत रामायण (महर्षि वाल्मीकि कृत) सजिल्द २५.०० पेपर बैक २०.००

धनवन्तरि ग्रन्थमाला

१. वङ्गसेन संहिता (मूल हिन्दी अनुवाद एवं परिशिष्ट सहित) मूल्य १६५ ००
२. हारीत संहिता (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : ८०/-